हिन्दी समिति ग्रन्थमाला---८३

भाषा-विज्ञान पर भाषण

लेखक

ऐफ० मैक्स मूलर के० एम०

अनुवादक

डा० हेमचन्द्र जोशी

हिन्दी समिति, सूचना विभाग

उत्तर प्रदेश, लखनऊ

प्रथम संस्करण
१९६४

मूल्य आठ रुपये

मुद्रक
सम्मेलन मुद्रणालय, प्रयाग

प्रकाशकीय

इस पुस्तक में श्री मैक्स मूलर के उन नौ भाषणों का समावेश किया गया है जो सन् १८६१ में लन्दन के "रायल इन्स्टीट्यूट" में विद्वानों तथा विद्यार्थियों के सामने किये गये थे। ये उस विज्ञान की भूमिका मात्र प्रस्तुत करते हैं जिसने शीघ्र ही एक व्यापक एवं महत्त्वपूर्ण विषय का रूप प्राप्त कर लिया। विषय नया होने के कारण उस समय इसकी उतनी उपयोगिता नहीं प्रतीत होती थी, किन्तु स्वयं भाषणकर्ता के जीवनकाल में ही इसका महत्त्व व्यापक रूप से मान्य हो गया और विद्वानों में इसकी यथेष्ट चर्चा तथा अध्ययन-मनन होने लगा। यद्यपि इसमें कही गयी कुछ बातें अब अनावश्यक, अयथार्थ अथवा संशोध्य-सी प्रतीत होंगी, फिर भी ऐतिहासिक दृष्टि से एवं विचारों तथा अध्ययन के विकासक्रम की दृष्टि से इनका यथेष्ट मूल्य अब भी विद्यमान है। इसमें प्रतिपादित मुख्य सिद्धान्त एवं तथ्य विद्वानों तथा इस विषय में रुचि लेने वाले अन्य जनों के लिए विशेष रूप से विचारणीय और गंभीर अध्ययन में सहायक होंगे, ऐसी आशा है। हिन्दी के पाठक भी इनसे लाभ उठा सकें, इसी दृष्टि से भाषा-विज्ञान के पंडित, डाक्टर हेमचन्द्र जोशी द्वारा किया गया यह अनुवाद हिन्दी समिति की ओर से प्रकाशित किया जा रहा है। अनुवाद यथासंभव सुबोध भाषा में किया गया है और बीच-बीच में पादटिप्पणियाँ भी दे दी गयी हैं, जिससे इसकी उपादेयता बढ़ गयी है।

ठाकुरप्रसाद सिंह
सचिव, हिन्दी समिति

प्रथम संस्करण की उपक्रमणिका

भाषा-विज्ञान पर मेरे भाषण यहाँ प्रकाशित हैं, जो रॉयल इंस्टीट्यूट के लिए हस्तलिखित रूप में तैयार किये गये थे। जब मैं उक्त समिति के समक्ष उन्हें पढ़ने के लिए गया, तो जो कुछ मैंने लिखा था, उसका काफ़ी हिस्सा छोड़ देना पड़ा। अब उन्हें जनता के सम्मुख पहले से अधिक पूर्णता के साथ प्रस्तुत करते हुए मैं सहर्ष उनका पुनः संकलन कर रहा हूँ—अपने अनेक श्रोताओं की इच्छानुसार।

ये जिस रूप में हैं, वे ऑक्सफ़ोर्ड में समय-समय पर किये गये कुछ भाषणों के केवल संक्षिप्त एवं अमूर्त रूप मात्र हैं, और इतने संक्षेप में सफलतापूर्वक एक विज्ञान की सर्वतोमुखता के लिए वे भूमिका के रूप में प्रकाशित हो रहे हैं, उससे ज़्यादा के लिए नहीं।

मेरा विषय जिस किसी प्रकार ग्रहण किया जाय, यदि मैं भाषाभिज्ञ विद्वानों को इस ओर आकृष्ट करने में सफल हो सका, तो केवल वे ही नहीं, बल्कि दार्शनिक, इतिहासज्ञ एवं धर्मतत्त्वज्ञ, सभी जो इस विज्ञान से सम्बन्ध रखते हैं और जो केवल इसे शब्द मात्र मानते हैं, वे जानेंगे कि हमारे दर्शन में जो सपना देखा गया था, उससे कहीं ज़्यादा वह इन शब्दों में समाया हुआ है।

इस सम्बन्ध में मैं बेकन का एक उद्धरण देता हूँ—"मनुष्य विश्वास करता है कि बुद्धि उसके शब्दों की स्वामिनी है, किन्तु शब्द बुद्धि के लिए पारस्परिक एवं प्रतिक्रियात्मक शक्तियाँ हैं। शब्द तातारी धनुष की भाँति सबसे बुद्धिमान् की प्रज्ञा पर वार करता है और पूरी शक्ति से अपने जाल में फँसा लेता है तथा निर्णय को बदल देता है।"

ऑक्सफ़ोर्ड
११ जून, १८६१

मैक्स मूलर

विषय सूची

पहला भाषण

अन्य विज्ञानों के समान भाषा का भी विज्ञान है १–२८

दूसरा भाषण

भाषा का विकास और भाषा का इतिहास भिन्न भिन्न विषय हैं २९–९०

तीसरा भाषण

भाषाविज्ञान की प्रारम्भिक अवस्था ९१–१२९

चौथा भाषण

भाषाविज्ञान के वर्गीकरण की अवस्था १३०–१८७

पाँचवाँ भाषण

भाषाओं की वंशपरंपरा के अनुसार उनका वर्गीकरण १८८–२३४

छठा भाषण

तुलनात्मक व्याकरण २३५–२६८

सातवाँ भाषण

भाषा रचने वाले तत्त्व २६९–२९५

आठवाँ भाषण

भाषा का विकास और रूपान्तर का क्रम २९६–३३३

नवाँ भाषण

भाषा की उत्पत्ति ३३४–३८८

परिशिष्ट

क. आर्य भाषा-परिवार

ख. सेमेटिक भाषा-परिवार

ग. तूरानी भाषा-परिवार

पहला भाषण

अन्य विज्ञानों के समान भाषा का भी विज्ञान है

कुछ समय पहले जब मुझसे इस संस्था में तुलनामूलक भाषाविज्ञान पर भाषण करने को कहा गया, तो मैंने तुरन्त इस विषय पर अपनी सहमति प्रकट की। मैं इंग्लैंड में बहुत समय रहकर यह समझ गया हूँ कि अँगरेजी भाषा की अधूरी जानकारी से जो विशेष कठिनाइयाँ मेरे भाषणों में पैदा होंगी, अँगरेज श्रोताओं की धीरता और सहन-शक्ति उन्हें हल कर देगी। साथ-साथ, मुझे अपने विषय पर इतना पक्का विश्वास था कि मैं विचार करके इस निर्णय पर पहुँचा कि एक साधारण योग्यता के व्याख्याता के हाथ में भी यह काम सौंपा जा सकता है। मुझे पक्का विश्वास होने लगा कि भाषाओं के इतिहास और मनुष्य की बोली पर इधर पचास वर्षों में इंग्लैंड, फ्रांस और जर्मनी में जो खोजें हुई हैं, उनकी ओर सर्वसाधारण का जितना ध्यान गया है, उससे और भी बहुत अधिक ध्यान जाना चाहिए था। साथ ही जहाँ तक मैं इस विषय पर ध्यान देता रहा, उससे मैं इस निर्णय पर पहुँचा कि वैज्ञानिक अनुसंधान की इस नयी खुली हुई खान से जो अनमोल रत्न आविष्कृत हुए हैं, वे हमारे युग के अत्यंत महत्त्वपूर्ण आविष्कारों से किसी प्रकार कम महत्त्व के नहीं हैं।[1]

जब मैंने अपने इन भाषणों को लिखने का श्रीगणेश किया तो मुझे ज्ञात हुआ कि जो उत्तरदायित्वपूर्ण भार मैंने अपने ऊपर लिया है, वह कठिनाइयों से भरा है। भाषाविज्ञान की व्यापकता का क्षेत्र इतना विस्तृत है कि मैं अपने लिए निर्धारित

१. इस समय भाषाविज्ञान (Linguistics) वैज्ञानिक तथ्यों से ओतप्रोत है। सैकड़ों महापंडितों ने अपनी नयी-नयी शोधों से इसके नाना अंग पूरे कर दिये हैं।—अनु०

इन नौ भाषणों में इसके ऊपर केवल साधारण दृष्टि ही डाल सकूँगा। भाषा-विज्ञान में सबसे अधिक आनन्द का विषय यह है कि प्रत्येक भाषा, प्रत्येक बोली, प्रत्येक शब्द और व्याकरण के प्रत्येक रूप के विश्लेषण में बाल की खाल निकाल ली जाय। इसलिए मुझे तो ऐसा लगा कि मुझे इस विषय पर जितना लिखना या समझाना चाहिए था मैं इन भाषणों में उतना नहीं बता पाऊँगा और न मैं इस विज्ञान की नींव डालनेवाले और इसका पालन-पोषण करनेवाले ज्ञानियों के कार्य-कलापों का पूरा तथा ठीक-ठीक वर्णन ही कर सकूँगा। एक और जटिलता इसलिए खड़ी हो जाती है कि जिन-जिन विषयों पर इन भाषणों में मुझे विचार करना है, उनमें से अधिकांश नीरस हैं। धातुओं और शब्दों की रूपावलियाँ मनोरंजन का साधन नहीं बनायी जा सकतीं और न मैं उन अधिकांश भाषणों की भाँति लाभ ही उठा सकता हूँ, जिनमें वैज्ञानिक सत्य की जाँच-पड़ताल प्रयोगों और काले बोर्ड पर मान-चित्र खींचकर की जाती है और इस प्रकार भाषण में जान डाल दी जाती है। इन सब कठिनाइयों और असुविधाओं के होते हुए भी मैं जो नीरस शब्दों, संज्ञाओं, धातुओं, उपसर्ग, प्रत्ययों आदि पर इस राजकीय संस्था (इन्स्टिट्यूशन) में उस श्रोता-मंडली के सामने भाषण करने से नहीं हिचक रहा हूँ, जो जीवशास्त्र के पंडितों, रसायनशास्त्र के पारंगतों और भूतत्त्वज्ञों की आश्चर्य-चकित करनेवाली कहानियों से भरे भाषणों को सुनने की अभ्यासी हो चुकी है; तथा जो वैज्ञानिक परीक्षणों और युक्तियों द्वारा प्राप्त किये हुए निदानों पर देशी भाषा अँगरेजी के धाराप्रवाह भाषण में कविता और उपन्यास का लालित्य चढ़ा देनेवाले वाग्मियों द्वारा दिये गये व्याख्यानों के अभ्यस्त श्रोताओं के सामने भाषण देने की ढिठाई कर रहा हूँ, वह इस कारण कि अपने ऊपर पूरा विश्वास न होने पर भी, मैं अपने विषय पर अविश्वास नहीं कर सकता। स्कूल के लड़के को शब्दों का अध्ययन, सड़क के किनारे पत्थर तोड़नेवाले मजदूरों को जैसे पत्थर के बड़े टुकड़े श्रांतिकर लगते हैं, वैसा ही अरुचिकर मालूम दे, पर भूतत्त्ववेत्ता की विचारयुक्त आँखों के लिए यह मनोरंजक होता है। सड़कों के आस-पास के इन पत्थरों में वह आश्चर्यजनक तथ्यों के दर्शन करता है और प्रत्येक खाई-खंदक में हमारी जन्मभूमि का इतिहास पढ़ता है। इसी तरह भाषा में भी अपने चमत्कार भरे पड़े हैं। ये चमत्कार, ज्ञान के लिए अथक और गंभीर परिश्रम करनेवाले जिज्ञासु की तीखी नजर के सामने अपना परदा उठाने लगते हैं। भाषा की दिखाऊ परत के नीचे इतिहास के सन्-संवत् भरे पड़े हैं, प्रत्येक शब्द के बाहरी रूप के भीतर पूरे

व्याख्यान छिपे पड़े हैं। भाषा को पवित्र कहा गया है, क्योंकि यह विचारों की खान या निधि है। हम अभी तक यह नहीं कह सकते कि भाषा क्या है? यह प्रकृति की उपज हो सकती है, यह मानवीय कला की कृति या परमात्मा की देन हो सकती है।[१] इसका क्षेत्र कोई क्यों न हो, ऐसा लगता है कि यह विलक्षण है, इतना ही नहीं, यह अन्य विषयों की तुलना में बेजोड़ है। यदि यह प्रकृति की उपज हो तो अवश्य ही यह प्रकृति की अंतिम और सर्वश्रेष्ठ रचना है और यह रचना प्रकृति ने केवल मनुष्य के लिए सुरक्षित कर रखी थी। यदि यह मानवीय कला की कृति हो तो ऐसा मालूम होता है कि यह कला मानव को दिव्य सिरजनहार के प्रायः बराबरी का कर देगी। यदि यह परमात्मा की देन हो तो यह भगवान् की सबसे बड़ी देन है; क्योंकि इसके द्वारा ही ईश्वर ने मनुष्य को अपनी बातें सुनायीं और इसके द्वारा ही जीव ईश्वर की स्तुति करता है, प्रार्थना करता है और ध्यान कर पाता है।

यद्यपि हमारे सामने जो मार्ग है वह लंबा और थकान पैदा करनेवाला है, किंतु जिस उद्देश्य की ओर हम बढ़ रहे हैं वह मनोहरता से परिपूर्ण है और मेरा विश्वास है तथा मैं यह वचन दे सकता हूँ कि, हमारे विज्ञान के शिखर पर चढ़ने पर हमारी आँखों के सामने वह दृश्य दिखाई देगा जो धैर्यशील, ज्ञान-पिपासु यात्री का पूरा पारिश्रमिक चुका देगा और संभवतः उसके साहसी गाइड (पथ-प्रदर्शक) को पूरा पुरस्कार दिलायेगा।

भाषाविज्ञान बहुत नया विज्ञान है। इसका जन्म हमारी सदी के आरंभ में हुआ। इसकी परंपरा यहीं तक पहुँचती है।[२] इससे पुराने समय से स्थापित विज्ञानों के पंडित इसे अभी अपने विज्ञान की बराबरी का नहीं मानते। अभी तक इसके नाम के विषय में ही कोई निर्णय न हो पाया और इंग्लैंड, फ्रांस तथा जर्मनी में इसे

१. अब भाषाविज्ञान इस निष्कर्ष पर पहुँचा है कि भाषा एक माध्यम है जो एक-दूसरे से संबंध स्थापित करती है। समाज के बाहर भाषा का कोई प्रयोजन न होने से भाषा बिना समाज के जन्म ही नहीं ले सकती। भाषा का ध्येय हमारे समाज की सेवा और सुव्यवस्था है।

२. अब यह विज्ञान पुराना हो गया है। इसका आरम्भ अठारहवीं सदी के शुरू में हुआ था।—अनु०

जो नाना नाम दिये गये हैं वे इतने अस्पष्ट और भिन्न-भिन्न हैं कि उनसे सर्वसाधारण में इस विज्ञान के सच्चे उद्देश्यों के संबंध में अत्यंत भ्रमपूर्ण विचार फैल गये हैं। कोई इसे **तुलना-मूलक शब्दशास्त्र** कहता है, किसी ने इसका नाम **वैज्ञानिक व्युत्पत्ति-शास्त्र** रखा है, कोई इसे **ध्वनिशास्त्र** बताता है और कोई इसे **शब्दशास्त्र** कहता है। फ्रांस में सर्वसम्मति से इसका असंस्कृत-सा नाम **लाँगिस्तीक (लिंग्विस्टिक्स;** यह नाम अब अँगरेजी में ग्रहण कर लिया गया है। अनु०) रखा गया है। यदि अपने इस विज्ञान का नाम हम यूनानी भाषा से लेना चाहें तो हम इसे **मिथॉस्** 'शब्द' या **लोगौस्** 'वाणी' से बना सकते हैं। किंतु **मिथोलौजी (देवताख्यान या दैवतशास्त्र)** नाम एक विशेष विषय को दिया गया है और **लोगोलौजी (वाणी-शास्त्र)** यूनानी भाषा के परम-पंडितों को कर्णकटु मालूम होगा। इन नामों की आलोचना करने में हमें अपना समय गँवाना न चाहिए, क्योंकि ये सब विद्वानों द्वारा माने नहीं गये हैं, जैसा कि अन्य आधुनिक विज्ञान संसार के विद्वानों द्वारा स्वीकृत कर लिये गये हैं; भूतत्त्वविद्या या तुलनामूलक शरीरगठनशास्त्र नाम सर्वमान्य हो चुके हैं। हम यदि एक बार अपने नये विज्ञान के जन्म, इसकी पूर्वज-परंपरा तथा इसके विशेष लक्षणों का निश्चय या निर्धारण कर लें तो इसका नामकरण करने में अधिक बाधा न पड़ेगी। मैं तो इसका सीधा-सादा नाम **भाषाविज्ञान** रखना चाहता हूँ, भले ही इस भारी-भरकम नामों के युग में शायद ही सब इस नाम से सहमत हों।[१]

इस विज्ञान के नाम की चर्चा छोड़कर, हम अब इसके अर्थ का विचार करते हैं। किंतु इसके आलोच्य विषय की परिभाषा देने या अपने अनुसंधान में हमें किस पद्धति से काम करना चाहिए, इसका निर्णय करने से पहले, यह उपयोगी होगा कि हम दूसरे विज्ञानों के इतिहास पर एक नजर डालें, जिनमें अब हमारा भाषा-विज्ञान भी स्थान प्राप्त करने का दावा कर रहा है। हमें उनकी उत्पत्ति, क्रमशः विकास और निश्चित रूप से स्थान प्राप्त करने की जाँच करनी चाहिए। विज्ञान

१. यह नाम हिन्दी में भाषाविज्ञान नाम से ले लिया गया है। अँगरेजी में, इसका कम प्रचार है। जर्मनी में इसका नाम Sprachwissenshaft **(भाषा-विज्ञान या भाषाविद्या) है। फ्रांस में लाँगिस्तीक ही रह गया है। अँगरेजी में विशेषतः अमेरिका की अँगरेजी में लिंग्विस्टिक्स नाम चलने लगा है।—अनु०**

का इतिहास एक प्रकार से उसकी जीवनी है, और जैसे हम दूसरों की जीवनियाँ पढ़कर बड़ी आसानी से दूसरों के अनुभव से लाभ उठा सकते हैं, उसी भाँति बहुत संभव है कि हम अपने नये विज्ञान को उन भूलों और अनियमितताओं या कहिए भ्रमपूर्ण युक्तिविरुद्ध निष्कर्ष निकालने से बचा सकते हैं जो आरंभ में स्वाभाविक हैं, क्योंकि मानवीय ज्ञान की अन्य शाखाओं से हम यह सबक सीखेंगे कि वे कितनी हानि उठाकर अपने उद्देश्य पर पहुँच पायीं।

अधिकांश विज्ञानों के इतिहास में एक निश्चित समता है। यदि हम व्वेवेल का **निरीक्षण-परीक्षणात्मक विज्ञानों**[1] **का इतिहास** (History of the Inductive Sciences) या हम्बोल्ड का **सुव्यवस्थित विश्व** (Cosmos) जैसे ग्रंथ पढ़ेंगे तो हम देखेंगे कि मानवीय ज्ञान की प्रायः प्रत्येक शाखा की उत्पत्ति, प्रगति, असफलता और सफलता के कारण एक-से रहे हैं। इनमें से हर एक के इतिहास में तीन विशेष लक्ष्य करने के योग्य अवधियाँ अथवा अवस्थाएँ पायी जाती हैं, इनके नाम **निरीक्षण-परीक्षणात्मक, वर्गीकरण-संबंधी** और **सैद्धांतिक** रखे जा सकते हैं। भले ही यह बात हमें लज्जाजनक-सी लगे, तो भी हमें मालूम होना चाहिए कि हमारे प्रत्येक विज्ञान की, चाहे उसका वर्तमान नाम कितना ही बढ़िया क्यों न हो, उस समय तक की उत्पत्ति मिलती है जब कि समाज अर्ध-सभ्य अवस्था में था और साधारण घरेलू कामों और पेशों की नयी-नयी युक्तियाँ निकाली गयीं। हमारे प्राचीन दार्शनिकों ने सत्य, शिव, सुंदर के आदर्श से प्रेरित होकर गंभीर अनुसंधान अथवा उच्च आविष्कार नहीं किये। मनुष्य की महान् प्रतिभा

१. निरीक्षण-परीक्षणात्मक पद्धति को आगमनात्मक या आरोही पद्धति भी कहते हैं। कारण यह है कि इस वैज्ञानिक पद्धति में साधारण अथवा नीचे स्तर की प्राकृतिक घटनाओं या दृश्यों का निरीक्षण तथा परीक्षण करके फिर प्रकृति के ऊँचे स्तर की घटनाओं या दृश्यों की जाँच की जाती है और अन्त में पृथ्वी या विश्व में लागू होने वाले शिखरस्थ या सर्वव्यापी निदान निकाले जाते हैं। जैसे, न्यूटन ने देखा कि उसके बगीचे में एक पेड़ से फल गिरा। उसने अपने निरीक्षण और परीक्षण द्वारा देखा कि सभी पदार्थों को पृथ्वी अपनी ओर खींचती है। फिर इससे भी ऊपर के स्तर में जाँच करके वह इस निष्कर्ष पर आया कि आकर्षण-शक्ति तारे, सूर्य आदि सब में काम करती है। इस प्रकार आकर्षण का नियम निकला।—अनु०

के अति चमचमाते विशाल भवनों की बुनियाद युगों तक कुलपिता (Patriarch) द्वारा शासित और अर्ध-बर्बर समाज के अत्यावश्यक अभावों की पूर्ति पर पड़ी। नाना कष्टप्रद अभावों के कारण नये-नये उपाय आविष्कृत हुए और इनसे धीमे-धीमे आज विज्ञानों की बड़ी-बड़ी इमारतें खड़ी हो गयी हैं। मानवीय ज्ञान की कुछ अति प्राचीन शाखाओं के नाम स्वयं अपनी रामकहानी कहते हैं। **ज्यामिति** इस समय अपने को सब प्रकार की दुविधा या संशय के प्रभाव से बाहर बताती है और घोषणा करती है कि इंद्रियों के विषयों का इस पर कुछ असर नहीं पड़ा तथा इसका विषय बिंदु है जिसकी लंबाई-चौड़ाई है ही नहीं और जो एक विशुद्ध धारणा मात्र है, जिसे हम बिंदुओं, पंक्तियों तथा उन प्रतिरूपों या मान-चित्रों से एकरूप नहीं बता सकते जो पुस्तकों में दिये जाते हैं और जो हमारी आँखों के सामने मान-चित्रों के रूप में दिखाई देते हैं। यह खेतों या उद्यानों की ठीक-ठीक नाप करने के लिए बनी। यह नाम यूनानी शब्द **गे** 'भूमि, क्षेत्र, पृथिवी' और **मेत्रौन्** 'मात्रा' से निकला है। **उद्भिद्विज्ञान** (Botany) जो पौधों का विज्ञान है, आरंभ में पेड़-पौधों का विज्ञान था। यूनानी में **बोटाने** का अर्थ 'पौधा' नहीं 'घास-चारा' है। यह शब्द **बौस्कीन** (Boskein) 'भक्षण करना'[1] से निकला है। इसका अर्थ 'पेड़-पौधा' नहीं है। पौधों के विज्ञान का नाम **फाइटोलौजी** होना चाहिए था,

१. यूनानी बौस्कीन 'भक्षण करना' संस्कृत भक्षण का प्रतिरूप है। हमारी ज्यामिति यूनानी गेओमेट्री का अनुवाद है, पर यह अनुवाद नया है, यह शब्द भले ही संस्कृत हो पर अंगरेज़ी से लिया गया है। सं० कोशों में ज्या मिलता है, किंतु ज्यामिति शब्द नहीं पाया जाता। ज्यामिति के ज्या का अर्थ 'पृथ्वी' है, 'धनुष की डोरी' नहीं। यह ज्या सं० साहित्य में काम में न आने पर भी पुराना है। कोशों में जो थोड़े-से अति प्राचीन शब्द दिये गये हैं, उनमें यह भी है। ऋग्वेद में जमीन के लिए ज्मा आया है। ज्या उसका दूसरा रूप है। अं० शब्द जिओमेट्री का रूप ज्यामिति है। यूनानी गेओ का प्रतिरूप सं० में गौ है। हलायुध २, १ में ज्या और गौ पृथ्वी के नामों में गिनाये गये हैं। अमरकोश में भी ये दोनों नाम मिलते हैं। अवेस्ता में गेउस् 'सृष्टि' के लिए आया है। हिंदी में इसको रेखागणित कहते हैं। ज्यामिति शब्द बंगला से हिन्दी में आया है। देखो येस्सन कृत 'ह्वास् हाइस्ट बोटानीक ?' १८६१—अनु०

क्योंकि यूनानी में पौधे को **फाइटौन** कहते हैं। ज्योतिषविज्ञान की नींव डालनेवाले कवि या दार्शनिक न थे, वे थे खलासी और किसान। प्राचीन कवियों ने भले ही 'ग्रहों के भ्रमर-नृत्य' का मनोरंजक वर्णन किया हो और पुराने दार्शनिकों ने चाहे 'स्वर्गीय सामंजस्य' पर सुंदर कल्पना की उड़ान बाँधी हो, किंतु केवल नाविकों के लिए ही आकाश के ज्योतिर्मय पथप्रदर्शकों की जानकारी जीवन-मरण का सवाल बन गयी। उन्होंने ही आरंभ में व्यापारियों की तरह ग्रहों के उदय और अस्त का ठीक-ठीक ज्ञान प्राप्त किया और एक साहसी वीर की सयानी बुद्धि से अपना जीवन जोखिम में डालकर भी उनकी गति का निरीक्षण किया, और ग्रहों तथा नक्षत्रपुंजों के नाम ही बताते हैं कि इनकी सृष्टि सागरों और खेतों में कर्षण करनेवालों ने की। वे लोग चन्द्रमा को, जो नीले आकाश में घड़ी की स्वर्णमय सुई का काम करता है, **मापक** अथवा समय की माप बतानेवाला कहते थे। वास्तव में चंद्रमा द्वारा ही वे समय जानते थे। पहले-पहल समय रात, चाँद की घट-बढ़, लोप, जाड़े आदि से जाना जाता था। बहुत काल बाद सूरज, दिन और वर्षों से समय नापा जाने लगा। **चन्द्रमा**[१] बहुत प्राचीन शब्द है। एंग्लो सैक्सन में इसे **मोना** कहते थे। उस भाषा में यह शब्द स्त्रीलिंग नहीं पुंलिग था। सभी ट्यूटौनिक भाषाओं में यह शब्द पुंलिग ही है। यूनानी और लैटिन भाषाओं के प्रभाव से अं० **मून** (चाँद) स्त्री० बन गया और **सन्** (सूर्य) पुं० हो गया। अपने ग्रंथ **हर्मीज** में मि० हैरिस ने बहुत ही बेतुका कथन किया है कि सभी जातियों के लोग सूर्य में पुंलिग का आरोप करते हैं और चंद्रमा में स्त्रीलिंग का।[२] गौथिक में **मून** को **मेना** (mena) कहते हैं जो पुं० है। महीने के लिए ऐं-सै० में **मोनाथ** शब्द है, गौथिक में इसका प्रतिरूप **मेनौथ** है। ये दोनों पुं० हैं। यूनानी में महीने के लिए **मेन्** शब्द है और **मस्** (चंद्रमा, वैदिक रूप, अनु०) या हिंदी मास के लिए **मेना** रूप है। इनमें **मेन्** पुं० है और **मेना** स्त्री०। लै० में महीने को **मेंसिस्** कहते हैं। प्राचीन भारतीय आर्य-भाषाओं (वैदिक और संस्कृत) में चंद्रमा के लिए **मस्** और महीने के लिए **मास** पाया जाता है और ये दोनों शब्द पुं० हैं। **प्रा. २ भा.** का **मस्** स्पष्ट ही

१. तुलनात्मक भाषा की तुलनात्मक शोध के लिए कून की पत्रिका बी. नौ पृ० १०४।

२. हौर्न टूक, पृ० २७ का नोट।

मा धातु से निकला है जिसका अर्थ है 'नाप करना, मापना'। प्रा. भा. में 'मैं मापता हूँ' के लिए **मा-मि** रूप है; 'तू मापता है' के लिए **मा-सि** है; और 'वह मापता है' के लिए **मा-ति** (या **मिमी-ते**) है। मापनेवाले एक यंत्र का नाम प्रा. भा. में **मा-त्रम्** है, यू० में इसका नाम **मे-त्रौन्** है (आदि आर्य-भाषा में प्रा. भा. **आ** का प्रतिरूप **ए** या **ओ** मिलता है। अनु०), अं० में हम इसे **मीटर** (meter) कहते हैं। अब थोड़ा ध्यान से विचार करने की बात है कि यदि प्राचीन किसानों ने चंद्रमा को माप करनेवाला, दिनों, सप्ताहों और ऋतुओं का शासक, ज्वार-भाटे का नियंत्रण करनेवाला, अपने उत्सवों का पति और याग-यज्ञ अर्थात् जशन [अवे० में **यज्ञ** के स्थान पर **यस्न** शब्द आया है जिससे पारसी (पारसियों की गुजराती) तथा फारसी में **जशन** शब्द निकला है। अनु०] का अग्रदूत बनाया, तो स्वाभाविक परिणाम यह होना चाहिए कि उक्त किसानों की कल्पना में वह पुरुष रूप में ही दिखाई दिया होगा; उस वियोग-व्यथित युवती के रूप में नहीं जिसे आज-कल की भावुक कविता ने अपनाया है।[1]

नाविक, महासागर की उत्ताल तरंगों और तूफानी झकोरों को अपना जान-माल सौंपने से पहले उन नक्षत्रों के उदय की बाट जोहता रहता था, जिनका नाम उसने **समुद्र-पार-करने की ऋतु के सितारे** रखा था। यूनानी भाषा में इसका नाम था **प्लेइआद**। उक्त शब्द यू० धातु **प्लेइन** 'जहाज चलाना' से निकला है। यूनान के आस-पास के सागरों में इस **प्लेइआद** नामक तारक-पुंज या राशि के उदय होने के बाद शांति रहती थी तथा उसके अस्त हो जाने पर ये समुद्र तूफानी हो जाते थे। इस **प्लेइआद** का लै० नाम **वेरगिलिए** था। यह शब्द **विर्गा** 'टहनी, पल्लव' से निकला है। इस राशि का यह नाम इस कारण पड़ा कि इटली के किसानों ने देखा कि यह तारकपुंज प्रायः मई मास में उदय होता है और इसके उदय होने पर ग्रीष्म ऋतु आ जाती है।[2] दूसरा तारक-पुंज, वृषराशि के सिरे के सात तारे लैटिन

१ देखो, कुर्टिग्स कृत 'यूनानी व्युत्पत्तिशास्त्र' पृ० २९७ (Griechische Etymology)

२. इडेलर कृत हांडबुख़ डेर क्रोनोलोगी, बी० ए० पृ० २४१,२४२, आन्योने के औस्कन शिलालेख में एक जुपिटर, विर्गारिडस् का उल्लेख है (जोवेइ वेरेहसि हसिओइ, यह रूप एक वचन संप्रदान का है)। अध्यापक औफरेष्ट ने इस

में **हिआडीस** या **प्लुविए** (Hyades or pluvie) कहे गये, क्योंकि जब ये सूर्य के साथ उदय होते थे तो समझा जाता था कि अब वर्षा-ऋतु का आरंभ होगा। ज्योतिषी आज भी ये नाम काम में लाते हैं और कई ऐसे अन्य नाम भी ज्योतिषशास्त्र में प्रचलित हैं। ज्योतिषी अब भी आकाश के **स्थिर स्तंभ** की चर्चा करते हैं [अं० में ध्रुव तारे को पोल स्टार (pole star) कहते हैं। अनु०], तथा चल और अचल तारों की बातें करते हैं, किंतु इस तथ्य के विस्मृति के गर्भ में विलीन हो जाने की संभावना है कि ये नाम वैज्ञानिक निरीक्षण और वर्गीकरण के फल नहीं हैं, लेकिन ये उन लोगों ने रखे जो स्वयं सागरों के भ्रमणकारी थे अथवा बयाबानों में भटकनेवाले थे। इन लोगों के लिए सचमुच स्थिर सितारे अचल थे, जैसा कि इन्होंने अपने पक्के अनुभव और निरीक्षण से उनका नामकरण किया। इनकी दृष्टि में ये तारे आसमान में जड़कर स्थिर कर दिये गये थे [**आसमान** शब्द प्राभा० **अश्मन्**, अवे० **अस्मन्** 'पत्थर' से निकला है। ऋग्वेद में **स्वर्यम् अश्मानम्** 'चमकते आसमान' के लिए आया है। भारीरानी (भारत और ईरान के आर्य) समझते थे कि आकाश पत्थर का बनाया गया है और सितारे उसमें नग की तरह जड़े गये हैं। प्राफ़ा० (प्राचीन फ़ारसी) में **अस्मन्** 'आसमान' हो गया है, पह० (पहलवी) में **आसमान** शब्द 'आकाश' के लिए मिलता है। मैक्सम्युलर के कथन से पता चलता है कि यूनान तथा रोम में इससे मिलते-जुलते विचार थे। अनु०]। ये स्वर्गीय लंगरों से आकाश में स्थिर कर दिये गये थे।

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से यदि हम कहें कि पहला रेखागणितकार हल चलानेवाला था, पहला उद्भिद्विद्या का जाननेवाला माली था और पहला खनिजविद्याविशारद खान का मजदूर था, तो हमारा खंडन नहीं किया जा सकता। तो भी, यदि कोई आपत्ति करे कि सभ्यता की उस आदिम अवस्था में विज्ञान शायद ही

नाम की तुलना, जुपिटर विमिनिउस (Viminius) **अर्थात् टहनियों का पालन-पोषण करनेवाले जुपिटर से की है (कून का त्साइटश्रिफ्ट खंड १ पृ० ८९)। जुपिटर (=प्राभा० द्यौष्पितृ=द्यौष्पितर्। अनु.) विमिनिउस और पोर्टा विमिनालिस के निकट उसकी पूजा के लिए बनायी गयी वेदियों के विषय में हार्टुंग ने अपने ग्रंथ 'रोमनिवासियों का धर्म'** (Religion der Roemer) **खंड २ पृ० ६१ में विस्तार से लिखा है।**

विज्ञान कहा जा सके और क्षेत्र की नाप-जोख क्षेत्रगणित का विज्ञान नहीं कहा जा सकता, बगीचे में गोभी बोना उद्‌भिद्‌विज्ञान से बहुत भिन्न है और न ही एक बूचड़ यह दावा कर सकता है कि मैं तुलनामूलक शरीरशास्त्रज्ञ हूँ। यह बात सोलह आने सही है, तो भी यह बहुत उचित है कि प्रत्येक विज्ञान को स्मरण कराया जाय कि प्राथमिक अवस्था में विज्ञान का श्रीगणेश अति साधारण बातों से हुआ, जिनकी आवश्यकता हमारे प्रति दिन के मामूली कामों को आसान बनाने के लिए पड़ी। बेकन कहता है—'विज्ञान परमात्मा की महिमा का संपन्न भंडार होना चाहिए और साथ ही मनुष्य की दशा सुधारने का माध्यम भी होना चाहिए। यद्यपि इस समय ऐसा लगता है कि हमारे समाज की वर्तमान उन्नत अवस्था में छात्रों को यह सुविधा दी जा रही है कि वे अपना समय प्रकृति के तथ्यों और नियमों के अनुसंधान और अन्वेषण में लगायें अथवा विचार-जगत् के रहस्यों के उद्‌घाटन में मनोनिवेश करें; तो भी अपने परिश्रम के व्यावहारिक परिणाम की ओर नाम मात्र दृष्टि न रखकर हमारे समाज में कोई विज्ञान या कोई कला जिसने समाज के व्यावहारिक स्वार्थ को आगे नहीं बढ़ाया, अधिक समय तक पनप न सकी। वह तभी तक फलेगी-फूलेगी जब तक वह हमारे समाज के हितकर कामों से किसी न किसी प्रकार संबंधित हो। यह ठीक ही है कि वैज्ञानिक लायल शोध के सामान का संग्रह करता है और फिर उसका वर्गीकरण करता है, फराडे तौलता है और विश्लेषण करता है, ओवेन-सा महान् डाक्टर शरीर की चीर-फाड़ करता है तथा नाना प्राणियों के अंग-अंग की तुलना करता है, और हर्शल-सा ज्योतिषशास्त्र का महापंडित निरीक्षण करता है और अपने निरीक्षण का हिसाब ठीक-ठीक रखता है। ऐसे महान् वैज्ञानिकों को नाममात्र ध्यान नहीं रहता कि उनके परिश्रम का तुरंत कितना दाम मिलेगा। पर सर्वसाधारण के हित का विचार ही उनके अनुसंधान में उनको बल देने और प्रोत्साहित करने का काम करता है और यह हित समाज के उस व्यावहारिक लाभ पर निर्भर रहता है जो उनके अनुसंधान तथा अध्ययन से समाज को प्राप्त होता है। हमें यह समझना चाहिए कि भूतत्त्ववेत्ता चट्टानों में जो भिन्न-भिन्न समय में बनी परतों पर परत का अध्ययन करता है, खानों के मजदूरों के लिए उसका कोई महत्त्व नहीं है; आकाश के तारों की चाल की जो सूचियाँ ज्योतिषी प्रति वर्ष छापते हैं, मल्लाहों और नाविकों के लिए निकम्मी हैं, कारखानेवालों या किसानों के लिए रसायनविज्ञान एक महँगा मन-बहलाव है जो उनके किसी काम का नहीं है और यदि ये विज्ञान जनसाधारण के हाथ में पड़ जायं तो ये तुरंत

कीमियागिरी तथा फलित ज्योतिष की दशा को पहुँच जायँगे। अब तक मिस्र का यह विज्ञान (कीमियागिरी) अपने रहस्यमय नुसखों से बिचारे रोगियों को भला होने की आशा देकर उत्तेजित करता रहा (यहाँ मैं प्रसंगवश, पाठकों को बताऊँगा कि प्रसिद्ध फ्रेंच वैज्ञानिक शाम्पोलिओं ने हमारे डाक्टरों के विचित्र नुसखों का पता लगाते-लगाते सिद्ध किया है कि इनके रहस्यमय अस्पष्ट संकेत मिस्र की पाँच हजार वर्ष पुरानी असली पुरोहिती (Hieroglyphics) लिपि तक पहुंचते हैं।)[१] और जब तक इस कीमियागिरी ने सोने का आविष्कार करने की आशा से अपने संरक्षकों अर्थात् हिमायतियों के लालच की भावना पर सान चढ़ाने का काम किया, तब तक यह राजा-महाराजों के दरबारों तथा ईसाई मठों के भीतर दिन दूनी रात चौगुनी पनपी। यद्यपि कीमियागिरी ने सोने का आविष्कार न किया लेकिन इसने उन आविष्कारों का मार्ग प्रशस्त कर दिया जो अधिक मूल्यवान् थे। यही बात फलित ज्योतिष के बारे में भी कही जा सकती है। फलित ज्योतिष उतना धोखा-धड़ी का काम नहीं था जितना साधारणतः समझा जाता है। यह मेलान्क्थौन जैसे गंभीर और स्वस्थ दिमाग के विद्वान् द्वारा विज्ञान माना गया है और स्वयं बेकन इसे विज्ञानों में स्थान देता है; भले ही उसने यह भी कहा है—'इस विज्ञान का अधिक संबंध मनुष्य की कल्पना के साथ रहा है, विचार-शक्ति के साथ कम।' लूथर द्वारा फलित ज्योतिष का घोर तिरस्कार और निंदा किये जाने पर भी, यूरोप के भाग्य का निपटारा इसी ज्योतिष द्वारा होता रहा; और लूथर के सौ साल बाद फलित ज्योतिषी राजा-महाराजों और सेनापतियों के मंत्री और सचिव बन गये। तमाशा देखिए कि गणित ज्योतिष की नींव डालनेवाला घोर दरिद्रता और निराशा में मरा। हमारे समय में फलित ज्योतिष का नामो-निशान मिटने पर है।[२] असली और उपयोगी कलाएँ, जब वे काम की नहीं रहतीं,

१. बुनसेन कृत Egypt, खंड चार पृ० १०८।

२. नोटस् एंड क्वेरीज (Notes and Queries, 2nd series Vol. x p. 500) के अनुसार फलित-ज्योतिष का पूर्णतया लोप नहीं हो गया है, जैसा कि अपना विचार है। वह लिखता है—'इस समय हमारे एक बहुत बड़े बैरिस्टर तथा पुरातत्त्व की शोध करनेवाली कई संस्थाओं के सदस्य दैवज्ञ या फलित-ज्योतिषी हैं। किंतु कोई भी अपने इस ज्ञान का नाम मात्र विज्ञापन नहीं करता। इसका कारण

लोप हो जाती हैं और उनका गुप्त ज्ञान ऐसा गुम हो जाता है कि फिर उसके सँभलने या उद्धार होने की कोई आशा नहीं रहती। लूथर के ईसाई धर्म के सुधार के बाद जब बड़े और छोटे गिरजे अपनी सजावट, चित्रकारी आदि से वंचित कर दिये गये, ताकि उनके बाहरी रूप में भी ईसाई धर्म की सादगी और पवित्रता दिखाई देने लगे, तो गिरजों की चित्रित खिड़कियों के रंग धीरे धीरे फीके पड़ने लगे और उनमें, अब तक, पुरानी गंभीरता तथा समन्वय का पता नहीं है। जब छापने की कला का आविष्कार हुआ तो सुंदर चित्रमय लेखनकला और हस्तलिखित पुस्तकों के भीतर रंगबिरंगे छोटे उत्तम चित्रों का खींचना समाप्त ही हो गया तथा आज-कल के उत्तम कलाकार, ईसाई धर्म की उन प्रार्थना-पुस्तकों के उस समय के चित्रकारों के श्रेष्ठ तथा छोटे-छोटे चित्रों में जो रंग भरने की सूक्ष्मता, मिठास और चमक-दमक पायी जाती है, उसका मुकाबला करने की हिम्मत नहीं कर सक रहे हैं। मैं बहुत अनुभव कर रहा हूँ कि प्रत्येक विज्ञान को किसी-न-किसी व्यावहारिक या कहिए सामाजिक प्रयोजन की पूर्ति करनी चाहिए, क्योंकि भाषाविज्ञान के विषय में मैं जानता हूँ कि हमारे युग के उपयोगितावादी विचारों के अनुसार इसकी देन नाममात्र ही है। इसका दावा यह नहीं है कि इसके अध्ययन करने से भाषाओं का ज्ञान शीघ्रता से हो जाता है, और न ही यह विज्ञान भरोसा देता है कि कभी-न-कभी विश्व भर की एक भाषा का सपना इसके द्वारा वास्तविकता में परिणत होगा। इसका केवल यही काम है कि भाषा क्या है, इसकी शिक्षा देना [इधर भाषा सामाजिक व्यवहार तथा आवश्यकताओं की पूर्ति का एक माध्यम मानी जाने लगी है। विद्वान् **लिओनार्ड ब्लूमफ़ील्ड** ने अपने ग्रंथ **भाषा** (Language) के २२, २, २ में कहा है—'मान लो कि जैक और जिल एक गली में चले जा रहे हैं। जिल भूख से पीड़ित है। वह पेड़ पर सेब देखती है। वह अपनी कंठनली, जीभ और होठों से ध्वनि करती है। इस पर जैक बगीचे की बाड़ फाँदता है, पेड़ पर चढ़ता है, सेब तोड़ता है, इसे जिल के पास लाता है और उसके हाथ में रख

यह है कि चाहे फलित ज्योतिष में थोड़ी सी वैज्ञानिकता भी हो समाज में उसके विरुद्ध विचार प्रबल हैं। इस समय अशिक्षित जिप्सी फलित ज्योतिष के आचार्य बने फिरते हैं और लोगों को ठगते हैं, इस कारण विद्वान् लोग इस शास्त्र से अपना सम्बन्ध प्रकट करना नहीं चाहते।

देता है। जिल सेव खा लेती है। घटनाओं की उक्त परंपरा का अध्ययन कई पहलुओं से किया जा सकता है, और हम जो भाषा का अध्ययन कर रहे हैं, स्वभावतः **भाषण-क्रिया** और उसके बाद की घटनाओं में भेद करेंगे और उनका नाम '**व्यावहारिक परिणाम** रखेंगे।' इससे पाठक समझ जायँगे कि भाषा मूल में सामाजिक आवश्यकता की पूर्ति के माध्यम रूप से आविष्कृत हुई और आज भी उक्त पूर्ति कई प्रकार से कर रही है। यह हर्ष का विषय है कि मैक्सम्यूलर की आशंकाएँ भाषाविज्ञान की प्रगति के साथ लोप हो रही हैं और इसकी नाना शाखाएँ भाषाओं की नाना गुत्थियाँ सुलझाकर समाज का कल्याण कर रही हैं।—अनु०] और यह ध्येय इस नये विज्ञान के प्रति जनसाधारण की सहानुभूति तथा समर्थन प्राप्त करने के लिए यथेष्ट नहीं है। तो भी, कुछ समस्याएं ऐसी हैं जो देखने में जटिल और कल्पनामूलक लगती हैं, पर मानव के इतिहास में उसकी भलाई और बुराई पर इनका जबरदस्त हाथ रहा है। प्राचीन काल में मनुष्य एक विचार या मत के लिए घोर युद्ध में डट गये और एक वचन के लिए बहुतों ने अपनी जान की बाजी लगा दी। ऐसी बहुत-सी समस्याएं जिन्होंने जगत् को अति प्राचीन काल से आज तक व्याकुल किया है, भाषाविज्ञान से विशेष संबंध रखती हैं।

देवताख्यान (पुराण आदि में देवताओं का आविष्कार और वर्णन। अनु०) जो प्राचीन संसार का एक अभिशाप था, वास्तव में भाषा की एक व्याधि है। यूनानी में मिथे का अर्थ 'शब्द' है, पर यह एक ऐसा शब्द है जो आदि में नाम या विशेषण था पर धीरे-धीरे इसे भौतिक रूप दे दिया गया। यूनानी, लैटिन, भारतीय तथा अन्य मूर्ति-पूजकों के देवता केवल कवितामय नाम हैं, जो क्रमशः देवता के रूप में बदल दिये गये। इनकी आदि कल्पना करनेवालों ने ऐसा भविष्य सपने में भी न सोचा होगा। देवी का रूप धारण करने से पहले **एऑस्** उषा का नाम था। यह दिन की समाप्ति के देवता **तिथोनौस्** की धर्मपत्नी थी। **फातुम** का अर्थ मूल में 'कथित' था (अं० में यह फेट रूप में है), '**फेट**' 'भाग्य' जब **जुपिटर** (**द्यौस्पितर** से भी अधिक प्रतापी शक्ति बना तो इसका अर्थ था 'वह शब्द जो जुपिटर (य उच्चा० जुपितेर। अनु०) द्वारा कहा गया हो और जिसे स्वयं **द्यौस्पितर** भी बदल नहीं सकता था।' **ज़ेउस्** का आदिम अर्थ 'चमकीला आकाश' था। संस्कृत में इसके जोड़ का शब्द **द्यौस्** है। **ज़ेउस्** नामक इस परम-ईश्वर के विषय में जो कहानियां आदि-काल में कही गयीं उनका अर्थ तभी ठीक बैठता है, जब हम इस नाम का आदिम अर्थ करें अर्थात् इसका अर्थ 'चमकीला आकाश' करें, जिसकी ज्योति

स्वर्णमय वृष्टि के रूप में पृथ्वी की गोद को भरती है। इस पृथ्वी का पुराना नाम **दनए** (Danae) था और इसके पिता ने इसको हेमन्त ऋतु के कारावास में कैद कर रखा था। इसमें किसी को संदेह नहीं हो सकता कि **लूना** (Luna) चंद्रमा का सीधा-सादा नाम था। इसी प्रकार का दूसरा नाम **लुकिना** (Lucina) था जो **लुक्-एरे** धातु का रूप है। **लुक्** का अर्थ चमकना है (यह धातु वै० और अवे० में **रुच्** है। वै० **रोचना** 'चमकता आकाश' है, अवे० **रओचह्** 'ज्योति, रोशनी' है। लै० **क** हमारे **च** का प्रतिरूप भी है। यह **क** इटालियन में e और i के पहले आने पर **च** हो जाता है। इस नियम के अनुसार लै० लुक्-**एरे** इटा० में उच्एरे (lucere) हो गया है। अनु०)। यह दैवत-शास्त्रीय रोग वर्तमान भाषाओं में कम हो गया है, पर फिर भी थोड़ा-बहुत चला जाता है। अभी समाप्त नहीं हुआ।

मध्ययुग में नाम (संज्ञा) और उसके अर्थ के संबंध में वादविवाद छिड़ा। ईसाई धर्म के माननेवालों में इस विषय पर हलचल मच गयी। सदियों तक यह झगड़ा चला। इस विवाद ने ईसाई धर्म में सुधार का रास्ता तैयार किया। जैसा इसके नाम से ही पता चलता है, यह नाम के विषय का झगड़ा था, इसमें भाषा की प्रकृति पर भी बहस छिड़ी और यह खंडन-मंडन भी चला कि हमारे भावों का शब्दों के साथ क्या और कैसा संबंध है। दूसरी ओर यह चर्चा भी चल गयी कि दृश्य बाहरी जगत् सत्य है या मिथ्या? जिन्होंने यह विश्वास प्रकट किया कि शब्द, जैसे **न्याय** या **सत्य** केवल मन की भावना प्रकट करते हैं, उन्हें नास्तिक घोषित किया गया, क्योंकि उन्होंने पादरियों के सुर से सुर मिलाकर यह नहीं माना कि **न्याय** और **सत्य** जीते-जागते पदार्थ हैं जो सूर्य के प्रकाश में हमारे सामने चलते फिरते हैं।

वर्तमान समय में भी भाषाविज्ञान की सहायता ली जा रही है कि वह चक्कर में डालनेवाली कई राजनीतिक और सामाजिक उलझनों को सुलझाये। राजकुलों और संधियों के विरुद्ध राष्ट्र तथा भाषाओं का सवाल खड़ा किया जा रहा है और इस विषय के विचार से यूरोप का मानचित्र बदला गया है और बदला जा रहा है। अमेरिका में तुलनामूलक भाषाविज्ञानियों को बहुत प्रोत्साहन दिया जा रहा है कि वे सिद्ध करें कि 'भाषाओं और जातियों का आदि में एक ही मूल था' का सिद्धान्त असत्य है तथा गुलामी की प्रथा उचित बताने के लिए वैज्ञानिक दलीलों से सिद्ध करें कि भाषाओं और जातियों की आदि-एकता का सिद्धान्त सिद्ध नहीं हो सकता। भाषाविज्ञान का इससे अधिक पतन मैंने कभी न देखा कि एक अमेरिकन पुस्तक के भीतर नाना जातियों के मनुष्यों के चेहरों के चित्र दिये गये थे; उनमें बन्दर के चेहरे

का भी चित्र था और तमाशा देखिए कि यह ऐसा बनाया गया था कि हबशी के मुख से अधिक मानुषिक लगता था।

आजकल एक समस्या की बड़ी धूम है (इस समय भी इस समस्या की जोरशोर की चर्चा सुनी जाती है। अनु०)। वह है कि भौतिक और आध्यात्मिक जगत् के बीच मनुष्य कहां खड़ा है? भौतिक विज्ञान और मनो-विज्ञान इस वादविवाद में बड़ी उलझन में फंसे हैं। इस प्रश्न को सुलझाने में उन मनीषियों का मस्तिष्क काम कर रहा है। ये मनीषी ऐसे हैं जिन्होंने अपने जीवन का दीर्घकाल अपने अपने विषयों के तथ्यों का संग्रह करने, उनका पूर्ण निरीक्षण करने और फिर उनका विश्लेषण या चीरफाड़ करने में लगाया है। इस वैज्ञानिक पद्धति का आविष्कार हाल में ही हुआ है; प्राचीन समय में इसका अस्तित्व नहीं मिलता। इस वाद-विवाद को एक न्यायाधीश के ठंडे दिमाग से चलाया जाना चाहिए था ताकि हम सच्चे निष्कर्ष पर पहुंचें; किन्तु जिस वकील की-सी गरमागरम बहस से यह चलाया जा रहा है, उससे पता चलता है कि यद्यपि हमारे अस्तित्व तथा हमारे रक्त की विशुद्धता या उच्चता, अथवा यह प्रश्न कि हम स्वर्ग से उतरे हैं या इसी पृथ्वी पर जनमे हैं, हमारे जीवन के अमली पहलू पर कुछ प्रकाश नहीं डालते, तो भी मनुष्य के मन और आत्मा में इसके जादू का असर अभी पहले की भांति काम कर रहा है। अब देखिए कि इस बीच, भले ही पशु-जगत् के ज्ञान की सीमाएं बहुत आगे बढ़ गयी हों, यहाँ तक कि एक समय यह सिद्ध-सा हो चुका था कि मनुष्य और पशु में इतना ही अन्तर है कि मनुष्य के मस्तिष्क में केवल एक तह पशु के भेजे से अधिक होती है; लेकिन एक अड़चन अभी शेष है; वह है भाषा की अड़चन। वे दार्शनिक जिनके मत से **विचारना भौतिक पदार्थों के संपर्क में आना है** और जो सब विचारों को भौतिक पदार्थों के संपर्क का फल समझते हैं तथा इस मत को मानते हैं कि हममें अर्थात् मानव में जिन कारणों से विचार उत्पन्न होते हैं, उनकी प्रेरणात्मक शक्ति मनुष्यों और जानवरों में एक-समान है, उन्हें भी लार्ड मौनूबोड्डो के साथ स्वीकार करना पड़ता है कि कुत्तों की कोई जाति या नस्ल ऐसी नहीं पायी गयी है जिसने भाषा का आविष्कार किया हो। स्वयं **बीभर**(**वै० बभ्रु**। अनु०) नामक जलचर पशु में भी भाषा का आविष्कार करने की शक्ति नहीं है। यह जीव, हमारी ही जाति के औरैंग-ऊटैंग आदि बन्दरों को छोड़, अन्य सब जीव-जंतुओं से समझदारी में हमारे बहुत निकट है।

इन भौतिक दार्शनिकों में लौक भी गिना जाता है। उसने भी इंद्रियों के भौतिक या बाह्य संपर्क को ही बुद्धि का कारण बताया है और इसे सिद्ध करने के लिए बहुत

कुछ लिखा है। उसने भी सोलह आने स्वीकार किया है कि मनुष्य और पशुओं के बीच भाषा का प्रश्न बड़ी अड़चन पैदा कर देता है। वह साफ ही लिखता है–'इस विषय पर मुझे निश्चय है कि पशुओं में वह बुद्धि नहीं है जिससे पदार्थों का संग्रह, तुलना तथा निरीक्षण कर कोई निदान निकाला जाता है; और साधारण नियम निकालने की यह विशेषता मनुष्य तथा अन्य जीव-जन्तुओं के बीच बहुत गहरी खाई खड़ी कर देती है। क्योंकि हम पशुओं में किसी प्रकार के लक्षण नहीं पाते जिससे अनुमान लगाया जाय कि संसार-व्यापी समान विचारों या नियमों के लिए इनमें कुछ संकेत हैं। इससे यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि उनमें निष्कर्ष निकालने या साधारण नियम बनाने की शक्ति या कहिए बुद्धि का अभाव है। कारण कि वे न तो शब्द काम में ला सकते हैं और न ही उनमें समान संकेत पाये जाते हैं।'

इसलिए यदि भाषाविज्ञान हमारे सामने उस भेद का रहस्य उद्घाटन करता है, जो सब वैज्ञानिकों और दार्शनिकों की सम्मति के अनुसार मनुष्य को अन्य जीव-जन्तुओं से अलग करता है; यदि यह मनुष्य और पशुओं के बीच एक ऐसा सीमा-स्तंभ खड़ा कर देता है जिसे कभी हटाया नहीं जा सकता तो वर्तमान युग में उन सब वैज्ञानिकों से भाषाविज्ञान पूरी आशा रखता है कि वे तुलनामूलक शरीरशास्त्र की आश्चर्यमय प्रगति की हार्दिक सराहना करने पर भी अपना यह परम कर्तव्य समझें कि लार्ड **मौनबोगो** के असार सिद्धान्तों के विरुद्ध ज़बरदस्त प्रतिवाद करें।

अब हम फिर भौतिक विज्ञानों के सर्वेक्षण के विषय पर विचार करें। हम परीक्षा-मूलक स्थिति का वर्णन कर चुके हैं जिसके भीतर से प्रत्येक विज्ञान को गुजरना पड़ता है। हमने उदाहरणार्थ यह भी देखा कि उद्‌भिद्-विज्ञान के क्षेत्र में वह व्यक्ति जो देश-विदेश घूमा हो, वहाँ से नाना प्रकार के ढेर-के-ढेर पौधे संग्रह करके लाया हो, जो इन सबके नामों से भी परिचित हो, उनकी विशेषताएँ भी भली प्रकार जानता हो तथा उनके आयुर्वेदिक गुणों से भी परिचित हो, इतने गुण होने पर भी वह उद्‌भिद्‌विद्या का जानकार नहीं माना जायगा; वह जड़ी-बूटियों का जानकार (herbalist) कहा जायगा। वह पौधों का प्रेमी भी कहा जा सकता है, उसे हम इटालियन शब्द डिलेताँत (जड़ी-बूटियों का शौक रखनेवाला) से कह सकते हैं, क्योंकि उसे किसी विद्या के यों ही अध्ययन में आनंद मिलता है। उद्‌भिदों का वास्तविक ज्ञान या विज्ञान तब आरंभ होता है, जब हम पौधों के

वर्गीकरण (classification) का काम आरंभ करें। तथ्यों का परीक्षा-मूलक परिचय—तथ्यों का वैज्ञानिक ज्ञान तब कहा जाता है जब बुद्धि एक ही प्रकार या जाति के पदार्थों के नानात्व में उनके इंद्रिय-संगठन की एक-सी व्यवस्था का आविष्कार करे। यह आविष्कार परस्पर तुलना और वर्गीकरण करने के बाद हो सकता है। तब हम एक एक फूल को लेकर केवल उसका ज्ञान प्राप्त करने के लिए उसका अध्ययन नहीं करते। हम क्रम से निरंतर अपने निरीक्षण का क्षेत्र बढ़ाते जाते हैं और यह आविष्कार करने का प्रयत्न करते हैं कि इनके नानात्व में समानता या एकता कहाँ है, जिससे पता चले कि जाति या प्राकृतिक वर्गों में जो समान मूल-तत्त्व हैं, उनकी स्थापना हो। इसके बाद फिर इन वर्गों की, साधारण रूपों और गुणों की दृष्टि से एक दूसरे से तुलना की जाती है। इससे इन वर्गों के साधारण रूपों और गुणों के सूक्ष्म लक्षण दृष्टि के सामने आने लगते हैं और हमें वर्गों या परिवारों के भीतर और भी सूक्ष्म वर्गों या परिवारों का पता लगता है। और जब इस प्रकार पौधों के सारे संसार का सर्वेक्षण कर लिया जाता है और प्रकृति के सारे उद्यान की नाना जातियों या वर्गों के नाम निश्चित कर लिये जाते हैं तो इन पौधों का परदा मानो खुल गया। इस स्थिति में सारा उद्भिद् जगत् सुव्यवस्थित और सुनिश्चित नामों के साथ पूर्णतया हमारी बुद्धि के भीतर समा जाता है। तब हम कहते हैं कि यह उद्भिद्-विज्ञान है, अन्यथा नहीं। पर जब जाति के अधीन इकाई तथा सर्वसाधारण के अधीन एक पदार्थ को कर देते हैं और तथ्यों को नियमों से बाँध देते हैं तो एकदम नया संसार हमारी आँखों के नीचे आ जाता है। तब हम यह आविष्कार कर लेते हैं कि प्रकृति के विश्वव्यापी राज्य में सब पदार्थों के पीछे विचार, सुव्यवस्था और कुछ अभिप्राय छिपा पड़ा है। हम स्पष्ट देखते हैं कि इस पृथ्वी के भौतिक पदार्थों में जो अस्तव्यस्तता दिखाई पड़ती है उसे ईश्वरीय ज्योति ने मानो प्रकाशित कर दिया। ये निदान सच्चे हो सकते हैं और झूठे भी। हड़बड़ी में तुलना अथवा संकीर्ण विचारों से वर्गीकरण करना वैज्ञानिक निरीक्षक की आँखों को धुँधला कर दे और वह इन कारणों से प्रकृति की सुव्यवस्था की व्यापक रूप-रेखा का आविष्कार न कर सके; किन्तु इतना निश्चय है कि कोई भी क्रम-बद्ध विचार या व्यवस्था, भले ही उसमें कुछ कमी भी हो जो बाद को दिखलाई पड़े, विज्ञान को थोड़ा आगे ही बढ़ाती है। यदि मनुष्य के मन में यह विश्वास जम जाय कि प्रकृति में सर्वत्र सुव्यवस्था और नियमों का राज्य होना चाहिए, तो वह तब तक चैन न लेगा जब तक विश्व की सभी अनियमितताएँ नियमबद्ध न कर दी जायँ; जब तक प्रकृति

की स्वाभाविक सुन्दरता और सामंजस्य सबके दृष्टिगोचर न हो जायँ और मानव भगवान् की सृष्टि के भीतर उसकी प्रकाशमय ज्योति न देख ले, पुरानी असफलताएं भविष्य की विजय का मार्ग प्रशस्त करती हैं।

इस प्रकार यदि हम अपने पुराने विषय उद्‌भिद्‌विद्या का उदाहरण लें तो हम देखेंगे कि विद्वान् **लिन्नेउस** (Linnaeus) ने पौधों का जो सुव्यवस्थित क्रम बाँधा था तथा जिसका नाम ही **लिन्नेउस् का क्रम** पड़ गया है, वह पौधों की जननेन्द्रियों और उनके विशेष लक्षणों पर स्थापित है, पर वह सभी उगने और फूलनेवाले पौधों में व्याप्त प्राकृतिक नियम निकालने में असफल रहा। उसने जो क्रम बाँधा और नियमों का आविष्कार किया उनसे पौधों की जातियों और परिवारों में जो समानता या भेद वर्तमान हैं, उनकी साफ-साफ रूप-रेखा नहीं दी जा सकी है। ऐसा होने पर भी और यह कमी रहने पर भी उसका परिश्रम व्यर्थ नहीं गया। उसने सदा के लिए यह तथ्य सिद्ध कर दिया कि संसार के सभी देशों के पौधे एक नियम तथा एक व्यवस्था के भीतर काम करते हैं। और उसके बाद जो नये आविष्कार हुए हैं उन्होंने लिन्नेउस् के कुछ वर्गों और विभागों को माना है, क्योंकि यह नियम सिद्ध हो गया है कि पौधों की जननेन्द्रियों की रूप-रेखा की समानता यौन संबंध के अन्य मुख्य और विशेष लक्षणों के साथ साथ रहती है। ज्योतिष के इतिहास में भी ऐसी ही बातें पायी जाती हैं। टोलेमी का ज्योतिष-विज्ञान असत्य सिद्ध हो गया है, तो भी उसके केन्द्रबहिर्गामी सिद्धांत की सहायता से तारों की चाल की ठीक-ठीक गति निश्चित करने के नियम स्थिर किये गये। यह विश्वास कि अमुक ज्ञान में कहीं न कहीं त्रुटि रह गयी है जिसका अभी तक समाधान नहीं हो सका, भूल तक पहुँचने का रास्ता खोल देता है। प्रकृति में कोई भूल नहीं है, भूल हममें होनी चाहिए। यह विश्वास उस समय अरस्तू के मन में रहा होगा, जब प्रकृति का अधूरा ज्ञान होते हुए भी उसने घोषित किया—'प्रकृति में मिलावट का नाम नहीं है और न कोई असंबद्ध प्रक्रिया ही पायी जाती है, जैसा कि भद्दे दुःखांत नाटक में दिखाई देता है।' उसके समय के बाद प्रत्येक नये तथ्य और प्रत्येक नये ज्ञान ने अरस्तू की पुष्टि की है।

वर्गीकरण का उद्देश्य स्पष्ट है। हमारी समझ में कोई बात तभी आती है, जब वह हमारे मस्तिष्क में पूर्णतया बैठ जाय। कहने का तात्पर्य यह है कि यह तभी संभव है जब हम एक एक तथ्य को भली-भाँति ग्रहण करें और उसे क्रम से अपने विचारों द्वारा दिमाग में सजायें, नाना पदार्थों की जो छाप मन में पड़ती है, उसे परस्पर

संबन्धित करें, यह भेद कर पायें कि इनमें अति प्रयोजनीय तथ्य कौन-कौन-से हैं और क्या-क्या बातें विशेष कारणों से अकस्मात् घटित हुई हैं। ये सब बातें ध्यान में रखकर एक पदार्थ में अपनी जाति के अन्य पदार्थों या समष्टि के साथ क्या समानता है और समष्टि के क्या क्या गुण व्यक्ति में हैं, यह बताना संभव होता है। वैज्ञानिक पद्धति का यही रहस्य है। कई विज्ञान इस दूसरी अथवा वर्गीकरण की स्थिति पर पहुँचते ही अपनी उपाधि तुलनात्मक बताने लगते हैं। जब शरीर की चीर-फाड़ करनेवाला डाक्टर कई शरीरों की चीर-फाड़ कर लेता है, जब वह प्रत्येक अंग और उप-अंग का नामकरण कर लेता है तथा इनमें से प्रत्येक का विशेष काम और प्रयोजन समझ लेता है, तो जहाँ वह पहले नानात्व देख रहा था, वहाँ समानता के दर्शन करने लगता है। वह आविष्कार करता है कि जहाँ उच्च श्रेणी के जीवों में अंगों और अंग-व्यवस्था में पूर्णता देखने में आती है, निम्न श्रेणी के जंतुओं में ये अंग और उनका संगठन बहुत कम विकसित या आरंभिक दशा में पाया जाता है। तब उसके मन में यह छाप जम जाती है और यह विश्वास हो जाता है कि जीव-जंतु जगत् में वही रचना-क्रम और वही कल्पना पायी जाती है जो अगणित प्रकार के पौधों या प्रकृति के किसी अन्य क्षेत्र में देखने में आती है। यदि वह यह तथ्य पहले न जानता हो तो उसे ज्ञान हो जाता है कि सृष्टि के पदार्थ ऊटपटाँग रीति से नहीं रचे गये या एक साथ पैदा नहीं किये गये बल्कि सब पदार्थों का विकास सीढ़ी-दर-सीढ़ी हुआ है। भले ही इसकी प्रगति अति सूक्ष्म चाल से हो। इसी गति से अणु-जीव, छोटे-से-छोटा कीड़ा प्रकृति की सर्वश्रेष्ठ कृति या कहिए सृष्टि के मुकुट-मणि मनुष्य तक विकसित हुआ। वह समझ जाता है कि विश्व सर्जनशील (creative) विचार की शृंखला का व्यक्त रूप है, यह सर्वज्ञ स्रष्टा का काम है।

इस प्रकार दूसरी या वर्गीकरण की मंजिल हमें तीसरी अर्थात् सिद्धांत-संबंधी स्थिति पर पहुँचाती है। यदि वर्गीकरण का काम उचित रीति से किया गया तो इससे हमें यह ज्ञान प्राप्त हो जाता है कि प्रकृति में ऐसा पदार्थ एक भी नहीं, जो अकस्मात् और अकारण पैदा हो; और प्रत्येक व्यक्ति किसी उपजाति का अंग है तथा प्रत्येक उपजाति एक जाति का अंग है। साथ ही वर्गीकरण से यह ज्ञान भी प्राप्त होगा कि प्रकृति के सभी सिरजे हुए पदार्थों की दिखावटी स्वच्छंदता और नानात्व निश्चित नियमों पर निर्भर रहते हैं। इन नियमों से हमें बोध होता है कि सृष्टिकर्ता के मन में इस सब सृष्टि-निर्माण का कोई विशेष प्रयोजन वर्तमान रहा होगा। प्राचीन समय के दार्शनिक और ज्ञानी इस सृष्टि को माया का भ्रम-जाल मानते थे, वे समझते

थे कि यह परमाणुओं का ढेर मात्र है तथा शैतान की करामात है। सृष्टि का हमारा अध्ययन और उसकी व्याख्या यह है कि यह ईश्वरीय शक्ति, ज्ञान और प्रेम का प्रदर्शन है। इस दृष्टिकोण ने प्रकृति के अध्ययन को नया रूप दे दिया है। अब निरीक्षक (observer) पहले तथ्यों का संग्रह करता है, फिर वर्गीकरण करने वाला उन्हें क्रमबद्ध करता है, तब ज्ञानार्थी के मन में प्रश्न उठता है कि इन सबका मूल तथा स्पष्टीकरण कैसे प्राप्त होगा ? और वह तर्क की आरोही पद्धति (induction) से विचार करते करते ज्ञान में ऊपर उठता है तथा कभी कभी दैवी प्रेरणा उसकी सहायता करती है, जिसके बल से वह ज्ञान की उस ऊँचाई में पहुँच जाता है, जहाँ केवल तथ्य संग्रह करनेवाले की गति नहीं है। अवश्य ही इस प्रयत्न में कभी कभी मनुष्य का मन फिटन गाड़ी का आविष्कार करनेवाले फिटन की भांति विकल हो जाता है, पर असफलताएँ इसको निराश नहीं करतीं, वह फिटन साहब की भाँति अपने पिता से घोड़े मांगता है कि गाड़ी का आविष्कार करके ही चैन ले। यह कहा जाता है कि यह तथाकथित प्रकृतिदर्शन या प्रकृतिविज्ञान कुछ उपयोगी ज्ञान न बढ़ा सका, इसने कुछ भी नहीं किया, केवल यही सिद्ध किया है कि सृष्टि के पदार्थ ठीक वैसे ही रहे होंगे जैसा निरीक्षकों और संग्रह करनेवालों ने उन्हें पाया। भौतिक विज्ञान इस उन्नत अवस्था में कभी न होता यदि इसे दार्शनिकों और कवियों से प्रेरणा नहीं मिली होती। मैं यहाँ जर्मन मनीषी हम्बोल्द्त का निम्न उद्धरण देता हूँ—'शुद्ध' या यथार्थ (exact) ज्ञान की सीमाओं से, जैसे किसी पहाड़ी द्वीप की चोटी के ऊपर से, आँखें दूर दूर के दृश्य देखना चाहती हैं। जो जो रूप आँखें देखती हैं, वे भले ही भ्रमपूर्ण दृश्य हों, किन्तु उन धोखा देनेवाले दृश्यों की भाँति, जो कोलंबस से भी पहले यात्रियों ने कैनरी या अज़ोर द्वीपों के तट से देखे, इनसे भविष्य में नयी दुनिया (नयी दुनिया अमेरिका को भी कहते हैं। अनु०) के आविष्कार की बहुत संभावना है।'

कोपर्निकस ने अपने ग्रंथ के आरंभ में पोप पॉल तृतीय को जो समर्पण-पत्र लिखा है (यह ग्रंथ १५१७ ई० में आरंभ किया गया, १५३० में पूरा हुआ और १५४३ में प्रकाशित हुआ) उसमें स्वीकार किया है कि उसने सूर्य के केन्द्र-स्थान में स्थित होने और पृथ्वी की रात-दिन की गति का आविष्कार निरीक्षण या विश्लेषण से नहीं किया, बल्कि उसने देखा कि टोलेमी के ज्योतिषशास्त्र में सामंजस्य नहीं है, इसलिए सामंजस्य लाने के लिए ये आविष्कार किये गये। अब सोचिए कि उसको किसने बताया कि आकाश के ज्योति-पिंडों की गति में अवश्य सामंजस्य होना चाहिए,

अथवा यों कहिए कि उसने यह सिद्ध किया कि उलझन या पेचीदगी से सरलता महान् है। वैज्ञानिक निरीक्षकों ने जब यह आविष्कार किया कि उलझन से सुलझन महान् है, उससे पहले दार्शनिक ने इसका अनुमान लगा लिया था। ज्योतिषशास्त्र में क्रांति करनेवाले प्रथम विचार का बीज कोपर्निकस को एक प्राचीन यूनानी दार्शनिक पिथागोरस के अनुयायी फिलोलौस ने सुझाया। यह बात स्वयं कोपर्निकस ने स्वीकार की है। इसमें संदेह नहीं कि फिलोलौस ने अनुमान लगाया था कि पृथ्वी चल है, या यह भी कहा जा सकता है कि उसे इस विषय की प्रेरणा हुई। तो भी कोपर्निकस के लिखने के अनुसार यह बहुत संभव मालूम पड़ता है कि बिना इस अटकल के कोपर्निकस के सिद्धांतों का आविष्कार न होता। केपलर (ज्योतिषशास्त्र का एक महान् पंडित। अनु०) की तर्कशैली उसके समसामयिकों द्वारा अविश्वसनीय और अटकलपच्चू मानी जाती रही और बाद के ज्योतिषी भी उसे ऐसा ही समझते रहे हैं; इस विषय पर सर डेविड क्यूस्टर ठीक ही कहता है--'जिन्होंने विज्ञान को नियमों में बाँधने का साहस किया है, उन्होंने कल्पना के प्रभाव को अनदेखा-सा कर दिया है, किन्तु शोध के क्षेत्र में कल्पना का भाग बड़े महत्त्व का है।' जो सत्य के अनुसंधान में लगता है और उसका मूल ढूंढता है उसके लिए कल्पना की मशाल उतनी ही आवश्यक है जितना अँधेरे में अध्ययन करने के लिए दीपक। केपलर के पास दोनों वर्तमान थे। उसके पास इनसे भी महत्त्व का पदार्थ था कि उसके सामने पूर्ण विश्वास का तारा जगमगा रहा था, जो उसके काम में उसका पथ-प्रदर्शन कर रहा था और उसे अंधकार से ज्योति की ओर ले जा रहा था।

भौतिक विज्ञानों के इतिहास में उन्नति की सीढ़ी की तीन अवस्थाएँ, जिन्हें हमने ऊपर निरीक्षणात्मक या संग्रहात्मक, वर्गीकरण-संबंधी और सैद्धांतिक बताया है, वे साधारणतया एक के बाद एक कालानुसार दिखाई देती हैं। मैं साधारणतया इस कारण कह रहा हूँ कि ऐसे उदाहरण भी मिलते हैं, जैसा कि ऊपर फिलोलौस का दिया गया है, जिनमें देखा जाता है कि विशेष प्रतिभाशाली दार्शनिक पहली ही अवस्था में तीसरी अवस्था के परिणाम का आभास दे देता है। प्रतिभा की विचक्षण आँख तुरन्त ताड़ जाती है तथा एक घटना से हजार घटनाओं की सूचना मिल जाती है और बहुत सोच-विचार कर चुना हुआ एक प्रयोग या परख एक अकाट्य नियम के आविष्कार का पथ दिखा सकता है। इसके अतिरिक्त विज्ञान के इतिहास में कई स्थान गढ़ों और खाइयों से भरे हैं, यह पता नहीं चलता कि इन रिक्त स्थानों पर पहले भवन, लहलहाते खेत आदि क्या थे? राजनीतिक या जातीय उथल-

पुथल कभी-कभी पीढ़ियों की परम्परा को उलट देती है और जो काम एक बार प्रायः समाप्त हो चुका था, वह कई बार फिर नये सिरे से करना पड़ता है. क्योंकि इन उथल-पुथलों के कारण पुरानी सभ्यता उजड़कर नयी सभ्यता आ गयी जिसने पुरानी संस्कृति का लेश तक न रखा। फिर भी इन तीन अवस्थाओं की परंपरा निश्चय ही स्वाभाविक है और प्रत्येक विज्ञान के अध्ययन में इसका बहुत ही ध्यान रखा जाता है। उद्भिद्-विज्ञान का विद्यार्थी आरंभ में पौधों का संग्रह करता है। प्रत्येक पौधे को अलग-अलग लेकर वह उसके विशेष लक्षणों का निरीक्षण करता है, उसका उत्पत्तिस्थान मालूम करता है, किस ऋतु में यह पौधा लगता है, यह ज्ञान प्राप्त करता है और उसके लोक-प्रचलित या अवैज्ञानिक नाम का परिचय प्राप्त करता है। वह पौधों की जड़ें, तने, पत्ते, फूल, बीजदान आदि अंगों और उनके भेदों को जानने लगता है। सच तो यह है कि तुलना करने, व्यवस्थित ढंग से क्रमबद्ध करने तथा वर्गीकरण करने से पहले वह पौधों के संबंध में काम की सभी बातें जान लेता है, अर्थात् वह पौधे का अमली या काम का ज्ञान प्राप्त कर लेता है। और लीजिए, बिना दूसरी अवस्था की जानकारी के कोई विद्वान् किसी भौतिक विज्ञान की तीसरी सीढ़ी पर पहुँचकर लाभ नहीं उठा सकता। जिसने पौधों के नाना चित्र-विचित्र रूपों की भली-भाँति जानकारी प्राप्त न की हो और इससे भी महत्त्व की बात यह है कि पौधों की आश्चर्यचकित करनेवाली क्रमबद्धता का ज्ञान प्राप्त न किया हो वह उनका अध्ययन नहीं कर सकता और न वह श्लाइडन की प्रसिद्ध पुस्तक पौधे की जीवनी का महत्त्व और तात्पर्य ही समझ सकता है। आरोह पद्धति (inductive method) के ज्ञान-विज्ञान के सबसे नये और सर्वश्रेष्ठ फल तभी हमारे सामने आ सकते हैं जब वर्गीकरण द्वारा पहले मार्ग साफ कर लिया जाय। ज्ञानी तथा विज्ञानी को अपने विषय के वर्गों पर पूरा अधिकार होना चाहिए। उसे ठीक उस जनरल के समान होना चाहिए जिसके अधिकार में उसकी सब पलटनें हों। केवल इसी प्रकार यह युद्ध लड़ा जा सकता है और तब सत्य, विशुद्ध सत्य पर विजय प्राप्त की जा सकती है।

अन्य भौतिक शास्त्रों के इतिहास पर इस भाँति एक सरसरी निगाह डालने के बाद अब हम अपने विज्ञान पर आते हैं, जो भाषा का विज्ञान है। हमें देखना यह है कि क्या यह आरोही पद्धति के दूसरे भौतिक विज्ञानों की उच्चकोटि तक पहुँचाया जा सकता है जिससे हम भली भाँति जान लें कि क्या यह भी वैसा ही विशुद्ध विज्ञान है? हम यह जानना चाहते हैं कि क्या इसने भौतिक पदार्थों की शोध की तीनों

अवस्थाएँ या सीढ़ियाँ पार कर ली हैं, क्या इसकी प्रगति क्रम के साथ हुई है या अटकलपच्चू और बेतरतीब ढंग से इसका विकास हुआ है और क्या जिस विधि से यह शास्त्र रचा गया है, वह इसके उपयुक्त है अथवा नहीं? किंतु यह छानबीन करने से पहले मेरे विचार से हमें कुछ और काम करना होगा। आप यह देख रहे होंगे कि मैं यह मानकर यहाँ भाषण कर रहा हूँ कि भाषा-विज्ञान, जो इस देश में तुलनात्मक शब्दशास्त्र के नाम से विख्यात है, एक भौतिक विज्ञान है। इस कारण इसकी प्रक्रिया वही होनी चाहिए जिसके अनुसरण से उद्भिद्-विज्ञान, भूगर्भविद्या, शरीर की चीर-फाड़ का शास्त्र तथा प्रकृति के अध्ययन की अन्य शाखाएं इतनी सफलता प्राप्त कर रही हैं। खेद है कि भौतिक विज्ञानों के इतिहास में हम भाषा-विज्ञान का नाम नहीं पाते हैं, उसमें इसे स्थान ही नहीं दिया गया है और इसका नाम तुलनात्मक भाषाशास्त्र सूचित करता है कि यह शास्त्र मानवीय ज्ञान के बिलकुल भिन्न क्षेत्र से संबंध रखता है। मानवीय ज्ञान के दो भेद हैं जो अपने अपने विषय के हिसाब से **भौतिक** और **ऐतिहासिक** कहे जा सकते हैं। भौतिक विज्ञान सिरजनहार की सृष्टि का वर्णन करता है, ऐतिहासिक विज्ञान मनुष्य की कृति का बखान करता है। अब यदि हम नाम के अनुसार देखें तो तुलनामूलक भाषाशास्त्र, प्राचीन ग्रीक और लैटिन भाषाशास्त्र की भांति, भौतिक विज्ञानों में स्थान पाने योग्य नहीं, बल्कि ऐतिहासिक विज्ञान कहलाने योग्य माना जा सकता है और इसके अध्ययन की उपयुक्त विधि वही ठीक मानी जा सकती है जो कला, राजनीति, विधान, धर्म आदि के इतिहास के अध्ययन में काम में लायी जाती है। किन्तु तुलनात्मक भाषाशास्त्र के नाम से हमें भ्रम में न पड़ना चाहिए। यह कहना कठिन है कि इस शास्त्र का यह नाम किसने रखा? किन्तु इस शास्त्र के विषय में जो कुछ कहा जा सकता है, वह यह है कि इसकी बुनियाद डालनेवाले मुख्यतया पंडित तथा भाषाशास्त्री थे और उन्होंने भाषा की प्रकृति तथा नियमों पर अपनी शोध का आधार उन बहुत से तथ्यों की तुलना को बनाया जो उन्हें अपने अपने अध्ययन के विशेष-विशेष क्षेत्रों से प्राप्त हुए। यह तुलनात्मक भाषाशास्त्र नाम न तो जर्मनी में, जो वास्तव में इस शास्त्र की जन्मभूमि कही जानी चाहिए और न ही फ्रांस में, जहाँ इस विज्ञान का अध्ययन अद्भुत सफलता के साथ किया गया है, पाया जाता है। यह सिद्ध करना कठिन न होगा कि यद्यपि भाषाविज्ञान को ग्रीक तथा लैटिन के विद्वानों से बहुत सहायता मिली है और यद्यपि साथ ही उनकी भी इस विज्ञान से बहुत मदद हुई है, किंतु तुलनामूलक भाषाशास्त्र का भाषाविज्ञान से कोई

संबंध नहीं है और न कोई समानता है। भाषाशास्त्र, भले ही वह ग्रीक और लैटिन का हो या प्राच्य भाषाओं का, वह चाहे प्राचीन भाषाओं का हो चाहे नवीनों का, वह सुसंस्कृत भाषाओं का हो या असंस्कृत जंगली भाषाओं का; वह ऐतिहासिक विज्ञान है। इसमें भाषा केवल विचारों के वाहन के रूप में वर्णित की जाती है। साहित्य के प्राचीन उत्तम ग्रंथों को समझने के लिए, जिन्हें हमारे पूर्वज हमारे लिए बपौती के रूप में छोड़ गये हैं, गोया समय के गर्भ से नाना युगों और नाना देशों के महान् पुरुषों के विचार बाहर निकालने के लिए चाबी के रूप में इनको समझकर इनके द्वारा मानवजाति की सामाजिक, सदाचार-संबंधी (moral), बुद्धि और धर्म की प्रगति जानने के लिए ग्रीक तथा लैटिन के विद्वान् इन भाषाओं की सहायता से एवं प्राच्य भाषाओं के पंडित इबरानी एवं संस्कृत के ज्ञान द्वारा शोध करते थे। ठीक इसी प्रकार, यदि हम कोई जीवित भाषा सीखेंगे तो केवल उस भाषा में आनन्द प्राप्त करने के लिए, उसके व्याकरण-कोश आदि में माथापच्ची न करेंगे। हम जीवित भाषाएं सीखकर इनसे कई काम निकालेंगे। हम इनका उपयोग, उन्नत समाज के श्रेष्ठ व्यक्तियों से परिचय प्राप्त करने या संसार के उन्नत देशों के साहित्य से अपना संबंध स्थापित करने में करते हैं। तुलनात्मक भाषाशास्त्र इससे बिलकुल ही दूसरा विषय सिखाता है। भाषाविज्ञान में भाषा वाहन के रूप में नहीं मानी जाती। इसमें भाषा स्वयं वैज्ञानिक शोध का एक-मात्र विषय बन जाती है। वे बोलियाँ जिनमें साहित्य का कहीं पता ही नहीं चलता, जंगली जातियों की ऊटपटांग बोलियां, होटेंटो लोगों की बोली जो हमें केवल खट-खट (click) मात्र लगती है, इंडो-चीनी जातियों की बोली जिसमें अर्थ सुर के उतार-चढ़ाव पर निर्भर रहता है, हमारे लिए उतने ही महत्त्व की हैं, बल्कि हमारी समस्याओं के समाधान के लिए, होमर की कविता या कालिदास के काव्यों और नाटकों से अधिक महत्त्व की हैं। हमको नाना भाषाएं जानने की आवश्यकता नहीं है, हम एक भाषा का ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं। हम यह जानना चाहते हैं कि भाषा क्या है, यह विचार का वाहन या उसका साधन कैसे बन सकती है? हम भाषा का मूल-स्रोत जानना चाहते हैं, इसकी प्रकृति की खोज करते हैं और इसके नियम निकालने का यत्न करते हैं। उक्त विषयों की जानकारी प्राप्त करने के लिए ही हम अपनी पहुंच के भीतर के सभी तथ्य संग्रह करना, उन्हें क्रम से लगाना तथा उनका वर्गीकरण करना चाहते हैं। मैं यहाँ इन भाषणों के आरंभ में ही इस अनुमान का खंडन कर देना चाहता हूँ कि भाषा-विज्ञान के छात्र को बहु-भाषाविद् होना चाहिए। आगे किये जानेवाले इन भाषणों

में ऐसी सैकड़ों भाषाओं का उल्लेख करना होगा, जिनमें से कुछ का नाम तक आपने न सुना होगा। ऐसा ध्यान में भी न लाइए कि मैं इन भाषाओं को उसी प्रकार जानता हूँ जैसा आप लोग ग्रीक, लैटिन, फ्रेंच या जर्मन जानते हैं। मैं बहुत कम भाषाएं पूर्णरूप से जानता हूँ और मैंने कभी यह व्यर्थ का प्रयत्न नहीं किया कि आडलुंग की नकल पर **मिथ्रीदातेस**[1] लिखूँ। भाषाविज्ञान के जिज्ञासु के लिए उन सब भाषाओं का ज्ञान प्राप्त करना असंभव है, जिनसे उसे काम पड़ता है। वह **कचिकाल** भाषा बोलना कभी न चाहेगा, भले ही ग्वाटेमाला के विश्वविद्यालय में हाल में इस मूल अमेरिकन भाषा का अध्यापक नियुक्त किया गया है;[2] न वह चेरमिसियन भाषा के मुहावरे और खूबियां सीखेगा, न यह उच्च-आकांक्षा लेकर बैठेगा कि **सामोयद** या न्यूजीलैंड के **लोगों** की बोली के साहित्य रूपी सागर में गोते लगाये। वह तो व्याकरणों तथा कोशों की शोध करता है। वह इनको देखकर काम करता है और इनकी बारीक छानबीन में समय बिताता है; पर वह अपने दिमाग में शब्द और धातु-रूपावलियाँ नहीं ठूँसता या ऐसे शब्दों की लंबी सूचियों से उसे नहीं भरता, जो कभी किसी साहित्य के ग्रंथ में काम में न आये हों। इसमें संदेह को नाम-मात्र स्थान नहीं है कि कोई भाषा अपनी आश्चर्य-चकित करनेवाली बनावट का पूरा परदा केवल उन्हीं विद्वानों के सामने खोलती है, जिन्होंने नाना कालों और अवधि के बहुत-से साहित्यिक ग्रंथों के पूर्ण अध्ययन के द्वारा किसी एक भाषा का अध्ययन किया हो। इसके विपरीत कभी-कभी ऐसी परिस्थिति आ जाती है कि हमको किसी भाषा के व्याकरण की केवल रूपरेखा ही मिलती है और कुछ शब्दों की सूची से काम चलाना पड़ता है। जिज्ञासु इस थोड़े-से सामान से ही भाषाविज्ञान के अध्ययन में अपने उद्देश्य की ओर आगे बढ़ता है। उसे सीखना पड़ता है कि इस छिन्न-विच्छिन्न ज्ञान से अधिक-से-अधिक लाभ उठाया जाय। यह वैसा ही है जैसे शरीर-विज्ञान के विशेषज्ञ शरीर के कुछ नये अंगों को प्रस्तरीभूत हड्डियों के अधूरे खंड देखकर परखते हैं या जानवरों के उन अस्पष्ट चित्रों से लाभ उठाते हैं जिन्हें वैज्ञानिक-बुद्धिविहीन घुमक्कड़ अपने अनभ्यासी हाथों से बनाकर लाते हैं। यदि

१. मिथ्रीदातेस में आडलुंग ने संसार की सब विदित भाषाओं के समान अर्थ वाले शब्द दिये हैं। इस ग्रंथ से भाषाविज्ञान कुछ लाभ ही न उठा सका। अनु०

२. सर जे० स्टौडर्ट, ग्लॉस्सोलौजी, पृ० २२।

तुलनामूलक भाषाशास्त्री के लिए, जिन भाषाओं की वह शोध कर रहा है, उनका आलोचक की दृष्टि से और कार्यकारी (Practical) ज्ञान अति आवश्यक होता तो भाषाविज्ञान बिलकुल असंभव हो जाता। पर हम उद्भिद्-विज्ञानी से आशा नहीं करते कि वह पूरा और अनुभवी माली हो या भूगर्भविद्या के विशेषज्ञ से यह उम्मीद नहीं करते कि वह खान का मजदूर भी हो, अथवा मत्स्यविज्ञानी का मछुवा होना नहीं चाहते। यद्यपि जिसे हम भाषा-जगत् कहते हैं, उसका अधिकांश भाग सदा के लिए हमारे वास्ते लुप्त रहता है; क्योंकि यह आवश्यक हो जाता है कि भाषा के इतिहास के युग के युग हमारे निरीक्षण की परिधि से बाहर ही रह जाते हैं, तो भी मनुष्य की वाणी के ज्ञान के पर्वत में, जो प्राचीन साहित्य में नाना युगों के साहित्य के रूप में परत पर परत-सा जम गया है, या जीवित भाषाओं और बोलियों के भांति-भांति के भेदों में मिलता है, उतनी ही विस्तृत ज्ञान की सामग्री है, जितनी भौतिक विज्ञान की किसी अन्य शाखा के पास मिलती है। जिन भाषाओं का पता लग चुका है, उनकी ठीक-ठीक संख्या स्थिर करना असंभव है, पर इतना निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि इनकी संख्या नौ सौ से अधिक ही है। आश्चर्य की बात तो यह है कि इस विज्ञान की ओर वैज्ञानिकों का ध्यान हमारी सदी (उन्नीसवीं सदी, अनु०) में ही गया है। मुहावरा है कि अति परिचय अनादर का कारण हो जाता है। भाषाविज्ञान की यही दशा हुई है। ऐसी ही दशा भूतत्त्वविज्ञान की भी हुई। हमारी पृथ्वी के कंकड़-पत्थर स्पष्ट बता रहे हैं कि धरती की सतह में तथा नस-नस में प्राण धड़क रहा है, पर हमारे पूर्वजों की पीढ़ी पर पीढ़ी आती गयीं और किसी ने इस विज्ञान की ओर ध्यान देने की परवाह न की। उन्हें सड़क के कंकड़-पत्थर नगण्य-से लगे, इस कारण उन्होंने समझा कि इनमें क्या विज्ञान रखा है? यही हाल भाषाविज्ञान का भी रहा। भाषा तो हमारा हलवाहा भी बोलता था, उसका विज्ञान भी हो सकता है, यह बात हमारे पुरखों के ध्यान में कैसे आती? मनुष्य ने प्रकृति के प्रायः सब पहलुओं का ज्ञान प्राप्त किया, उसने भूमि के गर्भ में छिपी धातुओं के खजानों को खोद निकाला, प्रत्येक मौसम के फूलों का अध्ययन किया, सब महाद्वीपों के जीव-जन्तुओं का पता लगाया, तूफानों के नियम बाँधे और आकाश के ज्योतिर्-पिंडों की गति-विधि का आविष्कार किया; उसने प्रत्येक पदार्थ का विश्लेषण किया, हर जानवर के अंग चीर-फाड़ कर देखे, एक-एक हड्डी और नस-नस से परिचय प्राप्त किया, प्रत्येक मांसपेशी और मांस तथा रक्त का प्रत्येक रेशा देखा और समझा, मतलब यह कि शरीर के अणु-परमाणु सब का ज्ञान प्राप्त

किया। उसने ध्यान से अपनी आत्मा की रूपरेखा, मन के नियम स्थिर किये तथा अपने अस्तित्व के चरम कारणों की अंधकारमय गुहा में प्रवेश करने का यत्न किया; इस पर भी भाषा, जिसकी सहायता के बिना इस अद्भुत प्रगति का पहला पग भी आगे नहीं बढ़ाया जा सकता था, किसी विद्वान् का ध्यान न खींच पायी। मनुष्य की बुद्धि की आँखों के अति निकट पड़े हुए परदे के भीतर से, मानो, इसको कोई देख ही न पाया। इस युग में जब कि महान् प्रतिभाशाली व्यक्तियों की अपार शक्ति प्रत्नविद्या के पीछे लगी, जब कि रोमन लोगों का जीवन जानने के लिए पांपिआई की मिट्टी खोदी गयी है, यूनान के महान् विचारकों के लुप्त सिद्धान्त पढ़ने के लिए चमड़े के कागजों (Parchments) की घिसी लिपि, रासायनिक प्रक्रिया द्वारा उज्ज्वल की गयी, जब मिस्र की विशाल कब्रें इसलिए खोदी और लूट ली गयीं कि उनके भीतर मिलनेवाले धार्मिक पदार्थों से वहाँ की अति प्राचीन सभ्यता और संस्कृति का हाल मालूम हो और बैबिलान एवं निनेवे के महलों को बाध्य किया गया कि वे अपने पेट के भीतर से चिकनी मिट्टी के खपड़ों पर खुदे नबूखदनजर के रोजनामचों को उगलें और वहां की प्राचीन दशा बतलायें; जब कि कोई भी पदार्थ जिसमें कोई चिह्न या लक्षण पाये गये कि इससे प्राचीन समय का कुछ ज्ञान मिलेगा, तुरन्त खोज का विषय बन गया और हमारे पुस्तकालयों तथा संग्रहालयों में यत्न से सुरक्षित किया गया; भाषा की ओर किसी का ध्यान नहीं गया। अब देखिए, भाषा हमें असीरिया और बैबिलोनिया के कोणाकृति अक्षरों में लिखित ग्रंथों और मिस्र की पुरोहिती चित्रमय लिपि (Hieroglyphic) में लिखे गये प्रमाणपत्रों से भी पुराने समय तक ले जाती है; जो हमारा संबन्ध वाणी की अखंड शृंखला द्वारा हमारे अति प्राचीन पूर्वजों के साथ कराती है और मानवीय बुद्धि की प्रथम अभिव्यक्ति से लेकर आज तक निरंतर बहती चली आती है,—वह भाषा जो सारे मानव-इतिहास की जीती-जागती और बोलती-चालती साक्षी है, उसकी छानबीन हमारे ऐतिहासिकों द्वारा कभी न की गयी। भाषा को बाध्य नहीं किया गया कि वह अपना रहस्य खोले। इधर गत पचास साल से हम्बोल्ड्ट, बौप, ग्रिम, बुनसेन आदि ने इसकी सुधि ली। जिस प्रकार इस भौतिक विश्व में सृष्टि के आरंभ से एक भी नया तत्त्व नहीं जोड़ा गया है, ठीक उसी भांति भाषा के मूलतत्त्व में जो फेर-फार हुआ वह केवल रूप में हुआ है, बाद की पीढ़ियों ने एक भी धातु या मौलिक शब्द का आविष्कार नहीं किया, भले ही हमने भाषा की उत्पत्ति और उसके विस्तार पर कोई मत क्यों न रखा हो। अतः आप इस बात का ध्यान रखें कि एक अर्थ में, और यह

बहुत उचित अर्थ है, यह कहा जा सकता है कि भाषाविज्ञान में हम ठीक ही उन शब्दों पर विचार कर रहे हैं जो परमेश्वर के पुत्र 'आदम' के मुख से जो आदि पुरुष माना जाता है, निकले हैं, जब उसने 'सब ढोरों', हवा में उड़नेवाले सब पक्षियों तथा खेतों में चरनेवाले चौपायों के नाम रखे। इससे आप समझेंगे और मुझे इसका पूरा विश्वास है कि आपका ध्यान भाषाविज्ञान आकर्षित करेगा और इतना अधिक करेगा कि जिसकी बराबरी और कोई विज्ञान नहीं कर सकता। इस प्रकार यह समझाकर कि मैं भाषाविज्ञान की किस ढंग से व्याख्या करना चाहता हूँ, मैं अपने दूसरे भाषण में उन विद्वानों के आक्षेपों की जाँच-पड़ताल करूँगा जो मानते हैं कि भाषा और कुछ नहीं है, केवल मानव की चतुर बुद्धि द्वारा आविष्कृत एक ऐसा उपाय है जिसकी मदद से हम अपने विचार सरलता और तत्परता से दूसरों पर प्रकट कर सकते हैं और जो चाहते हैं कि इसकी व्याख्या प्रकृति की उपज के रूप में नहीं, बल्कि मनुष्यकृत पदार्थ के रूप में करना उचित है।

दूसरा भाषण

भाषा का विकास और भाषा का इतिहास भिन्न भिन्न विषय हैं

भाषा-विज्ञान के लिए भौतिक विज्ञानों के बीच स्थान का अधिकार प्राप्त करने के समय, मैं अनेक आपत्तियों का सामना करने के लिए तैयार था। भौतिक विज्ञानों की चहारदीवारी एक प्रकार से बंद हो चुकी थी, और इसकी संभावना नहीं थी कि एक नये दावेदार को ज्ञान की प्राचीन कुल-परम्परा में उत्तराधिकार प्राप्त हो, या भावी प्रकार से स्थापित विज्ञान की शाखाओं के भीतर उसका स्वागत किया जाय।[१]

१. डाक्टर वेवेल ने भाषाविज्ञान को आदि काल के (palaitiological) विज्ञानों के भीतर सम्मिलित किया है; किन्तु वे उन आदिकाल के विज्ञानों के बीच, जो ठोस पदार्थों की शोध करते और उनके नियम निर्धारित करते हैं, उदाहरणार्थ भूतत्त्व विद्या और दूसरे विज्ञान जो मनुष्य की कल्पनः से उत्पन्न हुए पदार्थों तथा सामाजिक एवं मानव समाज की उन दोनों के विषय में होते हैं जो परमात्मा की दी हुई हैं, विज्ञान अर्थात् उदाहरणार्थ, तुलनात्मक भाषा के बीच साफ-साफ अन्तर बताते हैं। वे उक्त दूसरे प्रकार के विज्ञानों को भौतिक विज्ञानों की चौहद्दी से बाहर कर देते हैं; साथ ही यह भी लिखते हैं—"हमने अपनी शोध इस विश्वास से शुरू की कि भौतिक विज्ञानों के विषय में सत्य का जो स्वरूप हम प्राप्त कर सकेंगे और सत्य के इस स्वरूप के आविष्कार करने का जो ढंग हम अपनायेंगे, उससे हमें अन्य सभी प्रकार के ज्ञानों के स्वरूप और भावी उन्नति की पद्धति पर प्रकाश पड़ने की बहुत बड़ी आशा है। यह वैज्ञानिक पद्धति सदाचार संबंधी राजनीतिक और तुलनात्मक भाषा संबंधी खोज करने में भी काम की सिद्धि होगी। हमने जो यह सिद्धांत बड़ी आशा के साथ प्रकट किया था वह आशा विज्ञान की वर्तमान उन्नति को देखते हुए और उसके

उद्भिद्-विज्ञान, भूगर्भ-शास्त्र या जीव-शास्त्र की ओर से जो आपत्ति—प्रथम आपत्ति, अवश्य ही उठायी जा सकती है, वह यह है कि भाषा मनुष्य द्वारा बनायी हुई है। अपने विचारों को दूसरों पर प्रकट करने के लिए मनुष्य ने माध्यम के रूप में इसका आविष्कार किया था। एक समय ऐसा था जब भाषा नहीं थी, केवल आँख के इशारों और नाना संकेतों द्वारा अपने विचार दूसरे पर प्रकट करना असंभव हो गया था, क्योंकि इनके द्वारा सीमित विचार ही समझाये जा सकते हैं। उस समय बोली की आवश्यकता पड़ी; भावी सन्तान के आपस में मिलकर प्रयत्न करने से उसमें अब ऐसी सम्पूर्णता आ गयी है कि बाइबिल की भाषा पढ़कर हम आश्चर्य-चकित रह जाते हैं। वेदों के भाव हमें मुग्ध कर देते हैं। कुरान की भाषा मनभावनी लगती है, तथा होमर, वर्जिल, दान्ते और शेक्सपियर की भाषा हमारे मन के ऊपर अपना अपूर्व जादू डालती है। अब, यह सर्वथा सत्य है कि यदि उसी प्रकार मनुष्य की भाषा भी बनायी जाती जैसे कि एक मूर्ति को कलाकार

प्रमाण द्वारा अब दिखाई देने लगी है कि ठीक ही है। हम यह देख रहे हैं कि जीव-विज्ञान द्वारा हम मनोविज्ञान की ओर घसीटे जा रहे हैं। यदि हमें अन्य विज्ञानों के लिए भी इसी विज्ञान का पथ अपनाना पड़े तो, स्पष्ट ही है कि इस समय अंततः हम विज्ञान के क्षेत्र में भौतिक विज्ञान द्वारा अभौतिक विज्ञान की ओर सरासर जा रहे हैं। इस समय जो नये-नये विज्ञान हमारे सामने हैं उनके बलबूते पर हम यह देख रहे हैं और स्पष्ट अनुभव कर रहे हैं कि बहुत से बड़े-बड़े क्षेत्र ऐसे हैं जिनमें मनुष्य के अभौतिक या अपार्थिव स्वभाव (प्रकृति) पर ही गूढ़ विचार करना पड़ता है और उन विषयों का वर्णन करते समय हमको उन्हीं नियमों के अधीन काम करना पड़ता है जो सब प्रकार से भौतिक विज्ञान ही कहे जा सकते हैं। हम यहां पर उन भावी संभावनाओं पर विचार नहीं कर रहे हैं जिन्हें विज्ञान हमारे आगे रखने लगा है। किन्तु भौतिक शास्त्रों के बुनियादी सिद्धान्तों पर विचार करते-करते अब इस अंतिम पड़ाव में हम इतने तो स्वतंत्र हो सकें कि ज्ञान-विज्ञान के इस नये पहलू से उत्साहित तथा अनुप्राणित हों, क्योंकि इससे हमारे ऊपर एक नयी किरण का प्रकाश पड़ने लगा है, भले ही यह अभी मंद हो, किन्तु यह एक उच्चतर तथा अधिक प्रकाशमान प्रदेश से पड़ रहा है।"—Indications of the Creator, page 146.

बनाता है, या राजमिस्त्री वगैरह मन्दिर को तैयार करते हैं, या कवि सुललित छन्द रचता है, अथवा कानून आदि मनुष्य द्वारा बनाये जाते हैं, तो भाषाविज्ञान को ऐतिहासिक विज्ञान में स्थान दिया जायगा। तब हमें भाषा का इतिहास देना पड़ेगा, जैसा कि हम कला, कविता, साहित्य और न्याय-शास्त्र का इतिहास बनाते हैं। इस दशा में हम भाषा-विज्ञान को अन्य भौतिक विज्ञानों के साथ नहीं रख सकते, और न यह उनमें स्थान पाने का दावा ही कर सकता है। यह भी सत्य है कि यदि आप प्रसिद्ध-प्रसिद्ध नवीन वैज्ञानिकों की पुस्तकें पढ़ें तो आपको पता लग जायगा कि जब कभी वे भाषा पर लिखते हैं तो वे यह स्वयंसिद्ध मान लेते हैं कि भाषा का आविष्कार मनुष्य ने किया है, शब्द मनुष्य द्वारा बनाये गये संकेत हैं, और मनुष्य की नाना बोलियाँ नाना जातियों द्वारा इस बात पर सम्मत होने पर बनी हैं कि अमुक निश्चित ध्वनि अमुक निश्चित अर्थ व्यक्त करेगी,[1] जिससे अपने भिन्न भिन्न विचारों के लिए भिन्न भिन्न उचित और निश्चित संकेत वे परस्पर में व्यक्त कर सकें। गत शताब्दी के प्रमुख विद्वानों और वैज्ञानिकों द्वारा भाषा की उत्पत्ति के मत का इतने जोरों से प्रचार किया गया कि वे लोग भी, जो इन विद्वानों की विचारधारा से प्रायः सब बातों में घोर विरोध रखते थे, इसे अपनाने लगे। थोड़े-से विद्वान् ऐसे भी हैं जो भाषा को केवल मनुष्य द्वारा आविष्कृत नहीं समझते, उन्होंने उक्त मत का कुछ खण्डन भी किया है; किन्तु वे महान् उत्साह से यह प्रमाणित करने का प्रयत्न करते हैं कि भाषा की उत्पत्ति भगवान् से हुई है। इस जोश में वे बाइबिल में जो बातें साफ-साफ कही गयी हैं, उनके विरुद्ध बातें कहने की भी परवाह नहीं करते, क्योंकि बाइबिल में सब पदार्थों के नाम सृष्टिकर्ता भगवान् द्वारा नहीं रखे गये, बल्कि इसके विपरीत सब पदार्थों का नामकरण आदम ने किया। बाइबिल में लिखा है—'सर्वशक्तिमान् ईश्वर ने खेतों के प्रत्येक चौपाये को बनाया और वायु में विचरनेवाले प्रत्येक पक्षी को सिरजा; और वह उनको आदम के पास लाया कि वह उन्हें देखे और उनका नामकरण करे; और आदम ने प्रत्येक जीवित प्राणी का जो नाम रखा वह उसका नाम पड़ गया।[2]

१. सृष्टि की उत्पत्ति (Genesis) नामक ईसाई धर्मपुस्तक का एक खण्ड।

२. यूनोमीउस (Eunomus) ने सेण्ट बैसिल पर यह अभियोग लगाया कि वह परमात्मा की सर्वज्ञता पर दोष लगा रहा है, क्योंकि उसने कभी यह स्वीकार

इन थोड़े-से दार्शनिकों को छोड़कर, जो अपनी कट्टरता में बाइबिल के भी कान काट गये हैं,[1] अन्य वैज्ञानिकों का सर्वसम्मत मत वह है जिसे एडम स्मिथ ने अपने प्रसिद्ध लेख **'भाषा की उत्पत्ति पर एक निबन्ध'** (Essay on the Origin of Language) में व्यक्त किया है। यह निबंध **'नैतिक भावनाओं पर विमर्श'** (Treatise on Moral Sentiments) नामक ग्रन्थ में परिशिष्ट के रूप में दिया गया था, और जिसे स्टेवर्ट ने नाममात्र संशोधित करके अपने ग्रन्थ में अंगीकृत कर

नहीं किया कि ईश्वर ने विश्व के सब पदार्थों के नामों की रचना की। उसने, इसके विपरीत, यह कहा है कि परमात्मा ने मनुष्य को पैदा किया और उसके भीतर वह शक्ति डाल दी जिसके द्वारा वह भाषा का आविष्कार कर सका। कप्पाडोकिया प्रदेश में निस्सा नामक नगर के बड़े पादरी सेंट गेगरी (३२१ –३९६ ई०) ने सेंट बैसिल का पक्ष लिया और यह बात लिखी है कि 'यद्यपि ईश्वर ने मनुष्य के स्वभाव में अपनी शक्तियाँ भर दी हैं, इसलिए इससे यह निदान निकालना अनुचित है कि हम संसार में जो कुछ काम करते हैं सब ईश्वर की ही रचना है। ईश्वर ने हमें वह शक्ति दी है जिससे हम मकान बनाते और बनवाते हैं और साथ-साथ अन्य सब काम कर सकने की सामर्थ्य भी हमें दी है, पर मकान बनानेवाले या अन्य सब काम करनेवाले हम हैं, न कि ईश्वर। इसी प्रकार हममें जो बोलने और समझने की शक्ति है वह भगवान् ने दी है, क्योंकि उसने हमारी प्रवृत्ति की बनावट में ये शक्तियाँ भर दी हैं, इसी प्रकार भाषा के शब्दों का आविष्कार है जिसके द्वारा प्रत्येक पदार्थ का नाम रखा जाता है, वह शक्ति भगवान् ने हमारे मन में भर दी है।' इस विषय पर Lader–Roche का ग्रन्थ *Del' Origine du Langage Bordeaux* १८६०, पृष्ठ १४; तथा Hone Tooke का ग्रंथ *Diversion of Purley*, पृष्ठ १९ देखिए।

१. स्वयं हमने संस्कृत का नाम देव-वाणी, न मालूम, कब से रखा है? इसका अर्थ हुआ कि हम और हमारे पूर्वज मानते थे कि संस्कृत देवताओं की भाषा है। यही क्यों? हमारी लिपि का नाम देवनागरी है, इससे स्पष्ट यह ध्वनि निकलती है कि जिस लिपि में संस्कृत-भाषा लिखी जाती है, वह लिपि भी देव-नगर या स्वर्ग की लिपि है। मैं जर्मनी में तीन मुसलमान परम मित्रों के साथ एक ही डेरे में निवास करता था। वे मुझे बताते थे कि उनके धर्म के अनुसार ख़ुदा अरबी बोलता है।

लिया था। उक्त विद्वानों के अनुसार मनुष्य की वाणी बहुत समय तक नहीं खुली थी, अर्थात् वह बोल नहीं सकता था। वह समाज में परस्पर के मन में उठे विचार एक दूसरे से नाना अंगों का संचालन करके, नाना संकेतों द्वारा वाक्-यन्त्र या मुख की नाना आकृतियाँ बनाकर व्यक्त करता था। एक समय ऐसा आया जब विचारों का समूह बहुत बढ़ गया और मुख, उँगली आदि से उन्हें व्यक्त करना प्रायः असम्भव हो गया; उस समय 'मनुष्य-समाज ने परस्पर परामर्श और राजीनामा करके नये संकेत आविष्कृत किये, कृत्रिम संकेत बनाये', जिनकी महती आवश्यकता उसे प्रतीत हुई। हम इस स्थान पर उन सिद्धान्तों के छोटे-छोटे मतभेदों पर विचार नहीं करेंगे, जो इस मनुष्यकृत भाषा के बनने की बिलकुल सही प्रक्रिया पर व्यक्त किये गये हैं। एडम स्मिथ यह चाहता है कि हम इस सिद्धान्त पर विश्वास करें कि पहले कृत्रिम शब्द **क्रियावाचक धातुएँ** थीं। उसका विचार है कि उस समय नामों की इतनी अधिक आवश्यकता न थी।

इस कारण, यह भी उनका पक्का विश्वास था कि मरने के बाद सभी मनुष्यों की जबान इस रूप में मुड़ जाती है कि वे खुदा के सामने इस देववाणी अरबी के अतिरिक्त और कोई बोली बोल ही नहीं सकते। प्रायः सभी धर्मावलम्बी अपने-अपने धर्म की वाणी को ईश्वर द्वारा बोली जानेवाली और पवित्र बताते हैं, किसी भाषा के ईश्वरीय या ईश्वर-दत्त मान लेने पर भाषा-विज्ञान की छानबीन आरंभ ही नहीं हो सकती। स्वयं पाणिनि ने वेदों के अशुद्ध प्रयोगों पर कुछ लिखने का साहस नहीं किया। उसके लिए कहा जाता था कि छांदस प्रयोग आर्ष हैं, अतः उनमें दोष नहीं निकाला जा सकता। संसार की सभी विद्याएँ निरीक्षण-परीक्षण का विषय हैं। बिना उनकी जाँच-पड़ताल, छान-बीन आदि किये अकाट्य नियम कैसे निकाले जा सकते हैं। इसलिए भाषा-विज्ञान के पंडितों ने भाषा की आलोचना, भाषा को मनुष्यकृत मान कर ही की है। वराहमिहिर ने गणित (-विज्ञान) के विषय में जो सिद्धांत स्थिर किया था और जिसकी घोषणा उसने निम्न रूप में की थी—

"गणित के विषय में वेद आदि धार्मिक ग्रन्थों का आधार नहीं माना जा सकता, इस विषय में ज्ञान ही मूल आधार है।"

यह सिद्धांत सभी विज्ञानों के विषय में लागू है। इस दृष्टि से हमें भाषा-विज्ञान के सत्य भी खोजने पड़ेंगे। (अनु०)

क्योंकि नामों से व्यक्त होनेवाले पदार्थ उँगली के इशारों से बताये जा सकते थे, अथवा जीवित प्राणियों को, उनके द्वारा की जानेवाली ध्वनि से संबोधित किया जा सकता था; किन्तु धातु द्वारा व्यक्त किये जानेवाले विशुद्ध कर्म इस रीति से व्यक्त नहीं किये जा सकते थे। इस कारण स्मिथ की तर्कशैली कुछ इस प्रकार की है कि जब लोगों ने देखा कि एक भेड़िया आ रहा है तो उन्होंने उँगली के इशारे से उसे बताया और चिल्लाने लगे "वह आता है, वह आता है।" इसके विपरीत ड्यूगैल्ड स्टेवर्ट का विचार है कि मनुष्यों द्वारा गढ़े गये प्रथम शब्द नाम (संज्ञा) थे और नाना अंगों द्वारा संकेत करके मनुष्य क्रिया का बोध कराते थे; इस कारण जब लोगों ने भेड़िये को अपनी ओर आते देखा तो वे "वह आता है, वह आता है" नहीं किन्तु "भेड़िया, भेड़िया" चिल्लाये होंगे, भेड़िये के दौड़ने का काम उन्होंने कल्पना पर छोड़ दिया, क्योंकि भेड़िया उनके सामने ही दौड़ा आ रहा था।[१]

किन्तु चाहे धातु, चाहे नाम का आविष्कार पहले हुआ हो या बाद को, इसका महत्त्व बहुत कम है; हमारे लिए यह संभव नहीं है कि भाषा की प्रकृति के संबंध में अपनी खोज के प्रारंभ में ही हम इस सिद्धान्त की बाल की खाल निकालें, जो भाषा को मानवीय कला की कृति बताता है और यह समझ लेता है कि भाषा की स्थापना मनुष्यसमाज में एक दूसरे से बात करने के लिए परस्पर के राजीनामे से हुई है। यद्यपि मैं यह पूर्णतया स्वीकार करता हूँ कि यदि यह सिद्धान्त सत्य हो तो भाषा-विज्ञान भौतिक विज्ञानों के भीतर नहीं माना जा सकता है। इस समय मैं इतना बताकर संतोष करूँगा कि अभी तक कोई यह नहीं बता सका कि बिना भाषा के अस्तित्व के किस प्रकार समाज में प्रत्येक शब्द के गुण-दोषों पर विचार किया गया होगा और किस प्रकार इन शब्दों पर समाज में समझौता हुआ होगा, अर्थात् बिना भाषा के उस समाज में परस्पर वार्तालाप किस प्रकार हुआ होगा। चूँकि इन भाषणों का उद्देश्य यह सिद्धान्त प्रतिपादित करना है कि भाषा उस अर्थ में मानवीय कला की उपज नहीं है जिस अर्थ में चित्रकारी या भवन-निर्माणकला या लेखन-कला या छापने का काम मानवीय कला की उपज माना जाता है। इस वर्णन के प्रारंभ में, मैं यही ठीक समझता हूँ कि इस समय उस सिद्धान्त के विरुद्ध

१. Dr. Stewart, Works, खण्ड तृतीय, पृष्ठ २७।

अपना प्रतिवाद ज्ञापन करूँ, जो आज भी स्कूलों और विश्वविद्यालयों में पढ़ाया जा रहा है; किन्तु इसके विपरीत, मेरा विश्वास है कि इसके पक्ष में एक भी प्रमाण नहीं दिया जा सकता।

इसके अलावा कुछ और भी आपत्तियाँ ऐसी हैं जो भाषा-विज्ञान को भौतिक विज्ञानों के दायरे के भीतर लेने में अड़चन पैदा करती हैं। भाषा की उत्पत्ति भले ही किसी प्रकार से हुई हो, पर कुछ विद्वानों का कहना है और इस कथन के पक्ष का तर्कशास्त्र द्वारा प्रबल समर्थन होता है कि कला, विधान, धर्म आदि की भाँति भाषा का अपना अलग इतिहास है। इस कारण भाषा-विज्ञान ऐतिहासिक या जैसा कि पहले कहा जाता था, नैतिक विज्ञानों के दायरे के भीतर गिना जाना चाहिए, भौतिक विज्ञानों के भीतर नहीं। यह तथ्य सभी विद्वान् जानते हैं और वर्तमान शोधों ने इसे नाम मात्र भी टस से मस नहीं किया कि जड़ प्रकृति स्वयं अपनी उन्नति या सुधार नहीं कर सकती। पेड़-पौधों की शोध करनेवाला वैज्ञानिक फूलों की आज जो दशा देख रहा है, आरंभ से वह उसी एक अवस्था में है। वे जानवर, जिन्हें हम कहते हैं कि उनके भीतर कलात्मक चेतना का अस्तित्व है, एक सीमित ज्ञान के भीतर रह गये हैं; अधिक मात्रा में अपनी कला का विकास नहीं कर सके। हमारी मधुमक्खियों के छत्तों में जो षट्कोण कोठरियाँ बनी रहती हैं वे प्राचीन समय की अपेक्षा अधिक सुचारु रूप में न बनायी जा सकीं, और जहाँ तक हम जानते हैं न बुलबुल अपनी गायन-कला की देन को आरंभिक अवस्था से अधिक विकसित कर सकी। मैं यहाँ डॉक्टर वेवैल के शब्दों[1] को उद्धृत करता हूँ—

"भौतिक विज्ञान का नियमपूर्वक वर्णन करते समय वह सब छोड़ दिया जायगा जिसे हम ऐतिहासिक वर्णन कहते हैं; क्योंकि भौतिक विज्ञान में पदार्थों का वर्गीकरण उनके स्थायी तथा सर्वत्र एक-से पाये जानेवाले गुणों के आधार पर किया जाता है, और किसी विशेष कारण से पाये जानेवाले तथ्य के आधार पर नहीं।" अब देखिए कि यदि हम संसार के नाना देशों की भाषाओं के, उनकी भिन्न-भिन्न और अनेक प्रकार की बोलियों तथा स्थान-स्थान पर पाये जानेवाले रूपों पर विचार करें, तथा यह शोध करें कि कई सदियों के भीतर इनमें क्या-क्या महान् परिवर्तन

१. History of Inductive Sciences, खण्ड तृतीय, पृष्ठ ५३१।

हुए, तो हम देखेंगे कि भाषाओं के नाना वर्ग जिस मूल भाषा से निकले हैं उस एक मूल की ओर संकेत कर रहे हैं। तब हमें अवश्य ही मालूम होगा कि भाषाओं के भीतर ऐतिहासिक प्राण है और मनुष्य की इच्छा-शक्ति और समय के प्रभाव का इससे स्पष्ट पता चलता है। यह प्रभाव भले ही स्वयं भाषा के मूल तत्त्व पर दिखाई न दे, इसके रूप पर तो प्रत्यक्ष ही दिखाई देता है। लैटिन को ही ले लीजिए। इसके इस समय नाना रूप दक्षिणी यूरोप में दिखाई दे रहे हैं। इटालियन इसी की वंशज है। स्पेनिश, पुर्तगीज, प्रोबाँशाल (दक्षिणी फ्रांस की भाषा—अनु०), वल्लाखियन और रोमांश (स्विटजरलैंड के एक भाग तथा रूमानिया में बोली जानेवाली भाषाएँ—अनु०) भी लैटिन से ही निकली हैं। और सुनिए, लैटिन, ग्रीक, केल्टिक, ट्यूटानिक तथा स्लाव भाषाएँ प्राचीन भारत तथा ईरान की भाषाओं के साथ किसी और भी पुरानी भाषा से निकली होंगी, जिसे हम आजकल इंडो-यूरोपियन या आर्यभाषा परिवार कहते हैं। और लीजिए, यदि हम इस बात का पता चलायें कि इबरानी (यहूदियों की अति प्राचीन भाषा—अनु०), अरबी और सीरियन भाषा तथा इनके आसपास के देशों में फैली नाना बोलियों को भी इनमें सम्मिलित करें तो इस क्षेत्र में भी हमें पता चलेगा कि एक साधारण मूल स्रोत से इन सबका विकास हुआ है। यह मूल भाषा सेमिटिक जाति की आदिम भाषा थी। इन दो भाषा-वर्गों—आर्य और सेमिटिक के साथ हम तीसरे भाषा-वर्ग को लें, जिसे तूरानी कहना चाहिए और जिसका वर्ग अब भली भाँति प्रमाणित किया जा चुका है कि यह मध्य और उत्तर एशिया, तुंगुसिक,[१] मंगोलिया, टर्की समोयद और फिनलैण्ड वालों की भाषा है, तो वहाँ भी यही पता चलेगा कि इनका मूल स्रोत एक है। इन सबको मिलाकर यदि हम भाषाओं के इस महानद पर दृष्टि डालें, जो इन तीन महानदियों के मिलने से उत्पन्न हुआ है और सदियों से गर्जन-तर्जन करता हुआ बह रहा है, तो इतना तो स्पष्ट हो जाता है कि यद्यपि ये आदिम भाषाएँ सुदूर अतीत में विलीन हो जाती हैं, पर स्पष्ट रूप से संकेत करती हैं कि इन भाषा-वर्गों की प्रारंभिक अवस्था में तीन भिन्न-भिन्न मूल भाषाएँ रही

१. इक् (Ic) में समाप्त होनेवाली भाषाएँ एक-एक वर्ग हैं, जिनके भीतर कई-कई बोलियाँ आ गयी हैं। ये किसी एक भाषा के नाम नहीं हैं, यह स्मरण रखना चाहिए।

होंगी। यदि मान लिया जाय कि एक ही भाषा में नाना स्थानों में जो परिवर्तन होता है उसके आधार पर भाषा को भौतिक विज्ञानों के घेरे से बाहर करने का यथेष्ट कारण न भी समझा जाय, तो भी यह बहुत बड़ी कठिनाई रह जायगी कि इन नाना बोलियों में ऐतिहासिक काल के भीतर जो-जो परिवर्तन हुए हैं, और जिनका प्रभाव इन सभी बोलियों पर पड़ा है, उनका सामंजस्य भौतिक विज्ञानों से कैसे किया जाय ? प्रकृति का प्रत्येक भाग, चाहे वह खनिज पदार्थों, पेड़-पौधों तथा जीव-जन्तुओं से संबंधित क्यों न हो, अपने अस्तित्व के आदिकाल से लेकर चरमकाल तक एक ही प्रकार का रहता है। जब कि बहुत थोड़ी भाषाएँ ऐसी हैं जो केवल एक हजार साल बीत जाने पर ही इतनी बदल जाती हैं कि उनका पहचानना बहुत कठिन हो जाता है। आजकल की प्रचलित अँग्रेजी से राजा एल्फ्रेड के समय की भाषा इतनी अधिक भिन्न है कि हमें जब उसका अध्ययन करना होता है तो उसे ग्रीक और लैटिन की भाँति नये सिरे से आरंभ करना पड़ता है। हम मिल्टन, बेकन, शेक्सपियर और हुकर के ग्रन्थ आज भी पढ़ और समझ सकते हैं। वाइक्लिफ तथा चॉसर के ग्रंथों को भी किसी प्रकार पढ़ और समझ पाते हैं, किन्तु जब हम तेरहवीं सदी की अँग्रेजी की ओर जाते हैं तो हम इसका अर्थ अटकल से ही लगा पाते हैं और जब हम **औरमूलुम** तथा **लायामौन** से पहले की अँग्रेजी को देखते हैं तो उसका अर्थ समझने में हमारा अनुमान भी कुछ काम नहीं कर पाता। भाषा में यह ऐतिहासिक ध्वनि-परिवर्तन कभी-कभी बड़ी शीघ्रता से होने लगता है और कभी कुछ समय लेता है, किन्तु परिवर्तन का यह अपरिवर्तनशील नियम निरंतर अपना काम करता रहता है और यह नियम सब देशों की भाषाओं पर लागू है। ध्वनि-परिवर्तन या ध्वनि-विकार के नियम के कारण ही वेदों के महान् कवियों की परम सुंदर और ओजस्वी भाषा वर्तमान सिपाही की प्राणहीन और अशुद्ध बड़बड़ में परिणत हो गयी है। इस नियम के कारण ही जेन्द-अवेस्ता तथा बहिस्तून के शिलालेखों में खुदी हुई भाषाएँ फिरदौसी की वर्तमान ईरानी भाषा में बदल गयीं। इसके कारण वर्जिल की भाषा ने बदलकर दान्ते की भाषा का रूप धारण कर लिया है। पादरी **उलफिला** की भाषा **शार्लमान्य** की भाषा हो गयी, और यह **शार्लमान्य** की भाषा होते-होते **गोएटे** की भाषा बन गयी। हमारे पास यह विश्वास करने के प्रमाण हैं कि ये ध्वनि-परिवर्तन जंगली जातियों की बोलियों में अधिक वेग और शीघ्रता से होते हैं। इस विषय के पूर्ण प्रमाण उपस्थित करना कठिन होता है, क्योंकि इन भाषाओं में लिखित साहित्य का एकदम

अभाव है। किन्तु कुछ असभ्य जातियों में, जहाँ विद्वानों ने उनकी भाषा का सूक्ष्म निरीक्षण किया है और इस रसपूर्ण विषय में अपने निदान प्रकट किये हैं, उनमें यह पाया गया है कि साइबेरिया, अफ्रीका और स्याम की जंगली तथा साहित्यहीन जातियों में दो-तीन पीढ़ियों के भीतर बोलियाँ इतनी बदल जाती हैं कि उनका सारा ढाँचा ही दूसरा हो जाता है। इसके विपरीत बहुत उन्नत जातियों में उनकी भाषाएँ अधिकाधिक स्थिर रूप धारण करने लगती हैं और कभी-कभी ऐसा प्रतीत होने लगता है कि इनमें ध्वनि-परिवर्तन बंद होने लग गया है। जिस भाषा में उच्च और आदर्श साहित्य रचा गया हो और जिसके द्वारा यह उच्च और आदर्श भाषा नगर-नगर और गाँव-गाँव फैल गयी हो, उस भाषा में यह प्रायः असम्भव-सा लगता है कि और अधिक परिवर्तन की गुंजाइश हो। यह सब होने पर भी, रोम की भाषा, जो कई सदियों तक सारे सभ्य संसार की महारानी का आसन सुशोभित कर चुकी थी, रोमन बोलियों द्वारा पदच्युत कर दी गयी और प्राचीन ग्रीक भाषा का स्थान वर्तमान **रोमेइक** भाषा ने ग्रहण कर लिया। हम यह भी अपनी आँखों से देख रहे हैं कि मुद्रण कला के आविष्कार और बाइबिल तथा ईसाई धर्म की प्रार्थना-पुस्तकों एवं समाचारपत्रों के अत्यधिक प्रचार ने मानवीय वाणी के पल-पल में बदलनेवाले प्रवाह को रोकने के लिए जबरदस्त बाँध का काम किया है। इस पर भी बाइबिल के प्रामाणिक संस्करण की भाषा, जिसे हम सब लोग भली भाँति समझ पाते हैं,[१] वह इंग्लैंड की प्रचलित भाषा अब नहीं रह गयी है। **हूकर** के ग्रन्थ **स्क्रिप्चर एन्ड प्रेयर बुक ग्लासरी**[२] में वे अँग्रेजी शब्द जो १६११ ईसवी से

१. इस वर्ष सन् १९६१ ई० में सुसमाचार (New Testament) का आधुनिकतम अंग्रेजी में अनुवाद कर दिया गया है, जिससे प्रायः कुछ शतियों पूर्व की भाषा निकम्मी मानी जाने लगी और अब वह केवल तुलना के काम की रह गयी। (अनु०)

२. G. P. Marsh, *Lectures on the English Language*, New York, १८६०, पृष्ठ २६३ और ६३०। इन भाषणों में बड़ी सतर्कतापूर्वक की गयी शोध का फल बताया गया है और ये भाषण बहुत ही मूल्यवान् निरीक्षण-परीक्षण से भरे हुए हैं। इधर ये Dr. Smith के द्वारा Handbook of the English Language शीर्षक से प्रकाशित हुए हैं। इसमें डॉ० स्मिथ ने बहुत-सी ऐसी बातें छोड़ दी हैं जो अंग्रेजों के काम की नहीं थीं तथा कुछ काम की बातें जोड़ भी दी हैं।

अब तक की अवधि के भीतर प्रचलन से उठ गये हैं, या जिनका अर्थ अब समझ में नहीं आता, गिनाये गये हैं, उनकी संख्या ३८८ है। इसका अर्थ यह हुआ कि बाइबिल के अंग्रेजी शब्दों का १५वाँ हिस्सा इस अवधि के भीतर बदल गया है। हम अपनी आँखों के सामने यह भी देखते जा रहे हैं कि अन्य कई छोटे-छोटे बदलाव, जैसे ध्वनिबल और अर्थ-परिवर्तन, नये शब्दों का ग्रहण, पुराने शब्दों का त्याग आदि इस समय भी हो रहे हैं। **रौजर्स**[1] ने कहा है कि **काण्टेम्प्लेट** (Contemplate) शब्द बहुत ही बुरा है, किन्तु **बैल्कनी** (Bálcony) शब्द मेरे कान में पड़ते ही मुझे उल्टी आने लगती है। आजकल यह मामूली बात है, **काण्टेम्प्लेट** ((Contemplate) छपा देखने या सुनने से किसी को नाम मात्र भी बुरा नहीं लगता। और बैल्कनी (Bálcony) शब्द बैल्कनी नामक बरामदे के कारण अधिक फैशनेबुल हो गया है। **रूम** (Roome), **चेंनी** (Chaney), **लेईलौक** (Layloc) और **गोल्ड** (Goold) आदि शब्द हाल में ही अंग्रेजी से भगा दिये गये हैं, और इनके स्थान पर **रोम** (Rome), **चाइना** (China), **लाइलैक** (Lilac) और **गोल्ड** (Gold) धड़ल्ले से चलने लगे हैं और कुछ पुराने ढंग के अति शिष्टाचारी सज्जन आज भी Obliged (ओब्लाइज़्ड) के स्थान पर Obleeged (ओब्लीज्ड) का प्रयोग करते हैं। जल-प्रपात के अर्थ में Force (फोर्स)[2] शब्द और चट्टानी करार के अर्थ में Gill (गिल) शब्द वर्ड्सवर्थ के समय से पहले व्याकरण-सम्मत तथा शिष्ट अंग्रेजी में काम में नहीं आते थे। यद्यपि Handbook (हैण्डबुक)[3] पुराना ऐंग्लो-सैक्सन शब्द है, पर इधर थोड़े दिनों से इसका प्रयोग Manual (मैनुअल) शब्द के स्थान पर होने लगा है। कई नये शब्द और भी चल पड़े हैं, जैसे Cabriolet (काब्रीओले) के स्थान पर इसका संक्षिप्त रूप Cab (कैब), Omnibus (ओमनीबस) के स्थान पर छोटा रूप Buss और To Shunt क्रिया ग्राम्य एवं साहित्यिक प्रयोग के बीच अधर में लटक रही है। बाइबिल के प्रामाणिक संस्करण के प्रकाशन के बाद व्याकरण के रूपों में जो-जो परिवर्तन हुए हैं, वे संख्या में यद्यपि बहुत कम

१. Marsh, पृष्ठ ५३२, नोट।
२. Marsh, पृष्ठ ५८९।
३. Sir J. Stöddart, Glossology, पृष्ठ ६०।

हैं तो भी यहाँ पर कुछ उनमें से उद्धृत किये जाते हैं। अन्यपुरुष एकवचन के अंत में अंग्रेजी में th (थ्) अब रह ही नहीं गया है; इसके स्थान पर सर्वत्र S (स्) लगा दिया जाता है। अब कोई नहीं कहता He liveth (ही लिवेथ), किन्तु सभी He lives (ही लिव्स) बोलते हैं। यही ,व्याकरण-सम्मत माना जाता है। कई अनियमित अपूर्ण-भूत कालिक क्रियापद और कृदंत-रूप (Participles) हमारी अँग्रेज़ी में नये रूप में दिखाई देते हैं। अब He spake (ही स्पेक) और He drave (ही ड्रेव) के रूप उड़ गये हैं; इनके स्थान पर हम लोग He spoke (ही स्पोक) और He drove (ही ड्रोव) बोलते हैं। पुराने Holpen (हौल्पन) शब्द के स्थान पर अब हम Helped (हैल्प्ड) कहते हैं। Holden (हौल्डन) की जगह Held (हैल्ड) चलता है और Shapen (शेपेन) के स्थान पर अब Shaped (शेप्ड)[१] का बोलबाला है। वर्तमान अँग्रेज़ी में ye (यी, कर्ताकारक) और you (यू, अन्य शेष कारक) का भेद लुप्त हो गया है। ye पुरानी अँग्रेज़ी में कर्ता कारक के लिए सुरक्षित था और you अन्य कारकों के लिए, यह भेद अब रह ही नहीं गया है। और तमाशा देखिए कि सत्रहवीं सदी के आरम्भ से सम्बन्ध-कारक सर्वनाम Its (इट्स) हमारी भाषा में कूद पड़ा है। यह शब्द बाइबिल में मिलता ही नहीं और यद्यपि शेक्सपियर ने तीन या चार स्थानों पर इसका व्यवहार किया है, पर बेन जानसन ने अपने English Grammar[१] (अँग्रेज़ी भाषा के व्याकरण) में इसे स्वीकार ही नहीं किया है।

इस कारण भौतिक विज्ञान के पक्षपाती यह दलील देते हैं कि भाषा के इस प्रकार प्रकृति के सभी प्रकारों की उपज से भिन्न होने और ऐतिहासिक परिवर्तनों के अधीन होने के कारण इसका विवेचन भौतिक विज्ञान की भाँति नहीं किया जा सकता, क्योंकि भौतिक विज्ञानों का विषय स्वयं प्रकृति और प्रकृति से उत्पन्न पदार्थों पर आधारित है।

इस आपत्ति में बहुत कुछ आभास ऐसा मिलता है कि यह युक्ति और तर्कसंगत है; किन्तु इसकी हम सावधानी से जाँच करें तो हमें पता चलेगा कि यह सम्मति पूर्णतया भ्रमपूर्ण शब्दों के व्यवहार के कारण व्यक्त की जाती है। हमें

१. Trench, *English Past and Present,* **पृष्ठ ११४;** Marsh, **पृष्ठ ३९७।**

ऐतिहासिक परिवर्तन और प्राकृतिक विकास में भेद करना होगा। कला, विज्ञान, दर्शन और धर्म, सबका ही इतिहास पाया जाता है; भाषा या प्रकृति द्वारा उत्पन्न कोई अन्य पदार्थ विकास-सिद्धान्त के अनुसार ही आगे बढ़ते हैं।

सबसे पहले यह विचार कीजिए कि यद्यपि भाषा में निरंतर परिवर्तन चलता रहता है, पर मनुष्य की शक्ति के अधीन नहीं है कि वह भाषा की सृष्टि करे या इसकी उपज में बाधा डाले। यदि हम मानें कि हम भाषा की सृष्टि कर सकते हैं या उसके रास्ते में रोड़े अटकाने की शक्ति रखते हैं, तो हम ऐसे भी विचार रख सकेंगे कि हम शरीर में रक्त संचार के नियम को भी बदल सकते हैं, या हम पहाड़ों की ऊँचाई एक इंच और बढ़ा सकते हैं। भाषा के नियमों को बदलना ऐसा ही है। अपनी मर्जी के अनुसार किसी भाषा में नये शब्दों का आविष्कार भी ऐसा ही है।[1] मनुष्य प्रकृति का राजा उसी हालत में बन सकता है, जब वह प्रकृति के नियमों से भली भाँति परिचित हो और उनको मानकर चले। कवि और दार्शनिक भाषा के सम्राट् तभी हो सकते हैं जब वे भाषा के नियमों को जानते हों और उन नियमों के अनुसार अपनी भाषा लिखते हों।[2]

जब सम्राट् टाइबीरिउस (Tiberius) ने अपने कथन में व्याकरण की कुछ भूल कर दी तो मार्सेल्लुस (Marcellus) ने इस भूल की ओर उसका ध्यान खींचा और इसके लिए उसे दोष दिया। उस समय टाइबीरिउस के दरबार में कॉपीटो (Capito) नाम का व्याकरण का एक विद्वान् बैठा हुआ था। उसने कहा कि बादशाह ने जो कुछ कहा है वह अच्छी लैटिन है। मान लो कि इस समय यह अच्छी लैटिन न हो, तो शीघ्र ही यह भाषा लोगों की जबान पर चढ़ जायगी और अच्छी लैटिन कहाने लगेगी। मार्सेल्लुस व्याकरण का महान् ज्ञाता था। वह व्याकरण की पूजा करता था। इस कारण उसके स्वभाव में मुसाहिबी न आ सकी। उसने तुरंत उत्तर दिया—'कॉपीटो झूठा है, क्योंकि, हे सम्राट्! तू आदमियों को रोम के नागरिक के अधिकार दे सकता है; लेकिन शब्दों के ऊपर

१. यह बात हमारे वर्तमान हिन्दी लेखकों को ध्यान में रखनी चाहिए। हिन्दी में इस विषय पर बहुत स्वच्छंदता दिखाई पड़ती है।—अनु०

२. यह विषय भी विशेष ध्यान देने योग्य है क्योंकि इस समय हिन्दी के लेखक भाषा-विज्ञान न जानते हुए भी भाषा पर अनाप-शनाप लिख जाते हैं। —अनु०

तेरा अनुशासन नहीं चलता।' एक इसी प्रकार की घटना जर्मन सम्राट् जीगिस् मुंट (Sigis Mund) के विषय में कही जाती है। वह एक समय कौस्टनित्स (Costnitz) ईसाई पादरियों की एक बहुत बड़ी सभा में अध्यक्षता कर रहा था। उस समय की प्रथा के अनुसार उसने लैटिन में भाषण दिया। उपस्थित पादरियों से उसने निवेदन किया कि वे हुस्साइट्स (Hussites)[१] सम्प्रदाय की जड़ उखाड़ फेंकें। उसके लैटिन शब्द ये थे—"Videte Patres, ut eradicetis Schismam Hussitarum.' इस पर एक पादरी भिक्षु उठ खड़ा हुआ कि सम्राट् का ध्यान उसकी भाषा की अशुद्धि की ओर खींचे। वह बीच सभा में चिल्ला उठा —'Serenissime Rex, Schisma est generis neutri.'[२] इस पर बादशाह ने अपने आवेश को दबाया और इस बड़बोले भिक्षु से पूछा—'तुम व्याकरण का यह नियम कैसे जानते हो?' इस पुराने चेकोस्लोवाकिया के अध्यापक ने उत्तर दिया—'यह नियम अलेक्जेण्डर गाल्लुस ने बताया है।' तब बादशाह बोला—'अब यह बताओ कि यह अलेक्जेण्डर गाल्लुस कौन है?' भिक्षु ने सीधा-सादा उत्तर दिया —'वह एक पादरी भिक्षु था।' इस पर जीगिस मुण्ट बोला—'अच्छा, वह भिक्षु था, तो मैं भी रोम का सम्राट् हूँ, और मेरा कुछ ऐसा विश्वास है कि मेरा शब्द उतना ही शुद्ध होना चाहिए जितना कि किसी पादरी भिक्षु का।' इस पर सब पादरी हँस पड़े, मानो कि वे सम्राट् की सराहना कर रहे हों; किन्तु यह सब तमाशा होने पर भी स्किज़्मा (Schisma) आज तक नपुंसक बना हुआ है और

१. हुस नामक एक पादरी ने चेकोस्लोवाकिया में ईसाई धर्म के एक नये रूप का प्रचार करना आरंभ किया था, जिसमें उसने बताया था कि बाइबिल की दृष्टि में मनुष्य समान हैं। इसलिए भूमि आदि पर राजा का ही नहीं सब मनुष्यों का अधिकार है ताकि वे अपना जीवन निर्वाह कर सकें।—अनु०

२. मेरे बहुत से आलोचकों ने उक्त पादरी के शब्दों में यह दोष पाया है कि उसने संबंधकारक विभक्ति में neutrius शब्द के स्थान पर neutri शब्द का प्रयोग किया है। इस विषय पर मेरा निवेदन है कि पाठक Priscianus, 1 vi. c. i तथा c. vii. को देखने की कृपा करें। मुझे ऐसा विश्वास है कि (generis neutrius) शब्द के प्रयोग का कोई उदाहरण प्राचीन लैटिन में नहीं मिलता, यद्यपि वर्तमान सम्पादक महोदय अनेक बार इसका प्रयोग करते हैं।

स्वयं सम्राट् के मुँह से निकलने पर भी इस शब्द का लिंग और लिंग का प्रत्यय जैसे का तैसा बना है।

यह मत कि मनुष्य द्वारा भाषा बदली जा सकती है और वह सुधारी जा सकती है, सर्वथा नया नहीं है। हम यह जानते ही हैं कि प्रोटागोरॉस (Protagoras), एक अति प्राचीन ग्रीक दार्शनिक ने अपने व्याकरण में लिंगों के लक्षणों के ऊपर अपने कुछ विशेष नियम बनाये और इन नियमों के अनुसार ही होमर के ग्रन्थ के पाठ में अशुद्धियाँ निकालीं, क्योंकि होमर के बहुत-से शब्द उसके नियमों के अनुसार नहीं लिखे गये थे। पर अन्य सब स्थलों की भाँति यहाँ भी उसका प्रयास फलहीन सिद्ध हुआ। अंग्रेज़ी मुहावरे में नाममात्र परिवर्तन का प्रयत्न कीजिए और आपको पता चलेगा कि यहाँ ऐसे प्रयास का सफल होना असम्भव ही है। एक शब्द लीजिए, सरसरी नजर डालने पर much और very के अर्थ में नाममात्र का अन्तर है, किन्तु आप कभी एक के स्थान पर दूसरा रखेंगे तो विद्वान् लोग भारी भूल मानेंगे। आप कह सकते हैं 'I am very happy', परन्तु आप 'I am much happy' कभी नहीं कह सकते। हाँ, आप शुद्ध अंग्रेज़ी में कह सकते हैं 'I am most happy', इसके विपरीत आप कह सकते हैं 'I am much misunderstood', लेकिन 'I am very misunderstood' अंग्रेज़ी मुहावरे के विरुद्ध है। जरा आगे बढ़िए, पश्चिमी रोमांस भाषाएँ ; स्पेनिश, पुर्तगीज और वल्लाखियन अपने **-तर** वाले रूप लैटिन शब्द **मगिस** (Magis) से बनाती हैं, जैसे—स्पेनिश मास-डुलचे (Mas dulce), पुर्तगीज मइस डोचे (Mais doce) और वल्लाखियन मई डुलचे (Mai dulce)। इसके विपरीत फ्रेंच, प्रोवांशाल और इटालियन भाषाएँ इस प्रयोजन के लिए केवल प्लुस (Plus) काम में लाती हैं, जैसे इटालियन पिउ डोल्चे (Più Dolce), प्रोवांशाल प्ल्यूडू (Plus dous), फ्रेंच प्ल्यूड (Plus doux)। यह सर्वथा असम्भव नहीं कहा जा सकता कि किसी समय Very और Much का अंतर मिट जाय और उनमें एकता आ जाय। इस समय Very विशेषणों के पहले लगाया जाता है और Much उस कृदंत रूप के आगे जो विशेषण का काम करता है, लगाया जाता है। 'Very pleased' और 'Very delighted' अमेरिकन प्रयोग हैं, जिनका प्रचलन अब हमारे देश में भी सर्वत्र पाया जाता है। किन्तु यदि उक्त परिवर्तन कभी होने लगेगा तो यह परिवर्तन किसी व्यक्ति की इच्छा से नहीं हो सकता, और न ही यह किसी वृहत् मानवसमूह के परस्पर में किये हुए राजीनामे से हो सकता है। उक्त शब्दों

के अर्थों के प्रयोग में ऐसा बदलाव व्याकरणकारों और साहित्यिक सभाओं के अनुशासनों और इच्छा के विरुद्ध भी प्रयोग में आयेगा। इस बात से यह स्पष्ट हो जाता है कि इतिहास और विकास के बीच में प्रमुख भेद क्या है ? सम्राट् समाज के नियम भले ही बदल दे, धर्म का स्वरूप दूसरा कर दे, कला के नियम अपने मन मुताबिक बनाये। यह उसकी मरजी पर है। कला को सम्पूर्णता के उच्चतम शिखर पर चढ़ाना एक पीढ़ी या कहिए एक व्यक्ति के हाथ में है। हो सकता है कि कोई व्यक्ति कला को बहुत गिरा दे, जिससे वह लुप्त ही हो जाय और उसके बाद कुछ समय में नयी प्रतिभा आ खड़ी हो, जो नवीन उत्साह के साथ उसे पुनर्जीवित कर दे। इन सब बातों में हम व्यक्तियों के जान-बूझकर किये हुए कार्यों का कौशल देखते हैं और यहाँ हम ऐतिहासिक क्षेत्र पर चलते-फिरते हैं। जब हम माइकेल एंजेलो या राफाएल की सर्जनशील कृतियों की अति प्राचीन रोम की दीवारों पर उभरी हुई चित्रकारी और प्रस्तरमूर्तियों से तुलना करते हैं, तो हम कला के इतिहास का चित्रण करते हैं। इस कार्य में हम दो युगों का, जिनके बीच में हजारों वर्षों का अंतर है, अपने वर्णन में मिलान करते हैं, और एक सदी के बाद दूसरी सदी में पैदा हुए तथा कला की परम्परा को आगे बढ़ानेवाले कलाकारों की तुलना भी करते हैं; किन्तु हमें उसमें निरंतर गतिशील और अनजान में हुए विकास की परम्परा नहीं मिलती, जो **प्लाउटुस** (Ploutus) की भाषा का **दाण्ते** (Dante) की भाषा से संबंध स्थापित करती है। वह प्रक्रिया, जिसके कारण भाषा का रूप स्थिर होता है और फिर वह रूप डगमगाने लगता है, इस प्रक्रिया की ये स्थितियाँ दो विपरीत उपादानों, अर्थात् नितान्त आवश्यकता और स्वाधीन इच्छाशक्ति के द्वारा आगे बढ़ती हैं। नये शब्दों का निर्माण करने एवं व्याकरण के नये रूप और नियम बनाने में यद्यपि एक व्यक्ति ही मुख्य निर्माणकर्ता के रूप में आज भले ही हमारे सामने आता हो, किन्तु यह समझ लेना चाहिए कि वह ऐसा व्यक्ति होता है जिसने अपना व्यक्तित्व अपने परिवार, कुल या जाति में खपा दिया हो, वह अकेला कुछ भी नहीं कर सकता। यद्यपि एक व्यक्ति भाषा के नये-नये शब्दों या रूपों का निर्माण करता हो, उसको अधिकतर यदि सर्वदा नहीं, मुख्य, प्रेरणा बिना पहले कुछ विचार किये, इतना ही नहीं, बल्कि अपने आप मिलती है। ऐसा व्यक्ति स्वयं शक्तिहीन है और उसके द्वारा समाज को जो लाभ प्राप्त होते दिखाई देते हैं, वे ऐसे नियमों पर आधारित होते हैं जो उसके नियंत्रण के बाहर होते हैं और उस समाज के सहयोग का फल होते

हैं जिसमें सारी जनता मिलकर एक श्रेणी, एक शरीर या एक सजीव समाज बनते हैं।

यद्यपि यह आसानी से सिद्ध किया जा सकता है, और हमने ऊपर इसे सिद्ध भी किया है कि भाषा को हम इच्छा के अनुसार बदल नहीं सकते या इसे अपनी मरजी के साँचे में नहीं ढाल सकते। कल्पनाशक्ति इस क्षेत्र में निकम्मी हो जाती है। स्वयं मनुष्य की प्रतिभा भी यहाँ विशेष काम नहीं करती। यह समझाना बहुत ही कठिन हो जाता है कि भाषा का विकास किन कारणों से होता है। **होरेस** के समय से यह आदत चल पड़ी है कि भाषा के विकास की तुलना वृक्षों के बढ़ने के ढंग से की जाती है। किन्तु किसी पदार्थ की किसी अन्य पदार्थ से तुलना करना धोखे की टट्टी है। अब बताइए कि हम वृक्ष के बढ़ने के ढंग के मूल कारणों के विषय में क्या जानते हैं और जिन पदार्थों को हम बिलकुल नहीं समझते उनकी ऐसे अन्य पदार्थों से तुलना करना कि जिन्हें हम और भी कम जानते हैं, उससे क्या फल निकलेगा? उदाहरणार्थ, कई विद्वान् क्रियाओं के अंतिम प्रत्ययों के विषय में बताते हैं कि वे मूल क्रिया से अंकुर की तरह उपजे हैं, मानो वे मूल के ही अंग हों।[1] ऐसी बातों के साथ वे किन विचारों का सम्बन्ध बताते हैं—इसका पता नहीं! यदि हमें भाषा की तुलना किसी वृक्ष के साथ करनी ही पड़े तो इस तुलना से एक ही बात निकलती है, और वह यह है कि न तो भाषा और न ही वृक्ष स्वयं अपने बल पर उपज सकते हैं और न बड़े हो सकते हैं। बिना मिट्टी, वायु और प्रकाश के वृक्ष का जीवन आगे नहीं बढ़ सकता और वह स्वतंत्र जीवन का उपभोग करते हुए अपना अस्तित्व नहीं रख सकता। वास्तव में हम यह कल्पना भी नहीं कर सकते कि इस प्रकार कोई पेड़ पैदा होकर बड़ा हो सकता है। भाषा के विषय में भी यही बात कही जा सकती है। भाषा का अस्तित्व बिना किसी आधार के नहीं रह सकता। इसके लिए भी उपजाऊ क्षेत्र चाहिए जिसमें यह पैदा हो और वह क्षेत्र मनुष्य की आत्मा या मन है। भाषा के विषय में यह कहना कि इसका स्वतंत्र अस्तित्व है, यह अपने ढंग से अपना जीवन बिताती है और समय के साथ प्रौढ़ावस्था को प्राप्त होती है, यह संतान उपजाती है और फिर मर कर लोप हो जाती है—यह विशुद्ध पुराणवाद है। यद्यपि इस विषय पर रूपकमय मुहावरों

१. Castelvetro, in Horne Tooke, **पृष्ठ ६२९, नोट।**

का प्रयोग लाचारीवश करना पड़ता है तो भी हमें इस पथ पर सावधानी से आगे बढ़ना चाहिए। इस समय हम जिस शोध में लगे हैं या जिस विषय पर विचार कर रहे हैं उसमें यह शंका भी रहती है कि जो शब्द हम अपने भाव व्यक्त करने के लिए प्रयोग करते हैं, कहीं हम उन्हीं के प्रभाव में न बह जायँ।

अब थोड़ा ध्यान दीजिए कि जिसे हम भाषा का विकास या उन्नति कहते हैं उसके भीतर दो प्रक्रियाएँ काम करती हैं और उनको हमें बड़ी सावधानी से अलग-अलग कर लेना चाहिए, यद्यपि कहीं-कहीं ये दोनों प्रक्रियाएँ एक साथ चल सकती हैं। इन दो प्रक्रियाओं को हम—

(१) **बोलियों का पुनर्जन्म** और

(२) **ध्वनि का विकार या अपभ्रंश** कह सकते हैं।

मैं दूसरी प्रक्रिया को पहले लूँगा, यद्यपि वास्तव में बोलियों के पुनर्जन्म की प्रक्रिया के बाद ध्वनि का विकार होने लगता है। इस समय मैं आप लोगों से निवेदन करूँगा कि आप यह मान लें कि भाषा के प्रत्येक शब्द का आदिम अवस्था में कोई अर्थ रहा होगा। चूँकि भाषा का हमारे हृदय में उठे भावों के अर्थ को व्यक्त करने के सिवा और कोई उद्देश्य नहीं हो सकता, इस कारण इससे एक मात्र निदान यही निकला, और यह निदान बहुत ही आवश्यक है कि अपने हृदय का अभिप्राय दूसरे पर प्रकट करने के लिए हमें उसके लिए उपयुक्त शब्दों की आवश्यकता रहेगी, अधिक या कम शब्दों की नहीं। इससे यह एक निदान और भी निकलता है कि यदि भाषा में एक विशेष अभिप्राय दूसरे व्यक्ति को जताने के लिए जितने शब्दों की आवश्यकता है उतने ही हों तो उसका कोई भी अंश हम अपने अभिप्राय को व्यर्थ या असफल किये बगैर नहीं बदल या सुधार सकते हैं। सचमुच में, कई भाषाओं में यह स्थिति उत्पन्न हो गयी है। उदाहरणार्थ चीनी भाषा को लीजिए, उसमें **दस** शब्द के लिए **'शि'** काम में लाया जाता है। **'शि'** में यदि हम नाम मात्र का परिवर्तन करें तो यह **दस** का अर्थ व्यक्त करने में असमर्थ रहेगा। यदि **'शि'** के स्थान पर हम **'त्सि'** उच्चारण करेंगे तो उसका अर्थ **सात** हो जायगा, **दस** नहीं। अब तर्क के लिए मान लीजिए कि हमें **दस** की संख्या का दूना अर्थात् बीस व्यक्त करना हो, तो हमें चीनी भाषा में **ए उंलइ** शब्द को काम में लाना पड़ेगा। इस **ए उंलइ** शब्द का अर्थ **दो** है, इसके अंत में **शि** रख दीजिए तो **एउंलईशिं** हो जायगा और इसका अर्थ होगा दस का दुगुना, यानी बीस। इस **एउंलईशिं** शब्द के

उच्चारण में भी वैसी ही सावधानी रखनी पड़ेगी जो कि **शि** शब्द के बारे में बतायी गयी है। आपने नाम मात्र भी उच्चारण बदला, एक अक्षर का भी उच्चारण कम किया या उसमें जोड़ा तो इसका अर्थ बीस नहीं रह जायगा। इसका कुछ अर्थ ही नहीं रहेगा। चीनी भाषा की भाँति जो और भाषाएँ एक अक्षर के शब्दोंवाली होती हैं उन सबकी ठीक यही दशा होती है। तिब्बत की भाषा में **'चु'** शब्द का अर्थ **दस** है, **'न्युइ'** का अर्थ **दो** है और **'न्युइ-चु'** का अर्थ बीस हो जाता है। बरमा की भाषा में **'शे'** शब्द का अर्थ **दस** है और **'न्हित्'** शब्द का अर्थ **दो** है, इस कारण **न्हित्-शे** का अर्थ **बीस** हो जाता है।

अब देखिए कि अंग्रेजी, गौथिक, ग्रीक, लैटिन या संस्कृत में ये संख्याएँ किस प्रकार लिखी जाती हैं। अंग्रेजी में हम टू-टेन (Two-ten) नहीं लिखते, न लैटिन में ही हम **डुओ-डेकेम** (duo-decem) कहते हैं और न संस्कृत में **बीस** के लिए **द्वि-दश** लिखा जाता है। हम इन भाषाओं में बीस का रूप इस प्रकार पाते हैं—[1]

संस्कृत	ग्रीक	लैटिन	अँग्रेज़ी
विंशति	एइकति	विगिन्ति	ट्वेण्टी
	(eikati)	(Viginti)	(Twenty)

अब थोड़े विचार के साथ देखिए कि संस्कृत, ग्रीक, लैटिन में जो शब्द हैं उनका मूल एक दिखाई देता है, और ये शब्द नाना भाषाओं में उसी मूल के बदले हुए रूप हैं। इसके विपरीत अँग्रेज़ी **ट्वेण्टी** नया रूप दिखाई देता है, यह एक प्रकार का समस्त पद—समास है, गौथिक में इसका रूप **त्वइ तिग्युस** (Twai tigjus, दो दहाइयाँ) है। एंग्लो-सैक्सन में इस शब्द का रूप **टुएण्टिग** (tuentig) है। यह टयूटानिक भाषासम्पत्ति से बना है; जैसा कि हम आगे देखेंगे, यह बोली के पुनर्जन्म के कारण बना है।

इस शब्द में दूसरी बात हम यह देखेंगे कि लैटिन **विगिन्ति** का प्रथम भाग **'वि'** तथा संस्कृत **विंशति** का **'वि'** एक ही संख्या बताते हैं। यह अक्षर 'द्वि' से घिसकर बना है। इसमें **'द्वि'** का दकार घिसकर **'वि'** रह गया है। भाषा

१. Bopp, *Comparative Grammar*, S. 320. Schleicher, *Deutche Sprache*, S. 233.

के इतिहास में यह कोई विशेष असाधारण घटना नहीं है, क्योंकि लैटिन **बिस्** (bis) जिसका अर्थ दुबारा या दुगुना है और जिसे आप संगीत-मंडलियों में बार बार सुनते हैं, उसका मूल शब्द **द्विस** है, जिसका उच्चारण अँग्रेज़ी में **ट्वाइस** ((Twice) मिलता है और ग्रीक में इसे **दिस्** कहते हैं। यह **दिस्** लैटिन में एक उपसर्ग होता है और इसका अर्थ **दो भाग करना** है, उदाहरणार्थ, **डिस्कशन** ((discussion)) शब्द लीजिए। इसका आदिम अर्थ **फाड़कर दो भाग करना** है। यह शब्द **पर्कशन** (percussion) से बिलकुल भिन्न है, जिसका अर्थ होता है **पूर्णतया फाड़ डालना**। **डिस्कशन**, सचमुच में, **अखरोट को तोड़ना** है ताकि हम उसके भीतर की गिरी निकाल सकें। अब देखिए कि यह वही **द्वि या वि** शब्द है जो लैटिन **वि-गिन्ति** 'बीस' शब्द के आदि में लगाया गया है। संस्कृत **विंशति** में भी यही **वि** शब्द जुड़ा हुआ है।

और लीजिए, इसी प्रकार यह भी प्रमाणित किया जा सकता है कि **वि-गिन्ति** का दूसरा अंश अर्थात् **गिन्ति दस** के लिए व्यवहृत आदिम आर्य शब्द का एक विकृत रूप है। संस्कृत में टेन (ten) के लिए **दशन्** शब्द आता है, इससे **दशति** शब्द बना है, जिसका अर्थ **दसगुना** या **दहाई** है। यह **द'शति 'द'** के घिसने से **'शति'** रह गया, जिस कारण से इस **शति** के पहले **द्वि** के स्थान पर **वि** जोड़ने से संस्कृत में **वि'शति** या **विंशति 'बीस'** रूप बन गया। लैटिन शब्द **विगिन्ति** या ग्रीक शब्द **एइकति** इसी प्राक्रिया से उत्पन्न हुए या बने हैं। १

अब इस महान् अंतर पर ध्यान दीजिए—मेरा कहने का अभिप्राय यह नहीं है कि इसकी ध्वनि पर ध्यान दीजिए, वरन् इसके अक्षरों पर ध्यान दीज़िए—कि ऐसे दो शब्दों के बीच, जैसे कि चीनी **एर्'लइशि दो-दस या बीस** और संस्कृत, ग्रीक तथा लैटिन में 'दो' और 'दस' या 'बीस' के स्थान पर आये हुए कटे-छँटे और घिसे रूपों में जो पूरे शब्दों के अवशेष आये हैं। चीनी भाषा के शब्द संख्या को ठीक व्यक्त करते हैं, उनमें न तो आवश्यकता से अधिक कुछ जुड़ा है और न आवश्यकता से कुछ कम है। यह **एर्'ल्इशि** शब्द अपना अर्थ स्वयं बता देता है, और इस पर टीका टिप्पणी करने की कोई जरूरत नहीं। इसके विपरीत हम देखते हैं कि संस्कृत में **विंशति** शब्द के पहले और दूसरे, दोनों अंश आदिम अवस्था में जिस रूप में थे, बोलनेवालों के मुख में धीमे-धीमे घिसकर उनके अधूरे अवशेष रह गये हैं। इसमें वास्तव में आदिम अक्षरों के घिसे तथा परिवर्तित रूप और ध्वनियाँ रह गयी हैं जिनका आदिम रूप हम बाल की खाल निकालने के बाद या कहिए कि **अणुवीक्षण**

यंत्र द्वारा उसके कण-कण का विश्लेषण करने पर समझ पाते हैं। यहाँ आपके सामने एक ऐसा उदाहरण है जो स्पष्ट रूप में बताता है कि **ध्वनि-परिवर्तन** या **ध्वनि-विकार** किसे कहते हैं; और आप लोग समझ जायँगे कि इस प्रक्रिया में किस प्रकार केवल शब्द की आकृति ही नहीं, बल्कि भाषा की सारी प्रकृति या ढाँचे का लोप हो जाता है। किसी भाषा में जैसे ही ध्वनि-विकार पैदा होने लगता है तो उस भाषा का अति महत्त्वपूर्ण गुण, अर्थात् शब्द के प्रत्येक पद का अपना-अपना अर्थ स्पष्ट करने का जो गुण होना चाहिए, वह लुप्त हो जाता है। जो आर्य जाति संस्कृत बोलती थी वह अपनी बोली में घिस-मँजकर आये हुए शब्द **'विंशति'** को देखकर यह न समझ पायी कि इस शब्द का अर्थ **'दुगुना-दस'** था। आज का फ्रेंच जाति का व्यक्ति यह नहीं जानता कि **'वेंत'** (vingt) के भीतर deux **(ड्यूस)** 'दो' और dix **(दि)** 'दस' सम्मिलित हैं। जैसे ही किसी भाषा में ध्वनि-परिवर्तन के आक्रमण होने लगते हैं, उसकी स्थिति एकदम दूसरी हो जाती है। उन शब्दों या शब्द के अंशों का जीवन ठिठुरने और मरने लगता है, जो ध्वनि परिवर्तन के कारण दूसरे रूप में हमारे सामने आते हैं। ध्वनि-परिवर्तन होते ही केवल इन घिसे रूपों के आदिम अर्थ ही अस्पष्ट नहीं होते बल्कि इन शब्दों की रक्षा बनावटी रूप में अथवा परम्परा के बलबूते पर की जाती है; और इससे भी अधिक महत्त्व की बात यह है कि ध्वनि परिवर्तन होने के बाद इस भेद को जीवित रखना पड़ता है कि शब्दों में सारपूर्ण या आदिम अवस्था के शब्द कौन हैं और उन शब्दों में समाज में चला हुआ या व्याकरण का रूप कौन है।

अब हम एक दूसरा उदाहरण लेंगे, जिससे यह स्पष्ट पता चल जायगा कि ध्वनि के विकार के कारण किस प्रकार नये-नये व्याकरण के रूप किसी बोली या भाषा में पहले-पहल आने लगते हैं। हमें 'बीस' शब्द को 'दस' के दुगुने रूप या दस के बहुवचन के रूप में देखने का अभ्यास नहीं है। प्रश्न यह उठता है कि पहले-पहल बहुवचन किस प्रकार बना। चीनी भाषा ने, उसमें ध्वनि-परिवर्तन के कारण जो विकार आता है, उसे न आने देने के लिए आदि से ही नाना उपाय बनाये। इस भाषा में यह रूप अति न्यायानुकूल और उचित रीति से बनता है। अब देखिए कि चीनी में मनुष्य के लिए **'जिन'** शब्द का प्रयोग होता है, **'किअइ'** शब्द का अर्थ सम्पूर्ण या सम्पूर्णता है। **'जिन'** शब्द में **'किअइ'** जोड़ दीजिए, तो **'जिन-किअइ'** हो जायगा, और यह मनुष्य शब्द का बहुवचन बन गया। चीनी में और भी बहुत-से शब्द हैं जो इस प्रकार आगे या पीछे जुड़कर एकवचन को बहुवचन कर देते हैं।

'पेइ' शब्द को ले लीजिए, इसका अर्थ वर्ग, श्रेणी या जाति होता है। इस भाषा में **'इ'** का अर्थ 'परदेसी' है। **'इ'** में **'पेइ'** जोड़ दीजिए तो **'इ-पेइ'** का अर्थ 'परदेसी लोग' हो जायगा। अंग्रेजी भाषा में भी इस प्रकार के बहुवचन के रूप मिलते हैं, पर हम उन्हें व्याकरण-सम्मत नहीं समझते। Mankind शब्द को देखिए, यह ठीक **'इ-पेइ'** की तरह ही बना है। **'इ-पेइ'** का अर्थ होता है Stranger-kind (परदेसी जाति); Christendom का अर्थ 'सब ईसाई लोग' है, और Clergy (सभी पादरी) लैटिन बहुवचनात्मक शब्द 'Clerici' का रूपान्तर है। चीनी के समान अन्य भाषाओं में भी यही प्रक्रिया चलती है। तिब्बती भाषा में भी एकवचन का बहुवचन बनाने के लिए 'कुन' (सब) और **'त्सोग्स'** (t'sogs) (समूह)[१] शब्द एकवचन के रूप में जोड़ दिये जाते हैं। किसी-किसी मंगोलियन भाषा में एकवचन का बहुवचन बनाने के लिए **'न'** और **'स'** शब्द जोड़ दिये जाते हैं। और अब तमाशा देखिए कि जब तक ये शब्द समझे जायँगे और समाज में प्रचलित रहेंगे, तब तक इनमें कभी भी ध्वनि-विकार नहीं आ सकता; हाँ, जब कभी इन भाषाओं के बोलनेवाले लोगों की बुद्धि में भ्रम पैदा होने की नाम मात्र भी संभावना रहेगी तो ध्वनि-विकार आ खड़ा होगा। और जब ध्वनि-विकार आरंभ हो गया तो शब्दों में से नाना अक्षरों का ध्वंस होने लगेगा और उनका लोप हो जायगा। जिन-जिन शब्दों में ध्वनि-विकार अपना काम करता है उनका अस्तित्व ध्वनि-विकार आने के बाद बनावटी हो जाता है और वे शब्द आगे रूढ़ि-परम्परा से चलते हैं। तब उन भाषाओं के व्याकरणकार इनके रूपों को प्रत्ययों का आविष्कार करके समझाने लगते हैं।

यदि मैं संस्कृत, ग्रीक और लैटिन के व्याकरणों के प्रत्ययों का विश्लेषण आरम्भ करने लगूँ तो मुझे यह आशंका होने लगती है कि इसमें आपका बहुत-सा बहुमूल्य समय लग जायगा। किन्तु ऐसा करने से आप समझ लेते कि ये प्रत्यय स्वतंत्र शब्दों से उत्पन्न हुए हैं और ये स्वतंत्र शब्द भाषा का प्रयोग करते-करते उसमें जो निरंतर टूट-फूट होती है उससे क्षत-विक्षत हुए शब्द हैं। ध्वनि-विकार के सिद्धान्त को, जिससे व्याकरण के प्रत्ययों के निर्माण को प्रोत्साहन मिलता है,

१. Foucaux, *Grammaire Tibetaine*, **पृष्ठ २७ तथा उसकी भूमिका** p. X.

समझाने के लिए हम अपनी परिचित भाषाओं की ओर देखें। अब हम फ्रेंच भाषा के क्रियाविशेषण शब्दों को लें। फ्रेंच व्याकरणकार[१] हमें बताते हैं कि किसी शब्द का क्रियाविशेषण का रूप बनाने के लिए हमें शब्द के अंत में 'Ment' (माँ) प्रत्यय जोड़ना चाहिए। इस प्रकार Bon (बौं) 'अच्छा या सुंदर का क्रियाविशेषण का रूप बनाने के लिए हमें 'Bonnement' (बौन-माँ) 'अच्छे प्रकार या सुंदर ढंग से' लिखना होगा। 'Vrai' (व्रै) 'सत्य' का क्रियाविशेषण बनाने के लिए हमें 'Vraiment' (व्रैमाँ) 'सचमुच में' रूप लिखना या बोलना होगा। अब देखिए कि फ्रेंच भाषा लैटिन से निकली है और लैटिन में उक्त प्रत्यय नहीं है। किन्तु हम लैटिन में[२] 'bona mente' (बोना मेण्टे) की भाँति के शब्द पाते हैं। 'bona mente' का अर्थ है 'अच्छी श्रद्धा या पूर्ण श्रद्धा।' **ओविड** के ग्रन्थ में हम पढ़ते हैं 'Insistam forti mente' (इंसिस्तम फौर्ति मेन्ते) "मैं अपने पूरे मन या पूरी इच्छाशक्ति से अनुरोध करूँगा" अथवा "मैं यह बात जोर से कहूँगा।" फ्रेंच भाषा में 'J' insisterai fortement' (जांसिस्तरै फुर्तमां) "मैं जोर के साथ अनुरोध करूँगा" लैटिन भाषा का घिस-मँजकर यह रूप हो गया है। इस कारण, लैटिन की वृद्धि या उन्नति के साथ-साथ अथवा लैटिन का फ्रेंच भाषा में जब रूपान्तर या ध्वनि-परिवर्तन हुआ तब यह साधारण घटना घटी--forti mente के समान प्रयोगों में अनपढ़ बोलनेवाले यह न समझे कि उक्त दोनों शब्द अलग-अलग हैं, उन्होंने इन्हें एक समझा और उच्चारण में भी बहुत भेद आ गया। यह mente शब्द mens 'मन' का अपादान कारक का रूप है। ध्वनि-परवर्तन से इसका ment रूप हो गया और उच्चारण **'मां'** होने लगा। अब यह केवल रूढ़ि रूप में ही रह गया और क्रियाविशेषण का प्रत्यय बन गया। इसका अर्थ यदि कहीं-कहीं फ्रेंच भाषा में **'मन से'** या पुरानी हिंदी का रूप **'मन तें'** लगता भी है तो फ्रेंच व्याकरणकार इसे क्रियाविशेषण का प्रत्यय ही मानते हैं और इसका **'मन से'** के अर्थ में प्रयोग वर्जित समझा जाता है। यदि हम फ्रेंच में कहें कि हथौड़ा lourdement (लूर्दमां) 'भार के साथ' पड़ रहा है तो यह कहते हुए हमें नाम मात्र की

270315

१. Fuchs, *Romanische Sprachen*, s. 355.

२. Quint., v. 10,52. Bonâ mente factum, ideo palam; malâ, ideo ex insīdiis.

009-H
B66

हिचक नहीं होती है कि हम लोहे के एक खण्ड को भारी मन का बना रहे हैं। यह बात शायद आप लोगों की समझ में न आयी हो। थोड़ा विचार कीजिए तो आप समझ लेंगे कि फ्रेंच के शब्द lourde (लूर्द) का अर्थ 'भारी' होता है और mente शब्द लैटिन **मन** का एक रूप है। यह अर्थ उक्त वाक्य लिखते या पढ़ते समय किसी फ्रेंच भाषा-भाषी के मन में आता ही नहीं। इटालियन लीजिए, उसमें भी mente का अर्थ क्रियाविशेषण के रूप में ही लिया जाता है। तो भी claramente (साफ मन से) की भाँति दो-चार शब्द ऐसे हैं, जिनमें mente का अर्थ अभी तक 'मन' बना हुआ है। इस पर ध्वनि-परिवर्तन का अभी तक कोई प्रभाव नहीं पड़ा है। स्पेनिश में कभी-कभी यह एक अलग शब्द के रूप में भी आता है, यद्यपि इस दशा में यह नहीं कहा जा सकता कि इसका अर्थ दूसरा भी हो सकता है। इस प्रकार 'Claramente, Concisamente yelegantemente' लिखने या बोलने से स्पेनिश में यह कहना अधिक सुन्दर समझा जाता है—'clara, concisa yelegante mente।' इससे स्पष्ट हो जाता है कि 'mente' का अर्थ स्पेनिश में भी 'मन से' नहीं, केवल 'से' रह गया है।

जिस सीमा तक एक भाषा का पूरा-पूरा रूप इस ध्वनि-परिवर्तन से बदल जाता है उसका अनुमान करना भी बहुत कठिन है। थोड़ा-सा ध्यान दीजिए कि फ्रेंच में 'vingt' शब्द में दो शब्द शामिल हैं—एक deux और दूसरा dix। फ्रेंच douze (डूज़) 'बारह' के भीतर लैटिन के दो शब्द हैं—decim (**देकिम**) 'दस' और duo (**डुओ**) 'दो'। लैटिन में बारह को **डुओ देकिम** कहते हैं। अब देखिए कि फ्रेंच में trente (त्रांत) 'तीस' का te (**त**) लैटिन में 'ginta' (**गिन्त**) था। लैटिन में 'तीस' के लिए triginta (त्रिगिन्त) होता है, और वह **गिन्त** संस्कृत शब्द **दश** या **दशति** (दस) से निकला है और उसका संक्षिप्त रूप है। इन शब्दों पर विचार करने से कि यह ध्वनि-विकार या ध्वनि-परिवर्तन का रोग कितने सुदूर अतीत-अतीत समय में फैल गया होगा; क्योंकि यह कभी का फ्रेंच में vingt (वेंत), स्पेनिश में veinte (वीन्ते) और इटालियन में venti (वेन्ती) हो गया था। ये रूपान्तर बताते हैं कि इन शब्दों से पहले लैटिन में जो viginti मिलता है, ग्रीक eiketi के साथ-साथ यह शब्द तथा संस्कृत **विंशति** शब्द स्पष्ट ही आभास देते हैं कि इनसे भी पहले कोई भाषा वर्तमान रही होगी जिससे '**बीस**' के लिए ये लैटिन, ग्रीक और संस्कृत शब्द ध्वनि-परिवर्तन द्वारा निकले होंगे, और जिसमें 'Viginti' से भी पहले एक अधिक आदिम रूप dui-

ginti (द्वि-गिन्ति) रहा होगा; और इससे भी पहले कभी दूसरा संयुक्त शब्द रहा होगा, जिसमें चीनी शब्द eul-shi (एउल-शी) की भाँति कोई अति स्पष्ट और दोनों पदों का अर्थ खोलनेवाला शब्द रहा होगा, जिसमें आर्य-भाषा के दो नाम **द्वि** (दो) और **दशति** (दस) रहे होंगे। इस ध्वनि-परिवर्तन का ध्वंसात्मक कार्य इतना भयंकर होता है कि कभी-कभी यह किसी शब्द के सारे के सारे शरीर को हजम कर जाता है। एक उदाहरण लीजिए, अँग्रेजी में sister (सिस्टर) 'बहन' शब्द, जो संस्कृत स्वसर्[1]=स्वसृ है, पहलवी और काकेशस के एक भाग में बोली जानेवाली भाषा औसेटिक में यह **छो** बन जाता है। संस्कृत में पुत्री को 'दुहितर्' कहते हैं। यह शब्द अंग्रेजी में daughter (डौटर) है, और यदि d (डी) को दन्त्य और उसमें आये हुए gh का 'घ' उच्चारण किया जाय तो daughter का उच्चारण **दौघतर** हो जायगा, जो **दुघितर** के निकट आ जायगा। यही शब्द चेकोस्लोवाकियन भाषा में dci (इसका उच्चारण tsi **त्सि** है)[2] हो गया है। कौन मनुष्य विश्वास करेगा कि अँग्रेजी tear (टियर) 'आँसू' और फ्रेंच शब्द larme (लार्म) एक ही मूल स्रोत के दो रूप हैं; फ्रेंच शब्द meme (मेम) लैटिन शब्द semetipsissimus (सेमेतिप्सिस्सिमुस) का रूपान्तर है और फ्रेंच शब्द aujourd' hui (ओजूर्द् उइ) 'आज' के भीतर लैटिन शब्द dies (दिएँस) 'दिवस' दो बार आया है?[3] आरमीनियन शब्द hayr (हइर्) के भीतर लैटिन शब्द pater (पतेर्) के अस्तित्व को कौन पहचान पायेगा? फ्रेंच père (पेअर, पैर) (मिलाइए प्राकृत भाषा का पिअर 'बाप') और लैटिन pater को पहचानने में हमें विशेष कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ता और

१. संस्कृत स्=ईरानी ह; इस कारण स्वसर्=ह्वहर। इसके रूप 'होहर, हार, हों' हो जाते हैं। जेन्द में यह शब्द क्ह्न्ह है जिसके कर्मकारक का रूप क्न्हरेम् है और ईरानी में इसका खाहर हो जाता है। Bopp, Comparative Grammar, para 35.

२. Schleicher, Beiträge, b. ii. p. 392 : **द्चि=दुग्ते—इसका सम्बन्ध कारक का रूप द्चेरे हो जाता है=दुग्तेरे।**

३. हुइ=होदिए (मिलाओ संस्कृत अद्य—अनु०)। इटालियन में यह शब्द अज्जि और अज्जिदि रूपों में मिलता है; जूर=दिउर्नुम् है जो दिएस् का रूपान्तर है।

चूँकि भली भाँति अध्ययन करने पर साफ ही हमारी दृष्टि के सामने आता है कि आरमीनियन शब्दों के आदि में आनेवाले बहुत-से 'ह' आर्य-भाषाओं के मूल 'प' के स्थान पर आते हैं [हेत=पेस, पेदिस (=पद, पाँव); हिंग=ग्रीक पेन्ते 'पाँच, पंच'; होउर्=ग्रीक pyre 'आग'] इसलिए हम यह समझ लेते हैं कि 'हइर्' कभी pater पतेर्=संस्कृत पितृ रहा होगा।[१]

हम बहुधा इन ध्वनि-परिवर्तनों को भाषा का विकास कहने लगते हैं, किन्तु मेरे विचार से यह अधिक उपयुक्त होता यदि हम ध्वनि-परिवर्तन की इस प्रक्रिया को ध्वनि-विकार कहते और हम इसे भाषा की एक दूसरी प्रक्रिया—जिसे हम 'बोलियाँ बनने की प्रक्रिया' कहेंगे तथा हम जिस पर अब विचार करने जा रहे हैं, एवं जैसा अभी आप देखेंगे यह भाषा की उत्तरोत्तर वृद्धि का कारण है—से अलग कर देते।

बोलियों के जन्म का ठीक-ठीक अर्थ समझने के लिए हमें पहले साफ-साफ यह समझ लेना होगा कि बोली का अर्थ क्या है? हम पहले बता चुके हैं कि भाषा नामक किसी पदार्थ का स्वतंत्र अस्तित्व कभी नहीं था। भाषा मनुष्य में रहती है, इसका अस्तित्व बोलने में है। उच्चारण करने पर प्रत्येक शब्द की, उस समय के लिए मृत्यु हो जाती है और उसका अर्थ समझ जाने पर उसकी आवश्यकता ही नहीं रह जाती। यह तो एक निरी आकस्मिक घटना है कि भाषा को लिपिबद्ध करने का ढंग भी मनुष्यों ने निकाला और लिपि, लिखित साहित्य का माध्यम बन गयी। हमारे इस उन्नत समय में भी अधिकतम भाषाओं में साहित्य की सृष्टि नहीं हुई है। मध्य एशिया, अफ्रीका, अमेरिका और पोलिनेशिया के निवासियों की बोलियाँ अभी प्राथमिक या प्राकृतिक दशा में ही रह गयी हैं। इनमें शब्द शीघ्रता से पैदा भी होते हैं और जल्दी मर भी जाते हैं, अर्थात् प्रयोग से उठ जाते हैं।

यदि हम वर्तमान साहित्यिक भाषाओं के नाना झंझटों से दूर रहकर मानवीय वाणी के विकास के भीतर का रहस्य देखना चाहें तो हमें इन लोगों की भाषा पर दृष्टि डालनी होगी। ग्रीस, रोम, भारत, इटली, फ्रांस, स्पेन के लिखित साहित्य के मुहावरे को हम भाषा कहना सीख गये हैं, पर वास्तव में ये भाषाएँ कृत्रिम या बनावटी हैं, ये भाषाएँ वाणी के विशुद्ध रूप नहीं हैं। भाषा का वास्तविक और

१. इस विषय पर मैक्समुलर की तूरानियन भाषाओं पर लिखित Letter to Chevalier Bunsen देखिए।

स्वाभाविक जीवन नाना बोलियों में मिलता है। भाषा के आदर्श अथवा साहित्यिक रूप या मुहावरे के कारण स्वाभाविक बोली पर सचमुच में बहुत जोर-जुल्म होता है। ऐसी उच्च साहित्यिक भाषाएँ, जैसी कि इटालियन और फ्रेंच हैं, प्रान्तों की नाना बोलियों की जड़ उखाड़ने का काम करती हैं, किन्तु वह दिन अभी बहुत दूर है जब कि इनकी नाना बोलियाँ समाप्त हो जायँगी। **शाम्पोलियों** ने हिसाब लगाया है कि फ्रांस की प्रसिद्ध बोलियाँ चौदह हैं।[१] इटालियन भाषा की प्रायः बीस बोलियों में साहित्य निर्मित हुआ है जिनका उल्लेख समाचारपत्रों में किया जा चुका है।[२] वर्तमान ग्रीक बोलियों[३] की संख्या कई विद्वान् सत्तर तक बताते हैं, यद्यपि इनमें से बहुत-सी बोलियाँ स्थानीय बोलियों के रूपान्तर हैं, तो भी **त्ज़ाकोनिक** (Tzaconic) की तरह की अनेक बोलियाँ प्रचलित साहित्यिक भाषा से उतना ही अंतर रखती हैं जितनी कि प्राचीन समय में **जोरिक** (Goric) से **एट्टिक** (Attic) भिन्न थी। **लेसबौस** (Lesbos) नामक द्वीप के गाँवों में, जिनमें एक दूसरे से दो-तीन घंटे की पैदल यात्रा में जाया जा सकता है, उनके नाना गाँवों में, बहुधा कुछ ऐसे विशेष शब्द पाये जाते हैं जो अन्य गाँवों में कहीं पाये नहीं जाते, और वहाँ के लोग नाना गाँवों में इन शब्दों में समान अक्षर होने पर भी, उच्चारण का रूप इतना बदल देते हैं कि शब्दों का पहचानना कठिन हो जाता है।[४] अब एक ऐसी भाषा लीजिए जो यद्यपि साहित्य से रहित तो नहीं है, किन्तु जो फ्रेंच या इटालियन भाषाओं की भाँति ऊँचे साहित्यकारों के प्रभाव में कम पड़ी है। इसमें हम तुरत ताड़ जायँगे कि बोलियों का विकास कितना व्यापक होता है। जर्मनी के उत्तर-पश्चिमी समुद्र तट पर **फ्रीजियन** (Friesian) नामक एक बोली बोली जाती है। इसका क्षेत्र शैल्द्त् (Scheldt) और जटलैण्ड (Jutland) के बीच तथा इस तट के निकटवर्ती द्वीप हैं। यह बोली यथेष्ट

१. Glossology, पृष्ठ ३३।

२. **देखो** Marsh, पृष्ठ ६७८; Sri John Stoddart's Glossology, पृ० ३।

३. Glossology पृष्ठ २९।

४. *Nea Pandora*, 1859, Nos. 227, 229; *Zecitschrift für vergleichende Sprachforschung*, *X* s. 190.

प्राचीन है और कम से कम दो हजार वर्ष से उक्त स्थानों में प्रचलित है[१] और इस बोली में बारहवीं सदी से साहित्य रचा गया है और आज भी मिलता है। यह छोटी-सी बोली भी नाना स्थानीय बोलियों में बँट गयी है। मैं **कोल** के यात्रा-विवरण से कुछ वाक्य उद्धृत करता हूँ। उसने लिखा है—"साधारण-साधारण पदार्थ भी जो यूरोप भर में एक ही नाम से सम्बोधित किये जाते हैं, नाना फ्रीज़ियन द्वीपों में इतने भिन्न नामों से बोले जाते हैं कि उनका पहचानना प्रायः असम्भव हो जाता है। अब एक उदाहरण लीजिए कि **आमरुम** (Amrum) द्वीप में **पिता** को **आत्य** (Aatj) नाम से सम्बोधित करते हैं; पास के ही **हाल्लिग्स** (Halligs) द्वीप में पिता को **बाबा या बाबे** कहते हैं; **स्युल्ट** (Sylt) द्वीप में, जो इनके बहुत ही निकट है, पिता को **फोदैर** या **फ़ार** (Vaar) कहते हैं, समुद्र के इधर दक्षिणवर्ती जर्मन भूमि में कई जिलों में पिता को **टैटे** (Täte) कहते हैं; फ़ोएर (Föhr) के पूर्वी भाग में पिता को **ओति** (Oti) या **ओइत्य** (Ohitj) कहते हैं। यद्यपि उक्त सब स्थान जर्मनी के दो-चार मील के भीतर ही हैं, तो भी ये शब्द इटालियन **पादरे** (Padre) और उस के अँग्रेजी रूपान्तर **फादर** में पायी जानेवाली भिन्नता से भी अन्तर का परिचय देते हैं। स्वयं उनके जिलों और छोटे-छोटे द्वीपों के नाम भी विभिन्न बोलियों में एकदम भिन्न हैं। **स्युल्ट** (Sylt) द्वीप के नाम का उच्चारण ये लोग **सोएल** (Söl), **सोल** (Sǒl) और **सैल** (Sal) करते हैं।" ये नाना फीजियन बोलियाँ इन बोलियों की शोध करनेवाले पण्डितों की समझ में भले ही कुछ-कुछ आ जायँ, किन्तु इनका समझना बहुत ही कठिन है, भले ही इन छोटे-छोटे जिलों और द्वीपों के रहनेवाले किसान ही इन्हें बोल और समझ सकते हैं जिनमें ये सदा से बोली जा रही हैं। इस कारण जब कभी किसी पुस्तक में साधारणतः **फीजियन भाषा** शब्द का प्रयोग किया जाता है और फीजियन भाषा के व्याकरणों में इस भाषा का वर्णन रहता है और नाना रूप दिये जाते हैं तो यह समझना पड़ता है कि व्याकरण में वर्णित फीजियन भाषा उक्त बोलियों का ही कोई रूप है, हाँ, इतना मानना पड़ेगा कि उक्त रूप उक्त व्याकरण के लेखक की समझ में भाषा की दृष्टि से सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है।

१. Grim, *Geschichte der Deutschen Sprache*, s. 668; Marsh, p. 379.

तथाकथित सभी साहित्यिक-भाषाओं के विषय में भी यही सिद्धान्त लागू होता है।

यह कल्पना करना भी भूल है कि सर्वथा और सर्वत्र बोलियाँ साहित्यिक भाषाओं के अपभ्रष्ट रूपान्तर हैं। स्वयं इंग्लैंड[1] में कई ग्रामीण बोलियों के रूप शेक्सपियर की भाषा से भी अधिक प्राचीन हैं और उनकी शब्द-सम्पत्ति की बहुलता कई पदार्थों के विषय में किसी युग के लेखकों द्वारा काम में लाये गये शब्दों से भी आगे बढ़ जाती है। बोलियाँ उच्च साहित्यिक भाषा को समृद्धिशाली बनाने के लिए शब्दभण्डार का काम देती हैं, ये साहित्यिक भाषाओं से निकली हुई नहरें नहीं हैं। चाहे जो हो, बोलियाँ भाषाओं के साथ-साथ बहनेवाली समानान्तर नदियाँ हैं, जो किसी भी भाषा को सुसंस्कृत करके उच्च साहित्यिक बनाकर उसे अस्थायी प्रधानता देने के बहुत पहले से स्वाभाविक रूप में चली आ रही हैं। भाषा तो बोली के संस्कृतीकरण का नाम है।

बोलियों की उत्पत्ति के विषय में जो मोटी-मोटी बातें **ग्रिम** ने बतायी हैं वे ध्वनि-विकार से उत्पन्न बोलियों पर लागू होती हैं। वह लिखता है[2]—"बोलियाँ दिन दूनी और रात चौगुनी गति से बढ़ती जाती हैं, और भाषा के इतिहास के जितने सुदूर अतीत की ओर हम देखें, उनकी संख्या उतनी ही कम दिखाई पड़ेगी, और उनके रूपों में उतनी ही अधिक अस्पष्टता भी दीखेगी; उनका सुनिश्चित रूप हम नहीं देख पाते। एक मूल भाषा से धीमे-धीमे बोलियों की बहुलता उत्पन्न होती है।" संस्कृत, ग्रीक, लैटिन और गौथिक भाषाओं से हमें जो ज्ञान मिला है, यदि हम उसके आधार पर बोलियों के उक्त सिद्धान्त निकालें तो ग्रिम का उक्त

१. कुछ लोग, जिन्हें यह सिखाया गया होगा कि डौर्सेट नामक स्थान की बोली लिखित अंग्रेजी भाषा के विकृत रूपों से निकली है, वे यह सुनने को तैयार नहीं हो सकते कि उक्त बोली एंग्लो-सैक्सन भाषा से पैदा हुई है और वह इसकी अन्य सन्तानों से केवल भिन्न ही नहीं है बल्कि उनसे अधिक परिशुद्ध और कुछ शब्दसम्पत्ति में इसकी उस बोली से भरी-पूरी और समृद्ध है जो राष्ट्रीय भाषा के प्रयोजन के लिए चुनी गयी है—Barnes, Poems in Dorset Dialect, **प्रस्तावना,** p. xiv.

२. *Geschichte der Deutschen Sprache*, s. 833.

निदान ठीक लगता है। भाषा के इतिहास में उक्त भाषाएँ बहुत ऊँचा स्थान रखती हैं, इसमें संदेह नहीं।

उक्त भाषाएँ अपने इतिहास के क्षेत्र में बड़े-बड़े राजाओं की भाँति हैं। किन्तु, जैसा मत आजकल के राजनीतिक इतिहास के पंडितों का होता है, इतिहास में केवल राजाओं के वंशों का ही विस्तृत वर्णन नहीं रहना चाहिए, जनता-सम्बन्धी नाना हलचलों को भी उसमें स्थान मिलना चाहिए। इसी प्रकार भाषा के इतिहास-कार को निम्न स्तर में और जनता द्वारा बोली जानेवाली भाषा की उन परतों को आँख से ओझल न करना चाहिए जिनसे ये बड़ी-बड़ी भाषाएं, जो भाषा के क्षेत्र में राजाओं और सम्राटों का पद रखती हैं, बनी हैं और जिन छोटी-छोटी बोलियों पर ही उनका आधार है।

इस स्थल पर एक बड़ी कठिनाई आ जाती है—बोलियों के इतिहास की खोज हम किस पद्धति से करें? भाषा के प्राचीन इतिहास का निर्माण करने के लिए हमें साहित्यिक बोलियों से ही उपकरण मिलते हैं। और देखा यह गया है कि प्राचीन लेखकों ने इन बोलियों के अस्तित्व का ही कहीं वर्णन नहीं किया है।

प्लिनी[१] ने लिखा है कि कोल्चिस (Colchis) देश में तीन सौ से अधिक भिन्न-भिन्न जातियाँ रहती थीं, और इन निवासियों के सम्पर्क में आने पर या इनसे व्यवहार करते समय उनकी बोलियाँ समझने के लिए रोमन लोग एक सौ तीस दुभाषियों से काम चलाते थे। संभवतः यह बहुत बढ़ा-चढ़ाकर लिखा गया हो, किन्तु **स्त्राबो**[२] ने इस विषय में जो कुछ लिखा है उसके कथन पर संदेह करने का कोई कारण नहीं है। उसने बताया है कि उक्त देश में सत्तर जातियाँ एक साथ रहती थीं। इस देश का नाम इस समय भी 'नाना भाषाओं का पर्वत' है। इन दिनों में आजकल जब कि ईसाई प्रचारक असभ्य और साहित्यहीन जातियों की भाषाओं का अध्ययन करने में मन से लगे हुए हैं, इस देश की सब भाषाओं की पूरी शोध वे भी नहीं कर पाये। वे एक भाषा की शोध करते हैं; जिसे वे मुख्य मान लेते हैं। इस मुख्य भाषा का अध्ययन और शोध वे अवश्य करते हैं और

१. Pliny, vi. 5; Hervas, *Catalogo*, i. 118.

२. **इस विषय पर प्लिनी का आधार तिमास्थेनीज है जिसके विषय में स्त्राबो जोरदार शब्दों में कहता है कि वह विश्वास योग्य नहीं है।**

वहाँ के असभ्यों को सुधारने के लिए उस बोली की पोथियों और पत्रों का वे उपयोग करते हैं। स्वयंसिद्ध है कि यह भाषा प्रमुखता प्राप्त कर लेती है और इसका ही साहित्यिक साम्राज्य फैल जाता है तथा अन्य असभ्य बोलियाँ जैसी की तैसी रह जाती हैं। इस पर भी यह तो कहना ही पड़ेगा कि असभ्य जातियों की जो-जो बोलियाँ हमें ज्ञात हैं उनकी शोध और ज्ञान का मुख्य या सम्पूर्ण श्रेय इन ईसाई धर्म-प्रचारकों को ही है। बड़ा ही अच्छा होता यदि इन ईसाई धर्म-प्रचारकों को प्रोत्साहन दिया जाता कि वे असभ्यों के जीवन में बोली के स्थान की जो सरस समस्या है उस पर अधिकाधिक प्रकाश डालते, क्योंकि इस काम को करने के साधन केवल उनके ही पास हैं और इसे केवल वे ही सम्पन्न कर सकते हैं। ये लोग इन असभ्य जातियों की भाषाओं को रूप देकर और उनकी लिपियाँ निर्मित करके इस माध्यम से उनमें ईसाई धर्म और सभ्यता का प्रचार कर रहे हैं। इन बोलियों को स्पष्ट करने और उन पर प्रकाश डालने का काम ये ही कर सकते हैं। **गाब्रिएल ज़ागार** (Gabriel Sagard), जिसे १६२६ ई० में **हूरौन** (Hurons) जातियों को ईसाई बनाने और उनमें सभ्यता का प्रचार करने के लिए भेजा गया था और जिसने अपनी इस यात्रा का वर्णन पेरिस में १६३१ ई० में '**हूरौन जातियों के देश की महान् यात्रा**' (Gand Voyage du Pays des Hurons) नामक ग्रन्थ में प्रकाशित किया, वह बताता है कि उत्तरी अमेरिका की इन जातियों के बीच शायद ही कोई गाँव ऐसा मिले कि जो एक अन्य गाँव की बोली बोलता हो, यानी वहाँ हर गाँव की बोली भिन्न है और दूसरे गाँव की बोली से नहीं मिलती। और तमाशा देखिए, एक गाँव के दो परिवार भी एक समान बोली नहीं बोलते। **ज़ागार** यह भी कहता है, और यह बड़ा महत्वपूर्ण तथ्य है, कि वहाँ की बोलियाँ दिन-दिन बदल रही हैं और मेरे देखते ही इतनी बदल गयीं कि पुरानी **हूरौन्** भाषा आजकल की बोलियों से सर्वथा भिन्न हो गयी है। इसके विपरीत **द्यु पौं सो** नामक पादरी का कहना है कि **हूरौन** तथा **इरोकोइस्** (Iroquois) जातियों की भाषाओं में नाम मात्र का भी परिवर्तन नहीं हुआ है। ये परस्पर विरोधी बातें ठीक समझ में नहीं आतीं।[1] जो ईसाई प्रचारक[2] मध्य अमेरिका की असभ्य जातियों

१. Du Poncean, **पृष्ठ ११०**।

२. **एस० एफ० वाल्डक ने अपने ग्रन्थ** *Lettre ā M. Jomard des Environs*

के बीच ईसाई मत का प्रचार करने गये, उन्होंने बहुत ही सावधानी के साथ उन सब शब्दों का एक कोश बनाया जो कठिन परिश्रम करने के बाद उनके हाथ लगे। ये पादरी जब दस बरस के बाद **हूरौन** और **इरोकोइस्** जातियों के बीच पहुँचे तो यह देखकर उनके आश्चर्य की कोई सीमा न रही कि उनका सारा कोश पुराना पड़ गया था और उसके शब्द अप्रचलित हो गये थे। पुराने सभी शब्द कब्र में धराशायी हो चुके और नये शब्द नयी फसल की तरह उनकी बोलचाल में लहलहाने लगे थे; और बाहर से देखने पर ये बोलियाँ सर्वथा परिवर्तित हो चुकी थीं।

जैस्विट ईसाई-धर्म प्रचारकों को इतना अधिक आश्चर्य किसी बात से नहीं हुआ जितना यह देखकर कि अमेरिका के आदिम निवासियों की भाषाओं की संख्या अनगिनती हो गयी है। किन्तु इससे उनकी सभ्यता की अति उच्च दशा का प्रमाण नहीं मिलता था, बल्कि इसके विपरीत यह पाया गया कि अमेरिका की नाना जातियों में शासन-व्यवस्था सदा चंचल रही, उन पर कभी लम्बी अवधि तक एक केन्द्रीय शासन न चल सका और उन्हें महान् राष्ट्रव्यापी साम्राज्य की स्थापना में कभी सफलता न मिली। पादरी **हैरवास** (Hervas), जिसने भाषा शास्त्र

de Palenquē Amèrique Centrale में लिखा है—'दस वर्ष पहले बहुत ही सतर्कता के साथ शब्दों का जो संग्रह बहुत लोगों से पूछ-पूछकर तैयार किया गया हो, वे शब्द फिर बोलचाल में ढूंढ़े नहीं मिलते....।' Archaeologia Americana, के खण्ड दो, पृष्ठ १६० पर लिखा है—'किन्तु भाषाओं की प्रवृत्ति कुछ इस तरह की है कि जो जंगली लोग खेती बारी नहीं करते और केवल शिकार करके अपनी गुजर करते हैं उनकी बोलियाँ बड़ी जल्दी एक-दूसरी से भिन्न होती जाती हैं, यहाँ तक कि आदिम काल में प्रयुक्त मूल शब्दों की बात तो जाने दीजिए, अमेरिका की उन मूल अमेरिकन इंडियन भाषाओं में जिनके विषय में यह भली भाँति ज्ञात है कि वे एक समान मूल स्रोत से निकली हैं, उनमें भी थोड़े समय में भारी अंतर पड़ने लगता है। यह अंतर एक जाति की यूरोपियन भाषाओं में जल्दी नहीं पड़ता; धीमे-धीमे क्रमविकास के बाद पड़ने लगता है। अब देखिए कि यद्यपि मिन्सि-जाति जो डेलावेयर जाति की एक शाखा है और डेलावेयर आदि अमेरिकनों की बगल में ही निवास करती है, बोली के अन्य शब्दों की बात तो अलग रही, उनकी कुछ संख्याओं के नामों में ही भेद पड़ गया था।

के अध्ययन में अपना जीवन बिता दिया, उसने अपने ग्रन्थ में अमेरिका की बोलियों का मिलान करके उनके भाषा-परिवारों[१] की संख्या घटाकर ग्यारह कर दी। उसने बताया कि दक्षिणी अमेरिका में चार भाषा-परिवार हैं और उत्तरी अमेरिका में सात; पर इन परिवारों का निर्धारण तभी संभव हो सकता था, जब जिस प्रकार हम आइसलैंड या सिंगल द्वीप की भाषाओं का उनके परिवार की भाषाओं से तुलना करके निर्धारण कर रहे हैं, उसी पद्धति पर किया जाता। व्यावहारिक दृष्टि और उद्देश्य से अमेरिका की सब बोलियाँ एक दूसरी से बिलकुल भिन्न हैं और वे लोग जो इन्हें बोलते हैं, एक दूसरे की बात एकदम नहीं समझ पाते।

जहाँ कहीं समझदार निरीक्षकों ने भिन्न-भिन्न जातियों की बोलियों के अत्यधिक संख्या में विकास की क्रमिक प्रगति का अध्ययन किया है, उन बोलियों के विषय में उन्होंने ऊपर वर्णित दशा ही पायी है। अब यदि हम अपनी दृष्टि बरमा की भाषा पर डालें तो हमें पता चलेगा कि बरमा की भाषा में लिखित साहित्य व्यापक और समृद्ध है, यह भाषा बरमा में एक दूसरे से बातचीत करने का माध्यम भी है। इतना ही नहीं, यह पेगू और अराकान में भी बोली और समझी जाती है। किन्तु इरावदी[२] नदी के इस प्रायद्वीप के पर्वतों की श्रेणियों में कई स्वतंत्र जातियों को सुरक्षापूर्ण शरण मिली है और ये लोग अपनी-अपनी स्वतंत्र बोलियाँ बोलते हैं। अब सुनिए कि कैप्टेन गौर्डन ने मणिपुर के आसपास के अंचलों में बारह भिन्न-भिन्न बोलियों का संग्रह किया है। वह कहता है—'इन बोलियों में से कुछ को केवल तीस या चालीस परिवारों के लोग ही बोलते हैं, और ये बोलियाँ अन्य बोलियों से इतनी भिन्न हैं कि एकदम पास में रहने वाले पड़ोसी भी इन्हें नहीं समझ पाते। उदार-हृदय और महान् ज्ञानी अमेरिकन ईसाई धर्मप्रचारक ब्राउन, जिसने संसार के उस कोने में सुसमाचार का प्रचार करने में अपने जीवन की आहुति दे दी, अपने ग्रन्थ में बताता है कि कुछ जातियाँ, जो अपना मूल स्थान छोड़कर किसी दूसरी घाटी में जाकर बस गयीं, दो या तीन पीढ़ियों के भीतर ही उनकी बोलियाँ इतनी बदल गयीं कि उनके पूर्वज उन्हें समझ ही नहीं सकते थे।[३]

१. Calalogo, i. 393.
२. Turanian Languages p. 114.
३. Turanian Languages p. 233.

एशिया के उत्तर में औस्तियाक जातियाँ, विद्वान् मेस्सर श्मिद्त के कथनानुसार, यद्यपि वास्तव में सर्वत्र एक ही भाषा बोलती हैं, तो भी उनकी छोटी-छोटी प्रत्येक जाति में अपने ऐसे शब्द और शब्दों के रूप आ गये हैं जो प्रत्येक जाति के अपने अपने हैं, दूसरी जातियाँ उन्हें समझतीं नहीं। इसका परिणाम यह है कि बारह-तेरह जर्मन किलोमीटर की दूरी पर रहनेवाली जातियाँ एक-दूसरी की बोली नहीं समझ पातीं और अति कठिनता से दूसरी जाति की बोली का अर्थ लगा पाती हैं। उत्तरी और मध्य एशिया[१] के नाना अंचलों की नाना बोलियों के शोधक पादरी **कास्त्रेन** हमें विश्वास दिलाते हैं कि कई मंगोलियन बोलियाँ अपने व्याकरण का रूप ही बदल रही हैं, और यह व्याकरण एकदम नवीन रूप में सामने आ रहा है और जब कि मंगोलियन लोगों की साहित्यिक भाषा में क्रिया के उत्तम, मध्यम और अन्य पुरुषों के प्रत्यय होते ही नहीं। किन्तु अब कई लेखक मंगोलियन भाषा के इस प्रधान लक्षण को साइबेरिया में न्यैर्त्यशिस्क (Njertschinsk) के निकटवर्ती अंचलों की **बुरीआत, तुंगुसिक** जातियों की बोलियों में संमिलित कर रहे हैं। यहाँ पर मैं एक और उद्धरण देता हूँ, जो **राबर्ट मोफ्फत** (Moffat) ने अपने 'दक्षिण अफ्रीका में ईसाई धर्म-प्रचारकों के कार्य-कलाप और प्रयास की झाँकियाँ' नामक ग्रंथ में दिया है। वह बताता है—'दक्षिण अफ्रीका की जंगली जातियों में भाषा की विशुद्धता और सामंजस्य उनकी सार्वजनिक सभाओं, उनके तिथि-त्यौहारों, उनके पूजा-पर्वों, उनके लोकगीतों तथा उनके परस्पर आचार-व्यवहार और बोलचाल के कारण वैसे ही बने रहते हैं; किन्तु मरुभूमि के अलग-अलग स्थानों में बिखरे हुए गाँववालों में इसका ढंग दूसरा है। वे सार्वजनिक सभाएँ नहीं करते, उन्हें लाचार होकर जंगली रास्तों में चलना पड़ता है और कभी कभी तो वे अपने निवास स्थान के गाँव से दूर-दूर तक जंगली रास्तों से होकर जाते हैं। ऐसे अवसरों पर यात्रियों के माँ-बाप और वे सब बंधु-बांधव और सम्बन्धी जो इस यात्रा का थोड़ा भी भार उठा सकते हैं, हफ्तों की यात्रा के लिए प्रस्थान कर देते हैं और अपने नन्हे-नन्हे बच्चों को दो या तीन दुर्बल और वृद्ध लोगों की देखरेख में छोड़ जाते हैं। यह नन्ही-नन्ही संतान, जिसमें कुछ ने अभी-अभी तुतलाना शुरू किया है और इसमें कुछ ऐसे बच्चे भी रहते हैं जिन्होंने वाक्य बनाना

१. Turanian Languages p. 30.

सीख लिया है, और कुछ धड़ल्ले से बातें करनेवाले भी होते हैं—ये सब एक साथ खेलते-कूदते और नाचते-गाते हैं, और यह कार्य दिन भर चलता रहता है। इस सम्मिश्रण का परिणाम यह होता है कि उनकी **बोली ही दूसरी हो जाती है।** अधिक बकवादी लड़के कम-समझ नन्हे-नन्हे बच्चों की तोतली बोली सीखने लगते हैं और इस प्रकार से समझ में न आनेवाली बच्चों की तोतली बोली का जो गड़बड़-झाला फैल जाता है उससे और इस रामखुदैया[1] से एक ऐसी बोली पैदा हो जाती है जिसमें बिना किसी नियम के नये-नये वर्णसंकर शब्द और मुहावरे पैदा हो जाते हैं और सब मिलकर बोली का रूप ग्रहण कर लेते हैं। इसका फल यह मिलता है कि **भाषा का सारा ढाँचा एक पीढ़ी के दरम्यान इतना बदल जाता है कि हर पीढ़ी में एक नयी ही भाषा बन जाती है जिसकी पुरानी भाषा से नाम मात्र की भी समता नहीं रहती।**

प्रकृति की आदिम अवस्था में भाषा का जीवन इस प्रकार चलता है और यह सब देखकर हमें यह निदान निकालने का अधिकार प्राप्त हो जाता है कि भाषा का विकास उसकी परिवर्तनशीलता में है और हम किसी भाषा को तभी जान पाते हैं जब उसकी पीठ पर जीन और मुँह में लगाम लगने पर उसका साहित्यिक रूप हमारे सामने आता है; अर्थात् हम भाषा का वही रूप देख पाते हैं जो साहित्य के जन्मने पर उसका हो जाता है। हो सकता है कि यह लिखित या आदर्श साहित्य न हो जिसमें कई बोलियों में से एक को बहुत प्रधानता दी जाती है और उसकी नाना विशेषताओं को विवादरहित मान्यता दी जाती है। सार्वजनिक सभाओं के भाषण, लोकगीत की सृष्टि, जाति के लिए नियम रचना, धार्मिक महत्त्व की भविष्यवाणियाँ आदि सभी साधन, जो किसी समाज में थोड़ी-बहुत व्यवस्था रखते हैं, न्यूनाधिक रूप में उसी प्रकार प्रभाव डालते हैं। इनके कारण भाषा की असंख्य बोलियों के प्रवाह की गतियों में अड़चनें आने लगती हैं। इन बोलियों में जिसे प्रमुखता देने पर उस भाषा का रूप मिला उसमें जो शब्द लिये गये उन्हें टिकाऊ-पन मिल गया। व्याकरण के रूपों का भी यही हाल हुआ और वे जनता में विशेष गौरव के साथ चलने लगे। भाषा पर बाहरी प्रभावों के कारण ऐसा होता है। बाहरी प्रभाव न पड़ने पर बोलियाँ, बोलियाँ ही रह जाती हैं और उनका अस्तित्व

१. ऐसी बोली जिससे खिचड़ी भाषा का बोध होता है।

अस्थायी तथा गौरवहीन हो जाता है। यद्यपि हम इस समय भाषा की उत्पत्ति की समस्या का समाधान करने के कार्य में यहाँ प्रवेश नहीं कर सकते, तो भी इतना तो हम साफ-साफ देखते हैं कि भाषा की उत्पत्ति भले ही किसी कारण से हुई हो, आरंभ में समाज की प्रवृत्ति ऐसी रही होगी कि इसके असीम प्रकार उसमें दिखाई देते होंगे। इस प्रवृत्ति के मार्ग में कई स्वाभाविक अड़चनें आयीं, जिन्होंने आरम्भ काल से ही जातीय और साहित्यिक भाषा के विकास का पथ प्रशस्त किया। गृह-स्वामी की भाषा सारे परिवार की भाषा बन गयी और सारे परिवार की भाषा संतानवृद्धि के साथ-साथ सारे कुल का भाषा बन गयी। उसी एक कुल में भिन्न-भिन्न परिवार अपने बीच में परिवार के सदस्यों के बीच अपने-अपने ध्वनि-उच्चारण और व्याकरण की विशेषताओं के अनुसार शब्दों के रूप और मुहावरे काम में लाते होंगे।[१] ये परिवार ऊपर लिखे गये कारणों से ऐसे नये और विचित्र शब्द जोड़ते होंगे, जिनमें से कुछ तो बड़े ही विचित्र और कल्पना का अजीब चमत्कार दिखानेवाले रहते होंगे कि उसी वंश के अन्य परिवारों में उन्हें समझना शायद ही सम्भव हो। इन शब्दों का प्रयोग करनेवाले परिवार, ऐसी सभाओं में, जहाँ सब मिलकर समाज के लिए हितकर चर्चा करते हों, अपने विशेष तथा परिवार के भीतर ही सीमित रूपों की विशेषताओं और परिवार या गोत्र के भीतर काम में आनेवाले शब्दों को बोलने में सकुचाते होंगे। किन्तु प्रत्येक गोत्र की सभाओं में इन मुहावरों और शब्दों का विशेष आदर होता होगा। अपने-अपने गोत्र के तम्बुओं में आग के चारों ओर बैठकर वंश या गोत्र की साधारण बोली को अधिक मान्यता और प्रेम का दिया जाना स्वाभाविक है। विशेष-विशेष पेशे या काम करनेवाली श्रेणियों में भी उनकी विशेष या विचित्र बोली का पैदा होना स्वाभाविक है। नौकर-चाकरों, सईसों, गड़रियों तथा सिपाहियों की विचित्र और निजी बोलियाँ जन्म लेती रहती हैं। यह देखा ही जाता है कि स्त्रियाँ गृहस्थी में अपने विशेष शब्दों का व्यवहार करती हैं और उठती हुई पीढ़ी के नवयुवक अपनी नयी जीवित बोली बोलने में देरी नहीं लगाते। स्वयं हम प्रौढ़ावस्था के लोग इस साहित्यिक युग में और भाषा का निर्माण करनेवाले उन अतीत के अपने

१. इसी कारण से हमारे वेदों में नयी नयी शाखाएँ और चरण पैदा हुए। इन शाखाओं और चरणों में अक्षरों का उच्चारण भिन्न-भिन्न था।—अनु०

पूर्वजों से हजारों वर्ष की इस दूरी में भी सार्वजनिक सभाओं में अथवा विद्वान् लोगों के बीच उस भाषा में बोलते हैं जिसका कि हम घर-गृहस्थी में प्रयोग करते हैं। वही परिस्थितियाँ, जो व्याकरण तथा भाषाशास्त्र के नियमों से बँधी एक कुल की बोली को उत्पन्न करती हैं, वही अवस्थाएँ अधिक व्यापक रूप में परिवारों की भाषाओं से एकदम भिन्न तथा स्वयं गोत्रों की भाषाओं से अलग इन गोत्रों से संगठित होनेवाली जातियों या नये उपनिवेशों की भाषाओं को जन्म देती हैं। जातीय भाषा के उत्पन्न होने से पहले परिवारों, कुलों, गाँवों, कसबों और जिलों में रहनेवाले लोग सैकड़ों बोलियाँ बोलते रहते हैं। यद्यपि सभ्यता की प्रगति और समाज की नाना व्यवस्थाओं के एक केन्द्र में एकत्र होने की प्रवृत्ति इन बोलियों की संख्या घटाने की ओर और इनके रूपों में एकत्व लाने की ओर रहती है, किन्तु इस पर भी स्वयं हमारे समय में इन बोलियों का सर्वनाश अभी तक न हो सका।

अब हम इसके उस विभाग पर विचार करेंगे जिसे भाषा का इतिहास कहा जाता है, किन्तु जिसे वास्तव में भाषा का 'प्राकृतिक विकास' कहा जाना चाहिए। इसके भीतर हम आसानी से यह देख पायेंगे कि इस विकास में दो सिद्धान्त, जिनकी परख ऊपर की जा चुकी है, काम करते हैं—**ध्वनि-विकार** और **बोलियों का जन्म या विकास**। अब हम छः रोमन भाषाओं को ले लें। प्रायः लोग इन्हें लैटिन की पुत्रियाँ कहा करते हैं। भाषाओं के क्षेत्र में माँ-बाप और बेटियों के नाम का प्रयोग करने में मुझे किसी प्रकार की आपत्ति मालूम नहीं होती; हाँ, यहाँ पर मैं इतना ही कहूँगा कि इस प्रकार के शब्द, जो देखने-भालने में अति स्पष्ट और सरल लगते हैं, उनसे अस्पष्ट और अर्थहीन दो-मानी विचारों को व्यक्त करने का काम नहीं लेना चाहिए। अब देखिए कि यदि हम इटालियन को लैटिन की पुत्री कहें तो इसका अर्थ यह नहीं है कि हमने इटालियन के संबंध में कोई महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त निकाल लिया। इटालियन भाषा का निर्माण करने में एक भी पदार्थ की मौलिक रूप में सृष्टि नहीं की गयी, अर्थात् इटालियन भाषा में एक भी नयी बात नहीं जोड़ी गयी। इटालियन लैटिन भाषा का ही एक रूप है, जिसमें लैटिन का रूपान्तर हो गया है। इटालियन लैटिन का आधुनिक रूप है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि लैटिन प्राचीन इटालियन है। भाषा के विकास में माँ और बेटी का अर्थ **भाषा के भिन्न-भिन्न काल की दशा** है। मूल में भाषा एक ही रहती है, किन्तु उसका रूपान्तर क्रमशः होता जाता है। अपनी संतानों को पैदा करने के बाद लैटिन के विषय में यह कहना कि वह मर गयी है, मनुष्य की विशुद्ध कल्पना का असत्य

रूप सामने रखना है, और यह आसानी से प्रमाणित किया जा सकता है कि जब इटालियन भाषा स्वतंत्र रूप से समाज में चलने लगी थी उसके बहुत दिनों बाद तक भी लैटिन जीवित भाषा थी। समझना केवल यह है कि यहाँ पर हम लैटिन का अर्थ क्या कर रहे हैं। इटली के आर्य निवासियों द्वारा बोली गयी बहुत-सी बोलियों में से साहित्यिक लैटिन भी कभी एक बोली थी। यह **लैटिउम्** के भीतर बोली जाती थी। लैटिउम् में भी यह रोम की बोली रही तथा रोम में भी इस बोली को केवल कुलीन गृहस्थ ही बोलते थे। इस भाषा का रूप **लीविउस्, आंद्रोनिकुस्, एन्नीउस्, नएविउस्, काटो** और **लुक्रेतिउस्** द्वारा निश्चित किया गया। **सीपिओंस** (Scipios), **होर्रतेन्सिउस्** तथा **सिसिरो** द्वारा इस भाषा में ओज लाया गया और यह चमक उठी। यह एक बहुत छोटे वर्ग की भाषा थी। एक राजनीतिक दल ने इसे उठाया और प्रतिभापूर्ण साहित्यिकों ने इसे बल दिया। उनके काल से पहले रोम की भाषा में बार-बार ध्वनि-परिवर्तन हुए होंगे और नाना उथल-पुथलों ने इसे खूब ही आंदोलित किया होगा। **पॉलिबिउस्** ने बताया है कि रोम और कार्थेज के बीच नाना प्राचीन संधियों की जो भाषा पायी जाती है उसे रोम के निवासी विना अधिक कठिनाई के समझ नहीं पाते थे। **होरेस** स्वीकार करता है कि प्राचीन **सैलियन** कविताओं को वह समझ ही नहीं पाता था और उसने इशारे से यह भी कहा है कि उन्हें और लोग भी नहीं समझ सकते थे। **क्विन्टीलियन** (Quintilian) कहता है कि स्वयं **सैलियन** पुरोहित अपने धार्मिक भजनों को शायद ही समझ सकते हों। यदि उच्च कुलीनों के स्थान पर नीची श्रेणी की जनता अपने हाथ में राजकाज ले पाती तो लैटिन **सिसिरो** के ग्रंथों में जिस ओज और चमक के साथ पायी जाती है उससे सर्वथा भिन्न हो जाती। हम भली प्रकार जानते हैं कि सिसिरो ने अपनी शिक्षा **अरपिनुम्** में पायी। उसे उक्त प्रदेश की बोली की विशेषताओं का त्याग करना पड़ा। जैसे कि वहाँ की बोली का अंतिम **स्** उसने अपनी बोली से निकाल दिया। और जब वह फैशन-पसन्द समाज में मिलता था तथा अपने नये कुलीन मित्रों के लिए ग्रन्थ लिखता था तब भी वह इस ग्राम्य स् को निकाल देता था। जब साहित्यिक लैटिन भाषा की स्थापना हो चुकी और उसमें विधि-विधान, धर्मग्रन्थ, साहित्य और साधारण सभ्यता पर पुस्तकें लिखी गयीं तब उसका रूप स्थिर हो गया और उससे बू आने लगी। उसका विकास रुक गया, उसकी उन्नति न हो सकी, क्योंकि उसके व्याकरण बन गये और रूप स्थिर हो गये, जिससे वह नाम-मात्र भी टस

से मस न हो सकी और उसका विशुद्ध आदर्श रूप अपने स्थान से किंचिन्मात्र भी हिल न सका। उसकी प्रेतात्मा ही उससे चिपटकर उसे हैरान करने लगी। साहित्यिक बोलियों को या जिन्हें हम अपनी साधारण बोली में साहित्यपूर्ण भाषाएँ कहते हैं, उन्हें अपनी अस्थायी साहित्यिक महानता का दण्ड अवश्यम्भावी ध्वनि-विकार के रूप में भोगना ही पड़ता है। बड़ी-बड़ी नदियों के पास ही ये साहित्यिक भाषाएँ सड़े और गंदे पानी से भरे तालाब की तरह हैं। ये साहित्यिक भाषाएँ उन जीवित और प्रवाहशील बोलियों के अवशेषों से भरे हुए हौज की भाँति हैं; किन्तु बोली का जीवन्त प्रवाह इन्हें आगे बढ़ाने में असमर्थ रहता है। कभी-कभी ऐसा मालूम होता है कि भाषा की किसी समय बहती हुई यह सारी नदी इन झीलों में अटक गयी है और हम उन नालों का इनमें कहीं अस्तित्व नहीं खोज पाते जो इनसे निकली बोलियों में सप्राण प्रवाहित होते हैं। पर यदि इनके नीचे की घाटियों में, अथवा यह कहना चाहिए कि भाषा के इतिहास में बाद को हमें फिर से अचल भाषा का नया रूप दिखाई देता है जो इस बीच बना हो या बन रहा हो, तो हमें यह निश्चय हो जाना चाहिए कि इसकी सहायक धाराएँ वे छोटे-छोटे नदी-नाले थे जो कुछ समय के लिए हमारी आँखों से ओझल हो गये थे। यह भी कहा जा सकता है, और यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि एक प्राचीन या साहित्यिक भाषा की तुलना नदी की उस सतह से की जाय जिस पर हिम जम गया हो, तो अच्छा होगा। यह सतह चिकनी और चमकदार होती है, और साथ ही साथ बहुत कड़ी और ठण्डी भी होती है। इस सुसंस्कृत और ललित तथा लचीली भाषा की सतह राजनीतिक हलचलों से तोड़ दी जाती है और इसके नीचे जो जल-प्रवाह बहता रहता है उसके साथ यह भी आगे बढ़ती है। इसके सुदृढ़ दुर्ग की दीवारें इतिहास में ऐसे समय ढहने लगती हैं जब कि उच्चतर वर्ग के लोग किसी धार्मिक या सामाजिक उथल-पुथल के समय या तो नष्ट कर दिये जाते हैं या विदेशी आक्रमण का विरोध करने में अपने से छोटे वर्ग के साथ घुल-मिल जाते हैं। ऐसे समय साहित्यिक रचना की गति धीमी पड़ जाती है, क्योंकि उसे प्रोत्साहन देने के लिए कोई रह नहीं जाता; महल धूल में मिल जाते हैं, मठ-मंदिर निर्दयता से लूट लिये और नष्ट कर दिये जाते हैं और पाठशालाएँ तथा विद्या प्राप्त करने के बड़े-बड़े स्थान लूट-पाट करके समाप्त कर दिये जाते हैं। ऐसे समय में यह होता है कि जनता की अथवा दूसरे शब्दों में ग्राम्य बोलियाँ जो उनकी बोलचाल की भाषा का काम दे रही थीं, साहित्यिक भाषा की कड़ी और चमचमाती

सतह के भीतर से सिर उठाने लगती हैं और बरसात की भयंकर बाढ़ की भाँति बीते हुए युगों में भाषा में जो कुछ क्लिष्टता से लदे रूप निर्मित हुए थे, उन्हें अपने साथ बहा ले जाती हैं। अधिक शांतिमय समयों में, जब जनता को कुछ सोचने-विचारने का अवसर मिलता है, तो जनता की भाषा के इस बीच सरल और सुबोध हो जाने के कारण उसमें एक नया और लोकप्रिय साहित्य रचा जाने लगता है और ऐसा आभास मिलने लगता है कि यह नयी भाषा विदेशियों द्वारा अपना देश विजित होने अथवा क्रांति के कारण उत्पन्न हुई हो, किन्तु यह वास्तव में बहुत पहले से आरम्भ हो गयी थी और बनती जा रही थी और ऐतिहासिक घटनाओं के कारण यह मानो हर प्रकार से तैयार होकर हमारे सामने चली आयी। इस दृष्टि से हम देख सकते हैं कि कोई साहित्यिक भाषा किसी दूसरी साहित्यिक भाषा की जननी किसी प्रकार नहीं कही जा सकती। ज्यों ही कोई भाषा परिवर्तन की असीमित शक्ति खोने लगती है, त्यों ही कुछ ढंग यह भाषा के नाना तत्त्वों से निकालने लगती है और उसके विषय में अनजान में ही बहुत-कुछ असावधानी करने लगती है, और मन तथा हृदय में जिन-जिन नये भावों का उदय होने लगता है उनकी पूर्ति नये शब्द बनाकर तुरत करने लगती है, तो ठीक उसी समय से प्राचीन साहित्यिक भाषा का अस्तित्व केवल कृत्रिम रूप में रह जाता है। भले ही यह भविष्य में बहुत काल तक अपना जीवन-निर्वाह करती चली जाय, किन्तु यह प्रधान शाखा-सी लगने पर भी वास्तव में एक टूटी और मुरझायी हुई शाखा के रूप में रह जाती है। यह वृक्ष के उस तने से, जहाँ से यह उगी हो, धीमे-धीमे सूखकर झड़ने लगती है। इटालियन भाषा के मूल स्रोत, रोम के पुराने और आदर्श साहित्य में नहीं पाये जाते। वे इटली की जनता की बोलियों में मिलते हैं। अंग्रेजी भाषा केवल वेसैक्स प्रदेश की ऐंग्लो-सैक्सन भाषा से उत्पन्न नहीं हुई है; किन्तु यह उन बोलियों से निकली है जो ग्रेट ब्रिटेन के नाना अंचलों में बोली जाती हैं, और जो प्रत्येक प्रदेश में अपने स्थानीय भिन्न-भिन्न रूपों में अन्य बोलियों से अंतर रखती हैं, तथा जो लैटिन, डेनिश, नारमन, फ्रेंच और अन्य विदेशी भाषाओं के शब्दों तथा रूपों से प्रभावित हुई हैं। अंग्रेजी के आलोचनात्मक अध्ययन के लिए इस भाषा की कुछ स्थानीय बोलियाँ, जो इस समय विभिन्न अंचलों में बोली जा रही हैं, बड़े महत्त्व की हैं, और एक फ्रेंच राजकुमार जो इस समय हमारे देश में निवास कर रहा है, बहुत ही धन्यवाद का पात्र है कि उसने इन अंग्रेजी बोलियों का संग्रह करके इनका बहुत बड़ा भाग बचाने का काम किया है। हिंदुस्तानी (खड़ी बोली और

उर्दू) संस्कृत की संतति नहीं है, और न इसका वेद से विशेष संबंध है, या ब्राह्मणों के वेदोत्तर काल के साहित्य से ही इसका संबंध है। यह वास्तव में, भारत की जीवित भाषा की एक शाखा है, जो वृक्ष के तने के उसी भाग से फूटी है जहाँ से संस्कृत उपजी, जब कि संस्कृत ने स्वतंत्र साहित्यिक जीवन धारण किया था।

मैं यहाँ श्रोताओं के सामने भाषा के प्रवाह के लिए बोलियों का भाषा की सहायता करने का जो महान् कार्य है उसे यदि स्पष्ट रूप से रख रहा हूँ तो उससे आप लोगों को ऐसा भासमान होने लगेगा कि मैं, इसमें बोलियों के महत्त्व को अत्युक्तिपूर्ण रीति से दिखा रहा हूँ। इसमें संदेह नहीं कि यदि यहाँ मेरा उद्देश्य कुछ दूसरा होता तो मैं आसानी से यह सिद्ध कर सकता कि किसी भाषा के साहित्य को सँवारे और सुसंस्कृत किये बिना भाषा को वह सुनिश्चित रूप न मिल सकता जो विचारों का आदान-प्रदान करने के लिए किसी समाज में अति आवश्यक होता है। बिना इसके भाषा अपना उच्चतम प्रयोजन पूरा न कर सकती, बल्कि वह थोड़े-से नौसिखिये बोली बोलनेवालों की वड़वड़ मात्र रह जाती। कोई विद्वान् साहित्यिक भाषाओं के महत्त्व को बिना देखे नहीं रह सकता। इसके विपरीत, बोलियों का महत्त्व, जो कि भाषा के विकास के लिए अति आवश्यक है, कभी किसी विद्वान् ने नहीं बताया। इसलिए मैंने यह अधिक उचित समझा कि बोलियों के उस महत्त्व का विस्तारपूर्वक वर्णन करूँ जिसका लाभ साहित्यिक भाषाएँ उठाती रहती हैं। साहित्यिक भाषाओं के उन उपकारों का, जिनसे बोलियाँ लाभ उठाती हैं, वर्णन करना यहाँ विशेष लाभप्रद सिद्ध नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त आज के भाषण का मुख्य उद्देश्य यह था कि भाषा का विकास आप लोगों के सामने विशद रूप में रखा जाय और इस प्रयोजन के लिए साहित्य के साथ-साथ बोलियों का जो झाड़-झंखाड़ सदा उगता रहता है उसके महत्त्व के विषय में अत्युक्तिपूर्ण कुछ कहना असम्भव है। भाषा को उस मिट्टी से अलग कर दीजिए जिस पर यह उपजती है। इसे उन बोलियों के पास से उखाड़ फेंकिए जो इसकी खाद हैं, और आप इसके स्वाभाविक विकास को एकदम से रोक देते हैं। इस दशा में ध्वनि-विकार की प्रगति निरंतर जारी रहेगी, किन्तु नाना बोलियों की उत्पत्ति होने का जो नवजीवनदायक प्रभाव भाषा पर पड़ता, वह लुप्त हो जायगा। वह भाषा, जिसे नारवे देश के शरणार्थी अपने साथ आइसलैंड ले गये थे, आठ सदियों के बाद आज भी प्रायः जैसी-की-तैसी रह गयी है। इसके विपरीत अपनी जन्मभूमि में, नाना स्थानीय बोलियों से घिरी हुई यह और भी भिन्न-भिन्न दो भाषाओं में

विकसित हुई है। स्वीडिश और डेनिश भी नारवे की भाषा से ही निकली हैं। ग्यारहवीं सदी में स्वीडन, डेनमार्क और आइसलैण्ड[1] की भाषाएँ एकसमान थीं। स्वीडन और डेनमार्क में भाषाएँ देशी बोलियों के प्रभाव से बदलती गयीं और आज भिन्न रूप में हैं। आइसलैण्ड की भाषा प्रायः पुरानी ही रह गयी है, उसमें कुछ परिवर्तन नहीं आया। आइसलैण्ड को न तो विदेशियों ने जीता और न ही देशी रक्त के साथ विदेशी रक्त का सम्मिश्रण हुआ, जिससे हम यह समझते हैं कि स्वीडन और डेनमार्क की भाषाओं में ध्वनि-विकार और ध्वनि-परिवर्तन का प्रवेश आरंभ हो गया तथा आइसलैण्ड में उक्त कारण उत्पन्न न होने से भाषा एक-सी बनी रही।[2]

नाना बोलियों के असीमित मूल स्रोत कहाँ-कहाँ से आते हैं—इसका अनुमान शायद ही सम्पूर्णता के साथ किया जा सके। जब एक देश की इन नाना बोलियों की सहायता से एक समान ढाँचे में साहित्यिक भाषा ढल जाती है तो प्रायः पचास प्रतिशत शब्द इन बोलियों से आते हैं, यद्यपि इन शब्दों में नाना बोलियों के विशेष-विशेष अर्थों और भावों का प्रयोग होता है। यदि समाज की प्रगति के साथ-साथ विचारों के नये-नये आकार-प्रकार जनता के सामने आते हैं तो बोलियाँ उन्हें व्यक्त करने के लिए आवश्यक नाम जुटा लेती हैं, क्योंकि बोलियों में बहुत-से शब्द इस अभाव को पूरा करने के लिए मिल जाते हैं। बोलियों में केवल स्थानीय और अंचलीय शब्द ही नहीं होते, बल्कि नाना वर्गों की नाना बोलियों में विशेष स्थिति में आवश्यक नामों की भी भरमार रहती है। गड़रियों की अपनी बोली होती है, खिलाड़ियों की अपनी अलग। सिपाहियों में अपने लिए उपयोगी विशेष शब्द गढ़े जाते हैं और किसान अपनी बोली बनाते हैं। मेरे अनुमान से मेरे श्रोताओं में इस समय शायद ही कोई व्यक्ति ऐसा हो जो घोड़ों

१. Marsh, *Lectures* pp. 133, 368.

२. **'यदि हम तुलनात्मक दृष्टि से देखें तो ग्रेट ब्रिटेन जैसे संकीर्ण और बहुत छोटे से देश में बोलियों में स्थानीय रूपों की नाना विशेषताएँ और भेद तथा उच्चारण में भी इतनी अधिक भिन्नताएँ पायी जाती हैं कि उनकी अपेक्षा हमारे इस विस्तृत और महान् देश (संयुक्त राष्ट्र अमेरिका) में पायी जानेवाली भिन्नताएँ बहुत कम हैं'**—Marsh, **पृष्ठ ६६७।**

के संबंध में प्रयोग में आनेवाले नीचे कहे हुए शब्दों का अर्थ ठीक-ठीक बता सके—Poll, Crest, Withers, Dock, Hamstring, Cannon, Pastern, Coronet, Arm, Jowl और Muzzle. साहित्यिक भाषा में सभी प्रकार के जानवरों की सन्तान को केवल उसका बच्चा कहते हैं, किन्तु किसान, गड़रिये और शिकारी लोग ऐसे साधारण शब्द का व्यवहार करने पर शर्म से मर जायँ।

ग्रिम ठीक ही कहता है—"गृहहीन और पशुओं का समूह लेकर इधर-उधर फिरनेवाली घुमक्कड़ जातियों की बोलियों में तलवार और अस्त्र-शस्त्रों के संबंध में नाना प्रकार के नामों और स्थितियों को व्यक्त करने के लिए इतनी अधिक शब्द-सम्पत्ति मिलती है कि आश्चर्य में डूबना पड़ता है। उनके ढोरों के जीवन की नाना परिस्थितियों को व्यक्त करने के लिए भी उनके पास शब्दों की भरमार होती है। यदि भाषा अधिक सुसंस्कृत और साहित्यिक बनने लगे तो नाना परिस्थितियाँ व्यक्त करनेवाले ये शब्द बोझिल और व्यर्थ के लगें, किन्तु किसान के मुँह में प्रायः प्रत्येक जानवर के नामों को व्यक्त करने के लिए विशेष-विशेष पारिभाषिक शब्द हैं। यही दशा शिकारी की है, जो घोड़े आदि की चाल तथा शिकार में भाग लेनेवाले भिन्न-भिन्न लोगों को उनकी बोली में निर्मित नाना विशेष-विशेष नामों से पुकारता है। गड़रिये लोग, जो कि जंगलों और पहाड़ों की खुली हवा में रहते हैं, साधारण लोगों से बहुत अधिक बातों का निरीक्षण करते हैं। उनके कान भी बहुत तेज होते हैं और वे नाना प्रकार की और दूर-दूर की ध्वनियाँ सुन पाते हैं, जिनका हमें कभी ध्यान भी नहीं रहता। वे ऐसी परिस्थिति में रहते हैं कि जीवित सत्य और प्रकृति के नाना रूपों और पदार्थों का उन्हें साक्षात् ज्ञान प्राप्त होता है और उनकी वाणी इसे विशेष शब्दों द्वारा व्यक्त करती है।"

१५वीं सदी में सॉपवेल मठ की प्रधान भिक्षुणी **जुलियाना बर्नर्स** ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ Book of St. Albans में बहुत सावधानी के साथ हमें यह बात बतायी है कि मनुष्य या पशुओं के समूहों के नाम हमें मनमाने तौर और बिना विचार किये काम में नहीं लाने चाहिए, किन्तु हमें कहना चाहिए—'a congregacyon of people' "गिरजा में प्रार्थना करनेवालों का समूह", 'a host of men' "मनुष्यों की भीड़-भाड़", 'a felyshyppynge of yomen' "स्त्रियों का सहेली समाज" and 'a bevy of ladies' "महिला संघ"; हमें 'a herde of dere, Swannys, cranys or wrenys हिरनों, हंसों और सारसों या

हरियलों का समूह, 'a Sege of herons or bytourys' बगुलों का समाज, 'a muster of pecockes' मोरों का गोल, 'a watche of nyghtyngales' बुलबुलों का गिरोह, 'a flyghte of doves' फाख़्तों का अड्डा, 'a claterynge of choughes, a pryde of lyons' शेरों का दल, 'a slewthe of beeres' भालुओं की जमात, 'a gagle of geys' हंसों की पाँत, 'a skulke of foxes' लोमड़ियों का ताँता, 'a sculle of frerys' छोटे पादरियों का जत्था, 'a pontificality of prestys' पुरोहितों की सभा, 'a bomynabls syght of monkes' संन्यासियों का अखाड़ा और 'a superfluyte of nonnes' भिक्षुणियों की बहुसंख्या . . . . . इत्यादि, और मनुष्यों तथा नाना पशुओं के समूह के नाम कहने चाहिए। इसी प्रकार भोजनगृह के लिए मांस के नाना प्रकारों का वर्णन करते हुए सभी जानवरों को मारने के लिए carved नहीं कहना होगा, बल्कि a dere was broken, a gose reryd, chekyn frusshed, a cony unlaced, a crane dysplayed, a curlewe unioynted, a quayle wynggyd, a swanne lyfte, a lambe sholdered, a heron dysmembryd, a pecocke dysfygured, a samon chynyd, a hadoke sydyd, a sole loynyd and a breme splayed[१] कहना होगा।

आज के इस भाषण में मैंने जिस बात पर जोर दिया है और जिस बात को विशेष स्पष्ट रूप से बताने का मेरा अभिप्राय है, वह यह है कि जो कारण भाषा के विकास के मूल में हैं, अथवा अन्य भाषा-वैज्ञानिकों के कथनानुसार जो दोनों कारण भाषा के इतिहास में सम्मिलित किये जाने चाहिए, ये दोनों ही तथ्य मनुष्य के नियंत्रण में रहते हैं। किसी भाषा का ध्वन्यात्मक विकार अचानक आ पड़नेवाली किसी घटना का परिणाम नहीं है। तुलनात्मक व्याकरण के सिद्धान्तों पर विचार करते समय, जैसा कि हम उन पर विचार करते समय देखेंगे, यह ध्वनि-विकार निश्चित विधि-विधानों के अनुशासन में चलता है। अब ध्यान देने की बात है कि इन विधि-विधानों को मनुष्य ने नहीं बनाया; बल्कि इसके विपरीत यह कहना ही ठीक होगा कि इनके अस्तित्व के मनुष्य के ज्ञान में आये बिना, मनुष्यों को उक्त नियमों का पालन बाध्य होकर करना पड़ा।

१. Marsh, *Lectures*, pp. 181, 590.

लैटिन से निकली हुई वर्तमान रोमन भाषाओं के विकास में हम साफ देख सकते हैं कि इनमें केवल एक साधारण प्रवृत्ति ऐसी ही नहीं रही है कि शब्द कठिन से सरल बनते गये और न ही इसका स्वाभाविक झुकाव इस ओर रहा कि लैटिन शब्दों के विशेष-विशेष व्यंजन और इससे भी अधिक व्यंजन-समूहों का उच्चारण करनेवाले को जो परिश्रम करना पड़ता है, उससे बचा जाय, अर्थात् कम श्रम करना पड़े। किंतु हम प्रत्येक रोमन बोली के लिए विशेष-विशेष और भिन्न-भिन्न नियम देखते हैं, जिनसे हम बेधड़क कह सकते हैं कि लैटिन patrem (पत्रेम्) आज कल की फ्रेंच भाषा में स्वभावतः pére 'पिता' रूप में ही विकसित होगा। लैटिन से बनी बोलियों में किसी शब्द का अंतिम **म्** सर्वदा लुप्त हो जाता है और यह **म्** स्वयं बाद की लैटिन में उच्चारित नहीं होता था। इस प्रकार बाद की लैटिन में 'patrem' पतरेम् के स्थान पर patre (पतरे) रह गया था। अब देखिए कि फ्रेंच भाषा में दो स्वरों के बीच में आया हुआ **त्** जो कि pater (पतेर्) के समान शब्दों में पाया जाता है, उस में उच्चारित नहीं किया जाता। यह अटल नियम है और इस नियम के अनुसार हम बिना विलम्ब यह आविष्कार कर सकते हैं कि Catena (कतेन) फ्रेंच भाषा में अपना लैटिन रूप बदलकर chaine (शेन) हो जायगा। प्राचीन नपुंसक लिंग शब्द fatum (फतुम) का बाद का एक रूप fata (फाता) इस नियम के अनुसार fée हो जायगा; लैटिन भाषा का pratum (प्रतुम्) फ्रेंच भाषा में, इसी नियम से, pré (प्रे) रह जायगा। इस लैटिन शब्द pratum (प्रतुम्) से prataria (प्रतरिय) रूप निकला जिसका फ्रेंच में prairie (प्रेयरी) रूप हो गया। लैटिन शब्द fatum (फतुम) और fataria (फतरिय) रूपों का अंग्रेजी में fairy (फेयरी 'पेरी') शब्द बन गया। इस प्रकार प्रत्येक लैटिन अंश-क्रिया, जिसके अंत में atus (अतुस्) लगता है, जैसे amātus (अमतुस 'प्रीत'), उसके अंत में फ्रेंच भाषा में é (-ए) लगना चाहिए। इसी नियम के अनुसार patre (जिसका उच्चारण patere पतेरे है) फ्रेंच भाषा में paere (पएरे) या pére (पेरे) हो जाता है। इसी नियम से matrem (मतरेम्) का फ्रेंच भाषा में mére (मेयर) तथा fratrem (फ्रतरेम्) का frére (फ्रेयर) हो गया। ये ध्वनि-परिवर्तन बहुत धीमे-धीमे होते हैं, किन्तु बिना हुए रह नहीं सकते, और इससे भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात यह है कि ये मनुष्य की स्वच्छन्द इच्छाशक्ति के नियंत्रण से बहुत ही दूर हैं।

यह बात अच्छी तरह जान लेनी चाहिए कि बोलियों का विकास किस ढंग

से होता है, यह प्रश्न व्यक्ति के नियंत्रण से और भी अधिक परे है। तर्क के लिए मान लीजिए कि किसी कवि ने जान-बूझकर और पक्का विचार करके[१] एक नये शब्द का आविष्कार किया और अपनी कविता द्वारा उसे चलाने का प्रयत्न किया। इस नये शब्द की जनता द्वारा स्वीकृति या प्रचलन नाना परिस्थितियों पर अवलंबित रहता है; इन परिस्थितियों में मनुष्य के लाख जतन करने पर भी उसका वस नहीं चलता । भाषा में कभी-कभी व्याकरण के रूपों में भी परिवर्तन आ जाता है, बाहर से देखने पर और पहले-पहले यह रूप सुनने पर ऐसा लगता है कि यह बोलने या लिखने वाले की झोंक या झुकाव का फल होगा, पर ऐसा नहीं होता, क्योंकि एक व्यक्ति किसी भाषा या उसके अंश का निर्माण नहीं कर सकता। उदाहरणार्थ, यहाँ मान लीजिए कि लैटिन शब्दों के अंत में जुड़नेवाले प्रत्ययों का लोप होना बहुत असावधानी से जनता के मुख से निकले हुए उच्चारण का परिणाम है। और यह भी मान लीजिए कि फ्रेंच भाषा की सम्बन्ध कारक-वाची du विभक्ति लैटिन शब्द de illo (दे इल्लो) का जनता के मुँह से असावधानी से निकला ध्वनि-विकार है; तो भी किसी और विभक्ति के स्थान पर केवल *de* (द) का चुनाव सम्बध-कारक बताने के लिए तथा अन्य सब सर्वनामों को छोड़कर केवल *illo* का चयन हमारे समक्ष यह प्रमाणित सा करता है कि भाषा के निर्माणकाल में मनुष्य ने स्वच्छन्द रूप में कर्ता के समान काम किया। पर यहाँ भी मनुष्य अपनी मर्जी से काम नहीं कर सकता। यह तो समझ के बाहर की बात है कि कभी किसी एक व्यक्ति ने समझ-बूझकर अपने ज्ञान के फलस्वरूप पुरानी लैटिन के सम्बन्धकारक-वाची चिह्न को लुप्त कर दिया होगा, और उसके स्थान पर दो शब्दों से संयुक्त (*peri phrastict* "एक शब्द के स्थान पर दो शब्द रखना, जैसे went के स्थान पर did go)" शब्द *de illo* रख दिया होगा। सच यह है कि सम्बन्धवाची विभक्ति का कोई विशेष अथवा अन्य विभक्तियों से विभिन्न संकेत नहीं था। शुद्ध लैटिन भाषा का लोप होने के अनंतर जनता जिस ग्रामीण लैटिन बोली को बोलने लगी थी उसे अपनी इस बोली में सम्बन्धवाची विभक्ति का अभाव बहुत खटका और उसने इसकी

१. हिन्दी के कवि, हमारी सरकारें या डॉ० रघुवीर आदि कुछ ऐसे शब्द चला रहे हैं जिनका कुछ अर्थ नहीं होता। हमारी समझ में शब्द मनमाने ढंग से नहीं बनाये जा सकते। इसका हम लोगों को ध्यान रखना चाहिए। (अनु०)

पूर्ति के लिए विभक्ति का नया रूप निकाल लिया। *de* (दे, फ्रें० द) रूप प्राचीन लैटिन में भी था और उस समय जनता उसे काम में लाती ही थी, लेकिन उसका मौलिक अर्थ बाद को लोग समझ नहीं पाये। होरेस ने, जो कि नामी लेखकों में से एक है, लिखा है,—"*una de multis* (ऊना दे मुल्तिस, "बहुतों में से एक") । इस ग्रामीण लैटिन बोलनेवाली जनता को एक निश्चयसूचक सर्वनाम की भी आवश्यकता पड़ी, इस कारण उसने अपनी बातचीत में नाना विचारों को व्यक्त करने वाले मुहावरों से सर्वनाम illo (इल्लो) का भी व्यवहार जारी किया। यह कार्य मूल लैटिन भाषा के अज्ञान के अन्धकार में और ग्रामीण भाषा के एक निश्चित अभाव की पूर्ति के लिए भाषा-विज्ञान और व्याकरण का ज्ञान न रखनेवाली जनता ने कर दिया। इस स्थान पर उक्त सम्बन्ध-वाची विभक्ति के चिह्न ने आज मौलिक या प्रारम्भिक सर्वनाम रूप की शक्ति खो दी। एक व्यक्ति और उसके बाद दूसरा व्यक्ति और इस दूसरे के बाद सैकड़ों, हजारों और करोड़ों व्यक्ति *de illo* शब्दों को सम्बन्ध-वाची विभक्ति के रूप में अपनी बातों में प्रयुक्त कर सकें, इसके लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि पहले वाक्य में कही हुई सब शर्तें वर्तमान हों, तथा इस *de illo* को अवसर मिले कि यह इटालियन जनता के मुँह में इस तरह—*dello del* (देल्लो देल) और फ्रेंच भाषा में *du* में परिवर्तित न हो जाय।

कुछ थोड़े-से व्याकरणकारों और शुद्ध भाषा लिखने या बोलने का दम भरने-वालों और उसके प्रचार का बीड़ा उठानेवाले साहित्यिकों द्वारा[1] भाषा को सुधारने का प्रयत्न गधे के सिर में सींग उगाना है और मुझे भाषा-विज्ञान का आविष्कार होने के बाद अब ऐसी योजनाओं का नाम संभवतः कभी न सुनाई देगा जिनमें भाषाओं में से उनकी अनियमितताओं की कतर-ब्योंत या काट-छाँट करने का उल्लेख हो। यह भी बहुत अधिक सम्भव है कि साहित्यिक तथा उसी प्रकार असाहित्यिक भाषाओं में से शब्द और धातु की नियमबद्ध रूपावलियों में जो अनियमितता बीच-बीच में आ जाती है, उसे नन्हें-नन्हें बच्चे तक अपनी तोतली जबान से व्याकरण के रूपों का बिना विचार किये बोलते हैं। वास्तव में विशेष ध्यान के साथ देखिए तो छुटपन

१. हिन्दी में कुछ विद्वानों ने उस के परिष्कार या मार्जन का बीड़ा उठाया है। यह किसी भी मनुष्य के बलबूते का नहीं है। उन्हें मैक्समुलर के इस कथन पर विशेष ध्यान देना चाहिए। (अनु०)

में बच्चों की भाषा हम बूढ़ों की भाषा से अधिक नियमित रूप से बोली जाती है। *Worse* (=अधिक बुरा) और *Worst* (=सबसे बुरा) के स्थान पर मैंने बच्चों को Badder और Baddest कहते सुना है, और ये रूप बुरे नहीं। बच्चा अपनी बोली में बोलेगा—I gaed (=मैं गया), I coomd (=मैं आया), I catched (=मैंने पकड़ा)। और उसकी यह धारणा हो गयी है कि व्याकरण के रूपों में सर्वत्र समानता रहनी चाहिए—यह नियम कहीं बदलना न चाहिए। क्या होना चाहिए—इस पर उसकी उदार भावना उन आजकल के व्याकरणों द्वारा तथा-कथित अनियमित बताये गये रूपों को, जो सदियों से अप्रचलित हैं तथा लुप्त हो गये हैं, फिर हमारे सामने रखती है। अब ध्यान दीजिए कि लैटिन में सहायक क्रिया का रूप अति अनियमित रहा है। यदि *Sumus* का अर्थ 'हम हैं' है और *Sunt* का अर्थ 'वे हैं' है तो अंततः बच्चों के अकाट्य तर्क के अनुसार 'तुम हो' रूप के लिए *sutis* का व्यवहार होना चाहिए। यह रूप निस्सन्देह प्राचीन साहित्य के मर्मज्ञों के कानों में, जो *estis* (एस्तिस) सुनने के अभ्यस्त हो गये हैं, महान् अपभ्रष्ट लगेगा। ये और अच्छे उदाहरण हैं; यथा फ्रेंच भाषा में nous sommes (नू सौम्=हम हैं), vous etes (वू ज़ैत=तुम हो), ils sont (इल सौं=वे हैं) रूपों में लैटिन के रूपों की बड़ी सावधानी से और पूरी रक्षा की गयी है, किन्तु स्पेनिश में हमें somos, sois, son (सोमोस, सोइस, सौन=हम हैं, तुम हो, वे हैं) रूप मिलते हैं, और यह sois शब्द sutis के स्थान पर आया है। व्याकरण के ऊबड़-खाबड़ पथ को समतल या समान बनाने के इसी प्रकार के अव-शिष्ट चिह्न इटालियन भाषा के Siamo Siete, sono (सिआमो, सिएते, सोनो=हम हैं, वे हैं, तुम हो), और नियमित रूपवाली क्रियाओं, जैसे *Crediamo, Credete, Credono* (क्रेदिआमो, क्रेदेते क्रेदोनो=हम श्रद्धा करते हैं, ये श्रद्धा करते हैं, तुम श्रद्धा करते हो) की नकल पर बनाये गये। इटालियन भाषा में मध्यम पुरुष एकवचन का रूप *Sai* (सेइ=हो) लैटिन *es* (एस) के स्थान पर है। यह स्पष्ट ही ऊपर बताये गये बच्चों के व्याकरण की भाँति **बाल-व्याकरण** का रूप है। वल्लाखियन भाषा में *suntemu* (सुन्तेमु=हम हैं), *sunteti* (सुन्तेति=तुम हो) ये रूप मिलते हैं। इनके मूल में प्रथम पुरुष बहुवचन का रूप *Sunt* (सुन्त=वे हैं) है। अब इन विभीषिकामय रूपों को देखिए। *essendo* (एस्सेन्दो=होता हुआ) एक धातु-संज्ञा है और व्याकरण के सिद्धान्तों के प्रति सोलह आना न्याय करके यह रूप बनाया गया है और यह मूल-रूप-हीन धातु

(Infinitive) essere (एस्सेरे=होना) के समान, जैसे Credere (क्रेदेरे=श्रद्धा करना) मूल धातु से credendo (क्रेदेन्दो=विश्वास करता हुआ) निकला है, उस नियम पर रचा गया है। यह चाहे जो हो, इस पर हमें नाम मात्र को आश्चर्यचकित न होना चाहिए, क्योंकि अंग्रेजी में हम व्याकरण के ऐसे अपभ्रष्ट रूप बहुतायत से पाते हैं। स्वयं ऐंग्लो-सैक्सन भाषा में भी प्रथम पुरुष बहुवचन का रूप sind (सिन्द, ज़िन्द) अशुद्ध समानता के कारण उत्तम और मध्यम पुरुषों के रूपों में शुमार कर लिया गया है, और आजकल की अंग्रेजी भाषा के रूपों के स्थान पर हम निम्नलिखित रूप देखते हैं—

	नारवे की प्राचीन भाषा	गौथिक भाषा
We are	or-um	sijum[1]
You are	or-udh	sijuth
They are[2]	or u	sind

अंग्रेजी भाषा की नाना बोलियों में हम सुनते हैं कि 'I be' रूप बोला जाता है। यह 'I am' के लिए प्रयुक्त किया जाता है। यदि Chartism (चार्टिज़्म) का इंग्लैंड में फिर बोलबाला हो तो समाचारपत्र तुरन्त ही 'I says', 'I knows'

१. ये गौथिक रूप *Sijum*, *Sijuth* भाषा की परम्परा के साथ नहीं आये। ये या तो *Sind* के प्रथम पुरुष बहुवचन से झूठी नकल पर बनाये गये हैं, अथवा कभी किसी समब *Sijau* (=संस्कृत स्याम्) के रूप से निकली हुई नयी धातु sij से बनाये गये हैं।

२. डाक्टर लाटनर के ग्रन्थ *Transactions of the Philological Society*, १८६१ के पृष्ठ ६३ में कहा गया है कि अंग्रेजी रूपों के मूल स्रोत स्कैण्डिनेवियन भाषा से आये हैं और इस विषय पर उन्होंने नाना तथ्य और प्रमाण देकर बहुत अच्छा प्रकाश डाला है। प्रथम पुरुष बहुवचन का रूप *aran* केम्बल के ग्रन्थ *Codex Diplomations Ævi Saxonici*, खण्ड १, पृष्ठ २३५ में पाया जाता है (८०५–८३० ई०)। यह शब्द *Layamon* में नहीं पाया जाता। *Ormulum* में इसका रूप *arrn* है, किन्तु *Chaucer* ने इसका प्रयोग केवल दो बार किया है। देखो Gesenius लिखित *De Ling. Chaucer*, पृष्ठ ७२; Monicke लिखित *On the "Ormulum"*, पृष्ठ ३५।

जैसे वर्तमान व्याकरण के नियमविरुद्ध प्रयोगों को अपनाने में थोड़ी-सी भी आनाकानी नहीं करेंगे।

ये नाना भाँति के प्रभाव और परिस्थितियाँ, जिनके भीतर से भाषा विकसित होती है और नाना परिवर्तित रूप प्रकट करती है, उन लहरों और हवा के प्रबल झकोरों के समान हैं, जो धूल तथा कूड़े-करकट के ढेरों को बहाकर या उड़ाकर समुद्र के तल तक पहुँचा देते हैं, जहाँ कि ये ढेर फिर जमा हो जाते हैं और विकसित होते हैं तथा अन्त में एक दिन पृथ्वी की सतह के ऊपर मिट्टी की एक परत के रूप में जमे हुए दिखाई देने लगते हैं। इस परत के अणु-अणु की आप जाँच पड़ताल और ठोक-पीट करेंगे तो किसी भी वैज्ञानिक को यह स्पष्ट हो जायगा कि उक्त धूल और कूड़े-करकट के इस ढेर में क्या-क्या पदार्थ रहे होंगे, जिनका परिवर्तित रूप यह परत हमारे सामने आयी है। धूल और कूड़े-करकट की ढेरी का यह परिवर्तित रूप उसके भीतर छिपे हुए किसी सिद्धान्त द्वारा उत्पन्न नहीं हुआ, और न ही यह प्रकृति के अपरिवर्तनशील नियमों द्वारा नियंत्रित हुआ है। इसके विपरीत, फिर भी यह किसी तरह नहीं कहा जा सकता कि यह किसी आकस्मिक घटना का परिणाम है, या नियमहीन और किसी स्वच्छन्द कार्यकर्ता के द्वारा यह परत उत्पन्न की गयी है। इस विषय पर हम शब्दों का उचित प्रयोग करने में जितनी सावधानी बरतें वह कम है। यदि आप ठीक-ठीक शब्दों को काम में लायें तो अपना आकार सदा बदलती हुई पृथ्वी की सतह के लिए न तो हम 'इतिहास' शब्द का व्यवहार कर सकते हैं और न ही विकास या प्रगति ही कह सकते हैं। किसी मनमौजी (स्वच्छन्द) कार्यकर्ता द्वारा किये गये कार्य **इतिहास** कहलाते हैं और अंगयुक्त (Organic) सप्राण जीव की भीतरी शक्तियों का धीमे-धीमे प्रकट होना **वृद्धि** या **विकास** कहलाता है। इसके विपरीत, बोलचाल की अथवा साहित्यिक भाषा में हम कहते या लिखते हैं कि पृथ्वी के ऊपर की पपड़ी या सतह बढ़ती है या विकसित होती है, और उक्त शब्द जिस अर्थ में काम में लाये जाते हैं उसे भी हम भली भाँति समझ लेते हैं, यही अर्थ हम इस भाषा-विज्ञान में भी लगाते हैं। वृद्धि या बढ़ने का यहाँ यह अर्थ नहीं है जिसे हम **पेड़ों के बढ़ने के समय** समझते हैं, अर्थात् इसका यह अर्थ नहीं है कि वृक्ष शक्तिशाली हो रहा है, मोटा हो रहा है, ऊँचा हो रहा है, आदि आदि। ठीक इसी अर्थ में हम भाषा-विज्ञान में उक्त शब्दों का प्रयोग करते हैं। भाषा की वृद्धि या विकास का जहाँ उल्लेख आता है तो उक्त अर्थ में इनका व्यवहार करने का हमें पूरा अधिकार है।

यदि वह परिवर्तन या सुधार या विकार, जो विशेष पदार्थों के नये-नये रूपों में निरंतर मिलने-जुलने से सदा होता रहता है, जब किसी निश्चित काल में हमारी आँखों के सामने आता है और हमारी दृष्टि में खटकता है कि कुछ नया परिवर्तन हुआ है और जो किसी स्वच्छन्द कार्यकर्ता के काम का परिणाम नहीं है, एवं जिसे हम अन्त में जान जाते हैं कि यह प्राकृतिक साधनों का परिणाम है, तब ऐसे परिवर्तन को हम विज्ञान में वृद्धि या विकास कह सकते हैं। इस अर्थ में उक्त शब्द का हम पृथ्वी की पपड़ी या सतह की वृद्धि या विकास के लिए भी प्रयोग कर सकते हैं। यह शब्द ठीक इसी अर्थ में भाषा के संबंध में लागू किया जा सकता है और हमारे लिए यह न्याय्य हो जायगा कि हम भाषा-विज्ञान को ऐतिहासिक विज्ञान की चौहद्दी के बाहर रखें और इसे भौतिक विज्ञानों में सम्मिलित कर दें।

दूसरी आपत्ति भी हमारे सामने है, जिस पर हमें विचार करना होगा। इस पर भली-भाँति विचार करने से हमें भाषा के वास्तविक आकार-प्रकार को पूर्ण और अधिक स्पष्ट रूप में समझने में सहायता मिलेगी। पृथ्वी के विकास के उन दीर्घ-दीर्घ युगों की जो भतत्त्व-विज्ञान के शोधकों ने निकालकर स्थापित कर दिये हैं, समाप्ति या प्रायः समाप्ति तब होती है जब हमें मनुष्य-जीवन के आदिम अवशेषों का पता चल जाता है और तभी बहुत ही मोटे रूप में मनुष्य के इतिहास का श्रीगणेश होने लगता है। इसके विपरीत, भाषा के विकास के विशेष-विशेष परिवर्तनों के दीर्घ काल के युग मनुष्य के इतिहास के साथ आरम्भ होते हैं। इस कारण यह कहा गया है कि भाषा भले ही कृत्रिम प्रक्रिया से न बनायी गयी हो, पर फिर भी इसकी नाना अवधियों का, जिनमें भाषा के बड़े-बड़े परिवर्तन हुए हैं, ऐतिहासिक ज्ञान प्राप्त किये बिना भाषा का प्राणपूर्ण जीवन और उसका क्रम-विकास जानना कठिन ही नहीं, असम्भव होता है। भाषा के कई विद्वानों ने यह भी कहा है कि एक भाषा, जिसे हम तुलनात्मक व्याकरण के दूरवीक्षण यन्त्र (दूरबीन) द्वारा ठीक रूप में देखकर उसके अंग-अंग का भली-भाँति विश्लेषण करते हैं, क्या यह बिना किसी नियम के, जिस प्रकार जंगलों में झाड़-झंखाड़ उगते हैं, उस प्रकार मनुष्य-समाज में उत्पन्न हुई; क्या यह उन जंगली जातियों की बोली से आरम्भ हुई जिसमें किसी मौखिक या लिखित साहित्य का पता नहीं चलता; क्या यह आदि काल में कविता के रूप में प्रकट हुई या गद्य रूप में; या धर्माचार्यों, नाना कवियों तथा ओजस्वी वक्ताओं ने इसे सुन्दर, सुललित और शक्तिशाली बनाया; या इसमें कभी उच्च साहित्य का निर्माण भी हुआ था; इसमें उच्च साहित्य का कुछ प्रभाव रह भी गया

है? और देखिए, केवल राजनीतिक इतिहास की नाना घटनाओं से ही हम यह जान सकते हैं कि क्या कभी किसी दूसरी बिलकुल भिन्न भाषा बोलने वाली जाति से किसी विशेष भाषा-भाषी जाति का सम्पर्क हुआ या नहीं? उक्त सम्पर्क कितने लम्बे समय तक होता रहा? इन भिन्न-भिन्न जातियों में सभ्यता में कौन एक दूसरी से उच्चतर रही होगी? कौन जाति विजेता के रूप में आयी और विजित जाति कौन थी? इन दो जातियों में किसने विशेष देश के विधि-विधान, मत-सम्प्रदाय और नाना कलाओं का स्थापन किया? किस जाति ने राष्ट्र के भीतर सबसे अधिक संख्या में गुरु तथा शिक्षक पैदा किये? किसने लोकप्रिय कवियों तथा शायरों को जन्म दिया है और किसने जनता के ऊपर सबसे अधिक प्रभाव डालनेवाले सफल वक्ताओं को उत्पन्न किया? ये सब समस्याएँ ऐतिहासिक ढंग की हैं और वह विज्ञान, जिसे ऐतिहासिक स्रोतों से इतना अधिक ज्ञान उद्धृत करना या लेना पड़ता है, भौतिक विज्ञानों की चौहद्दी के भीतर परस्पर-विरोध का आभास देता है।

उक्त कथन के उत्तर में, निश्चय ही, यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि भौतिक विज्ञानों की मंडली के भीतर मनुष्य के इतिहास से इतना अधिक सम्पर्क रखनेवाला भाषा-विज्ञान के अतिरिक्त अन्य कोई विज्ञान नहीं है। पर, भौतिक अन्वेषण की कई अन्य शाखाओं और मनुष्य के इतिहास के बीच इस प्रकार का अति घनिष्ठता का सम्पर्क, भले ही वह भाषा-विज्ञान के सम्पर्क के मुकाबिले कम हो; दिखाया और प्रमाणित किया जा सकता है। जैसे प्राणि-शास्त्र (Zoology) को ही ले लीजिए; इतिहास के किस विशेष युग में और पृथ्वी के किस विशेष भाग में तथा किस प्रयोजन से विशेष-विशेष जन्तुओं का पालन-पोषण किया गया और वे समाज में पालतू रूप में रखे गये—यह जानना बहुत-कुछ आवश्यक है। प्राणि-वंश-विज्ञान (Ethnology), जिसके विषय में यहां यह कहना उचित होगा कि यह भाषा-विज्ञान से बहुत मिलता-जुलता एक विज्ञान है, इसके विषय में यह बताना कि यूरोप के हंगरी देश की मंगोलियन जाति पर काकेशसवालों का क्या प्रभाव पड़ा है, अथवा यह बताना कि तुर्की में तातार जाति पर उक्त काकेशस की क्या छाप पड़ी, दुरूह है। इसके लिए हमें यह ज्ञान प्राप्त करना पड़ेगा कि मंगोलियन और तातारी जातियों ने यूरोप की जो यात्राएँ कीं और वहां जो अपनी बस्तियाँ बसायीं उनके विषय में जो लिखित कागज-पत्र या पुस्तकें मिलती हैं, उनमें क्या लिखा है? और देखिए कि उद्भिद्-विज्ञान का पण्डित मड़ुए के तरह के एक अन्न की नाना जातियों (rye) की जब तुलना करता है तो उसे उनकी अपनी-अपनी विशेषताओं को समझने और

समझाने में कठिनता मालूम पड़ती, है, जब तक कि उसे यह न मालूम हो कि यूरोप तथा संसार के नाना देशों में यह अनाज सैकड़ों वर्षों से उगाया जा रहा है और बहुत-से देशों में, उदाहरणार्थ काकेशस पर्वत को ही ले लीजिए, वहाँ यह जंगलों में जंगली अनाज के रूप में पैदा होता है। भिन्न-भिन्न जातियों की तरह पौधे भी अपने अनुकूल जलवायु से युक्त भिन्न-भिन्न देशों में अपना घर कर लेते हैं। ग्रीस में ककड़ी का पैदा होना या इटली में संतरा और पदम नामक फलों का उगना, इंग्लैंड में आलुओं की खेती और स्पेन आदि में अंगूर का बहुतायत से होना केवल फलों के इतिहासकार द्वारा ही भली भाँति समझाया जा सकता है। इस कारण से भाषा के इतिहास तथा मनुष्य के इतिहास के बीच परस्पर में जो अधिक घनिष्ठ संबंध है वह इतना यथेष्ट नहीं है कि भाषा-विज्ञान को भौतिक विज्ञानों के दायरे से बाहर कर सके।

इतना ही नहीं, यह भी भली भाँति प्रमाणित किया जा सकता है कि यदि हम भाषा-विज्ञान की ठीक-ठीक परिभाषा करें तो यह विज्ञान पूर्णतया इतिहास से अपने को पूर्ण स्वतंत्र घोषित कर सकता है। यदि हम इंग्लैण्ड की भाषा के विषय में कुछ वर्णन करेंगे तो निःसन्देह हमें ब्रिटिश द्वीपों के राजनीतिक इतिहास के विषय में कुछ न कुछ जानना ही पड़ेगा, और तभी हम अंगरेजी भाषा की वर्तमान अवस्था का परिचय प्राप्त करने में समर्थ होंगे। उक्त भाषा का इतिहास प्राचीन ब्रिटन जाति के साथ-साथ आरंभ होता है। यह जाति कैल्टिक भाषा की एक बोली बोलती थी। इसके बाद हम देखते हैं कि सैक्सन लोगों ने इस देश को जीता। इसके बाद कुछ समय डेनिश लोगों के आक्रमण निरंतर होते रहे और तब नारमन लोगों ने इस देश को जीतकर अपना राज्य जमाया। इतिहास के उक्त कालों का अध्ययन करने के बाद हम यह जान पाते हैं कि इन राजनीतिक घटनाओं ने अंगरेजी भाषा के आकार-प्रकार पर क्या-क्या प्रभाव डाला तथा इसमें कितना भाग ले रखा है। ऐतिहासिक काल में इंग्लैण्ड की भाषा निम्न प्रकार से एक के बाद दूसरी आती रही—कैल्टिक, सैक्सन, नारमन और अंगरेजी भाषाएं। अब यदि अंगरेजी भाषा के इतिहास की बातें करने लगें तो हम बिलकुल भिन्न क्षेत्र में प्रवेश कर जाते हैं। अंगरेजी भाषा कैल्टिक कभी नहीं रही, कैल्टिक भाषा का विकास होकर सैक्सन भाषा नहीं बनी; न ही सैक्सन ने नारमन भाषा का रूप धारण किया और न ही इस नारमन से अंगरेजी भाषा निकली। कैल्टिक भाषा का इतिहास वर्तमान समय तक निरंतर बहता चला जा रहा है। यह कोई महत्त्व की बात नहीं है कि यह कैल्टिक ब्रिटिश द्वीपों के सभी निवासियों द्वारा बोली जाय या इसे केवल वेल्स, आयरलैण्ड और स्काटलैण्ड

के बहुत थोड़े से लोग आज भी बोल रहे हैं। प्रचलित भाषा, भले ही यह देश में चाहे कितने ही कम आदमियों द्वारा बोली जाती हो, जीवित मानी जाती है और उसका उक्त देश में वास्तविक अस्तित्व स्वीकार किया जाता है। वह बूढ़ी स्त्री, जो कैल्टिक बोलनेवालों में अन्तिम नारी थी और अब जिसका स्वर्गवास हो चुका है, वह जब तक जीवित थी, कार्नवाल अंचल की प्राचीन भाषा की अपने व्यक्तित्व से रक्षा कर रही थी। इस समय उसके प्रदेश के लोग यह विचार कर रहे हैं कि उसकी स्मृति में स्मारक खड़ा किया जाय। उसके साथ कैल्टिक भाषा मरी। एक कैल्ट जाति का व्यक्ति अपने को अंगरेज कहे और एक कैल्ट और एक अंगरेज का रक्त-मिश्रण हो जाय तो भी वर्तमान समय में कौन बता सकता है कि इंग्लैण्ड के निवासियों में कैल्टिक और सैक्सन रक्त के सम्मिश्रण का अनुपात क्या है? यह चाहे जो हो, किन्तु भाषाओं का इस प्रकार का सम्मिश्रण कभी नहीं होता। ब्रिटिश द्वीप-पुंज में उसके निवासियों द्वारा बोली जानेवाली भाषा का नाम आप चाहे जो रखें, इससे कुछ बनता बिगड़ता नहीं, भले ही इसका नाम अंगरेजी या ब्रिटिश या सैक्सन रखें, इसकी परवाह नहीं। अंगरेजी भाषा के विद्यार्थी की दृष्टि से यह ट्यूटानिक है और ट्यूटानिक के सिवा अन्य कोई भाषा नहीं। जीव-शास्त्री (physiologist) यह आपत्ति खड़ी कर सकता है कि अनेक स्थलों में अंगरेजी भाषा का ढांचा कैल्टिक जाति के ढंग पर बना है; वंशपरम्परा शास्त्र का पण्डित यह आपत्ति कर सकता है और साथ ही यह सिद्ध कर सकता है कि अनेक अंगरेजी परिवारों की बाँहें नारमन मूल से आयी हैं; किन्तु भाषा का ज्ञान प्राप्त करने वाला व्यक्ति इस विषय पर अपने ही निश्चित रास्ते पर चलेगा। उसके लिए यह ऐतिहासिक अध्ययन और ज्ञान कि ब्रिटेन में बहुत समय पूर्व कभी कैल्टिक निवासी अपनी भाषा बोलते थे और उनकी भाषा का कुछ अंश अंगरेजी भाषा में आ गया है, आवश्यक है। इसी प्रकार सैक्सनों, डेनमार्क निवासियों और नारमन लोगों के आक्रमणों का ज्ञान भी उपयोगी है। यह सब होने पर भी, यद्यपि प्राचीन भाषाओं के सभी कागज-पत्र और प्रमाण भस्म कर दिये जायं और उनका ढाँचा समाप्त कर दिया जाय, तो भी अंगरेजी भाषा चाहे वह एक निरक्षर किसान के बच्चे की ही क्यों न हो, उसके द्वारा ही अपना सारा इतिहास उगलने में समर्थ होगी। यदि उसकी भाषा भाषाशास्त्र के तुलनात्मक व्याकरण के नियमों के अनुसार चीरी और फाड़ी जायगी तो वह अपने सब रहस्य खोल देगी। बिना इतिहास की सहायता के अन्वेषक जान जायगा कि अंगरेजी ट्यूटानिक भाषा है और डच तथा फीजियन भाषाओं की भाँति यह निम्न-जर्मन (Low-German) शाखा

से संबंध रखती है; साथ-साथ उसे यह भी पता चल जायगा कि उच्च जर्मन (High German), गौथिक और स्कैण्डिनेवियन (स्वीडिश, नारवेजियन आदि भाषाओं) की शाखाओं के साथ यह ट्यूटानिक वर्ग का निर्माण करती है; वह यह भी समझ लेगा कि ट्यूटानिक वर्ग, उस इंडो-यूरोपियन (Indo-Europian=भारोपीय) या आर्य भाषाओं के परिवार में है, जिसके भीतर कैल्टिक, स्लैवोनिक (Slavonic= रूस, पोलैण्ड आदि की भाषाएं), ग्रीक, रोमन, ईरानी और भारतीय वर्ग की भाषाएं शामिल हैं। भाषा-विज्ञान का अध्ययनकर्ता अंगरेजी शब्द-कोश के भीतर अपनी ही जांच-पड़ताल द्वारा इस बात को खोज निकालेगा कि इसमें कैल्टिक, नार-मन, ग्रीक और लैटिन भाषाओं से बहुत-सी सामग्री ली गयी है, किन्तु अंगरेजी भाषा के सजीव ढाँचे में विदेशी रक्त की एक भी बूंद प्रविष्ट होने नहीं पायी। व्याकरण, जिसे हम किसी भाषा की आत्मा या रक्त कह सकते हैं, वह ब्रिटिश द्वीप-पुंज में बोली जानेवाली अंगरेजी में उतना ही शुद्ध और सम्मिश्रण से रहित है जैसा विशुद्ध यह तब था जब एंगेल (Angle), सैक्सन और जूट लोग यूरोप के महाद्वीप में जर्मन महा-सागर के तट पर रहते हुए अपनी भाषा बोल रहे थे। भाषा-विज्ञान को भौतिक विज्ञानों की चौहद्दी के भीतर प्रवेश कराने पर विचार करने तथा उसके विरुद्ध उठायी गयी आपत्तियों का खण्डन करने से हम जिन परिणामों पर पहुँचे हैं उनका फिर से निदर्शन कराना यहां उपयोगी रहेगा। हम पहले बता चुके हैं कि जब शब्द-शास्त्र भाषा को अपने उद्देश्य पर पहुँचने का साधन समझता है तो तुलनामूलक भाषाशास्त्र स्वयं भाषा को वैज्ञानिक शोध का अन्तिम लक्ष्य समझता है। इस नये विज्ञान का उद्देश्य केवल एक भाषा का अध्ययन और शोध नहीं है। यह तो नाना भाषाओं, और अन्त में सभी भाषाओं का अध्ययन करता है। मनुष्य की वाणी का वैज्ञानिक रूप से अध्ययन करने के समय होमर की भाषा उतनी ही अधिक दिलचस्प लगती है जितनी कि अफ्रीका के अशिक्षित होटेण्टो लोगों द्वारा बोली जानेवाली भाषा।

दूसरी बात, जो हमने पहले कही है, वह यह है कि किसी भाषा का पहले भाषा-शास्त्र की दृष्टि से अध्ययन करने और उस भाषा के रूपों तथा अन्य तथ्यों का सावधानी से विश्लेषण करने के बाद अत्यन्त महत्त्वपूर्ण दूसरा कदम यह है कि मान-वीय भाषाओं के सभी भेदों का भली-भाँति से वर्गीकरण किया जाय। उक्त जो दो अति उपयोगी काम बताये गये हैं, उन्हें सफलतापूर्वक सम्पन्न कर लेने पर ही यह स्पष्ट करना सत्य पर पहुँचने के लिए उचित होगा कि हम उन समस्याओं पर शोध करें

जो सभी भौतिक शोधों का आधार बनी हुई हैं। तब हम यह विचार करेंगे कि भाषा क्या तत्त्व है? यह कहां से आयी और कैसे उत्पन्न हुई, आदि।

तीसरी बात, जो हमने आप लोगों के सामने उपस्थित की है, वह यह है कि जिन्हें हम **इतिहास** और **वृद्धि** या **विकास** कहते हैं, उनके बीच क्या अन्तर है? हमने पहले वृद्धि या विकास का जो सच्चा अर्थ भाषा-विज्ञान के क्षेत्र में उपयुक्त है, उसे आप लोगों के सामने रख दिया है, और उस प्रसंग में यह स्पष्ट कर दिया है कि **वृद्धि** या **विकास** मनुष्य की मनमानी और घरजानी से बिलकुल स्वतंत्र है। यह **विकास** उन नियमों से अनुशासित होता है जिनका हम बहुत सावधानी के साथ निरीक्षण परीक्षण करने के बाद आविष्कार करते हैं। अन्त में जाकर ये नियम अन्य विज्ञानों से संबंधित व्यापक उच्चतर नियमों से मिलते हुए पाये जाते हैं। ये मनुष्य की विचार-धारा तथा मनुष्य की वाणी के अंग-प्रत्यंग का शासन करते हैं। यद्यपि हमें यह स्वीकार करना पड़ता है एवं अपनी शोध में हमको यह तथ्य मालूम हुआ है कि इसका संबंध किसी भी अन्य भौतिक विज्ञान की अपेक्षा भाषा-विज्ञान के साथ अधिक घनिष्ठ है। हमने यह भी पता चला लिया है कि यदि हम इस विषय में ठीक और शुद्ध भाषा का प्रयोग करें तो भाषा-विज्ञान इस ऐतिहासिक सहायता के बिना भी अपना उद्देश्य पूरा कर सकता है। हम यह भी देख चुके हैं कि भाषा की चीर-फाड़ या विश्लेषण और उसका वर्गीकरण, भाषा के भीतर ही जो प्रमाण मिलते हैं, उनकी सहायता से किया जा सकता है; यह कार्य उन व्यक्तियों, परिवारों, कुलों, वंश-समूहों (tribes), जातियों से, जो कोई विशेष भाषा बोलती रही होंगी, किसी प्रकार का संबन्ध बिना जोड़े, विशेष कर शब्दों के ध्वनि-परिवर्तन और व्याकरण के रूपों के बलबूते पर भी हल किया जा सकता है।

भाषा पर ऊपर लिखी गयी विचारधारा पर बोलते हुए हमने दो स्वयंसिद्ध नियमों का प्रतिपादन किया है। भाषा संबंधी अपनी शोध को आगे बढ़ाते हुए हमें बार-बार इन नियमों का उल्लेख करना पड़ेगा। पहला नियम घोषित करता है कि भाषा-विज्ञान में व्याकरण अत्यन्त महत्त्व का तत्त्व है, जिसे छोड़ हम भाषा के विषय में विचार करते हुए कुछ काम ही नहीं कर सकते, और इस कारण किसी भाषा का व्याकरण सब भाषाओं में वर्गीकरण की बुनियाद माना जाता है। बिना इसके भाषा-विज्ञान का घर खड़ा ही नहीं हो सकता। दूसरा नियम यह तथ्य स्पष्ट करता है और साफ-साफ बताता है कि मिश्रित भाषा होती ही नहीं और ऐसी भाषा के अस्तित्व को वह जोरदार शब्दों में अस्वीकार करता है।

जब हम इन दोनों नियमों पर आगे सूक्ष्म और विस्तारपूर्वक विचार करेंगे तो हम देखेंगे कि ये दोनों स्वयंसिद्ध नियम एक ही हैं। यदि हम दूसरी दृष्टि से देखें तो यह विरोधाभास सामने खड़ा होता है कि संसार में एक भी भाषा ऐसी नहीं है जिसे हम मिश्रणयुक्त भाषा न कह सकते हों। कोई जाति या वंश-समूह संसार की अन्य जातियों से कभी इस प्रकार सम्पूर्णतया अलग नहीं रहा कि उसकी जनता में विदेशियों के कुछ न कुछ शब्द आकर घर न कर गये हों। कई उदाहरण ऐसे मिलते हैं कि इन विदेशी शब्दों ने किसी देश की जनता की भाषा का सारे का सारा स्वदेशी रूप पलट दिया है और उस देश की भाषा की शब्द-सम्पत्ति पर अपना आधिपत्य जमा लिया है और देशी शब्दों से विदेशी शब्द बहुत अधिक हो गये हैं। तुर्की भाषा एक तूरानी (मंगोल) बोली है, इसका व्याकरण भी विशुद्ध तातारी या तूरानी है। मुसलमानी धर्म स्वीकार करने से पहले तुर्कों के पास बहुत कम साहित्य पाया जाता था, और उनकी सभ्यता बहुत संकुचित या संकीर्ण थी। अब देखिए कि मुसलमानी धर्म के प्रवर्तक हजरत मुहम्मद की भाषा अरबी थी, यह अरबी सेमिटिक (Semitic) परिवार की एक शाखा है, जिसका इबरानी और सीरिया की भाषाओं से घनिष्ठ संबंध है। तुर्कों ने अरब लोगों से क़ुरान पढ़ी और मुसलमानी धर्म तथा उसके नियमों को सीखा; यद्यपि तुर्कों ने अरबों को विजित किया, किन्तु उनसे कई विज्ञान और कलाएं ग्रहण कीं। अरब लोग तुर्कों से सभ्यता में अधिक उन्नत अवस्था में थे, अतः तुर्कों को उनसे ज्ञान प्राप्त करना पड़ा। उस समय तुर्कों के लिए अरबी उतनी ही आवश्यक हो गयी जितनी कि मध्य युग में जर्मन लोगों के लिए लैटिन अति आवश्यक भाषा बन गयी। और आज यह हाल है कि तुर्की का कोई अच्छा लेखक अरबी के उच्च स्तर के विद्वानों की पारिभाषिक शब्दावली में से सहज रूप में ही शब्द लिये बिना तुर्की में ऊंचे दर्जे के ग्रन्थ लिखने में समर्थ ही नहीं होता है। और तमाशा देखिए कि अरब के लोग जब संसार भर में मुसलमानी धर्म का जोरशोर से प्रचार कर रहे थे और नाना देशों को जीतने में **लगे हुए** थे तो स्वयं अरबी में ज्ञान-विज्ञान, कला-कौशल, साहित्य और शिष्टाचार के उच्च भावों और सत्यों को व्यक्त करनेवाले शब्द नहीं थे; इन्होंने ईरानियों को जीता; उन्हें इस्लाम धर्म में लिया और ये शब्दों के विषय में उनके[१] चेले हो गये।

१. Reinand, Me'moire sur l'Inde, **पृष्ठ ३१०।**

इन ईरानियों का अरबों से वही संबंध रहा जो विजित ग्रीकों का कभी रोमन लोगों के साथ रहा था। और भी तमाशे की बात यह है कि ईरानी जाति एक ऐसी भाषा बोलती है जो न तो अरबी की तरह सेमिटिक है और न ही तुर्की भाषा की भाँति तूरानी है; यह भारोपीय या आर्य परिवार की भाषा की एक शाखा है। उक्त कारण से अरबी भाषा में ईरानी शब्दों की भरमार हो गयी और ये ईरानी शब्द अरबी भाषा द्वारा तुर्की भाषा में भर गये। इसका परिणाम यह हुआ है कि हमारे समय में कुस्तुंतुनियां के उच्च पदाधिकारी जो भाषा बोलते हैं उसमें अरबी और ईरानी शब्द तुर्की शब्दों से बहुत अधिक पाये जाते हैं। यह भाषा **'उस्मान-ली'** कही जाती है। इसे साधारण जनता समझने में असमर्थ है। वह दूसरी ही बोली बोलती है। इन विदेशी शब्दों के व्यवहार से वहाँ का व्याकरण नहीं बदला; और वहाँ की ध्वनि पुरानी ही तरह की रह गयी है।

अंगरेजी भाषा ऐसी है और शायद ही संसार की कोई अन्य भाषा ऐसी हो, जिसमें साफ दिखाई देता है कि इसके शब्द अत्यन्त सुदूरवर्ती देशों तथा स्रोतों से आये हैं। इंग्लैण्ड की भाषा के बाजार में, ऐसा मालूम होता है कि, संसार भर के सब देश अपने अपने शब्दों से तैयार किया हुआ नया माल बेचने को ला रहे हैं। अंगरेजी के शब्दकोश में आपको लैटिन, ग्रीक, इबरानी, कैल्टिक, सैक्सन, डेनमार्क की भाषा, फ्रेंच, स्पेनिश, इटालियन, जर्मन—इतना ही क्यों, स्वयं हिन्दुस्तानी, मलय और चीनी शब्द अगल-बगल में बैठे हुए मिलेंगे। केवल शब्दों के प्रमाण पर यदि हम अंगरेजी भाषा का वर्गीकरण करना चाहें तो यह काम असंभव सिद्ध होगा, क्योंकि किसी भी भली प्रकार सिद्ध किये गये भाषापरिवार या उसकी शाखा से यह अपनी समानता न दिखा सकेगी। छोटी-छोटी भाषाओं को, इस स्थान पर, हम अपने विचार से दूर रखें, तो भी हमें स्पष्ट दिखाई देता है कि यदि हम ट्यूटानिक भाषा की तुलना लैटिन, निओ-लैटिन (Neo-Latin) या नारमन भाषा के अंशों से करें, जो अंगरेजी में आ गये हैं, तो हमें पता चलेगा कि इंग्लैण्ड में ही बोले जानेवाले सैक्सन शब्दों पर उक्त भाषाओं के शब्दों का राज्य और बाहुल्य है। यह बात हमारे अधिकांश श्रोताओं को विश्वास योग्य न जँचेगी, तो भी आप अंगरेजी भाषा के किसी ग्रन्थ का एक पन्ना उठा लीजिए और उसके भीतर विशुद्ध सैक्सन एवं लैटिन स्रोतों से आये हुए शब्दों को गिनिए तो निःसन्देह आपको मालूम हो जायगा कि इस तराजू में सैक्सन शब्दों की तरफ का पलड़ा झुक रहा है। अंगरेजी भाषा में निश्चय-अनिश्चयवाचक सर्वनाम (Articles), साधारण सर्वनाम, उपसर्ग,

प्रत्यय (हिंदी का तथाकथित 'परसर्ग') और सहायक क्रियाएँ, जो सभी सैक्सन भाषा के शब्दों के परिवर्तित रूप हैं, एक पन्ने के भीतर बार-बार आते हैं और दोहराये जाते हैं। इस दृष्टि से **हाईक्स** ने बताया है कि अंगरेजी शब्दकोश के दस भाग करने पर नौ हिस्से सैक्सन शब्दों से भरे पड़े हैं, क्योंकि 'प्रभु की प्रार्थना' (Lord's Prayer) में केवल तीन शब्द ऐसे मिलते हैं जिनका मूल लैटिन है। **शैरान टर्नर** जिसने अंगरेजी के शब्दों का निरीक्षण-परीक्षण अंगरेजी के सैकड़ों ग्रन्थ पढ़कर बड़े व्यापक रूप से किया है, वह इस निदान पर पहुँचा था कि नारमन शब्दों का सैक्सन शब्दों से जो अनुपात अंगरेजी भाषा में पाया जाता है वह चार और छः का है, अर्थात् अंगरेजी में जहां नारमन के चार शब्द हैं वहां सैक्सन के छः शब्द मिलते हैं। एक दूसरे विद्वान् लेखक ने हिसाब लगाया है कि अंगरेजी भाषा में सब मिलाकर अड़तीस हजार शब्द हैं और इनमें से, उसके अनुमान के अनुसार, तेईस हजार शब्द सैक्सन के हैं और पंद्रह हजार शब्द ग्रीक तथा लैटिन जैसी प्राचीन भाषाओं से आये हैं। यदि हम और भी ठीक तरह से इन शब्दों को गिनें और **राबर्टसन** तथा **वेबूसटर** के शब्दकोशों के एक-एक शब्द को गिन डालें तो इस प्रकार हिसाब लगाकर **मोशिए टामरल** ने यह तथ्य सिद्ध कर दिया है कि ४३,५६६ शब्दों में से २९,८५३ शब्द प्राचीन ग्रीक और रोमन भाषाओं से आये हैं और १३,२३० शब्द टयूटानिक हैं तथा शेष शब्द भिन्न-भिन्न भाषाओं से लिये गये हैं।[1] इस कारण अंगरेजी के कोशों के प्रमाण पर और अंगरेजी को एक खिचड़ी भाषा मानकर फ्रेंच, इटालियन और स्पेनिश के साथ-साथ अंग्रेजी भाषा को भी रोमन या नव्य लैटिन बोली मानना पड़ेगा। इस पर भी यह बात ध्यान देने योग्य है कि भाषा के शब्दकोश में भले ही नाना भाषाओं के शब्दों का सम्मिश्रण मिले, किन्तु जहां तक किसी भाषा के व्याकरण का प्रश्न है, उसमें भाषाओं के शब्दों के रूप अपनी विशेष भाषा के रूपों के अनुसार ही चलेंगे। बहुत-से ईसाई प्रचारकों ने पादरी **हरवास** को बताया था कि अठारहवीं सदी के मध्यकाल

१. कुछ बहुत ही ठीक-ठीक आंकड़े, जिनमे अंगरेजी भाषा के नाना लेखकों के ग्रन्थों में आये हुए सैक्सन और लैटिन शब्दों का विशुद्ध अनुपात है, मार्श साहब के *Lectures on the English Language* (पृष्ठ १२० और १८१ तथा बाद के) में दिये गये हैं।

में **एराकान** (Araucan) के लोग शायद ही कोई ऐसा शब्द बोलते हों जो स्पेनिश भाषा का न रहा होगा, यद्यपि उन्होंने व्याकरण के रूपों और वाक्य रचना में अपनी देशी बोली के ही सब रूप रखे।[1] यही कारण है कि संसार में प्रायः सभी भाषाओं का जब वर्गीकरण किया जाता है तो उनका मूल आधार व्याकरण समझा जाता है। भाषाओं में परस्पर कितना निकट या दूर का संबंध है, इसका मापदण्ड भी व्याकरण ही बताया जाता है। इसलिए उक्त बातों का परिणाम स्वभावतः यह निकलता है कि वर्गीकरण और सारे भाषा-विज्ञान में खिचड़ी बोली या भाषा का अस्तित्व स्वीकार करना असम्भव है।[2] ऐसा सम्भव हो सकता है कि हम अंगरेजी भाषा में पूरे वाक्य के वाक्य ऐसे लिख डालें कि उनके भीतर सब के सब शब्द

१. हरवास-कृत 'काटालोगो' प्रथम खण्ड, पृष्ठ १६ और २३।

हिन्दी भाषा को ही ले लीजिए; उसमें अरबी फारसी, तुर्की, अंगरेजी, फ्रेंच, पुर्तगाली, चीनी आदि भाषाओं के शब्द सम्मिलित हैं, ये शब्द कोशों में मिलते हैं, जैसे फारसी माह, कबूतर, मेह, हर-एक आदि; अरबी तलब, इश्तहार, हरारत आदि; तुर्की चाकू, कैंची आदि; अंग्रेजी रेल, मील, टिकट, ब्लाउज आदि; फ्रेंच कारतूस, गराज आदि; पूर्तगाली नीलाम, बाल्टी, मस्तूल आदि; चीनी जैसे लीची, लुकाट, आदि शब्द हिन्दी में आ गये हैं; किन्तु हम जब हिन्दी लिखते हैं तो कहते हैं 'मीलों तक चले गये; लीचियों का ढेर!' 'सिनेमा वालों ने इश्तहारों की धूम मचा दी,' 'लुकाटों, का मौसम आ गया है, इन वाक्यों में विदेशी शब्दों का प्रयोग हिन्दी व्याकरण के अनुसार हुआ। इश्तहारों का अरबी रूप इश्तहारात है जो अरबी व्याकरण के अनुसार है तथा मीलों का अंग्रेजी रूप miles है, इनका प्रयोग हिन्दी में हिन्दी व्याकरण के अनुसार होता है। यहाँ मैक्समूलर साहब का यही अभिप्राय है। अनु०

२. उदाहरणार्थ रामचरितमानस में कुछ अरबी और फारसी भाषाओं के शब्द आये हैं किन्तु हम उनको विदेशी नहीं कहेंगे, क्योंकि वे हमारे व्याकरण के अनुसार ही चलते हैं, अरबी या फारसी व्याकरण के अनुसार नहीं। एक उदाहरण लीजिए; हिन्दी में 'कि' शब्द का व्यवहार बहुत होता है, यह फारसी शब्द है। 'कि' अब यह हिन्दी का इतना अपना हो गया है कि इसे हिन्दी से हटा दिया जाय तो हिन्दी लिखने वालों के लिए वाक्यों का लिखना कठिन हो जाय। ऐसे कई उदाहरण दिये जा सकते हैं। अनु०

लैटिन और लैटिन से निकली अन्य भाषाओं के भरे पड़े हों। तो भी उसके भीतर अंगरेजी व्याकरण के जो-जो रूप रहेंगे उनमें ट्यूटानिक भाषा की रचना की, परम्परा की ऐसी छाप रहेगी कि हम उन्हें पहचानने में नाम मात्र-भूल नहीं कर सकते। हम आज जिसको अंगरेजी भाषा का व्याकरण बताते हैं, वह सम्बन्धकारक, एकवचन, उत्तम-मध्यम-अन्य पुरुषों के थोड़े-से रूप, संज्ञाओं के कर्त्ता कारक, बहुवचनों के रूप, तुलना, तारतम्य और क्रियाओं के वर्तमान, भूत व भविष्य काल हैं। अब और देखिए कि अन्य पुरुष एक वचन का सामान्य वर्तमान काल में जो केवल एक स् (S) लगता है, यह इस बात का अकाट्य प्रमाण है कि जब हम नाना भाषाओं का वैज्ञानिक वर्गीकरण करेंगे तो भले ही अंगरेजी भाषा की शब्दावली के भीतर एक भी शब्द सैक्सन मूल का शेष न रह गया हो, फिर भी अंगरेजी भाषा सैक्सन वर्ग की गिनी जायगी और सैक्सन भाषा आर्यभाषा वंश की, ट्यूटानिक परिवार की एक शाखा मानी जायगी। प्राचीन तथा अल्प विकसित भाषाओं में व्याकरण या मनुष्य की वाणी का समाज की बोलचाल में बंधा रूप अंगरेजी भाषा से बहुत अधिक उन्नत रूप में पाया जाता है; और इस कारण व्याकरण, एक भाषापरिवार के इधर-उधर फैले हुए सदस्यों में जो पारिवारिक समानता रहती है उसे प्रत्यक्ष दिखलाने के लिए पथप्रदर्शक का काम करता है। ऐसी भी कई भाषाएँ हैं जिनके बीच जिसे हम व्याकरण कहते हैं वह मिलता ही नहीं, अर्थात् उनमें व्याकरण नदारद रहता है। एक उदाहरण लीजिए, प्राचीन चीनी भाषा में व्याकरण था ही नहीं। कुछ ऐसी भाषाएँ भी हैं जिनमें व्याकरण पैदा हो रहा है और आगे बढ़ रहा है। और भी अधिक शुद्ध रूप में यदि हम यह बात कहें; उन भाषाओं की शब्द-सम्पत्ति धीमे-धीमे समाज द्वारा बांधे हुए रूपों में ढल रही है। इन भाषाओं में वर्गीकरण के नये सिद्धान्त लागू करने पड़ेंगे। ये सिद्धान्त ऐसे होंगे जिन्हें भौतिक विज्ञान के अध्ययन ने सुझाया हो। ऐसी परिस्थिति में हमें ध्वनि-परिवर्तन के मापदण्ड से तुलना करके संतोष कर लेना होगा, क्योंकि इनमें वंशवृक्ष या वंश-परम्परा का संबंध स्थापित करना प्रायः असम्भव ही होगा।

मैं आशा करता हूँ कि मैंने आप लोगों के सामने, भाषा-विज्ञान के संबंध में जो थोड़ी आपत्तियां की जाती हैं और जो भाषा-विज्ञान को भौतिक विज्ञानों के दायरे के भीतर स्थान पाने के अपने अधिकार से वंचित करने का भय दिखाती हैं, उनका भली प्रकार समाधान कर दिया है। अगले भाषण में मैं बताऊँगा कि अपने प्रारम्भ से लेकर वर्तमान समय तक भाषा-विज्ञान का इतिहास किस प्रकार आगे

बढ़ा और किस प्रकार भाषा-विज्ञान, विज्ञान की तीन दशाओं—निरीक्षण और अनुभव के आधार पर प्राप्त ज्ञान (Empirical), वर्गीकरण तथा सैद्धान्तिक दशाओं के भीतर होता हुआ प्रगति की ओर चला। ये तीनों दशाएं सभी भौतिक विज्ञानों के बचपन, युवावस्था और प्रौढ़ता के लक्षण माने जाते हैं।

तीसरा भाषण

भाषा-विज्ञान की प्रारम्भिक अवस्था

आज के भाषण में हम भाषा-शास्त्र की ऐतिहासिक प्रगति के पथ का अनुसरण करेंगे, अर्थात् इस तथ्य पर प्रकाश डालेंगे कि इसके विकास की तीन दशाओं, का, जिनके लिए वैज्ञानिक शब्द **निरीक्षण-परीक्षण, वर्गीकरण** और **सिद्धान्त पर पहुँचना है,** इतिहास कहेंगे। साधारण नियम यह है कि प्रत्येक भौतिक विज्ञान का श्रीगणेश, उसके विषय की चीर-फाड़ या विश्लेषण से होता है, इसके बाद वह अवस्था आती है जिसे वैज्ञानिक शब्दों में **वर्गीकरण** कहा जाता है और इसके बाद, अन्त में, उसके सामान्य सिद्धान्तों पर पहुँचते हैं। किन्तु, जैसा कि मैंने अपने पहले भाषण में भली भाँति दिखला दिया था कि इस नियम के बहुत-से अपवाद भी मिलते हैं, और यह बात कुछ असाधारण नहीं है कि हम दार्शनिक विचारधारा के अन्तर्गत जो विशेष करके इस अंतिम अथवा सैद्धान्तिक अवस्था की बातें करते हैं, भौतिक विज्ञानों के क्षेत्र में भी उस समय से बहुत पहले, जब कि आवश्यक प्रमाणों का न तो संग्रह किया गया था, न ही उन्हें क्रमबद्ध करके सजाया गया था, उक्त विचारधारा चलने लगी थी। इसके अनुसार हम यह देखते हैं कि उन दो देशों में, जहां हम इसकी उत्पत्ति और इतिहास के क्रम का निरीक्षण साफ-साफ कर सकते हैं—भारतवर्ष तथा ग्रीस में—बिना किसी क्रम के एकदम भाषा की प्रकृति के संबंध में उसके रहस्यों का उद्‌घाटन करने के लिए सिद्धान्तों की चर्चा छिड़ गयी थी। इन दो देशों में उस समय भाषा के तथ्यों के संबंध में उतनी ही सतर्कता रखी गयी थी जितनी कि उस आदमी में थी, जिसने ऊंट के बारे में एक लेख ही लिख डाला था, पर कभी न तो इस जानवर की सूरत ही देखी थी और न मरुभूमि का विचरण ही किया था। ब्राह्मणों ने वेदों की ऋचाओं और सूक्तों में भाषा को देवता का पद देकर उसकी महानता बहुत ऊंची कर दी। उन्होंने, जिन पदार्थों का उन्हें ज्ञान नहीं था, उन पर लिखते हुए सब को ही बहुत ऊँचा उठा दिया। उन्होंने वाणी को देवी बनाकर अपनी स्तुतियों में उसका वर्णन करते हुए लिखा है कि वाणी प्रारम्भ

से ही देवताओं के साथ रही। इसने आश्चर्य से भरे अनेक लाभ कराये और इसका नाम मात्र भाग ही मनुष्य पर प्रकट हुआ। ब्राह्मण ग्रन्थों में भाषा को गाय का रूप दिया गया है और श्वास को वृषभ का। इनके मेल से जो सन्तान उत्पन्न हुई वह मनुष्य का मन था।[1] यह भी कहा गया है कि परम पुरुष **ब्रह्म** केवल वाणी द्वारा ही जाना जा सकता है। इतना ही नहीं, स्वयं वाणी, अनेक स्थलों पर, परब्रह्म के नाम से पुकारी गयी है। किन्तु बहुत सुदूर पूर्व में वाणी के केवल मात्र अत्यन्त सुललित और सुन्दर पदों में गीत रचने के कार्य से ब्राह्मण लोग भाषा की खोज के विषय में ठीक रास्ते पर आ गये और अपनी अति आश्चर्यकारक सूक्ष्म बुद्धि से वाणी के परम पवित्र शरीर की काट-छांट या विश्लेषण करने लगे। भाषा संबंधी व्याकरण के विश्लेषण के क्षेत्र में उन्होंने जो अपूर्व सफलता प्राप्त की उसके प्रमाण ई० पू० छठी सदी से हमें स्पष्ट रूप में मिलते हैं। यह विस्मय का विषय है कि संसार की किसी जाति का व्याकरण संबंधी साहित्य प्राचीन आर्य भारतवासियों के व्याकरण के वैज्ञानिक

१: कोलब्रुक-कृत Miscellaneous Essays, प्रथम खण्ड, पृष्ठ ३२। वाक् निम्नलिखित वाक्य पद्य के रूप में उच्चारण करती है। यह वाक् वाणी की देवी है, जिसका उल्लेख ऋग्वेद के दसवें मंडल के १२५वें सूक्त में किया गया है— "मैं स्वयं बताती हूँ कि देवताओं और मनुष्यों को (क्या) प्रिय लगता है; जिस मनुष्य से मैं प्रेम करती हूँ उसे मैं बलवान् बना देती हूँ, उसको मैं ब्रह्मा बना देती हूँ, उसे मैं बहुत बड़ा ऋषि बना देती हूँ और उसे मैं महान् विद्वान् बना देती हूँ। मैं रुद्र (मेघों के गर्जन-तर्जन के देवता) के लिए धनुष की टंकार करती हूँ जिससे ब्राह्मणों से घृणा करने वाले शत्रु का वध कर सकूं। लोक-कल्याण के लिए मैं युद्ध छेड़ती हूँ। सारे आकाश और पृथ्वी में मैं ही व्याप्त हूँ; मैं अपने पिता को इस संसार के शिखर पर अपने कंधे पर रखकर ला बैठाती हूँ। समुद्र के जल में मेरी उत्पत्ति हुई थी, उस उत्पत्ति स्थान से मैं सब जीवों के बीच में आती हूँ और अपनी विशाल ऊंचाई से आकाश तक पहुँचती हूँ। मैं जब निःश्वास छोड़ती हूँ तो वह वायु के समान हो जाता है और सब प्राणियों मे फैल जाता है; इस आकाश से भी ऊपर इस हमारी पृथ्वी के बहुत परे मैं महानता में इतनी बड़ी हूँ।" म्युअरकृत Sanskrit Texts, खण्ड ३, पृष्ठ १०८, १५० में अथर्ववेद, चार, ३०; उन्नीस, ९, ३ देखो।

ज्ञान की हद तक न पहुँच सका। ब्राह्मणों को कम से कम ई० पू० पांच सौ वर्ष पहले व्याकरण का यह ज्ञान था कि भाषा का सारा संसार थोड़ी-सी इनी-गिनी धातुओं अर्थात् मूल स्रोतों पर निर्मित होता है। भाषा-विज्ञान का यह मूल सिद्धांत यूरोप भर में नहीं था। यूरोप में Henry Estienne[1] (आंरी एस्तीऐन) ने ईसा की १६वीं सदी में पहले-पहल इस सिद्धान्त के प्रतिपादन का श्रीगणेश किया था।

यद्यपि ग्रीक लोगों ने भाषा को देवता के उच्च पद पर बैठाकर उसका महान् सम्मान नहीं किया तो भी उन्होंने अपनी नाना प्राचीन दार्शनिक चिन्ताधाराओं में भाषा को सर्वोच्च सम्मान दिया। उनके नाना मतों के प्रधान-प्रधान दार्शनिकों में शायद ही कोई मिल सके जिसने भाषा की प्रकृति पर कुछ न कुछ बात न बतायी हो। संसार के बाह्य रूप अथवा प्रकृति और मनुष्य के शरीर के भीतर की दुनिया अथवा मन और आत्मा के विषय में प्राचीन ग्रीस के ज्ञानियों में आश्चर्यमय जिज्ञासा ने ज्ञान की महती प्रेरणा उत्पन्न की और इस कारण उन्होंने ज्ञान के विषय में गम्भीर भविष्यवाणियां अपने ग्रंथों में की हैं। उन्होंने प्रकृति और मन या आत्मा दोनों के स्वरूप के विषय में बहुत सुन्दर वर्णन किया है। ग्रीस के दार्शनिकों के सामने बहुत ही पहले प्रश्न उठा था, **भाषा क्या है?** उसी समय उनके हृदय में यह सवाल भी उठा था कि **कोऽहम् (मैं कौन हूँ)**? और **मेरे चारों ओर यह संसार क्या पदार्थ है?** नाना मतों के प्राचीन ग्रीक दार्शनिकों के लिए भाषा की समस्या विचार-धारा का मुख्य अंग बनी हुई थी और यह आलोचना-प्रत्यालोचना का एक सर्व-मान्य क्षेत्र थी। मानवीय वाणी के स्वरूप के विषय में उन्होंने अति प्राचीन काल में क्या-क्या विचार और अनुमान किये थे, उन पर हम आगे विचार करेंगे, जहां कि हम भाषा-विज्ञान की तीसरी या सैद्धांतिक अवस्था पर बोलेंगे।

इस समय हम प्रथम या निरीक्षण-परीक्षण की दशा संबन्धी ग्रीक भाषा के प्राचीन विद्वानों के विचारों पर एक दृष्टि डालेंगे और यहां यह कुछ संदेहजनक लगेगा कि वास्तव में उन्होंने इस दिशा की ओर क्या-क्या विचार प्रकट किये और क्या-क्या काम किये? यह भी संदेहास्पद ही है कि भाषा के निरीक्षण-परीक्षणात्मक वर्णन का क्या अर्थ होता है? वे कौन महापुरुष थे जिन्होंने भाषा के क्षेत्र में वही काम किया

१. सर जान स्टौडाॅर्टकृत Glossology (शब्दशास्त्र)। पृ० २७६,

जो मल्लाहों ने ग्रह-नक्षत्रों के विषय में किया, खान में काम करने वाले मजदूर ने खनिज पदार्थों के सम्बन्ध में किया और एक माली ने नाना पुष्पों के विषय में किया? वह पहला विद्वान् कौन था जिसने भाषा पर अपने विचार प्रकट किये और यह बताया कि भाषा को बनाने वालों को किन-किन मुख्य भागों में भेद करना पड़ता है, **नाम और कर्म** (संज्ञा और क्रिया) में क्या भेद है? निश्चयसूचक तथा अन्य सर्वनामों में क्या अन्तर है, कर्त्ता और कर्म कारकों के बीच में कौन-सी दीवारें खड़ी होती हैं, कर्तृवाच्य (Active) और कर्मवाच्य (Passive) क्रियाओं में किस ढंग का फर्क है? इन पारिभाषिक शब्दों का किसने आविष्कार किया और इनके आविष्कार का प्रयोजन क्या रहा होगा?

हमें इन समस्याओं का समाधान बहुत ही सतर्कता के साथ करना चाहिए, क्योंकि, जैसा मैं अपने दूसरे भाषण में यह संकेत कर चुका हूँ, भाषा की विशुद्ध निरीक्षण-परीक्षणात्मक छानबीन करने से पहले ग्रीस के विद्वान् दार्शनिकों ने विचारधारा और भाषा की प्रकृति के संबंध में अधिक मोटे-मोटे सिद्धांतों की जांच-पड़ताल की। इसका परिणाम यह हुआ कि बहुत-से पारिभाषिक शब्द, जो निरीक्षण-परीक्षणात्मक व्याकरण की नामावली में शामिल कर लिये गये हैं वे बने-बनाये, कटे-छँटे हमारे व्याकरणकारों को उक्त दार्शनिकों की परम्परा से मिल गये हैं। इन्हीं दार्शनिकों ने नाम और कर्म (संज्ञा और क्रिया), जिन्हें हम यदि अधिक शुद्ध रूप में कहने लगें तो कर्ता-पद और क्रिया-पद कहेंगे, हमें भाषा-विज्ञान के पारिभाषिक शब्दों में देन के रूप में दिये हैं। विचारधारा की प्रकृति को भली भाँति जानने के प्रयोजन से ही, इन दार्शनिकों ने ये पारिभाषिक शब्द, जैसे कारक, वचन और लिंग, अति ही प्राचीन समय में आविष्कृत किये थे। ये पारिभाषिक शब्द भाषा के रूपों की पूरी-पूरी छानबीन करने के कामकाजी प्रयोजन के लिए नहीं बनाये गये। इन नामों का ग्रीस की बोली जानेवाली भाषाओं में जो व्यावहारिक प्रयोग किया गया वह बाद की पीढ़ी का काम था। यह आनेवाली सन्तान भाषाओं की शिक्षक बनी और इसने पहले-पहल विचारधारा के नाना रूपों की तुलना ग्रीक भाषा के कामकाज में आनेवाले सच्चे रूपों के साथ की। भाषा के इन्हीं अध्यापकों ने अरस्तू और स्तोइकों की परिभाषावली को विचारधारा के क्षेत्र से भाषा के क्षेत्र में स्थानान्तरित कर दिया। इन्होंने तर्कशास्त्र की परिभाषावली व्याकरण के क्षेत्र में चला दी और इस प्रकार बोली जाने वाली भाषा के इस पथ-विहीन सघन वृक्षों से भरे हुए दुर्गम अरण्य में इन्होंने यातायात के लिए प्रथम मार्ग का निर्माण किया। यह काम करते समय

व्याकरणकार को इन दार्शनिकों की नामावली से ग्रहण किये हुए कई पारिभाषिक शब्दों के ठीक-ठीक माने हुए अर्थ बदलने पड़े और मोटे तौर पर भाषा के सभी तथ्यों का ज्ञान हो सकने से पहले उसे कई और शब्द भाषा की टकसाल में गढ़ने पड़े। सचमुच में, बात यह है कि नाम और कर्म, कर्मवाच्य और भाववाच्य, कर्त्ता और कर्म-कारक के बीच जो खाई है, उसे पाटने से भाषा की वैज्ञानिक छानबीन या विश्लेषण में हमको किसी प्रकार की सहायता नहीं मिली। यह भाषा-विज्ञान में भाषा समझने का केवल मात्र प्रथम प्रयास है, और कुछ नहीं; तथा इसकी तुलना मनुष्य के ज्ञान की अन्य शाखाओं की अति प्रारंभिक परिभाषावली से ही की जा सकती है। इस पर भी उस समय भाषा-शास्त्र का केवल आरम्भ हुआ था, किन्तु यह आरम्भ-काल बहुत मूल्यवान् है और यदि हम संसार के अपने बनाये हुए इतिहास के नाना ग्रंथों में उन ज्ञानियों के नामों की भली प्रकार रक्षा करते हैं, जिनके विषय में यह कहा जाता है कि उन्होंने भौतिक तत्त्वों का आविष्कार किया था, जैसे कि थेल्स, आनाक्सिमेनिस और एम्पीदोक्लीस, तो इस स्थिति में हमें भाषा के तत्त्वों का आविष्कार करने वालों के नाम भी भूलने न चाहिए। ये परम पण्डित दर्शन शास्त्र की एक बहुत ही अधिक उपयोगी और बहुत ही सफल शाखा की नींव डालने वाले हैं, और ये हैं हमारे प्रथम व्याकरणकार। इस प्रकार हम देखते हैं कि व्याकरण की अपने साधारण अर्थ में, या कहिए कि भाषा के विशुद्ध रूप-मात्र की और निरीक्षण-परीक्षणात्मक छानबीन के वर्णन की आवश्यकता इसलिए पड़ी कि अन्य सब विज्ञानों की भाँति मनुष्य और मनुष्य-समाज को अपनी प्रकृति के कारण ही इसकी प्रति दिन बड़ी कामकाजी आवश्यकता का अनुभव हुआ। पहला अमली व्याकरणकार बोल-चाल की भाषा का प्रथम अध्यापक रहा होगा; और यदि हम भाषा-विज्ञान के आरम्भ-काल को जानने की आवश्यकता समझें तो हमें यह जानने का समुचित प्रयास करना होगा कि संसार के इतिहास के किस युग में तथा किन-किन परिस्थितियों के कारण जनता ने अपनी भाषा के अतिरिक्त किसी अन्य भाषा के सीखने का विचार किया होगा। केवल उस युग में, हम देखेंगे कि भाषा का पहला कामकाजी व्याकरण बना होगा, चूंकि इससे पहले व्याकरण लिखने का विचार किसी भी विद्वान् के मन में नहीं उठ सकता। इस आरम्भिक काल में दार्शनिकों की शोधों द्वारा बहुत-सा उपकरण बना-बनाया मिल गया होगा, यद्यपि ये दार्शनिक भाषा के विषय में विशेष रस कभी न लेते थे। कुछ उपकरण एलेक्जेंड्रिया के विद्वानों के आलोचनात्मक अध्ययन द्वारा भी प्राप्त हुए होंगे, क्योंकि इन्होंने होमर की कविता के भीतर सुर-

क्षित ग्रीक भाषा के प्राचीन रूपों पर आलोचनात्मक टीकाएं की थीं, किन्तु यह सब होने पर भी नामों और धातुओं के विषय में निश्चित नियम, नियमित और अनियमित नामों और क्रियाओं की निश्चित रूपावलियां, वाक्य-रचना के विषय में निरीक्षण द्वारा निश्चित किये हुए तथ्य, इस प्रकार की बहुत-सी और बातें केवल भाषा के परम पण्डितों के काम के फल हैं और यह काम भाषा के पण्डित ही कर सकते हैं, अन्य कोई नहीं।

अब देखिए कि भाषा-विज्ञान का अध्ययन-अध्यापन इस समय ऐसा पेशा बना हुआ है जो बहुत ही व्यापक दिखाई देता है, किन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि तुलनात्मक दृष्टि से यह बहुत ही नया काम है। किसी प्राचीन ग्रीक के मन में कभी परदेशी भाषा सीखने का विचार उठा न होगा। भला बताइए, उसे इसकी क्या दरकार रही होगी? उसकी दृष्टि में संसार दो भागों में बँटा हुआ था—एक ओर स्वयं ग्रीक थे तथा दूसरी ओर अन्य सब बर्बर जातियां थीं। इस कारण यह स्वाभाविक ही है कि दूसरी जातियों की पोशाक पहनने या रीति-नीति ग्रहण करने या इन बर्बर पड़ोसियों की भाषा सीखने से उनके मन में यह विचार उठता होगा कि हम लोग गिर गये हैं, या हमारा पतन हो गया है। ग्रीक इस बात पर गौरव अनुभव करता था कि मैं सभ्य और उन्नत भाषा बोलता हूँ और स्वयं अपनी भाषा से मिलती-जुलती अन्य ग्रीक बोलियों को, जिनसे उसका घनिष्ठ संबंध न था, वह गड़बड़-झाला बोलियाँ समझता था। यह प्रकृति का नियम है कि किसी भी जाति के मनुष्य को यह सूझना कि हम प्राकृत रूप में अपनी भाषा में ही अपने विचार प्रकट कर सकते हैं, स्वाभाविक है और बहुत समय के बाद उसकी समझ में आता है कि हम औरों की भाषा में भी वही विचार प्रकट कर सकते हैं जिन्हें अपनी भाषा में प्रकट करते हैं। पोलैण्ड वालों ने अपनी पड़ोसी जाति जर्मन का नाम Nienusc (निऐमिएच) या Niemy (निएमि) रखा था। इसका अर्थ है 'गूंगा'।[1] यह नाम

१. तुर्क लोगों ने पोलैंड में प्रचलित इस Niemisc शब्द का व्यवहार आस्ट्रियन लोगों के लिए किया। कांस्टेटाइनुसपौरफीरोगेनेटा (Constantimis Perphyrogeneta) के अति प्राचीन समय में भी नेमेत्जीओई बवेरिया प्रदेश की जर्मन जाति के लिए प्रयुक्त किया जाता था (पोर्टकृत इंडोगैम निशेइप्राखे=आरोपीय भाषा, पृ० ४४; त्साइट श्रिफट फ्यूर हर ग्लाइशेन्दे श्प्राखफौर्शुं, (खण्ड

ठीक उसी प्रकार का है जैसा कि ग्रीक लोगों ने वर्बरों का रखा था। अर्थात् ग्रीक भाषा में इनके लिए एक नाम Aglossoi (अग्लोसोइ) या 'वाणीहीन' काम में लाया जाता था। जर्मनों ने अपनी पड़ोसी जाति के लोग कैल्टों का नाम पुरानी उच्च-जर्मन भाषा में **वाल्ह्** (Walh) रखा था। ऐंग्लो सैक्सन इन्हें **वेआल्ह्** (Vealh) नाम से पुकारते थे। ये जातियां अब Welsh (वेल्श=वेल्स निवासी) कही जाती हैं। इन शब्दों का अर्थ वही माना जाता है जो वैदिक-संस्कृत में **म्लेच्छ** शब्द का है, और इसका अर्थ है वह व्यक्ति जो अटपटी या अस्पष्ट रूप से बातचीत करता है।[1]

जब ग्रीक लोगों को बहुत ही आवश्यकता प्रतीत होने लगी कि परदेशी जातियों से लिखा-पढ़ी तथा बातचीत की जाय और जब उन्होंने यह अनुभव किया कि इन परदेशियों की बोलचाल का ढंग सीखना अत्यावश्यक है तो यह समस्या किस प्रकार हल की गयी—यह नहीं कहा जा सकता। अब बताइए कि जब तक दोनों समाज अपनी-अपनी भाषाएं बोलते रहेंगे तो विदेशी भाषा किस भाँति सीखी जा सकेगी। यह समस्या प्रायः उतनी ही कठिन दीखती है जितनी कि कुछ विद्वानों के कथनानुसार कुछ व्यक्तियों द्वारा समाज के आरम्भ में आपस में मिलने की। वे अभी तक बिना बोली के थे और उन्होंने अपने भाव व्यक्त करने के लिए भाषा का आविष्कार करने की आवश्यकता अनुभव की तथा आपस में वाद-विवाद और विचार करने लगे कि अपनी इंद्रियों द्वारा वे जो-जो अनुभव करते हैं, जो सुनते या जो देखते हैं उनके लिए अति उपयुक्त क्या नाम रखे जायं एवं मन में जो बिना मूर्त्त रूप के भाव उठते हैं उनके लिए क्या-क्या उचित शब्द प्रयोग किये जायँ। आरम्भ में हमें इस विषय पर तर्क के लिए यह मान लेना पड़ेगा कि ग्रीक लोगों ने बहुत संभव है कि विदेशी भाषाएं

२, पृ० २५८)। **रूसी शब्द** Njemez **(न्यमेज) स्लोवेनियन शब्द** nemee **(नेमैच्), बुलगारियन** Nemec **(नेमेच्), पोलैंड की भाषा में** Niemiec **(नीएमिएच्), लुसाशियन भाषा में** 'Njemc **(न्येम्च्) है; इन सब शब्दों का अर्थ 'जर्मन जाति का मनुष्य' है। और देखिए, रूसी भाषा में** Njemo **(न्येमो) का अर्थ 'अस्पष्ट' होता है;** Njemyi **(न्यैमुइ) का अर्थ 'गूंगा' है। लुसाशियन भाषा में** Njemy **(न्यैमु) का अर्थ भी गूंगा ही है।**

१. Leo, Zeitschrit fur vergl. Spsachf. b. ii. p. 252.

उसी प्रकार सीखीं जिस प्रकार नन्हे-नन्हे बच्चे अपनी-अपनी भाषाओं को सीखते हैं। प्राचीन ऐतिहासिकों ने नाना भाषाओं को बोलने वाले जिन दुभाषियों का उल्लेख किया है वे, बहुत सम्भव है, उन माता-पिताओं की संतान थे जो भिन्न-भिन्न भाषाएं बोलते रहे होंगे। **किआखरेस** नामक **मीडिया** (ईरान के एक भाग) के एक राजा ने अपने देश में शकों की सीथियन नामक जाति के आने पर उसके पास कुछ ईरानी बच्चे भेजे ताकि वे उस जाति के लोगों से उनकी भाषा सीख सकें और साथ ही धनष चलाने की कला भी सीख आयें।[१] ऐसे बच्चे जो बर्बर और ग्रीकों की संतान थे, स्वभावतः अपनी माता और पिता की बोलियां आसानी से सीख सकते होंगे, तथा इन दुभाषियों का अति लाभप्रद पेशा अवश्य ही दुभाषियों की संख्या बढ़ाने में उनकी सफलतापूर्वक सहायता करता होगा। हमसे कहा गया है, यद्यपि इस कथन का प्रमाण ग्रीक लोगों के कथा-पुराण ही हैं, कि इस आक्रमण के समय ग्रीक लोगों को जिन शत्रुओं का सामना करना पड़ा उनकी बोलियों की बहुलता देखकर ग्रीक लोग अति अचरज में डूब गये और चतुर दुभाषियों के अभाव के कारण उन्हें बड़ी-बड़ी कठिनाइयां उठानी पड़ीं।[२] इस घटना पर हमें कुछ आश्चर्य न करना चाहिए, क्योंकि संसार के नाना देशों में नाना जातियों से लड़ते समय अंगरेज सेना को किन-किन विदेशी भाषा-भाषियों से सम्बन्ध जोड़ना पड़ा, यह देखकर स्पष्ट हो जाता है कि ग्रीक नेता **जसौन** (jason) की सेना के सामने विदेशी भाषाओं के अज्ञान के कारण जो कठिनाइयां पड़ीं, अंगरेज सैनिकों की कठिनाइयां उनसे कम न थीं। और तमाशा देखिए कि काकेशस के पहाड़ों में इतनी अधिक बोलियां बोली जाती हैं कि वहां के निवासियों ने इस पर्वत का नाम **नाना भाषा-भाषियों का पहाड़** रख दिया है। यदि हम ग्रीस के इन पौराणिक युगों से अपनी दृष्टि फेरें और वहां के ऐतिहासिक युगों पर दृष्टि डालें तो यह मालूम पड़ेगा कि दुभाषियों के काम को व्यापार और परस्पर लेन-देन ने ही आदि-प्रोत्साहन दिया होगा। ग्रीक ऐतिहासिक हेरोडोटस ने बताया है कि ग्रीक व्यापारियों के बड़े-बड़े दल जब माल और सवारियों से लदे पशुओं के साथ वोल्गा नदी के किनारे-किनारे यूराल पर्वत-श्रेणियों की चढ़ाइयों पर चढ़ते थे तो उनके साथ सात दुभाषिये भी रहते थे जो सात भिन्न-

१. Herod, I, 73.

२. **हम्बोर्टकृत** Cosmos **(कौसमौस), खण्ड २, पृ० १४१।**

भिन्न भाषाओं को अच्छी तरह बोलते थे। सम्भवतः इन दुभाषियों में स्लैव, तातार और फिनलैंड देशों की उन बोलियों को बोलने वाले लोग रहे होंगे जो हेरोडोटस के समय में बोली जाती रही होंगी, और जिनकी वंश-परम्परा की बोलियां उक्त देशों में आज भी बोली जाती होंगी। ईरान से ग्रीस देश के लोगों ने प्राचीन समय में जो युद्ध किये उनके कारण ग्रीक लोगों को इस बात का बहुत अच्छा ज्ञान हो गया कि संसार में और जातियां भी ऐसी हैं जिनको भाषा और साहित्य का वास्तविक ज्ञान है। थिमिस्तोक्लीज (Themistocles) ने ईरानी भाषा का बहुत अच्छा अध्ययन किया, और यह भी कहा जाता है कि वह धाराप्रवाह ईरानी बोलता था। सिकन्दर की विजय-यात्रा ने अन्य जातियों और भाषाओं से परिचय प्राप्त करने का प्रबल वेग से काम किया और इस दिशा में भारी सफलता प्राप्त की। पर जब सिकन्दर ब्राह्मणों के साथ, जो उस सुदूर प्राचीन समय में भी ग्रीक लोगों द्वारा अति प्राचीन और अति रहस्यमय ज्ञान-विज्ञान के संरक्षक समझे जाते थे, बातचीत आरम्भ की तो इस काम में इतने अधिक दुभाषिये ब्राह्मणों की भाषा के अनुवाद कार्य में जुट गये कि एक ब्राह्मण ने, अपने आचार-विचार के अनुसार, यह बात सुनायी कि हम संस्कृत में जो बात कह रहे हैं वह सिकन्दर के पास तक उस रूप में पहुँच रही है कि मानो विशुद्ध जल का नाला कई मल-दूषित पनालों के भीतर से गुजर रहा हो।[1] इसके अतिरिक्त हम अनेक प्राचीन ग्रीक यात्रियों का वर्णन पढ़ते हैं और वास्तव में

१. इससे प्रमाणित होता है कि यदि हम यह बात स्वीकार करें कि ग्रीक दार्शनिकों पर भारतवर्ष के विद्वानों का भी कुछ प्रभाव पड़ा था, तो इस मत को स्वीकार करने में बड़ी बड़ी कठिनाइयां आ उपस्थित होती हैं। एलेक्जेंडर पौलिहिस्टोर के कथन पर हम विश्वास करें तो ऐसा मालूम पड़ता है कि पिरर्हौन वास्तव में सिकंदर के साथ उसकी भारत विजय की यात्रा में गया था और हमारा मन यह मानने के लिए उत्सुक हो जाता है कि पिरर्हौन के अविश्वासवाद या नास्तिकता को, भारत में सिकंदर के समय प्रचलित बौद्ध दर्शन की पद्धति से सम्बन्धित किया जाय; परन्तु भारतवासियों और ग्रीकों के बीच एक दूसरे की भाषा की अज्ञानता एक ऐसी अलंघ्य दीवार-सी खड़ी हो गयी होगी कि एक दूसरे को समझना उस समय प्राय असम्भव था। इस कारण ग्रीक और भारतीय विचारकों के बीच कोई संबंध स्थापित होना असम्भव था। (Fragmenta Histor. Groec., **खण्ड ३, पृ० २४३,**

यह समझना अति कठिन हो जाता है कि उस सुदूर पूर्व काल में कोई यात्री जिन डेरों, गांवों और कसबों से गुजरता हुआ चला जाता होगा, वह उन लोगों और स्थानों की बोलियों के कुछ न कुछ ज्ञान के बिना कैसे परदेशी लोगों में निभता होगा। इनमें से बहुत-सी यात्राएं, और विशेषतः वे यात्राएं जिनके विषय में यह कहा जाता है कि वे स्वयं भारत तक की गयी थीं, बाद के ग्रीक लेखकों की कपोलकल्पित हैं।[१] **लाइकरगस** (Lycurgus) ने स्पेन और अफ्रीका की यात्रा की होगी, किन्तु यह बात इस समय निश्चित हो गयी है कि वह भारत की ओर आगे नहीं बढ़ा और न ही भारतीय दार्शनिकों और ज्ञानियों के साथ उसके मिलने और बातचीत करने का कहीं कोई उल्लेख ही मिलता है, और न वह **ऐरोस्तोक्रेटीज** (Aristocrates) के सामने, जो ईसा से सौ साल पहले जीवित था, किसी भारतीय से मिला। **पाइथागोरस** (Pythagoras) के यात्रा-विवरण भी इसी प्रकार पौराणिक हैं; ये यात्राएं सिकन्दर के साथ जानेवाले लेखकों की कपोल-कल्पनाएं हैं। इन लेखकों का दृढ़ विश्वास था कि ज्ञान का मूल स्रोत पूर्व दिशा से पश्चिम की ओर बहा होगा। इस बात का विश्वास करने के लिए कुछ अधिक ठोस प्रमाण मिलते हैं। **देमोक्रीतुस्** (Democritus) ने मिस्र और बेबीलोनियां की यात्रा की, किन्तु उसकी सुदूर भारत की यात्राएं पौराणिक थीं। यद्यपि हेरोडोटस ने मिस्र और ईरान की यात्राएं

b, जिस ग्रंथ को मैक्समुलर ने सम्पादित किया है; जर्मन विद्वान् लास्सनकृत Indische Alterthumskunde, खण्ड ३, पृ० ३८०)।

१. भारत की तथाकथित यात्रा करनेवाले ग्रीक दार्शनिकों के विषय में लास्सन कृत Indesche Alterthumskumde, खण्ड ३, पृ० ३७९ और ब्राण्डिस् कृत Handbuch der Geschiehte der Philosophie (हाण्डबुख डेर गेशिश्टे डेर फीलोसोफी, खण्ड १, पृ० ४२५ देखिए। डगलस स्टेवार्ट और नीबूर (Niebuhr) का मत है कि भारतीय दार्शनिकों ने ग्रीक दार्शनिकों से बहुत-कुछ प्राप्त किया है और (Goerres) गोएरेस तथा बहुत-से विद्वानों का यह भी मत है कि ग्रीक दार्शनिकों ने विद्वान् ब्राह्मणों से बहुत-कुछ सीखा। इन दोनों परस्परविरोधी मतों पर मैंने अपने Essay on Indian Logic (भारतीय तर्कशास्त्र पर एक निबन्ध) में बहुत कुछ लिखा है। यह निबन्ध टामसन महोदय के Laws of Thought (विचार के नियम) नामक ग्रन्थ में छपा है।

कीं, पर उसने कहीं नहीं लिखा है कि वह अपनी भाषा को छोड़ किसी अन्य भाषा में बातचीत करने में समर्थ रहा।

जहां तक मुझे इस विषय का ज्ञान है उसके आधार पर मैं आपको बता सकता हूँ कि दूसरों की भाषाओं को सीखने और उन्हें अपने अधिकार में करने के संबन्ध में इन ग्रीकों द्वारा तथा-प्रचारित्त बर्बर लोगों में ग्रीक और रोम के निवासियों से अधिक योग्यता और सीखने की अधिक सुविधा थी। मकदूनियां के सिकन्दर की विजय-यात्रा के बाद ही हम तुरन्त यह[1] देखते हैं कि बेबीलोन देशमें बेरोसुस, टायर देश में मीनैण्डर और मिस्र में मनेथो अपने देशों के मौलिक स्रोतों से अपने-अपने देशों के इतिहास का सम्पादन कर रहे थे।[2] उन्होंने अपने ग्रन्थ ग्रीक भाषा में लिखे और ये इतिहास

१. देखो नीबूर कृत Vorlesungen uber alte Geschichte (पुरातन इतिहास पर भाषणमाला), खण्ड १, पृ० १७।

२. मागो ने कृषिशास्त्र पर जो ग्रन्थ लिखा था उसके अनुवाद का समय इससे पीछे का है। कोई ऐसा प्रमाण नहीं मिलता कि मागो, जिसने फोनीशियनों की भाषा में कृषिशास्त्र पर २८ खण्ड की पुस्तक लिखी थी, वह हम्बोर्ट के कहने के अनुसार (कॉसमैस, खण्ड २, पृ० १८४) ईसा-पूर्व ५०० सन् में जीवित रहा। वार्रो इस विषय पर कहता है—'Hos nobilitate mago carthaginiensis praeterut Poenica lingua, quod res dispersas comprehendit libris XXIIX., quos Cassius Dionysins Uticensis vertit libris xx., Graeca lingua ac Sixtilis praetori misit : in quae volumina de Graecis bibris eorum quos dixi adjecit non panca, et de Magonis dempsit instar bibrorum VIII. Hosce ipsos utiliter ad vi. libros redegit Diophanes in Bithynia, et misit Dejotaro regi.' अर्थात् 'उच्च कुल के एक विद्वान् मागो ने, जो कार्थीजीनिया देश का था, प्यूनिक (पणियों की) भाषा में एक ग्रन्थ तैयार किया, जिस पुस्तक के २८ खण्ड थे और जिसे कास्सिउस् दियोनिसिउस् उचिकेन्सिस ने ग्रीक भाषा में २० खण्डों के ग्रन्थ का अनुवाद किया, आदि। यह कास्सिउस् दिओनिसिउस् उटिकेंसिस ई० पू० ४०वें सन् में जीवित था। इस ग्रन्थ का लैटिन अनुवाद रोम की सीनेट के आदेश से कराया गया था। यह अनुवाद फोनीशियन लोगों के साथ तीसरे युद्ध के बाद ही हो गया था।

ग्रीकों के पढ़ने के लिए ही लिखे गये थे। बेरोसुस की अपनी मातृभाषा बेबीलोनियन थी। मीनैण्डर फोनीशिया का निवासी और फोनीशियन भाषा बोलने वाला था। मनेथो मिस्र का था और उसकी मातृभाषा मिस्री ही थी। बेरोसुस ने बेबीलोनियाँ के प्राचीन कोणाकृति अक्षरों में लिखित पाण्डुलिपियों तथा ग्रंथों को बड़ी आसानी से पढ़कर अपना इतिहास रचा और मनेथो ने भी उसी सरलता से मिस्र के **पेपायरी** नामक पौधे के पत्तों पर लिखी गयी प्राचीन मिस्र की लिपि को उतनी ही आसानी से पढ़कर इतिहास बनाया। इन तीन विद्वानों का प्रायः एक ही समय में जन्म लेना और इतिहास लिखना एक मार्के की घटना है। ये तीनों मनीषी जन्म और भाषा की दृष्टि से निश्चय ही बर्बर थे और इनको इस बात की भारी चिन्ता हुई कि उनके देश का इतिहास कहीं विस्मृति के गर्भ में सदा के लिए विलीन न हो जाय। इस कारण इन्होंने अपने देशों का इतिहास ग्रीक में लिखा और उसे सुरक्षा के लिए अपने विजेता ग्रीकों को सौंपा। पाठक थोड़ा विचार करें तो यह घटना बड़ा गम्भीर अर्थ रखती है; किन्तु उसी प्रकार की एक सारपूर्ण घटना यह भी है और यह बात ग्रीक या मकदूनियन विजेताओं के लिए किसी प्रकार से प्रशंसा की नहीं कही जा सकती कि उन्होंने इन अमूल्य ग्रन्थों का महत्त्व न समझा और इनका मूल्य आंकने में अपनी गुणग्राहकता नहीं दिखायी। ये सब इतिहास लुप्त हो गये हैं और इनके थोड़े-से पन्ने अवशेष के रूप में हमें ज्ञात हैं; यद्यपि इस विषय पर सन्देह करने का कोई कारण नहीं है कि यदि बेरोसुस का सारा इतिहास हमें प्राप्त होता तो कोणाकृति अक्षरों में खुदे हुए शिलालेखों के शोधकों और बेबीलोनियन इतिहास का अध्ययन करनेवालों को इस ग्रन्थ से इस समय अमूल्य सहायता प्राप्त होती, और यदि मनेथो का ग्रन्थ पूरे का पूरा सुरक्षित पाया जाता, तो मिस्र के राजाओं के काल के सम्बन्ध में इस समय जो वाद-विवाद छिड़ रहा है उस पर लिखे गये हजारों पन्नों को रंगने की दरकार न रहती। प्रायः एक ही समय में रचे जाने वाले इन ग्रन्थों के प्रकाशन से हमें यह बात स्पष्ट हो जाती है कि सिकन्दर की पूर्व दिशा की ओर विजय-यात्रा के बाद ही तुरन्त बर्बर देशों के साहित्यिक महारथियों ने ग्रीक भाषा का अध्ययन किया और वे इस भाषा में पुस्तकें भी लिखने लगे। अब आप दूसरी ओर अपनी दृष्टि फेरेंगे तो देखेंगे कि ग्रीक लोगों ने साहित्यिक प्रयोजन से स्वयं अपनी भाषा के अतिरिक्त अन्य किसी विदेशी भाषा को सीखने या उसका व्यवहार करने का प्रयास ही नहीं किया। सिकंदर और सिकन्दरिया नगर का नाम सुनने से पहले किसी युग में हम ग्रीकों और बर्बर जातियों के बीच ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में किसी प्रकार के सम्पर्क

स्थापित होने का नाम भी नहीं सुनते। सबसे पहले, हम देखते हैं कि केवल मिस्र के सिकन्दरिया नगर में भिन्न-भिन्न जातियों के लोग, जो नाना भाषाएं बोलते थे और अपने-अपने भिन्न-भिन्न देवताओं की पूजा करते थे, एक स्थान में आकर आपस में सम्पर्क स्थापित करने लगे। यद्यपि उनका एक स्थान में एकत्र होने का मूल कारण वाणिज्य-व्यापार का सट्टा-फाटका था। तो भी यह स्वाभाविक ही था कि अपने आराम और विश्राम के समय वे आपस में अपने-अपने देशों की चर्चा करते होंगे। अपने देवताओं, अपने राजाओं, विधि-नियम बनाने वालों तथा कवियों और साहित्य निर्माताओं की सुन्दर-सुन्दर कथाएं सुनाते होंगे। इसके अतिरिक्त सिकन्दरिया में ऐसे ग्रीक लोग भी उस समय रहते थे जो सब ज्ञात देशों के प्राचीन इतिहास का अध्ययन करने में ही लगे थे, और जो यह जानते थे कि संसार के किसी भी कोने से आये हुए व्यक्ति से किस प्रकार प्रश्न पूछकर उसके इतिहास का ज्ञान हो सकता है। सिकन्दरिया के सार्वजनिक सभा-प्रशालों (Hall) और नाना पुस्तकालयों में ये वाद-विवाद, तर्क-वितर्क तथा प्रश्नोत्तरों की चर्चा के विषय थे—मिस्रवालों का अधिकारपूर्ण कथन कि उनकी प्राचीन सभ्यता-संस्कृति सुदूर अन्धकारमय अतीत काल तक पहुँचती है, और यहूदियों का पक्का विश्वास कि उनके विधि-विधानों और धार्मिक नियमों के स्वरूप का मूल कारण एक ईश्वर है, और ईरानियों का यह कट्टर विश्वास कि जरथुष्ट्र का लिखा हुआ शास्त्र ही केवल-मात्र सत्य से भरा ग्रन्थ है, आदि आदि। उस समय सिकन्दरिया में तोलेमी (Ptolemy) वंश[१] का

१. कहा जाता है कि तोलेमेउस् फीलाडेल्फुस् (ई० पू० २८७ से २४६ वर्ष तक जीवित) ने अपने प्रधान पुस्तकाध्यक्ष, देमेत्रिउस् फालेरेडस की सिफारिश पर, अरिस्टेआस नाम का एक यहूदी विद्वान् यरुशलम को भेजा, जिसको यह काम सौंपा गया कि वह वहां के सबसे बड़े पुरोहित से बाइबिल की एक हस्तलिखित प्रति तोलेमी के पास ले आये। इसके साथ-साथ तोलेमी ने यह भी प्रार्थना की थी कि यरुशलम से उसके पास सत्तर दुभाषिये भेजे जायं। कुछ लोगों का कहना है कि सिकंदरिया में ग्रीस देशनिवासी जो यहूदी रहते थे और जिन सभी यहूदियों ने अपनी मातृभाषा को प्रायः एकदम भुला दिया था, उन लोगों ने बाइबिल का यह अनुवाद स्वयं अपने लाभ के लिये करवाया था। इतनी बात तो अवश्य ही पक्की है कि ई० पू० तीसरी सदी के प्रायः मध्य काल (२८५) में पाया जाता है कि इबरानी प्राचीन बाइबिल के बड़े-बड़े भाग ग्रीक भाषा में अनूदित किये गये थे।

राज्य था। यह राजवंश ज्ञान-विज्ञान की शोध में सबको स्वतंत्रता देने के पक्ष में था और बहुत उदार था। बहुत सम्भव है कि इस वंश की उदारता के कारण ही बाइबिल के प्राचीन नियम (Old Testament) तथा Septuagint का अनुवाद ग्रीक भाषा में हो पाया। ऐसा मालूम पड़ता है कि जरथुष्ट्र के ग्रन्थ **जेंद-अवेस्ता** का अनुवाद भी प्राय: इसी समय ग्रीक भाषा में किया गया; क्योंकि प्लिनी ने अपने ग्रन्थ में कहा है कि किसी **हेरमिप्पुस** (Hermippus) ने जरथुष्ट्र के ग्रन्थों का अनुवाद किया। यह **हेरमिप्पुस**[1] Peripatetic दर्शन को मानने वाला तथा **काल्लीमाखुस** (Callimachus) का शिष्य रहा होगा। सिकन्दरिया के सभी माने हुए विद्वानों में यह शिरोमणि समझा जाता था।

यद्यपि हम देखते हैं कि सिकन्दरिया में ज्ञान का बोलबाला था और सब लोग उसमें रस लेते थे और यह चर्चा नाना जातियों के साहित्य के विषय की जिज्ञासा का फल थी, लेकिन इस बात का कोई प्रमाण नहीं मिलता जिससे हमें यह पता चलता कि इन नाना जातियों की भाषाओं की चर्चा भी वैज्ञानिक शोध का विषय रही होगी। ग्रीक लोगों ने सिकन्दरिया में आलोचनात्मक और तुलनात्मक भाषाशास्त्र की दृष्टि से जिस शोध और ज्ञान-चर्चा का श्रीगणेश किया, वह अन्य जातियों की भाषाओं का अध्ययन करने से बिलकुल नहीं, किन्तु अपनी ही, अर्थात् ग्रीक भाषा की प्राचीन बोलियों का अध्ययन करने से ही आरम्भ हुई। ग्रीक भाषा के आलोचनात्मक अध्ययन का प्रारम्भ सिकन्दरिया से हुआ, और यह अध्ययन, मुख्य रूप से, होमर के ग्रंथों के नाना पाठों के सम्बन्ध में था। जैसा मैं पहले बता चुका हूँ कि ग्रीक भाषा के व्याकरण की साधारण रूपरेखा पहले से ही वर्तमान थी, ग्रीक दार्शनिकों[2] की नाना शाखाओं में इस व्याकरण का पालन-पोषण हुआ। भाषा के दो अति आवश्यक अंगों के विषय का, जो नाम और क्रिया कहलाते हैं, प्लेटो को ज्ञान था। अरस्तू ने इन अंगों में दो और नाम जोड़ दिये—**संयोगसूचक** तथा निश्चय-बोधक शब्द। इनके साथ-साथ उसने अपनी सूक्ष्म दृष्टि से यह देखा कि व्याकरण

१. प्लिनी, खण्ड ३०, पृ० २ तथा बुनसेन कृत Egypten **(एगिप्टेन), खण्ड ५ अ, पृ०, १०१।**

२. मैक्समुलर कृत History of Ancient Sanskrit Literature **(प्राचीन संस्कृत साहित्य का इतिहास), पृ० १६३।**

में दो भेद और मिलते हैं—**वचन** और कारक के। पर न तो प्लेटो और न अरस्तू ने ही शब्दों के उन सम्मिलित रूपों पर विशेष ध्यान दिया जो सुनने वालों के सामने हमारे मन के भावों को व्यक्त करते हैं और न उन्होंने उन नियमों के विषय में व्यवहार में आने वाले कोई निश्चित नियम ही बनाये। अरस्तू के लिए क्रिया या **रहेम** (rhema) केवल **अभिधेय** सूचित करता है, और कुछ नहीं। और ऐसे वाक्य में, जैसे The snow is white, में वह *white* शब्द को क्रिया बताने में नाममात्र संकोच नहीं करता। भाषा के स्वाभाविक रूपों को अर्थात् नित्य व्यवहार में आनेवाले रूपों को, अपने अनुशासन में रखनेवाले सिकन्दरिया के ग्रीक भाषा के विद्वान् ही थे। उनका मुख्य कार्य यह था कि ग्रीस के प्राचीन साहित्य के उत्तम ग्रन्थों का शुद्ध पाठ प्रकाशित किया जाय, और उन्होंने होमर के ग्रन्थों के पा ों पर विशेष ध्यान दिया। ग्रीक भाषा की शोध के इस कार्य में इस कारण से उन्हें ग्रीक व्याकरण के ठीक-ठीक रूपों की ओर विशेष दृष्टि डालनी पड़ी और ध्यान देना पड़ा। उक्त विद्वानों के पास सिकन्दरिया और पेरगामुस नामक स्थानों को, ग्रीस के भिन्न-भिन्न प्रदेशों से जो हस्तलिखित पुस्तकें भेजी गयी थीं, उनके पाठों में अनेक भेद दिखाई देने लगे और इसका निश्चय कि कौन रूप शुद्ध है तथा कौन रूप होमर की भाषा में शुद्ध मानकर रहने दिया जाना चाहिए और कौन रूप अशुद्ध माने जाने चाहिए; यह इन बातों का सूक्ष्म अध्ययन करने के बाद ही हो सकता था। उन्होंने होमर के अपने इन संस्करणों को **एकदोसेइस** (ekdoseis) ही नहीं कहा, जो कि एक ग्रीक शब्द है और जिसका शब्दशः लैटिन अनुवाद **एदितिओ** (editio) अर्थात् 'पुस्तक-संपादन' है, किन्तु अपने संस्करणों का नाम उन्होंने **दिओर्थोसेइस** (diorthoseis) अर्थात् आलोचनात्मक संस्करण रखना उचित समझा। इन विद्वानों के भिन्न-भिन्न मत थे और इनके भिन्न-भिन्न अनुयायी थे, इनमें आपस में भाषा के विषय में बहुत झगड़े थे। होमर की भाषा का वे अपने-अपने दृष्टिकोण से संशोधन और सम्पादन करते थे। अब देखिए कि **जेनोदोतुस** या **अरिस्तार्कुस** के संशोधित संस्करणों के पाठ का जो भी पक्ष लेते थे उन्हें होमर की कविताओं की भाषा के संबंध में पहले साधारण नियम स्थापित करने पड़ते थे, और तब उन नियमों के आधार पर ये विद्वान् होमर की भाषा की शुद्धि-अशुद्धि का निर्णय करते थे। क्या होमर ने निश्चयबोधक शब्दों का प्रयोग किया है? क्या उसने व्यक्तिवाचक नामों के पहले इन निश्चयबोधक सर्वनामों का प्रयोग किया है? ऐसे और इस प्रकार के कई अन्य प्रश्नों का भली भाँति समा-

धान करना पहला काम था, और इन पर नाना झगड़े उत्पन्न हो गये। इनमें से भाषा के संबंध में एक मत अथवा उसका विरोधी मत अपनाकर सम्पादकों को होमर की प्राचीन कविताओं का पाठ शुद्ध करना पड़ता था, और संपादन के इस काम में नोनों तरफ से प्रबल विरोधी संशोधन करने पड़ते थे। इस काम में भाषा के नाना तत्त्वों में भेद बताने के लिए नये-नये पारिभाषिक शब्दों की आवश्यकता पड़ती थी। उदाहरणार्थ, निश्चयसूचक शब्दों को दिशासूचक सर्वनामों से अलग करने के लिए उनके भिन्न-भिन्न नाम रखने पड़े। *Article* (संज्ञा से पहले जुड़नेवाला निश्चयसूचक शब्द) ग्रीक शब्द *arthron* का हू-बहू अनुवाद है। *arthron* (=लैटिन *artus* जिसका अर्थ वह छेद या खोल है जो शरीर के जोड़ों में रहती है और जिसमें हड्डी के सिरे का गोलाकार भाग जमा हुआ रहता है) यह शब्द अरस्तू ने पहले-पहल प्रयुक्त किया था, और उसने इसका प्रयोग जिस अर्थ में किया था वह यह था कि वे शब्द जो एक वाक्य में, शरीर के जोड़ों में हड्डी के उस भाग की तरह जिनमें हड्डियाँ फँसी रहती हैं, वाक्य में फँसे रहें और वाक्य में हेरफेर होने पर भी उन हड्डियों की तरह ही वाक्य के भीतर चलते-फिरते रहें। 'Whoever did it, he shall suffer for it', इस तरह के वाक्य में ग्रीक व्याकरणानुसार दिशा-सूचक सर्वनाम He पहला छेद या खोल है जिसके भीतर इस वाक्य का पहला अंश फँसा हुआ है और सम्बन्धसूचक सर्वनाम who दूसरा ऐसा ही छेद या खोल है। २५० ईसा पूर्व सिकन्दरिया के पहले पुस्तकालयाध्यक्ष ज़ेनोदोतुस की दृष्टि में सभी सर्वनाम इसी प्रकार के जोड़ों के छेद या खोल थे, या कहिए कि ये शब्दों को अपनी जगह पर स्थिर रखने के लिए उनको एक वाक्य के भीतर जमाये रखने के साधन थे। वह पहला व्याकरणकार था जिसने व्यक्तिबोधक सर्वनामों (*antonymiai*) और उन निश्चयबोधक शब्दों में साफ-साफ भेद कर दिया जो पदार्थों में निश्चय या अनिश्चय का आरोपण कर देते हैं। इसका नाम ग्रीक व्याकरण में सदा के लिए *arthra* पड़ गया। यह अन्तर अति आवश्यक था और इसमें कोई सन्देह नहीं कि होमर के पाठ की शुद्धि करते-करते उसे यह भेद सूझा। ज़ेनोदोतुस पहला सम्पादक था जिसने होमर के दोनों ग्रन्थ *Iliad* (इलियड) और *Odyssey* (ओडिसी) में व्यक्तिवाचक नामों से पहले निश्चयवाचक सर्वनाम को दुबारा स्थापित किया। हमारे समय में, जब कि लेखक निश्चय या अनिश्चयवाचक सर्वनामों का उल्लेख करते हैं, क्या इस पर भी कभी विचार करते हैं कि उक्त सर्वनामों की उत्पत्ति कैसे हुई और इनका मौलिक अर्थ क्या रहा होगा?

क्या उनको यह भी पता है कि हमारे व्याकरणों में इसका वर्तमान स्वरूप और नाम ग्रहण करने से पहले कितना समय बीता होगा कि यह शब्द आज एक निश्चित पारिभाषिक रूप में स्कूलों के बच्चे-बच्चे को भली भाँति मालूम है? और देखिए, हमारे व्याकरण के पारिभाषिक शब्दों के विकास क्रम में, सिकन्दरिया में होमर के ग्रन्थों की जो आलोचनात्मक अध्ययन तथा सम्पादन प्रणाली आरम्भ हुई, उसका एक और उदाहरण यह है कि एकवचन और बहुवचन के जो रूप आजकल हम देख रहे हैं वे उस समय के होमर के पाठ के सम्पादकों द्वारा ही निश्चित किये गये थे और उन्हीं के द्वारा हमें इन वचनों की परिभाषा भी समझायी गयी। अरस्तू के ग्रन्थों में एकवचन और बहुवचन के रूपों के लिए कोई पारिभाषिक शब्द नहीं मिलते और न ही उसने ये समझाये हैं; सच बात तो यह है कि उसने कभी द्विवचन की ओर संकेत भी नहीं किया। उसने यही बताया है कि कुछ कारक ऐसे हैं जिनसे एक या एक से अधिक पदार्थों का बोध होता है। उसने जहाँ कारक (Ptosis) शब्द दिया है वह हमारे व्याकरणों में जिस अर्थ में यह शब्द आता है उससे एकदम भिन्न है। एकवचन और बहुवचन, व्याकरण के ये दो पारिभाषिक शब्द तब तक आविष्कृत ही नहीं हुए जब तक इनके अभाव का ज्ञान न हुआ, और इनका अभाव सबसे पहले उक्त व्याकरणकारों को खटका। होमर के प्रथम सम्पादक **जेनोदोतुस्** ने पहले-पहल अपनी सूक्ष्म दृष्टि से देखा कि होमर की कविताओं में द्विवचन का प्रयोग भी मिलता है और आविष्कारकों के स्वाभाविक उत्साह के साथ उसने होमर के ग्रन्थों में बहुत-से बहुवचन शब्दों को, जहाँ-जहाँ उसकी समझ में आवश्यकता आ पड़ी, चाहे हम कहीं-कहीं उसे उसकी भल ही मानते हों, द्विवचन के रूप में परिणत कर दिया।

उक्त कारणों से, यह कहना सर्वथा उचित है कि सिकन्दरिया के उक्त विद्वानों ने तथा पेरगामुस की प्रतिद्वन्द्वी अकादमी के विद्वानों और टीकाकारों ने पहले-पहल ग्रीक भाषा का आलोचनात्मक अध्ययन किया, अर्थात् दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि इन विद्वानों ने सबसे पहले भाषा की चीर-फाड़, छानबीन और जाँच-पड़ताल की। भाषा के शब्दों को साधारण वर्गों या भेदों में सुव्यवस्थित किया। वाक्य में प्रयुक्त नाना शब्दों के प्रयोजनों को स्पष्ट किया और उन्हें समझाया। इन विद्वानों ने ही ग्रीक भाषा के वाक्यों का विश्लेषण करके वाक्य के भीतर जो रूप भिन्न-भिन्न कार्य करते हैं उनके लिए विशेष उचित पारिभाषिक शब्दों का आविष्कार किया। विशेष-विशेष कवियों के ग्रन्थों का निरीक्षण-परीक्षण करके

वाक्य में उनके प्रयोग को सूक्ष्म रूप में देखा और उनकी शुद्धता-अशुद्धता को सकारण अपने पाठकों के सामने रखा। उन्होंने शब्दों और वाक्यों के प्राचीन शुद्ध रूपों और उन रूपों के बीच भेद बताया जो बोलचाल से उठ चुके थे, अथवा यों कहिए कि जो भाषा के व्यवहार की दृष्टि से मर चुके थे। इन मनीषियों ने ही भाषा के उक्त विषयों पर बड़े-बड़े और ज्ञानपूर्ण पोथे प्रकाशित किये। भाषा-विज्ञान के क्षेत्र में इनके ग्रन्थ एक महान् उन्नत युग का परिचय देते हैं। इतने पर भी ग्रीक भाषा के प्रारम्भिक और काम चलाने योग्य एक वास्तविक व्याकरण की आवश्यकता पूरी करने के लिए एक छलांग भरनी और बाकी रह गयी। ग्रीक भाषा के वास्तविक व्याकरण को रचने का काम **दिओनीसिउस थ्राक्स** ने पहले-पहल किया। यह व्याकरण इस समय भी वर्तमान है और यद्यपि कई विद्वान् सन्देह करते हैं कि यह मूल पोथी नहीं है, किन्तु बहुत-से विद्वानों ने अब यह सिद्ध कर दिया है कि यह वास्तव में वही मूल ग्रन्थ है जो **दिओनीसिउस** ने रचा था।

अब प्रश्न उठता है कि यह **दिओनीसिउस थ्राक्स** कौन था ? उसके नाम से हमें स्पष्ट ही पता चलता है कि उसका पिता थ्राकिया (ग्रीस के एक प्रदेश) का रहनेवाला था, किन्तु दिओनीसिउस स्वयं सिकन्दरिया में रहता था, और वह होमर की कविता के जगत-प्रसिद्ध आलोचक और उसके पाठ के सम्पादक अरिस्तार्कुस का शिष्य था। यहाँ से दिओनीसिउस कुछ समय बाद रोम चला गया था, जहां वह करीब-करीब पम्पियाई के नष्ट होने के समय तक शिक्षक का काम करता था। यहां पर, यह बात ध्यान देने योग्य है कि मानव जाति के इतिहास में उसके व्याकरण से एक नयी घटना उपस्थित हो गयी। अरिस्तार्कुस का शिष्य एक ग्रीक सिकन्दरिया से आकर रोम में बस जाता है और ग्रीक भाषा का पहला कामचलाऊ व्याकरण लिखता है। इस पर तुर्रा यह है कि उसने यह व्याकरण अपने नवयुवक रोमन शिष्यों के लाभ के लिए तैयार किया। वह व्याकरण के विज्ञान का आविष्कारक नहीं था। जैसा कि हम पहले देख चुके हैं, व्याकरण का प्राय: सारा ढांचे-का-ढांचा उसके पूर्ववर्ती साहित्यिकों, प्लेटो से लेकर अरिस्तार्कुस तक की परम्परा द्वारा उसे प्राप्त हुआ, लेकिन यह मानना ही पड़ेगा कि वह पहला लेखक था जिसने अपने से पहले के सभी दार्शनिकों और साहित्यिक समालोचकों के परिश्रम का फल रोम के नवयुवकों को ग्रीक भाषा सिखाने के काम में लगाया। और इससे भी अधिक मूल्यवान् बात यह है कि उसने उन ग्रीकों को उनकी भाषा नहीं पढ़ायी जो यह भाषा जानते और समझते थे तथा अपने देश की भाषा के सिद्धान्तों से केवल परिचित

होना चाहते थे। रोमन नवयुवकों को तो धातु और शब्द-रूपावलियां सिखानी पड़ती थीं, और यह भी उन्हें बताना पड़ता था कि कौन रूपावली नियमित और कौन अनियमित रूप से चलती है। इस प्रकार उसका यह ग्रन्थ एक प्रमुख राजमार्ग बन गया जिसके द्वारा व्याकरण की पारिभाषिक शब्दावली, जो एथेन्स से सिकन्दरिया पहुँचायी गयी थी, अपना वहाव मोड़कर वापस रोम को चली आयी। रोम से यह शब्दावली यूरोप के सारे सभ्य संसार में फैल गयी।

इस पर भी यह नहीं कहा जा सकता कि पहले काम-चलाऊ व्याकरण का रचयिता **दिओनीसिउस**, जो रोम में बस गया था, ग्रीक-भाषा का सर्वप्रथम **अध्यापक** था। उसके समय में रोम में स्वयं रोमन भाषा से ग्रीक भाषा अधिक बोली जाती थी। ग्रीक भाषा रोम में इतनी अधिक बोली जाती थी कि इस समय लन्दन में फ्रेंच भाषा का जो अत्यधिक प्रचार है उसकी उससे तुलना नहीं की जा सकती। रोम के सभ्य तथा धनाढ्य घरानों के बच्चे लैटिन का ज्ञान प्राप्त करने से पहले ग्रीक भाषा का अभ्यास आरम्भ कर देते थे। यद्यपि **किन्तीलिअन** ने शिक्षा के ऊपर लिखे हुए अपने ग्रन्थ में उस बच्चे का समर्थन नहीं किया है जो अधिक समय तक ग्रीक ही ग्रीक पढ़ता रहता है। उसने लिखा है—'आजकल फैशन यही चल गया है और सब लोगों का झुकाव इसी ओर है।' उसने अपने ग्रन्थ में यह सिफारिश की है कि बच्चे को पहले ग्रीक पढ़नी चाहिए, उसके बाद उसे लैटिन की शिक्षा आरम्भ करनी चाहिए।[1] मेरे श्रोताओं को यह बात कुछ अजीब-सी लगेगी, किन्तु तथ्य यह है कि इटली के इतिहास से हमें स्पष्ट ही पता चलता है कि प्राचीन इटली, अर्थात् रोम में ग्रीक भाषा घर-घर में उतनी ही अधिक बोली जाती थी जितनी लैटिन। बात यह है कि प्राचीन इटली में ग्रीक सभ्यता सर्वत्र अपना घर किये बैठी थी। इसके बाद के समय में तो ग्रीक सभ्यता का सूर्य अपने देश में अस्त हो रहा था, किन्तु उसकी तपती हुई किरणों का तेज रोमन साम्राज्य की गौरवशाली महानता के उगते सूर्य के साथ मिल गया था। यह क्रम तब से चला आ रहा था जब से ग्रीक लोगों ने अपने उपनिवेश रोम में बसाये थे और उनकी यात्रा पश्चिम की ओर हुई जिससे वे शरणार्थियों के रूप में वहाँ अपने नये घर बसाने लगे। यह श्रेय ग्रीक लोगों को ही है कि उन्होंने रोम के लोगों को अपनी वर्णमाला सिखायी और उन्हें लिखने-

१. Quintilian (**किण्टिलियन**), **खण्ड १, प्रथम पुस्तक, पृ० १२।**

पढ़ने का अभ्यास कराया।[1] इन्हीं ग्रीक विद्वानों ने रोमवालों को कई नये नाम या शब्द दिये। उदाहरणार्थ, तराजू का नाम, मापदण्ड के लिए शब्द और सामान्यत: सभी प्रकार के इंजिनों के लिए कई नाम, टकसाली सिक्के, समुद्र यात्रा से सम्बन्धित बहुत-से पारिभाषिक शब्द जिनमें समुद्रयात्रा के समय में बारबार आनेवाली उलटी या *nausea* भी शामिल है। ये सभी शब्द लैटिन को ग्रीक भाषा की देन हैं और ये यह सिद्ध कर देते हैं कि सभ्यता की बहुत ही प्रारम्भिक अवस्था के लिए भी रोमन लोग किस सीमा तक ग्रीक लोगों के ऋणी थे।[2] इसमें कोई सन्देह नहीं कि रोम निवासियों के अपने निजी देवता भी थे, किन्तु इन ग्रीक अध्यापकों के प्रभाव से रोम में अपने देवता तो गुम होने लगे, और रोमन लोग ग्रीक देवताओं के पुजारी बन गये। उन्होंने कुछ देवताओं को तो अपने देवताओं में मिला लिया और दूसरों को नये देवताओं के रूप में स्वीकार कर लिया। इस प्रकार **सैटुर्नुस** (*Saturnus*) जो आरम्भ में रोम वालों के खेतों में अन्न की पैदावार बढ़ाने का देवता था, वह ग्रीक देवता क्रोनोस (Kronos) के साथ मिलाकर एक कर दिया गया और चूंकि **क्रोनोस, उरानोस** देवता का पुत्र था, इसलिए एक नये देवता का आविष्कार

१. इस विषय पर देखिए प्रसिद्ध इतिहासकार मौम्सेन का ग्रन्थ Romische Geschichte (रोएर्मिशे गेशिश्ते) खण्ड १, पृ० १९७। लैटिन वर्णमाला सिसली द्वीप की वर्णमाला के समान ही है, एट्रुस्कन (इटली के एक क्षेत्र की लिपि जो पुरानी है, किन्तु अब लुप्त हो गयी है) वर्णमाला प्राचीन एटिक (ग्रीस के एक प्रदेश की) वर्णमाला के समान ही है। लैटिन भाषा में अक्षर के लिए एपिस्टोला कहा जाता है, कागज के लिए कार्टा और स्टिलुस् (कलम), ये सब शब्द ग्रीक भाषा से ले लिये गये हैं।

२. मौम्सेन कृत 'रोएमिशे गेशिश्ते', खण्ड १, पृ० १८६। लैटिन भाषा का स्तातेरा (तराजू, तुला) शब्द, ग्रीक में 'स्तातेर' है। machina (माखिना= इंजिन या यन्त्र), ग्रीक भाषा में 'मेकानै' है। लैटिन भाषा का 'नुमुस' (चांदी का एक सिक्का) ग्रीक में 'नोमौस' कहा जाता है, इसी प्रकार लैटिन groma (ग्रोमा) (मापदण्ड, गज) ग्रीक में 'ग्नोमौन या ग्नोमा' रूप में है, और लैटिन भाषा का Clathri (क्लाथरी=झालर, जाली) ग्रीक भाषा में 'क्लैथरा' है। यह ध्यान देने की बात है कि ताली या कुंजी के लिए इटालियन भाषा का देशी शब्द claustra है।

किया गया और यह पौराणिक कथा गढ़ी गयी कि **सैटुर्नुस, कोएलुस** का बेटा है। इस प्रकार इटालियन देवता **हेरकुलीस,** जो अग्र गति रोकनेवाले बाड़ों, बाड़ से घिरे हुए स्थानों तथा दीवारों का देवता था, वह ग्रीक देवता **हेराक्लीस** (*Heracles*)[१] के साथ एक कर दिया गया। इटली के मल्लाहों ने कास्टोर (Castor) और पौलुक्स (Pollux) को, जो दोनों देवता विशुद्ध ग्रीक उत्पत्ति के थे, उन्हें अपना देवता बनाकर उन पर प्रगाढ़ विश्वास किया, और ये पहले ग्रीक देवता थे जिनके नाम पर **लेक रेगिल्लुस** (४८५ ई० पू०) के युद्ध के बाद रोम में[२] एक मन्दिर का निर्माण किया गया। ४३१ ई० पू० रोम में **अपोलो** देवता के नाम पर और एक मन्दिर स्थापित किया गया। इस देवता का मन्दिर **डेल्फी** (ग्रीस) में था। इटली में ग्रीक शरणार्थियों के बसने के बाद इस देवता की भविष्यवाणी से इटालियन लोगों ने कई बार अपने युद्ध के कार्यों में सम्मति ली। क्यूमाए नामक स्थान में स्थापित विख्यात सिबिल्ला की भविष्यवाणियाँ ग्रीक भाषा में[३] लिखी जाती थीं और वहाँ के पुरोहितों (*duoviri sacris faciundis*), दुओवीरि साक्रिस फाकिउन्दिस 'पवित्र काम करनेवाले दो वीर', (लैटिन में **विर** का अर्थ वीर मनुष्य था अनु०) को यह आज्ञा दी गयी थी कि वे उक्त भविष्यवाणियों का ग्रीक भाषा में **अनुवाद** करने के लिए दो ग्रीक दासों को रख लें।[४] जब ४५४ ई० पू० में ोमन लोगों

लैटिन शब्द गुवरनारे (=नाव चलाना) ग्रीक भाषा के शब्द कुबैरनाव से निकला है; लैटिन अंकोरा (जहाज का लंगर) ग्रीक शब्द अंकुरा से निकला है; लैटिन प्रोरा (नाव का अगला 'कर्ण') ग्रीक में 'प्रोरा' है; नाविस (नाव), रेमुस (नाव का डांड़) आदि शब्द ग्रीक के ही हैं और आर्य भाषाओं में प्रायः सर्वत्र पाये जाते हैं। इस कारण यह नहीं कहा जा सकता कि उक्त शब्द रोमनिवासियों ने ग्रीक लोगों से प्राप्त किये। इससे यह भी सिद्ध होता है कि जब फोकियन नामधारी जाति ने इटली का आविष्कार किया तो इससे पहले रोमन लोग समुद्र की यात्रा तथा उससे संबंधित लोगों से परिचित थे।

१. मौम्सेन कृत उक्त ग्रंथ, खण्ड १, पृ० १५४।

२. उक्त ग्रंथ, खण्ड १, पृ० ४०८।

३. उक्त ग्रन्थ, खण्ड १, पृ० १६५

४. सिबिल्ला या सिबुल्ला लैटिन भाषा के एक शब्द साबुस् या साबिउस्

ने अपने नियमों की एक संहिता बनानी चाही तो उन्होंने पहला काम यह किया कि इस काम के करने योग्य अनेक विद्वानों को ग्रीस भेजा, ताकि वे एथेन्स में सोल के बनाये तथा स्थापित किये हुए नियमों को पढ़ें और उन पर अपनी रिपोर्ट दें, एवं इसी प्रकार अन्य ग्रीक नगरों[१] के नियमों की भी जानकारी प्राप्त कर उन पर अपना मत विस्तार के साथ लिखें। ज्यों-ज्यों रोम की राजनीतिक शक्ति बढ़ने लगी त्यों-त्यों ग्रीक कला, ग्रीक रीति-रिवाज, ग्रीक भाषा और साहित्य का अधिकाधिक बोल-बाला होने लगा।[२] प्यूनिक (Punic) लड़ाइयों के प्रारम्भ होने से पहले अनेक रोमन राजनीतिज्ञ इस योग्य हो गये थे कि वे ग्रीक समझ लेते थे और उनमें यह भी योग्यता आ गयी थी कि वे आसानी से ग्रीक भाषा बोल लेते थे। रोम के छात्रों को उनके गुरु केवल रोमन अक्षर ही नहीं सिखाते थे (जिन्हें लैटिन भाषा में literatores कहा जाता था), बल्कि छात्रों को रोमन लिपि सीखने के साथ-साथ ग्रीक भाषा की वर्णमाला भी पढ़नी पड़ती थी। उस समय जो पण्डित रोमन विद्यार्थियों को ग्रीक भाषा सिखाते थे उनका नाम grammatici (ग्रामाटिकि, व्याकरण पढ़ानेवाले) पड़ गया और उनमें से अधिकांश दास थे, जिन्हें liberti (लिबर्टि 'स्वतन्त्र किये गये') कहा जाता था।

प्रसिद्ध लेखक काटो (Cato) के समय में जिन नवयुवकों को उक्त विद्वान्

(ज्ञानी) का लघुता-वाचक रूप है। यह शब्द यद्यपि प्राचीन लेखकों के ग्रन्थों में कहीं नहीं पाया जाता तो भी निश्चय ही, इटालियन बोलियों में कहीं न कहीं रहा होगा। फ्रेंच भाषा के शब्द *Sage* (साज) की व्युत्पत्ति यह तथ्य मान कर ही निकलती है कि प्राचीन इटालियन बोलियों में साबिउस् (*Sabius*) शब्द रहा होगा, क्योंकि उक्त शब्द न तो लैटिन *Sapiens* (सापिएन्स) और न तो *sapius* (सापिउस्) से निकाला जा सकता है।—डिऐज ने अपने प्रसिद्ध कोश *Lexicon Ethmologicum* सव्युत्पत्तिक कोश) पृ० ३०० में सापिउस् शब्द रूपान्तर से दिया है। नेसापिउस—इसमें 'ने' का अर्थ नहीं और सापिउस् का अर्थ विद्वान् है, और पूरे शब्द का अर्थ 'अविद्वान् या मूर्ख' है। इस कारण सिबुल्ला का अर्थ था "एक ज्ञानी बूढ़ी स्त्री"।

१. मौम्सेन का उक्त ग्रंथ, खण्ड १, पृ० २५६।

२. उक्त ग्रंथ, खण्ड १, पृ० ४२५ और ४४४।

ने रोम में शिक्षा प्राप्त करते हुए देखा, उनके लिए यह अति आवश्यक हो गया था कि वे समाज में सुसंस्कृत और सुसभ्य बनने के लिए ग्रीक भाषा का ज्ञान प्राप्त करें। वे ग्रीक ग्रन्थ पढ़ते थे, ग्रीक भाषा में बातचीत करते थे। इतना ही नहीं, वे ग्रीक भाषा में लिखा-पढ़ी भी करते थे। तिबेरिउस ग्राकुस (*Tiberius Gracchus*), जो ई० पू० १७७ में रोड्स नामक ग्रीक द्वीप में रोम का राजदूत था, उसने वहाँ ग्रीक भाषा में अपना भाषण दिया और यह भाषण कुछ समय बाद प्रकाशित भी किया।[१] ग्रीक लोगों ने **फ्लामिनिउस** (*Flaminius*) नामक रोमन को ग्रीक भाषा में एक अभिनन्दन भाषण समर्पित किया। उसने इस अभिनंदन का उत्तर ग्रीक देवताओं के सम्मान में ग्रीक भाषा की अनेक स्तुतियाँ लिख कर दिया। रोम का सबसे पहला इतिहास स्वयं रोम में ग्रीक भाषा में लिखा गया और इस ग्रन्थ का लेखक था **फाबिउस पिक्टोर** नामक रोमन लेखक[२] जो ई० पू० दूसरी सदी में जीवित था। यह मालूम पड़ता है कि सम्भवतः ग्रीक भाषा के इस इतिहास से चिढ़कर और **लुकिउस किकिउस अलिमेंतुस और पुब्लिउस सिपिओ** नामक रोमन विद्वानों के ग्रीक ग्रन्थों से दुखित होकर ही **काटो** ने रोम का अपना इतिहास लैटिन भाषा में रचा। स सुसंस्कृत तथा सुसभ्य ऊँचे वर्ग का अनुकरण वहाँ के नीचे से नीचे स्तर के लोगों ने बड़ी उत्सुकता के साथ किया। इस बात के सबसे उत्तम प्रमाण **प्लाउतुस** के नाटक हैं। इन नाटकों में ग्रन्थकार के कुछ चरित्र ऐसे हैं जो ग्रीक शब्दों को अपनी बोली में जबरदस्ती ठूंसने का प्रयत्न करते हैं; यह प्रयास १८वीं सदी के उन जर्मन लेखकों की तरह ही था जिन्होंने अपनी जर्मन भाषा के भीतर मूर्खता का यह दिखावा किया है कि उन्होंने बीच-बीच में फ्रेंच शब्दों की प्रदर्शनी-सी कर दी है। रोमन साम्राज्य ने ग्रीस देश से जो बपौती इस प्रकार प्राप्त की उससे रोम के लोगों को हानि और लाभ दोनों हुए; पर इस स्थल पर इस बात का भी विचार करना पड़ता है कि इन ग्रीक भाषा के गुरुओं के बिना रोमन साम्राज्य की क्या दशा होती? रोमन साहित्य के प्रथम जनक ग्रीक गुरु ही थे जो बच्चों को घर-घर में ग्रीक भाषा पढ़ाते थे। इन्हीं पण्डितों ने पाठशालाओं के छात्रों के योग्य पुस्तकों तथा नाटकों का अनुवाद लैटिन में किया। **लिबिउस आंद्रो-**

१. उक्त जर्मन ग्रंथ, खण्ड १, पृ०, ८५७।
२. उक्त ग्रंथ, खण्ड १, पृ०, ९०२।

निकुस, जो **तारेन्तुम** (ई० पू० २७२ में) युद्ध का बन्दी बनाकर रोम भेजा गया था, रोम में ही बस गया और ग्रीक भाषा के अध्यापक के रूप में रोम में ही डटा रहा। उसका, होमर के ग्रन्थ **ओडिसी** का लैटिन पद्य में अनुवाद रोमन साहित्य का श्री-गणेश समझा जाना चाहिए। यह प्रायः स्पष्ट ही है कि यह ग्रन्थ उक्त लेखक ने अपनी चलायी हुई पाठशाला के छात्रों के लिए लिखा था। उसके लिखने का ढंग यद्यपि बहुत ही भद्दा है और नाम मात्र भी लचीला नहीं है, तो भी रोमन साम्राज्य की राजधानी रोम के उगते हुए कवियों ने इसे सर्वथा पूर्ण और अपना आदर्श साहित्य समझा। **नेविउस** और **प्लाउटुस** उसके समसामयिक थे और उसके मरने के बाद भी इन्होंने लैटिन में ग्रीक साहित्य के झण्डे को फहराया। **प्लाउटुस** के सभी नाटक मौलिक ग्रीक नाटकों के अनुवाद थे और रोमन लोगों की मानसिक परि-स्थिति के अनुसार उनमें कहीं-कहीं बदलाव भी कर दिया गया था। इस पर तमाशा यह था कि रोमन लोगों की इच्छा को देखकर **प्लाउटुस** ने ग्रीस देश के दृश्यों और वहाँ हुई घटनाओं को रंच मात्र नहीं बदला। रोम के निवासी ग्रीक जीवन को, या कहिए, ग्रीक लोगों के भ्रष्ट चरित्र को ही देखना चाहते थे; यदि कोई कवि किसी रोमन रईस या किसी महिला को रंगमंच पर ले आने का साहस करता तो इनके जीवन को देखने की इच्छा न होने के कारण वे लोग कवि पर पथ-राव कर उसे मार डालते। लैटिन में ग्रीक दुःखान्त नाटकों का भी धड़ाधड़ अनु-वाद होने लगा। **एन्निउस,** जो **नेविउस** और **प्लाउटुस** का समकालीन था, भले ही वह उक्त लेखकों से कुछ कम आयु (२३९ ई० पू० से १६९ ई० पू०) का था, उसने **यूरिपाइडीज** के नाटकों का सर्वप्रथम अनुवाद किया। यह **एन्निउस, आन्द्रोनिकुस** के समान एक ग्रीक था जो सदा के लिए इटली में ही बस गया था। यह रोम में भाषाएँ सिखाता था और ग्रीक भाषा के नाटकों का अनुवाद करता था। इसे रोम के उदार दल ने बहुत संरक्षण दिया। **पुब्लिउस सीपिओ, तितुस, फ्लामिनिउस** और **मारकुस पुब्लिउस नेबिलिओर**[1] उस पर लट्टू थे तथा उसके बहुत बड़े सहायक थे। वह भी रोम पर इतना फिदा था कि वहाँ का नागरिक ही बन गया। यह मानना पड़ता है कि **एन्निउस** केवल कवि ही नहीं था, वल्कि कवि से भी बहुत बड़ा था, और वह भाषाओं का अध्यापक ही नहीं रहा, उसका पद उससे भी बहुत ऊँचा था।

१. मॉम्सेन कृत उक्त ग्रंथ, खण्ड १, पृ० ८९२।

उसने दो ग्रन्थ ग्रीक से लैटिन भाषा में ऐसे अनूदित किये कि जिनमें बड़े ही कड़ुवे शब्दों में ग्रीस देश के विरुद्ध लिखा गया था और स्वयं ग्रीस देश के देवताओं के अस्तित्व के विरुद्ध प्रहार किया गया था।[१] इनमें से प्रथम पुस्तक **एपीकार्मुस** (ई० पू० ४७०, मेगारा के निवासी) का दर्शन पर लिखा गया ग्रन्थ था। इसमें बताया गया था कि **जेउस** (=द्यौस्) कोई देवता नहीं था। वह तो वायु का एक नाम था, तथा अन्य ग्रीक देवता प्रकृति की नाना शक्तियों के केवल नाम बतानेवाले शब्द थे। दूसरा ग्रन्थ **यूहेमेरुस** का लिखा हुआ था जो ईसा से ३०० वर्ष पूर्व जीवित था और **मेस्सेने** का निवासी था। इसने एक उपन्यास लिखा था और इसमें नाना प्रमाणों से यह सिद्ध किया था कि ग्रीस देश के देवताओं का कभी अस्तित्व ही नहीं रहा एवं ग्रीस देश में जिन नामों पर देवताओं के रूप में नाना शक्तियों का आरोपण किया जा रहा है वे वास्तव में मनुष्य थे जो हमारे समान ही इस संसार में विचरण करते थे। ये दोनों ग्रन्थ बिना किसी प्रयोजन के अनूदित नहीं किये गये थे, इनके भीतर बहुत बड़ा उद्देश्य था, जो पूर्ण रूप से सफल हुआ। यद्यपि ये ग्रन्थ बहुत छिछले थे और इनके विचार ऊपर ही ऊपर उड़ते थे, तो भी इनका रोमनिवासियों पर सत्यानासी प्रभाव पड़ा, क्योंकि रोमन धर्मशास्त्र की रचना का ढंग उक्त ग्रन्थों से भी बहुत हलका था। इन ग्रन्थों ने कुछ ऐसे विचारों का प्रचार करने में सफलता प्राप्त की कि ग्रीस देश के निवासी का अर्थ लैटिन भाषा में 'पूरा नास्तिक' हो गया; और **एन्निउस** को शायद ही उस दण्ड से बच निकलने का अवसर मिलता जो नेविउस को उसके कड़ुवे राजनीतिक व्यंग्यात्मक काव्यों के लिए दिया गया था; पर वह उसके समय में राज करने वाले दल पर बहुत प्रभाव रखता था, तथा इस दल के हाथ में मारने और जिलाने की, दण्ड देने या न देने की पूरी-पूरी शक्ति थी। प्रसिद्ध लेखक **काटो** भी, जो ग्रीक दर्शन शास्त्र[२] और छन्दानुशासन

१. उक्त ग्रंथ, खण्ड १, पृ० १९४ और ८४३। कई विद्वान् लोग इस बात को संदेह की दृष्टि से देखते हैं कि एन्निउस् का ग्रंथ एपिकार्मुस् के ग्रन्थ का अनुवाद था या नहीं। इस विषय पर वालन द्वारा एन्निउस् के लिखित ग्रंथ का पृष्ठ तिरानवे देखिए। एपिकार्मुस के विषय पर बर्नेज का लिखा हुआ ग्रन्थ *Remisches museum* **(राइनिशेस मुज़ेउम्) भी देखिए।**

२. मॉम्सेन कृत उक्त ग्रंथ, खण्ड १, पृ०, ९११।

का घोर शत्रु था, इस भयंकर **एन्निउस** का घनिष्ठ मित्र था। इस समय रोम के इस प्रसिद्ध लेखक ने अपनी वृद्धावस्था में उक्त दर्शनशास्त्र और उपन्यासों को बड़े परिश्रम से सीखा और याद किया, ताकि वह अपने छात्रों को ग्रीक साहित्य की यह झाँकी भी दिखलाये जो उसके विचार में यद्यपि विशेष काम की चीज़ नहीं थी, तो भी ग्रीक साहित्य के इन ग्रन्थों को वह हानिरहित समझता था। काटो ग्रीस की हर बात से बहुत चिढ़ता था और उसका विरोध करता था, इसलिए उसके समय के रोमन लोग उसकी बहुत हँसी उड़ाते थे, किन्तु वह ग्रीक संस्कृति और सभ्यता पर जो दोषारोपण करता था, उसमें बहुत सचाई भरी थी। हमने इस समय के बंगाली नवयुवकों के विषय में बहुत कुछ सुना है—ये नवयुवक हिन्दू हैं जिन्होंने **बायरन** और **वाल्टेयर** के ग्रन्थों को बहुत ध्यान से पढ़ा है, इनकी रुचि देखिए कि ये यूरोपियन खेल बिलियर्ड को बड़ी रुचि से खेलते हैं, यूरोपियन गाड़ियाँ चलाते हैं, ब्राह्मण पुरोहितों को हँसी उड़ाते हैं, ईसाई धर्मप्रचारकों की खुले दिल से प्रशंसा करते हैं और किसी बात या किसी धर्म पर विश्वास नहीं करते। **काटो**, अपने समय के रोम में आवारा फिरने वाले तथा गपशप में समय खोनेवाले नवयुवकों का जो चित्र खींचता है उसे पढ़कर हमें इस समय के बंगाल के इन नवयवकों की याद आ जाती है।

जब रोम ने ग्रीस के मुर्दा हाथों से ज्ञान की मशाल छीन ली उस समय ज्ञान की यह ज्योति अपनी पूर्ण चमक के साथ नहीं जल रही थी। **अफलातून** और **अरस्तू** के स्थान पर **ख्रिस्सिपुस** और **कारनेआडीज** अपना ज्ञान दे रहे थे; और **एस्काइलुस** तथा **सोफ़ोक्लीस** की जगहों पर **यूरीपाइडीज** और **मैनाण्डर** अपनी धीमी ज्योति से ज्ञान का उजाला फैला रहे थे। ग्रीस में ज्ञान की जो अति उज्ज्वल महान् ज्योति **प्रोमीथिउस** (=प्रमथ) ने चमकायी थी और जिसने बाद को केवल इटली को ही जाज्वल्यमान करने का बीड़ा नहीं उठाया बल्कि यूरोप के सब देशों को अपनी प्रतिभा से प्रकाशित कर दिया; उसका संरक्षक जब रोम बना तो ग्रीस देश में इसके भीतर जो महत्त्वपूर्ण गुण थे जिनके कारण पुराना ग्रीस आज भी पूजा जा रहा है, वे गुण बहुत कुछ लुप्त हो गये। रोमनों ने ग्रीक ज्ञान की ज्योति से गुण तो नहीं लिये; परिणाम यह हुआ कि रोमनों की स्वाभाविक गम्भीरता और सादगी, रोमनों के नागरिकता के गुण और परम देशभक्ति, उनके चरित्र की निर्मलता तथा पवित्रता भाग गयी और इनके स्थान पर ग्रीक भोग-विलास और अश्लील जीवन, ग्रीक छल-प्रपंच और नीच स्वार्थ-परायणता, ग्रीक अवगुण और अविश्वास रोमनों

में आग की तरह फैल गये। उक्त अवगुणों को रोमन समाज में आने से रोकने वाले नाना उपाय और नाना आदेश उनका बाल भी बाँका न कर सके। **काटो** और उसके विचार के अन्य विद्वानों ने जब इन दोषों के विरुद्ध अपनी सारी शक्ति लगाकर लिखा तब भी ग्रीस की उक्त दोषपूर्ण संस्कृति अधिकाधिक आकर्षक रूप धारण करती गयी। हर नयी पीढ़ी में उक्त ग्रीक रीति-रिवाज और विचार रोम के नवयुवकों को अधिकाधिक अपने नशे में शराबोर करते रहे। ईसा पूर्व १३१[१] सन् में एक रोमन राजदूत, **पुब्लिउस क्रास्सुस** के विषय में हम पढ़ते हैं कि **मैत्सोफान्ती** की भाँति वह भी ग्रीक भाषा की नाना बोलियों में बहुत ही आसानी के साथ बातचीत कर सकता था। **सुल्ला** ने विदेशी राजदूतों को यह अनुमति दे रखी थी कि वे रोमन सीनेट[२] (राजसभा) के सामने ग्रीक भाषा में भाषण दे सकते थे। स्टोइक दार्शनिक पानेतिउस[३] सीपिओ खानदान के लोगों के घर में रहता था। इस घर में रोम के विख्यात साहित्यिकों का बहुत समय तक सम्मेलन हुआ करता था। इन सभाओं और सम्मेलनों में ग्रीक इतिहासकार **पौलिबिउस,** ग्रीक दार्शनिक **क्लीटोमाखुस,** व्यंग्यलेखक **लुकिलिउस,** अफ्रीकन कवि **टेरेंस** (ई० पू० १९६ से ई० पू० १५९ तक) और प्रसिद्ध आशुकवि **आरखिआस** (ई० पू० १०२) का सदा अत्यन्त स्वागत होता था और वे उनमें सहर्ष सम्मिलित होते थे।[४] इस चुनिन्दा विद्वानों की गोष्ठी में ग्रीक साहित्य के प्रमुख ग्रन्थ पढ़े जाते थे और उनकी बाल की खाल निकाली जाती थी; ग्रीक दर्शन शास्त्र की नाना समस्याएँ विद्वानों की इस गोष्ठी में विचार करने के बाद हल की जाती थीं और मानवजीवन के उच्चतम आदर्शों पर बहुत विचारपूर्ण और गम्भीर वार्तालाप भी इन गोष्ठियों में होता था। यद्यपि इस मण्डली के विद्वानों के विचार-विमर्श, तर्क-वितर्क और ज्ञानपूर्ण बातचीत के प्रभाव से कोई मौलिक प्रतिभा पैदा नहीं हुई, फिर भी रोमन साहित्य की प्रगति के क्षेत्र में इसका अत्यधिक शक्तिशाली प्रभाव पड़ा। यह गोष्ठी सुघड़ और सुरुचिपूर्ण ज्ञानियों और विज्ञानियों के न्यायालय

१. मॉम्सेन कृत उक्त ग्रंथ, खण्ड २, पृ०, ४०७।

२. मॉम्सेन कृत उक्त ग्रंथ, खण्ड २, पृ०, ४१०।

३. उक्त ग्रंथ, खण्ड २, पृ०, ४०८।

४. उक्त ग्रंथ, खण्ड २, पृ०, ४३७ और उसका नोट; खण्ड २, पृ०, ४३०।

की भाँति थी जहाँ से रोम के विद्वानों में शुद्ध साहित्यिक विचारों का प्रचार हुआ। विश्व के मनीषियों के इस क्लब के विचारों का ही यह फल था कि प्राचीन लैटिन साहित्य में बहुत-कुछ विशुद्धता, सादगी और मर्दानापन आया। विश्व के ये सब विद्वान् **सीपिओ** खानदान के लोगों की, अतिथि-अभ्यागतों की बड़े चाव से स्वागत करनेवाली छत के नीचे एकत्रित होते थे।

यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि रोमन लोगों के फोनीशियन लोगों के साथ जो युद्ध हुए थे उनके समाप्त होने के बाद रोमन लोगों का धार्मिक जीवन रोमन कम रहा, बल्कि उसमें अधिकांश भाग ग्रीक धर्म और आचार-विचारों का आ गया। वे सब विचारशील व्यक्ति, जो धार्मिक समस्याओं पर गम्भीरता से गहरे पानी में पैठे हुए थे, या तो **स्टोइक सम्प्रदाय** के थे या एपीक्यूरस के अनुयायियों में से थे; या वे ऐसे विचारक थे जो 'न्यू एकेडेमी' (नवीन दार्शनिक संघ) नामक संस्था के सिद्धान्तों को छाती से लगाये फिरते थे, जिसमें अनन्त, अलौकिक, अलख, अमान आदि के ज्ञान की सम्भावना सर्वथा अस्वीकार की जाती थी और यह भी बताया जाता था कि जो उक्त विशेषणों या नामों को पकड़कर बैठे रहते हैं वे सत्य को तो पहचानते ही नहीं, केवल अपना मत देते हैं।[१] यद्यपि **एपीक्यूरस** और इस नये दार्शनिक संघ के सिद्धान्त सदा भयंकर और नास्तिक मत के माने जाते थे तो भी स्टोइक सम्प्रदाय का दर्शनशास्त्र समाज में किसी प्रकार सहन कर लिया जाता था और दर्शन शास्त्र तथा धार्मिक विचारों के बीच एक प्रकार का समझौता कर लिया गया था। इसके साथ-साथ रोमन साम्राज्य का अपना अलग दर्शनशास्त्र था और उसका धर्म भी भिन्न था। रोमन साम्राज्य की पुरोहितमण्डली ने ई० पू० १६१वें वर्ष में सभी ग्रीक कवियों और दर्शनशास्त्र के पण्डितों को रोम से निर्वासित करने में सफलता प्राप्त कर ली थी, किन्तु उनकी आँखों के सामने स्पष्ट मालूम होने लगा कि इस विषय पर समझौता अति आवश्यक है। ज्ञान और विवेक को अपने विचारों का आधार बनाने वाले सभी समझदार लोग[२] यह बात समझ गये और खुले-खजाने अपने इस मत को प्रकट करने लगे कि कर्मकाण्डी धर्म के स्थान पर दर्शन शास्त्र

१. ज़ेनो की मृत्यु ई० पू० २६३ में हुई; एपीक्यूरस ई० पू० २७० में मरा। ऑरकेसिलाउस् ई० पू० २४१ में मरा और कारनेआडीस ई० पू० १२९ में मरा।

२. मॉम्सेन कृत उक्त ग्रंथ, खण्ड २, पृ०, ४१७ व ४१८।

को माना जाना चाहिए। किन्तु समाज की बहुसंख्यक जनता को साम्राज्य की आज्ञा के अधीन सुव्यवस्थित रखने के लिए लोगों का देवताओं के आश्चर्य-कर्मों और भविष्य-वाणियों पर विश्वास करना भी वांछनीय प्रतीत होता था। कट्टरपन्थियों, साम्राज्य-वादियों और प्रमुख अनुदार नेता **काटो**[1] ने अपना यह मत प्रकट किया कि प्राचीन धर्म के पुरोहित अपनी विचित्र वेशभूषा में जब परस्पर मिलते हैं तो एक दूसरे को देखकर हँसते-हँसते लोटपोट क्यों नहीं हो जाते। **सिपिओ एर्मिलिआनुस** और **लेलिउस** स्वीकार करते थे कि जनता के लोकप्रिय देवताओं पर उनका पूरा विश्वास है, किन्तु उनके विचार से **जुपिटर** (=द्यौस्‌पितर) विश्व के भीतर व्याप्त आत्मा है और देवताओं की प्रस्तरमूर्तियां शिल्प तथा कला की कृतियां हैं।[2] दूसरी ओर जनता चिल्लाने और आपत्ति करने लगी कि देवताओं का न तो शरीर है, न उनके अंग हैं और न ही उनमें काम-क्रोध-लोभ आदि दोष हैं। तो भी **स्टोइक मत** के दार्शनिकों और कट्टरपंथी पुरोहितों में किसी न किसी प्रकार शान्ति बनी रही। इन दोनों विपक्षियों का मत था कि एक-जैसे ही देवताओं पर इन दोनों का अटल विश्वास है, परन्तु वे उस स्वतन्त्रता का दावा करते थे जिससे वे उन समान देवताओं पर अपनी-अपनी विचार-शैली के अनुसार विश्वास कर सकें।

मैंने रोम के बौद्धिक वातावरण में **फोनीशियन** लड़ाइयों के समाप्त होने के बाद जो-जो परिवर्तन हुए उनका विस्तारपूर्वक वर्णन किया और मैंने यह सिद्ध करने का प्रयत्न भी किया है कि इन परिवर्तनों में ग्रीक लोगों के विचार किस प्रकार छोटी-छोटी बातों में पूर्णतया व्याप्त थे। यह मैंने इसलिए किया है कि एक ऐसे तथ्य का भली भाँति खुलासा करूं जो यदि विस्तार से न समझाया जाता तो आदमी के दिमाग द्वारा इस तथ्य का स्वीकार करना असम्भव-सा लगता कि किसी स्वाधीन विजेता जाति पर विजित जाति का इतना अधिक प्रभाव पड़ सकता है। हमारे लिए यह तथ्य हृदयंगम करना कठिन हो जाता है कि रोम के लोगों ने महान् उत्साह और गंभीरता के साथ ग्रीक व्याकरण का अध्ययन किया था, और यह भी थोड़े-से इने-गिने विद्वानों व दार्शनिकों ने नहीं किया बल्कि रोमन साम्राज्य के, उस समय

१. उक्त ग्रंथ, खण्ड १, पृ० ८४५। सिसरो कृत ग्रंथ De Divinatione (डे डिविनात्सिओने), खण्ड २, पृ०, २४।

२. मॉम्सेन कृत उक्त ग्रंथ, खण्ड २, पृ०, ४१५ व ४१७।

के प्रमुख राजनीतिज्ञों ने भी यह काम बड़े चाव से किया। संज्ञाओं और क्रियाओं पर तर्क-वितर्क, कारकों और लिंगों पर जटिल विचार, नियमित और अनियमित रूपावलियों की रूपरेखाएं हमारे मन में बड़ी उलझन पैदा करने वाली-सी लगती हैं क्योंकि स्कूलों में ये विषय बहुत बोझिल तरीके से पढ़ाये जाते हैं। और यह बात नाम मात्र भी हमारी समझ में नहीं आती कि रोम में व्याकरण—विशुद्ध और शुष्क तथा रसरहित व्याकरण—सब नागरिकों और रईसों में कैसे एक ऐसा रसीला विषय बन गया कि इस पर बातचीत या चर्चा करना सारे नगर के लिए एक फैशन हो गया। इस बात में लेश मात्र संदेह नहीं कि रोम के निवासी व्याकरण के रूपों के अध्ययन और उसकी चर्चा के भीतर ग्रीस के बड़े-बड़े प्राचीन लेखकों[1] के व्याकरण के नाना रूपों के उदाहरण दे-देकर विषय को रसीला बना देते थे। तो भी इतना तो मानना ही पड़ेगा कि उनकी चर्चा का विषय भाषा के व्याकरण के नाना रूप ही थे। जब राजा **अट्टालुस** (तत्कालीन मिस्र के राजा) ने रोम को राजदूत के रूप में अपने समय के सर्वप्रथम व्याकरणकारों में से एक प्रमुख व्याकरणकार **परगामुस** नगर निवासी विद्वान् **क्राटीस** को भेजा तो रोमन साम्राज्य की राजधानी में सभी राजनीतिक नेताओं और नीतिज्ञों ने, साहित्य में अत्यधिक रस लेने के कारण विशेष सम्मान और तड़क-भड़क के साथ उसका स्वागत किया। इस बीच एक ऐसी दुर्घटना हो गयी कि एक दिन **क्राटीस पालातियन** पहाड़ी पर टहल रहा था, इतने में, न मालूम कैसे, वहां की एक नाली के एक गड्ढे में उसका पांव पड़ गया और उसकी हड्डी टूट गयी।[2] इस कारण उसने जल्दी वापस लौटने का जो विचार कर रखा था वह छोड़ना पड़ा और उसे अधिक दिनों तक रोम नगर में ही रहना पड़ा। यह देखकर रोम निवासियों ने उससे विनम्र प्रार्थना की कि वह व्याकरण के विषय पर जनता के बीच कुछ भाषण दे और **सुएटोनिउस** ने लिखा है कि इस दिन से और इन भाषणों से रोम नगर में व्याकरण के अध्ययन का श्रीगणेश हुआ। यह घटना प्रायः ई० पू० १५९ वर्ष की है, अर्थात् यह फोनीशियनों और रोमनों के बीच हुए दूसरे और तीसरे युद्धों के बीच के समय की है। इस समय से कुछ पहले **एन्निउस**

१. **सुएटोनिउस् कृत** De Illustr. Gramm. cap. **(अध्याय) २।**

२. **सिओपिउस् के ग्रमाटिका फिलोसोफ़िका की, जो १६२८ में लिखा गया था, भूमिका देखिए।**

का देहान्त हो चुका था, और यह वह काल है जब कि ग्रीक कवियों और दार्शनिकों को रोमन पुरोहितों ने रोम से निर्वासित करवा दिया था (ई० पू० १६१वां वर्ष)। उक्त घटना के चार वर्ष बाद मिस्र से **क्राटीस** के ही समान **कारनेआडीस** को राजदूत बनाकर रोम भेजा गया। **काटो** ने इस बार इतनी सावधानी बरती कि उसने रोम नगर में **कारनेआडीस** के भाषण करने पर रोक लगवा दी थी। किन्तु इस प्रतिबन्ध से क्या होना था? **क्राटीस** के भाषणों के अनन्तर रोम में लैटिन व्याकरण और तुलनात्मक भाषा-विज्ञान के अध्ययन ने अति लोकप्रियता प्राप्त कर ली और घर-घर इसकी चर्चा होने लगी। लैटिन ग्रन्थों से पता चलता है कि **लुकिउस एलिउस् स्टीलो**[1] ने लैटिन व्याकरण पर वैसे ही भाषण दिये थे जैसे कि **क्राटीस** ने ग्रीक भाषा के व्याकरण पर। इसके शिष्यों में **वार्रो**, **लुकिलिउस** और **सिसरो** प्रमुख थे। **वार्रो** ने लैटिन भाषा पर चौबीस पुस्तकें रचीं, जिनमें से चार तो उसने **सिसरो** को ही समर्पित कीं। कई प्राचीन लैटिन ग्रन्थों में यह उद्धृत किया गया है कि **सिसरो** स्वयं व्याकरण की समस्याओं के समाधान करने का पूर्ण अधिकारी माना जाता था, यद्यपि हमारे पास उसका व्याकरण पर लिखा हुआ कोई खास ग्रन्थ नहीं है। **लुकिलिउस** ने आलोचना और व्यंग्य से युक्त अपनी कविताओं का नवां संग्रह शब्दों में प्रत्येक अक्षर के शुद्ध और समुचित रीति से लिखे जाने और उच्चारण के विषय पर लिखा।[2] परन्तु रोमन समाज के ऊंचे-से-ऊंचे स्तर के लोगों में उस समय व्याकरण के अंग-प्रत्यंग के अध्ययन की व्यापक चर्चा घर-घर फैल रही थी तथा उन्हें इस विषय में जो रस प्राप्त हो रहा था वह स्पष्ट रूप में एक घटना से प्रत्यक्ष हो जाता है, और वह यह है कि स्वयं सीज़र (कैसर) ने लैटिन भाषा में एक सुन्दर व्याकरण लिखा था। इसे उसने उस समय लिखा था जब वह **गौल** (Gaul) जाति से युद्ध करने में फँसा हुआ था। यह ग्रन्थ **सिसरो** को समर्पित किया गया था तथा यह **सिसरो**

१. **मॉम्सेन कृत उक्त ग्रंथ, पृ०, ४१३, ४२६, ४४५ व ४५७। इस लुकिउस् एलिउस् स्टीलो ने व्युत्पत्तिशास्त्र पर एक सुन्दर ग्रंथ लिखा था और साथ ही प्लाउटुस् के ग्रंथ के शब्दों की एक अनुक्रमणिका भी बनायी थी।—लैर्शकृत** Die Sprachphilosophie der Alten **(डी स्प्राखफिलोसोफ़ी डेर आल्टन), खण्ड २, पृ०, १११।**

२. **लैर्श कृत उक्त ग्रंथ, खण्ड २, पृ०, ११३, ११४ व १४३।**

के लिए महान् गर्व की बात रही होगी कि संसार के इतने ब्रड़े सेनापति और राजनीतिज्ञ ने उसका ऐसा भारी सम्मान किया।[१] इनमें से अधिकांश पुस्तकें नष्ट-भ्रष्ट हो चुकी हैं और हमारे पास तक नहीं पहुँचीं, तथा हम उन पर अपना जो मत दे सकते हैं वह प्राचीन लैटिन ग्रन्थों में कहीं-कहीं पाये जाने वाले उद्धरणों के आधार पर ही दे सकते हैं। एक उदाहरण लीजिए कि **सीजर** द्वारा लिखे हुए एक ग्रंथ **दे आनालोगिआ** (*De Analogia*) का एक बहुत छोटा भाग हमें प्राप्त हुआ है और इससे हमें यह पता चलता है कि **सीज़र** ने लैटिन भाषा के व्याकरण में सबसे पहले अपादान कारक या पंचमी विभक्ति (ablative) शब्द का आविष्कार और प्रयोग किया। प्राचीन लैटिन पुस्तकों में **सीजर** से पहले यह शब्द कहीं पाया ही नहीं जाता और यह भी एक प्रकार से निश्चित ही है कि अन्य कारकों के लिए प्रयुक्त होनेवाले नामों की तरह यह पुराने ग्रन्थों से लिया भी नहीं जा सकता था। इसका कारण यह है कि अपादान प्राचीन ग्रीक व्याकरणों में था ही नहीं, क्योंकि वे इसे मानते ही न थे। यह विचार करके और यह देखकर कि एक ओर तो **सीजर गौल** तथा जर्मनी के वर्बर लोगों के साथ वीरता से जूझ रहा था और उस युद्धक्षेत्र से, जो रोम से दूर था, वह अपनी राजधानी में जो राजनीतिक दावपेच चल रहे थे और उलझनें खड़ी हो रही थीं, उनका भी बारीकी से अध्ययन कर रहा था। साथ-साथ वह इस तैयारी में लगा हुआ था कि उस समय संसार में फैले हुए साम्राज्य के शासन का राजदंड अपने हाथ में ले और दूसरी ओर इस प्रकार के कामों में फँसा हुआ **सीजर** अपने सेक्रेटरी, ग्रीस देश निवासी **डिडिमुस**, के साथ और उसकी सहायता से इतने झंझटों के बीच तुलनात्मक भाषाशास्त्र और व्याकरण का अध्ययन तथा प्रणयन कर रहा था।[२] इस घटना से उस असाधारण वीर का एक नया रूप हमारे सामने आता है और उस समय में प्रतिभाशाली पुरुष कैसे कैसे महान् कार्य करते थे, इसका भी पता चलता है। इस महान् पुरुष की और भी बड़ी महानता देखिए कि इसने (सीज़र ने) **गौलों और** जर्मनों से युद्ध में विजय पाने के बाद के लिए यह अपनी अति प्रिय योजना बनायी थी कि रोम नगर में ग्रीक तथा लैटिन भाषाओं की पुस्तकों का एक संग्रहालय स्थापित किया जाय। और उसने इस विशाल संग्रहालय के

१. **सिसरो कृत ब्रूट** (Brut), **अध्याय ७२।**

२. **लैर्श कृत उक्त ग्रंथ, खण्ड ३, पृ०, १४४।**

पुस्तकाध्यक्ष का पद अपने समय के सबसे बड़े विद्वान् **वार्रो** को दिया था। और मजा देखिए कि यह विद्वान् **वार्रो** सीज़र से **पौम्पी**[1] के पक्ष में सदा लड़ता रहा।

इस भाषण के प्रारम्भिक भाग में जैसा हम बता चुके हैं, यह वह समय है जब रोम नगर में **डिओनिसिउस थ्राक्स** ने ग्रीक का सबसे पहला आरम्भिक व्याकरण प्रकाशित किया। इस प्रकार निरीक्षण-परीक्षणात्मक व्याकरण की जड़ ग्रीस से लाकर रोम में भी जमा दी गयी। ग्रीक भाषा के व्याकरण के पारिभाषिक शब्द लैटिन रूप में उपस्थित किये गये और इस नये लैटिन भाषा के वेश में दो हजार वर्ष तक बहुत लम्बी यात्रा करके अब ये सारे संसार में फैल गये हैं। स्वयं भारत में, जहां कि ब्राह्मण पंडितों ने अपने व्याकरण की नाना शाखाओं में बहुत भिन्न पारिभाषिक शब्द गढ़े और उनका पालन-पोषण किया, वहां एक ऐसी शब्दावली प्रस्तुत की गयी जो कई बातों में सिकन्दरिया और रोम से भी अधिक परिपूर्ण है, और आजकल हमारे यूरोपियन अध्यापक जो Active & Passive (भाववाच्य और कर्मवाच्य) अपने भारतीय छात्रों को पढ़ाते हैं उससे भी अधिक परिपूर्ण है और संस्कृत के व्याकरण में अधिक परिपक्वता है। शब्दों के भाग्य भी बहुत ही विचित्र-विचित्र हैं। हाल में मैंने जब भारत के सरकारी स्कूलों के कुछ प्रश्नपत्रों का निरीक्षण किया तो उनमें निम्न विचित्र-विचित्र प्रश्न पूछे गये थे, जैसे—'शिव का संबंधकारक का रूप क्या होता है?' इस प्रश्न में व्याकरण शास्त्र के इतिहास के खण्ड के खण्ड एक वाक्य में समाप्त कर दिये गये थे। ये शब्द **सम्बन्ध=कारक विभक्ति** भारत में कहां-कहां चक्कर लगाकर पहुँचे होंगे, यह भी आश्चर्य का विषय है। वास्तव में, बात यह है कि ये शब्द अंगरेज पादरियों द्वारा भारतवर्ष में लाये गये, अंगरेजी में ये शब्द लैटिन भाषा के व्याकरण से आये और स्वयं लैटिन भाषा बोलनेवाले रोम में ये शब्द सिकन्दरिया से पहुँचे तथा सिकन्दरिया में भी व्याकरण का नाम ग्रीस देश के एथेन्स नगर से आया। इस पर तुर्रा यह है कि यह कारक, जिसे ग्रीक भाषा में **प्तोसिस** (ptosis) कहते हैं, दार्शनिक अर्थ में काम में लाया जाता था; रोम में इसका केवल शब्द-प्रति-शब्द अनुवाद **कासुस** (casus) कर दिया गया। ग्रीक में इसका मौलिक अर्थ **गिरना** था, वह लैटिन में लुप्त हो गया और इस शब्द का अर्थ

१. मॉम्सेन कृत उक्त ग्रंथ, खण्ड ३, पृ०, ५५७। यह घटना ई० पू० ४८ वर्ष की है।

संकुचित होकर व्याकरण के केवल एक पारिभाषिक शब्द के रूप में रह गया। एथेन्स में भाषा का दर्शनशास्त्र मानसिक दर्शनशास्त्र का एक भाग गिना जाता था। वहां की परम्परा में तर्क शास्त्र के भिन्न-भिन्न पारिभाषिक शब्द ठीक उसी अर्थ में व्याकरण में भी काम में लाये जाते थे। और देखिए कि **स्टोइक** सम्प्रदाय के तर्क शास्त्र के दो भाग कर दिये गये थे।[१] एक का नाम था rhetoric (अलंकार शास्त्र) और दूसरे का नाम था dialectic (भाषा-शास्त्र)। और दूसरे भाग का पहला अध्याय रहता था 'उस विषय पर जो कि संकेत करता है, अथवा भाषा पर'; दूसरे अध्याय का नाम था 'उस विषय पर जो कि संकेतित किया जाता है, अथवा पदार्थों पर।' उनकी दार्शनिक भाषा में **प्तोसिस्**, जिसका अनुवाद रोम निवासियों ने **कासुस** या **कारक** किया, उसका वास्तविक अर्थ था 'पतन' या 'गिरना' और इस 'पतन या गिरने' का अर्थ था 'वह झुकाव या वह सम्बन्ध जो एक विचार का दूसरे के साथ होता था। इसका यह भी अर्थ किया जा सकता है कि 'वाक्य में एक शब्द का दूसरे शब्द की ओर गिरना अथवा उस पर आधारित होना।' वहां के वैयाकरणों के बीच रात-दिन लम्बे और आवेशपूर्ण वादविवाद चलते रहते थे कि क्या व्याकरण में **प्तोसिस** या **पतन कर्त्ता कारक** के लिए भी प्रयोग में लाया जा सकता है? अथवा नहीं; और प्रत्येक कट्टरपंथी स्टोइक जब *Casus rectus* जैसे पारिभाषिक शब्द को किसी सभा में सुन लेता तो वह इसकी हँसी उड़ाता, क्योंकि rectus का अर्थ 'खड़ा या खड़ी' होता था और casus का अर्थ 'पतन' होता था। भाषा पर स्टोइक की दृष्टि से विचार करने पर यह पारिभाषिक शब्द हास्यास्पद बन जाता था, इसमें सन्देह नहीं; क्योंकि कर्ता अथवा वाक्य की क्रिया का करनेवाला मुख्य नाम, उनकी तर्क शैली के अनुसार किसी अन्य पदार्थ पर आधारित या अवलंबित नहीं था तो उसका पतन या गिरना कैसे हुआ—वह तो सीधा खड़ा है; वाक्य के समस्त शब्द इस शब्द की ओर ही झुकते या गिरते हैं, अथवा यों कहिए कि इसी शब्द पर आधारित या अवलम्बित होते हैं। अब जब हम कारकों की चर्चा करते हैं तो उस समय ये विचार हमारे मन में उठ ही नहीं सकते।

अब विचार कीजिए कि भारत के सरकारी स्कूलों में ये भारतीय अध्यापक जेनिटिव या सम्बन्ध कारक का अर्थ अपने अनुमान से क्या लगाते होंगे। लैटिन में

१. लैर्श कृत उक्त ग्रंथ, खण्ड २, पृ० २५।

इसके स्थान पर जो पारिभाषिक शब्द Genitivus (जेनिटिवुस) प्रयुक्त होता है वह निरी भूल है, क्योंकि ग्रीक शब्द Genike (गेनिके) का अर्थ **जेनिटिवुस** या सम्बन्ध कारक किसी प्रकार से नहीं हो सकता। यदि यह पारिभाषिक लैटिन शब्द **जेनिटिवुस** अपना मूल या उत्पत्ति के समय उसका जो अर्थ था उसे व्यक्त करता तो ग्रीक में यह पारिभाषिक शब्द *gennetike* **(गेन्नेटिके)** कहलाता, *genike* **(गेनिके)** नहीं। यह सम्बन्धकारक पारिभाषिक शब्द 'बेटे का पिता से जो सम्बन्ध' है उसका भी वाचक नहीं है, क्योंकि यद्यपि हम यह कह सकते हैं कि **'पिता का पुत्र'**, पर हम साथ ही यह भी कह सकते हैं कि **'पुत्र का पिता'**। वास्तव में ग्रीक भाषा में पारिभाषिक शब्द **गेनिके** का अधिक व्यापक और दर्शन शास्त्र से अधिक सम्बन्ध रखने वाला अर्थ था।[1] इसका अर्थ था *Casus generalis* **(काजुस गेनेरालिस) 'साधारण कारक'**, वल्कि यों कहिए कि वह कारक जो जाति या एक ही प्रकार के पदार्थों का बोध कराता है। **जेनिटिव** पारिभाषिक शब्द का वास्तविक अर्थ और शक्ति यही है। यदि मैं कहूं 'a bird of the water' (पानी की चिड़िया) तो 'of the water' (पानी की) निश्चित रूप से यह बताता है कि एक विशेष पक्षी किस जाति का है या उससे संबंध रखता है; यहां पर यह पारिभाषिक शब्द बताता है कि जिस पक्षी का उक्त वाक्य में प्रसंग आया है वह उन पक्षियों में है जो जल में रहते हैं। 'Man of the mountains' का अर्थ पहाड़ी या पर्वतीय है। 'Son of the father' या 'Father of the son' जैसे वाक्य-खण्डों में genitive (संबंधकारक) शब्दों का यही काम है। इनमें पुत्र जाति के विषय में या पिता जाति के विषय में कोई बात कही गयी है, और यदि हम 'पिता के पुत्रों' या 'माता के लड़कों' के बीच में भेद बताना चाहते तो genitive या सम्बन्धकारक शब्द यह बात स्पष्ट कर देते कि पुत्र किस विशेष वर्ग या जाति के हैं। इनका प्रयोजन यह है कि ये पुत्र उस समाज के हैं जिसमें घर में माता का शासन रहता है और ऐसे समाज में बहुधा शासन में माता की परम्परा चलती है। इसी प्रकार 'पिता के पुत्र' वाक्यांश में पिता की प्रधानता दिखलायी गयी है। अतः उक्त वाक्य-खण्डों में पिता

१. डाक्टर के० ई० श्मित्त कृत Beitraje zur Geschichte de Grammatik **(व्याकरण के इतहास के विषय पर नाना निबंध)। के० ई० श्मित्त, जो जर्मन हाल्ले से १८५९ ई० में प्रकाशित हुआ था, पृ०, ३२०।**

जाति या माता जाति का भेद बताया गया है। उक्त वाक्य-खण्डों में गुणवाचक शब्दों का प्रयोग करने से भी प्रयोजन सिद्ध हो जाता। यदि हम 'पैतृक-मातृक पुत्र' कहते तो हमारी समझ में इनका अर्थ साफ हो जाता और सम्बन्ध कारक के स्थान पर हम गुण या विशेषतावाचक शब्द काम में लाते। व्युत्पत्ति विज्ञान के अनुसार यह भी प्रमाणित किया जा सकता है कि सम्बन्ध कारक का प्रत्यय अधिकांश स्थलों पर उन मूलों को बतानेवाले प्रत्ययों के समान ही है जिनके द्वारा पदार्थवाचक शब्दों से गुणवाचक शब्द बनाये जाते हैं।[1]

१. तिब्बती भाषा में इस विषय पर नियम यह है कि 'पदार्थवाचक शब्दों से गुणवाचक शब्दों में रूपान्तर करने के लिए संज्ञा के अन्त में संबंध कारक की विभक्ति जोड़ दी जाती है और संबंध कारक कर्ताकारक से बनाया जाता है तथा इसे बनाने के लिए इसमें गुणवाचक का चिह्न जोड़ दिया जाता है।' अब उदाहरण लीजिए। shing (शिंग) का अर्थ तिब्बती भाषा में 'लकड़ी' है; shing gi (शिंग गी) का अर्थ हो गया 'लकड़ी या काष्ठमय'; सेर का अर्थ उक्त भाषा में 'सोना' है और ser-gyi (सेर गिइ) का अर्थ हो गया 'सोने का या स्वर्णमय'; 'मि' का अर्थ इस भाषा में 'मनुष्य' है और *mi-yi* (मियि) का अर्थ हो गया 'मनुष्य का या मानवीय।' गारो भाषा में भी जिसमें संबंधकारक की विभक्ति का रूप 'नि' है, हम देखते हैं कि *mande-ni-jak* (मान्दे-नि-जक) का अर्थ 'मनुष्य का हाथ' है। इसे हम 'मानवीय हाथ' भी कह सकते हैं; *ambal-ni kethali* (अम्बल-नि-केथालि) का अर्थ 'काष्ठमय चाकू', अर्थात् 'काठ का चाकू' है। हिन्दुस्तानी भाषा में संबंधकारक रूप इतने अधिक स्पष्ट रूप में गुणवाचक विशेषण हैं कि उसकी विभक्ति जिस शब्द का लिंग बताती है उसी लिंग में रख दी जाती है। अब यह देखना चाहिए कि संस्कृत और ग्रीक भाषा में यह परिवर्तन कैसे होता है? संस्कृत में 'त्य' प्रत्यय जोड़कर संज्ञा से गुणवाचक विशेषण बनाया जाता है (*Turanian Languages* 'तूरानी भाषाएं' नामक पुस्तक पृष्ठ ४१ और उसके बाद के पृष्ठ; *Essay on Bengali* बंगला भाषा पर निबंध' नामक पुस्तक पृष्ठ ३३३)। एक उदाहरण लीजिए—दक्षिण (South) शब्द का गुणवाचक विशेषण शब्द दक्षिणात्य···होता है। यह त्य प्रत्यय साफ ही एक दिशासूचक सर्वनाम है, जैसे कि संस्कृत में स्यस्, स्या, त्यद् (यह या वह) हैं। त्य सर्वनाम का एक मूल है और इसलिए इस

यहां इस बात की आवश्यकता नहीं है कि मैं जिसे निरीक्षण-परीक्षणात्मक अध्ययन कहता आ रहा हूं, या भाषा का व्याकरणात्मक विश्लेषण, उसके इतिहास की शोध लैटिन भाषा के इतिहास के परे भी करूं। **डिओनिसिउस थ्राक्स** के सर्वप्रथम व्याकरण में जो रूपरेखा खींच दी गयी थी वह सब व्याकरणों का ढांचा बन गयी। उसके बाद के लेखकों ने व्याकरण सुधारा और उसकी नाना त्रुटियां दूर कीं, परन्तु यह बात भली भाँति समझ लेनी चाहिए कि बाद के वैयाकरणों ने व्याकरण को कोई नया और मौलिक तत्त्व नहीं दिया। हम ग्रीक और रोमन लेखकों की श्रृंखला या परम्परा का निरन्तर वर्णन करके **डिओनिसिउस थ्राक्स** के सर्वप्रथम व्याकरण से अपने समय तक की परम्परा का पूरा इतिहास लिख सकते हैं। हम देखते हैं कि पहली

प्रकार के गुणवाचक विशेषण शब्द हो सकते हैं; जैसे दक्षिणा-त्य (दक्षिणी, दक्षिण का) या आप्-त्य (जल संबंधी या जल का) जो कि 'पानी' से निकाला गया है, जैसे आप-त्य 'पानी वहां'। मूल उत्पत्ति के समय 'पानी वहां' या 'दक्षिण वहां' अर्थ समझा गया होगा। इन शब्दों के अन्त में कर्त्ताकारक एक वचन का रूप या प्रत्यय जुड़ने पर, जो प्रत्यय अपने उत्पत्तिकाल में सर्वनाम रहा होगा, ऐसा अर्थ निकला होगा; जैसे कि आपत्यस् के ुकड़े करने पर आप-त्य-स् का अर्थ हुआ 'पानी-वहां-वह'। अब तमाशा देखिए कि अगर मैं एक 'पानीय चिड़िया' या 'पानी की एक चिड़िया' कहूं तो इन दोनों में बहुत ही कम भेद पाया जायगा। संस्कृत में पानी का संबंधकारक रूप, अगर हम पानी के लिए उदक शब्द लें तो 'उदक-स्य' बनेगा। यह स्य प्रत्यय सर्वनाम का वही मूल-रूप है जैसा कि विशेषण बनाने के काम में आने वाला प्रत्यय त्य है। भेद केवल यही है कि त्य प्रत्यय षष्ठी विभक्ति का रूप बनाने के चिह्न के रूप में काम में नहीं आता है। इसके जुड़ने पर केवल विशेषण ही बनता है। इस कारण षष्ठीरूप 'उदकस्य' वही है जैसा कोई भी विशेषण का रूप होता है। हां, इसमें लिंग का निर्णय स्पष्ट रूप से नहीं हो सकता। अब हम एक ग्रीक शब्द को लेकर उस पर विचार करेंगे। ग्रीक भाषा में सोश् प्रत्यय लगने से कर्ता कारक शब्द गुणवाचक विशेषण बन जाता है। यह प्रत्यय वही है जिसके रूप संस्कृत में त्य या स्य हैं। उदाहरणार्थ ग्रीक भाषा के देमौश् 'जनता' शब्द से देमॉसिओस् 'जनता का' या 'जनता संबंधी' रूप बनाया जाता है। इन सम्बध कारक शब्दों में औश्, आ, औन् क्रमशः पुल्लिग, स्त्रीलिंग और नपुंसक लिंग के वाचक प्रत्यय

सदी में **आगुस्टुस** के पौत्रों को **एम वेरिउस फ्लाक्कुस** ने व्याकरण पढ़ाया और उसी समय **किनटीलियन** ने भी व्याकरण पढ़ाने का ही कार्य किया। दूसरी सदी में **स्का-उरुस, अपोल्लोनिउस डिस्कोलुस** और उसका पुत्र **हेरोडिआनुस** व्याकरण का काम करते रहे। चौथी सदी में **प्रोबुस** और **डोनाटुस** ने, जो कि **सेंट जीरोम** के भाषा के अध्यापक रहे, व्याकरण की ज्योति आगे बढ़ायी। जब कांस्टेण्टाइन ने अपनी सरकार की राजधानी रोम से बाइजेंटाइन को हटायी तो कुस्तुन्तुनियां की विद्वन्मण्डली में व्याकरण शास्त्र ने यहां और भी अच्छा घर कर लिया। कुस्तुन्तुनियां के महाविद्यालय में कम से कम बीस वैयाकरण ऐसे थे जो ग्रीक तथा लैटिन भाषाओं के महान् पण्डित और अध्यापक थे। **जुस्टिनियन** के शासनकाल छठी शताब्दी में **प्रिसिनिउस** ने, जिसका नाम बहुत ही विख्यात है, व्याकरण शास्त्र के अध्यापन का नया अध्याय शुरू किया और उसका उत्तम व्याकरण मध्य युग से लेकर प्रायः हमारे अपने समय तक प्रामाणिक समझा जाता रहा है। हमें जिस प्रकार व्याकरण पढ़ाया गया है वह उसी

हैं। अब लिंगों के वाचक प्रत्ययों को हटा दीजिए तो देमौंसिओ रूप रह जाता है। और देखिए, ग्रीक भाषा का एक नियम है कि दो स्वरों के बीच में व्याकरण के एक प्रत्यय के रूप में जब किसी स्थल पर स्-कार आता है तो इस स्-कार का लोप हो जाता है। इस नियम से गेनौस् 'जेन' शब्द का संबंध-कारक रूप गेनेसश् नहीं होता, बल्कि गेनेअश् या गेनोउश् (उच्चारण गेनुश्) होता है। इसी कारण से देमौंसिओ अवश्य ही देमोइओ रूप धारण कर लेगा (तुलना के लिए देखिए : ऐओसिऔंश= एओइऔंश्)। और देमोइओ रूप क्या है। यह देमौश् शब्द का व्याकरण के नियम से बना हुआ होमर के समय में काम में आनेवाला संबंधकारक रूप है जो होमर के पीछे की ग्रीक भाषा में देमु रूप में परिवर्तित हो गया। इस प्रकार, आप देखेंगे कि तिब्बत की भाषा, गारो और हिन्दुस्तानी में गुणवाचक विशेषण और संबंध कारक की विभक्ति बनाने में जो नियम काम आते हैं वही संस्कृत और ग्रीक भाषाओं की प्रारंभिक अवस्था में काम में लाये जाते थे और हम यह देख पाते हैं कि ग्रीस के प्राचीन व्याकरणकारों ने संबंध कारक की विभक्ति की वास्तविक शक्ति और प्रभाव का निर्णय करने में अति सूक्ष्मता से ठीक विचार किया। ग्रीक भाषा में इसको साधारण या विशेषता बताने वाली विभक्ति कहते हैं और रोमन लोगों ने इसका अशुद्ध अनुवाद जेनिटिउस् करके इसको विकृत कर दिया।

ढंग का है जिस पर **डिओनिसिउस** ने रोम में अपने छात्रों को व्याकरण की शिक्षा दी थी, **प्रिसिआनुस** ने जिस प्रकार से कुस्तुन्तुनियां के महाविद्यालय में व्याकरण की रूपरेखा बनायी थी और **एल्कुइन** ने यार्क में जिस श्रेणी पर अपने छात्रों को व्याकरण पढ़ाया था। हमारी शिक्षापद्धति के भीतर जो भी सुधार किये गये हैं उनके विषय में आप, जो उचित समझते हैं, कह सकते हैं, किन्तु हमारे पब्लिक स्कूलों में ग्रीक और लैटिन भाषा के जो व्याकरण पढ़ाये जाते हैं, उनका प्रमुख आधार भाषा की सर्वप्रथम निरीक्षण-परीक्षणात्मक काट-छाँट की रूपरेखा है। और यह रूपरेखा एथेन्स के दार्शनिकों द्वारा भी काम में लायी गयी, सिकन्दरिया के विद्वान् भी इसी पथ पर चले और इसी रूपरेखा पर रोम में ग्रीक जाति के बड़े-बड़े अध्यापक विदेशी भाषा सिखाने के अमली प्रयोजन से आगे बढ़े।

चौथा भाषण

भाषाविज्ञान के वर्गीकरण की अवस्था

हमने इससे पहले के, अर्थात् अपने तीसरे भाषण में भाषाओं के निरीक्षण-परीक्षणात्मक अध्ययन की उत्पत्ति और प्रगति संबंधी, अफलातून और अरस्तू के समय से आजकल के स्कूलों के छात्रों के काल तक के इतिहास के विषय में बहुत-कुछ जान लिया है। हमें यह पता भी लग गया है कि किस समय में और किन परिस्थितियों के भीतर भाषा का व्याकरणात्मक विश्लेषण यूरोप में आरम्भ हुआ और कब तथा किस प्रकार व्याकरण के भीतर वर्णित नाना अंगों के, जिन्हें हम वाक्य के अंश और अंग (Parts of speech) कहते हैं, नाम निर्धारित किये गये और इन नामों के पारिभाषिक रूपों की सहायता से, जो दर्शन-शास्त्र और व्याकरण में एक साथ विविध अर्थों में काम में आते थे, भाषाओं को सिखाने की एक पद्धति की स्थापना की गयी। इस पद्धति के वास्तविक महत्त्व के विषय में हम चाहे जो विचार करें, किन्तु इसने वह प्रयोजन भली भाँति और निश्चित रूप में पूरा कर दिया है जिसके लिए यह विशेष रूप में बनायी गयी थी। जिस प्रक्रिया द्वारा व्याकरण विज्ञान का एक सुन्दर ढाँचा बनाया गया, उसका विचार करते हुए यह आशा नहीं की जा सकती थी कि इसके द्वारा भाषा की प्रकृति के संबंध में सब गूढ़ बातें हमारी आंखों के सामने आ जायंगी। शब्दों का नाम और क्रिया, Articles तथा योगसूचक शब्दों में विभाजन, नामों और क्रियाओं की भिन्न-भिन्न रूपावलियां, भाषा के जीवित शरीर पर डाला हुआ **विशुद्ध और बनावटी जालों** का समूह था। मनुष्य की वाणी द्वारा परिशुद्ध और सुन्दर रूप से उच्चारित रूपरेखा के लिए **डिओनिसिउस थ्राक्स** का व्याकरण पढ़कर इस वाणी के संबंध में हमें ज्ञान प्राप्त करने की आशा छोड़ देनी चाहिए। उक्त तथ्य के सर्वथा सत्य होने में संदेह की कोई गुंजायश न होने पर भी यह देखकर कि ग्रीक लोगों और हिंदुओं के व्याकरण की पारिभाषिक शब्दावली में बहुत बड़ी विस्मयजनक एकता और समता है, यह बात सिद्ध होती मालूम पड़ती है कि इन दोनों जातियों के व्याकरण की नाना पद्धतियों में दोष निकलने पर भी

इनकी बुनियाद कुछ वास्तविक और प्राकृतिक आवश्यकताओं पर पड़ी। भारतीय आर्य जाति ही ऐसी रही कि जिसने ग्रीक लोगों से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में, बिना किसी प्रकार की प्रेरणा प्राप्त किये, व्याकरण विज्ञान का अध्ययन किया और उसकी रचना की। इस पर बड़ी विचित्र बात यह है कि संस्कृत में भी कारकों की, जिन्हें यहाँ विभक्ति कहा जाता है, वही रूपरेखा या उसी प्रकार की रूपावलियां, उसी रूप में भाववाच्य और कर्मवाच्य तथा middle voices (मध्यम वाच्य), उसी तरह के काल तथा पुरुष पाये जाते हैं। ये संस्कृत और ग्रीक में शब्द-प्रति-शब्द एक-से नहीं होते, किन्तु प्रायः इन सब का ढंग एक-सा ही दिखाई देता है।[1] संस्कृत में grammar को व्याकरण कहते हैं, इस शब्द का अर्थ है टुकड़े-टुकड़े कर उसका परीक्षण अथवा विश्लेषण करना। जिस प्रकार ग्रीक भाषा के व्याकरण की उत्पत्ति होमर के काव्यों के आलोचनात्मक अध्ययन के कारण हुई, इसी प्रकार संस्कृत व्याकरण की उत्पत्ति ब्राह्मणों की सबसे पुरानी धार्मिक कविता वेदों के अध्ययन के कारण हुई। आर्य-भारत में ब्राह्मणों ने इस पवित्र और धार्मिक कविता की बोली और बाद के युगों की साहित्यिक संस्कृत में जो-जो विभिन्नताएं आ गयी थीं उनकी बड़ी सूक्ष्मता से छानबीन की तथा अति उच्च धार्मिक भावना के साथ इन विभिन्नताओं के ज्ञान पर ग्रंथों की रचना की। ब्राह्मणों ने इस विषय पर सर्वप्रथम व्याकरण-विज्ञान की जो रचनाएं कीं और जिनके नाम उन्होंने प्रातिशाख्य रखे वे हमें आज भी प्राप्य हैं। उक्त सब ग्रन्थ यद्यपि हमें यह बताते हैं कि इनके रचने का कारण वेद की प्राचीन बोली के उचित उच्चारण के नियमों का संकलन था। इन प्रातिशाख्यों में ऊपर कही गयी उच्चारणवाली बात के साथ-साथ व्याकरण की तरह की बहुत-सी परख की बातें भी दी गयी हैं और ध्यान देने योग्य बात तो यह है कि इनमें शब्दों की अति महत्त्व की सूचियां हैं जो या तो अनियमित रूप में काम में आते हैं अथवा किसी और कारण से वेदों में इनका महत्त्व है। शब्दों की ये सूचियां **गणपाठ** कही जाती हैं। इन शब्दसूचियों ने वह ठोस आधार तैयार कर दिया जिस पर महापंडितों की एक के बाद दूसरी आनेवाली पीढ़ियों ने वह आश्चर्यजनक इमारत खड़ी की जिसकी पूर्णता पाणिनि के व्याकरण की रचना

१. **देखिए, मैक्समुलर कृत** History of Ancient Sanskrit Literature, **पृ० १५८।**

के साथ हुई। पाणिनि और उसके वार्तिक तथा भाष्यकारों ने अपने सारे ग्रन्थों में संस्कृत साहित्य में से एक भी नियमबद्ध व अनियमित रूप ऐसा नहीं छोड़ा जो किसी लेखक ने कहीं भी प्रयुक्त किया है। यह व्याकरण तथा इसकी टीकाएं भाषा के विशुद्ध निरीक्षण-परीक्षणात्मक विश्लेषण को पूर्णता तक पहुँचाती हैं। सारे संसार की किसी भी जाति के विद्वान् व्याकरण विज्ञान के क्षेत्र में इसकी बराबरी न कर सके, इतना ही क्यों कहा जाय; इस विषय पर तो यह कहा जा सकता है कि संसार के अन्य जाति के व्याकरणकार इस भारतीय व्याकरण के पास फटक भी नहीं सके हैं। यह सब तो ठीक है, किन्तु भाषा की प्रकृति और उसके प्राकृतिक तथा सहज विकास के बारे में भारतीय व्याकरण में हमें कुछ भी नहीं बताया गया है।

अब बताइए कि ग्रीक या संस्कृत भाषा के व्याकरणों को पूर्णतया सीख लेने के बाद अथवा प्राचीन भाषाओं के व्याकरण के अति विस्तृत जाल को हम जब स्वयं अपनी भाषा में काम में लाते हैं तो हमें उस भाषा का क्या ज्ञान होता है?

हम भाषा के कई मुहावरों या रूपों को जानते हैं जो किन्हीं विचारों के निश्चित रूपों को व्यक्त करते हैं। हम यह भी जानते हैं कि वाक्य में मुख्य काम करनेवाली संज्ञा कर्त्ताकारक के स्थान पर होनी चाहिए और जिस वस्तु या व्यक्ति पर क्रिया का प्रभाव पड़ता है वह कर्मकारक के स्थान पर। हम सब को यह भी मालूम है कि जो कर्मकारक वाक्य में अधिक दूर रखा जाता है उसके लिए सम्प्रदान कारक की विभक्तियां काम में लायी जाती हैं और विधेय के लिए अधिक स्थानों पर और रूपों में सम्बन्ध कारक का चिह्न लगाकर वाक्य में उसकी स्थिति बतायी जाती है। हमें स्कूलों और कालेजों में यह भी पढ़ाया जाता है कि जब अंगरेजी में सम्बन्ध कारक को बताने के लिए शब्द के अन्त में s जोड़ दिया जाता है या संबंध बतानेवाले शब्द के पहले of बैठाया जाता है तो ग्रीक में इसके स्थान पर शब्द के अन्त में os (औस) ज़ोड़ने से यह कारक व्यक्त होता है और लैटिन में इसके स्थान पर शब्द के अन्त में is (इस्) लगाया जाता है। किन्तु **औस्** और **इस्** ये किस शब्द के प्रतिनिधि हैं। यह भी विचारणीय है कि इनके कर्त्ताकारक के अन्त में लगने पर उस कारक को संबंधकारक में बदलने की शक्ति कहां से आ गयी और एक **उद्देश्य** शब्द के **विधेय** में परिवर्तित होने का हेतु क्या हो गया; हमारे लिए उक्त बातें गूढ़ रहस्य रह गयी हैं। यह बात स्वयं-सिद्ध है कि एक भाषा, चाहे वह कोई क्यों न हो, तभी भाषा कही जा सकती है या तभी समझ में आ सकती है जब उसमें यह योग्यता हो कि वह कर्त्ताकारक को कर्मकारक से भिन्न करने लगे और वाक्य में मुख्य काम करने

वाले नाम (Nominative) को उस नाम से भिन्न करे जिस पर कर्ता या क्रिया का प्रभाव पड़े। अब प्रश्न उठता है कि किसी शब्द के अंतिम अक्षर या अक्षरों में नाम मात्र का हेरफेर करने से उसकी स्थिति तथा उसके कार्य में जो इतना बड़ा परिवर्तन आ खड़ा हो जाता है वह हम सब लोगों की समझ से बिलकुल बाहर की बात-सी लगती है। यदि हम क्षण भर के लिए ग्रीक और लैटिन भाषाओं को छोड़ अन्य भाषाओं को देखें तो हमें पता लगेगा कि सचमुच में कुछ इनी-गिनी भाषाएं ही ऐसी हैं जिनमें विचार के इन दो प्रकारों में भेद करने के लिए भिन्न-भिन्न रूप पाये जाते हों। स्वयं ग्रीक और लैटिन भाषाओं में भी नपुंसक लिंग के शब्दों में कर्त्ता और कर्म-कारकों में बाहर से देखने में किसी प्रकार की भिन्नता नहीं पायी जाती।

साधारणतः कहा जाता है कि चीनी भाषा में व्याकरण का नाम भी नहीं पाया जाता। इसका मतलब यह है कि हमारे व्याकरण में शब्द जिस अर्थ में काम में आते हैं उस अर्थ में चीनी भाषा में नाम और क्रिया की रूपावलियां हैं ही नहीं तथा विभक्तियां और कारकों के रूप लेश मात्र भी कहीं देखने में नहीं आते। इस भाषा में एक वाक्य के भिन्न-भिन्न संबंध बताने वाले शब्दों में किसी प्रकार की भिन्नता देखी नहीं जाती। इसके नाम, क्रिया, विशेषण, क्रियाविशेषण आदि-आदि का संबंध बताने के लिए रूप-परिवर्तन या शब्दों के अन्त में कुछ जोड़ने की आवश्यकता ही नहीं समझी जाती। तो भी चिन्ताधारा का कोई भी रूप ऐसा नहीं है जिसे हम चीनी भाषा द्वारा व्यक्त न कर सकते हों। यह बताने के लिए —'जेम्स जान को पीटता है' और 'जान जेम्स को पीटता है'—इन दोनों संबंधों को अपने वाक्य में व्यक्त करने के लिए चीनियों को इन दोनों वाक्यों का भेद बताने में लेश मात्र कठिनाई नहीं होती। वे इस संबंध को ग्रीक और रोमन लोगों की या स्वयं हमारी ही भाँति सरलता से प्रकट करते हैं। उनके यहां कर्मकारक का रूप व्यक्त करने के लिए शब्द के अन्त में जोड़ने को कोई अक्षर नहीं है, किन्तु इस पर भी वे इस उद्देश्य के लिए कर्ताकारक को क्रिया से पहले और कर्मकारक को क्रिया के बाद स्थान देकर यह संबंध व्यक्त करते हैं, या वे संज्ञावाचक शब्दों के आगे और पीछे अन्य संबंधों को बतानेवाले शब्द रखकर यह बात स्पष्ट कर देते हैं कि अमुक शब्द क्रिया का कर्ता है या कर्म, जिस पर क्रिया का प्रभाव पड़ता है।[1] कुछ भाषाएं ऐसी भी हैं जिनमें

१. आगे लिखे हुए तथा कुछ और नोट मेरे पास यूरोप के चीनी भाषा के

ग्रीक और लैटिन भाषाओं से भी अधिक प्रत्यय (Terminations) वर्तमान हैं। फिनिश भाषा में पन्द्रह कारक और उनकी विभक्तियां काम में लायी जाती

प्रथम विद्वान् मो० स्टानिसलास जुलियां ने कृपा करके भेजे हैं। ये महोदय member de I'Institut हैं।

अ—शब्दांशों के द्वारा

आ—वाक्य में अपने स्थान के द्वारा

१—किसी वाक्य का कर्त्ताकारक, अर्थात् वाक्य की क्रिया करने वाली मुख्य संज्ञा या नाम वाक्य के आरंभ में रखा जाता है।

२—संबंधकारक का चिह्न बताने के लिए नीचे लिखी प्रक्रिया काम में लायी जाती है—

अ—दो ऐसे नामों के बीच में, जिनमें पहली संज्ञा संबंधकारक में हो और दूसरी किसी कारक में हो, शब्दांश tchi 'त्चि' डाल दिया जाता है। उदाहरण लीजिए, jin tchi kiun (जिन त्चि किउन) 'मनुष्य का (संबंध कारक का चिह्न) राजा' इस क्रम से शब्द रखे जाते हैं।

आ—शब्दों के स्थान का क्रम बदलने से भी संबंधकारक सूचित किया जाता है। इसमें संबंध वाले अभीष्ट शब्द को आरंभ में रखा जाता है और कर्त्ता कारक उसके बाद या दूसरे स्थान पर आता है। उदाहरण लीजिए, 'केओयुइ' (राज्य),' 'जिन' (मनुष्य)—इसका अर्थ लगाया जाता है 'राज्य का मनुष्य'।

३—सम्प्रदान कारक सूचित करने के लिए निम्न प्रक्रिया से काम लिया जाता है—

अ—इसमें यु (को) उपसर्ग (Preposition) लगाने से। उदाहरणार्थ, *sse yen yu jin* इस वाक्य में क्रम से ये शब्द हैं—'देना रुपया को मनुष्य', इसका हिन्दी व्याकरण-रूप होगा 'मनुष्य को धन देना'।

आ—उचित स्थान पर शब्दों का क्रम रखकर, जिसमें सबसे पहले क्रिया रखी जाती है, उसके अनंतर वह शब्द आता है जो सम्प्रदान कारक में होता है। फिर वह शब्द रखा जाता है जो कर्म कारक में है। उदाहरणार्थ yu jin pe yu hoang

हैं, इनके द्वारा वाक्य में आने वाले प्रत्येक शब्द का एक दूसरे से संबंध अच्छी तरह व्यक्त किया जाता है, किन्तु तमाशा देखिए कि इस भाषा में कर्मकारक है

kin (यु जिन पे यु होआंग किन), इन शब्दों के अर्थ का क्रम यह है—'देना मनुष्य को सफेद रत्न पीली धातु'। हिंदी व्याकरण के अनुसार यह यों लिखा जायगा—'मनुष्य को सफेद रत्न (स्फटिक) और पीली धातु (हिरण्य=सोना) देना।' इसका अर्थ यह हुआ कि मनुष्य को स्फटिक और सोना देना है। (यह बात ध्यान रखने की है कि स्वयं 'हिरण्य' का अर्थ पीली धातु है। हिरण्य का इससे भी पूर्व का रूप हरिण्य रहा होगा, जो वर्ण-व्यत्यय से हिरण्य हो गया होगा, क्योंकि इसका फारसी रूप जर-न्य है जिसमें 'जर' पीले के लिए आया है। आजकल तो फारसी में सोने को केवल 'जर' कहते हैं। संस्कृत ह का फारसी में बहुधा ज हो जाता है, जैसे संस्कृत 'बाहु' फारसी 'बाजू'—अनु०)।

४—कर्मकारक या तो बिना किसी विभक्ति=चिह्न के छोड़ दिया जाता है, उदाहरणार्थ, 'पाओ मिन'। इसमें पाओ का अर्थ है 'रक्षा करना' और मिन का अर्थ है 'मानव जाति' या 'लोग'। इसलिए इन दो शब्दों का अर्थ हुआ लोगों को बचाना। अथवा इस कारक से पहले कुछ निश्चित शब्द जोड़ दिये जाते हैं जिनका उत्पत्ति के समय तो ऐसा अर्थ रहा होगा जो अधिक स्पष्ट और समझने योग्य होगा, परन्तु धीरे-धीरे अर्थ का संकोच होता गया। अब ये कर्मकारक की विभक्ति के रूप में ही काम में आते हैं [ऊपर लिखी गयी बातें मो० स्टानिसलास जुलियां ने पहलेपहल आविष्कृत की थीं और उनकी व्याख्या की थी। देखिए उनके ग्रंथ Linguam Siniean का इस विषय पर लिखा गया 'Vindiciae Philologicae अध्याय, पेरिस में १८३० में प्रकाशित]। वर्तमान काल के लेखक इस प्रयोजन के लिए (कर्मकारक बनाने के लिए) जिन शब्दांशों (Particles) का प्रयोग करते हैं, वे हैं *Pa, tsiang* (पाँ और त्सियांग), जिनका अर्थ चीनी में 'ग्रहण करना' या 'पकड़ना' होता है।। अब एक उदाहरण लीजिए—*pa tchoing-jin t'eou k'an* (पाँ त्चूंग-जिन त्'एऊ क्'अन) जिनका अर्थ हुआ 'लेकर मनुष्यों की भीड़ गुप्त रूप से उसने देखा' और सारे वाक्य का अर्थ चीनी में यह किया जायगा—'उसने छिपकर मनुष्यों की भीड़ को देखा।' इससे भी पुरानी चीनी भाषा में कर्मकारक की विभक्ति के प्रयोजन को पूरा करने के लिए kou

ही नहीं और न कर्मकारक को बतानेवाली कोई स्पष्ट विभक्ति ही पायी जाती

wen (कोऊ वेन्) शब्दांशों का प्रयोग किया जाता है। कर्मकारक की विभक्ति के लिए i, iu, hou (इ, इउ, होउ) भी काम में लाये जाते हैं। उदाहरणार्थ *i jin t'sun sin* (इ जिन त्'सुन् सिन्)—इस वाक्य के शब्दों का क्रमशः अर्थ यह है—'काम में लगाते हुए मानवता (की) वह रक्षा करता है हृदय में।' इस वाक्य का चीनी भाषार्थ यह हो जायगा—'वह अपने हृदय में मानवता का संरक्षण करता है।' तथा I tchi wei k'iŏ (इ त्चि वेइ क्इओ, जिसका लैटिन अर्थ हुआ rectum facere curvum) के शब्दों के विन्यास का क्रम यह है—'लेते हुए सीधी (चीज को) बनाना टेढ़ा।' इस वाक्य का चीनी में अर्थ हो जायगा—'सीधी बात या पदार्थ को टेढ़ा बनाना।' एक और उदाहरण लें—Pao hou min (पाओ होउ मिन्)। इस वाक्य के शब्दों के अर्थ का विन्यास यह है—'बचाना को लोग', अर्थात् हिन्दी में इसका रूप होगा—'लोगों को बचाना।'

५—अपादान कारक निम्न प्रक्रिया से व्यक्त किया जाता है—

अ—इसके आगे इन उपसर्गों को जोड़ने से—thsong, yeou, tseu, hou (थ्सौंग, इएउ, त्सेउ, होउ)। उदाहरणार्थ—thsong thien lai; te hou thien

आ—किसी वाक्य में शब्दों का क्रम इस प्रकार बनाकर कि अपादान कारक की विभक्ति बताने वाला शब्दांश क्रिया के पहले रख दिया जाय। उदाहरणार्थ thien hiang-tchi [यह त्चि शब्दांश संबंध कारक की विभक्ति बताता है]; tsai (थिएन हियांग-त्चि त्सइ)। इस वाक्य के शब्दों का क्रमशः हिन्दी अर्थ इस प्रकार है—'स्वर्ग उतारा आपत्तियों का समूह' और चीनी भाषा में अर्थ यह किया जायगा—'वे कष्ट या आपत्तियां जिन्हें स्वर्ग आदमियों के पास या आदमियों के लिए भेजता है।'

६—चीनी भाषा में करणकारक की विभक्ति को व्यक्त करने के लिए यह प्रक्रिया काम में लायी जाती है—

अ—उपसर्ग यु (के साथ) करणकारक में आये हुए शब्द के पहले जोड़ दिया जाता है। उदाहरणार्थ— yu kien cha jin (यु किएन् च जिन्)। इस वाक्य विन्यास का क्रम यों है—'के साथ या से तलवार मारना मनुष्य', अर्थात् 'तलवार से मनुष्य मारना।'

है।[1] अंगरेजी और फ्रेंच भाषाओं में कर्ताकारक और कर्मकारकों का स्पष्ट रूप पाठकों को बताने के लिए अलग-अलग प्रत्यय हैं ही नहीं, उक्त प्रत्यय शब्दों की ध्वनियों के सदा परिवर्तन और घिसते रहने के कारण अन्त में पूर्णतया लुप्त हो गये हैं। इस कारण इन दोनों भाषाओं ने कर्त्ता और कर्म कारक के संबंध का ठीक-ठीक बोध कराने के लिए चीनी व्याकरण का ढंग पकड़ लिया है, अर्थात् वाक्य के शब्दों को उक्त भाषाओं में इस प्रकार सजाया जाता है कि प्रत्येक शब्द का संबंध उसके स्थान से जहां पर कि वह रखा गया है, स्वयं प्रकट हो जाय। इस कारण हम अपने स्कूलों में अध्यापकों द्वारा लैटिन भाषा का व्याकरण पढ़ाये जाने के समय जो यह सीखते हैं कि कर्ताकारक रूप REX, REGEM रूप ग्रहण करने पर कर्मकारक बन जाता है, यह बोलचाल का व्यवहार में आनेवाला एक नियम है। हम जानते हैं कि हमें कर्ताकारक रूप **रेक्स** का कब व्यवहार करना चाहिए और एक वाक्य में किस स्थान पर **रेगेम्** रखने से हम कर्मकारक का बोध कर सकते हैं; किन्तु राजा जब किसी वाक्य में क्रिया का मुख्य कर्त्ता बन जाता है तो हम उसे रेक्स (=राजा) क्यों कहते हैं और जब हम राजा को कर्मकारक में बताना चाहते हैं तो वह **रेगेम्** क्यों कहा जाता है, और शब्दों का इस प्रकार का घटाव-बढ़ाव तथा रूप में परिवर्तन किस कारण से होता है, ये तथ्य आज तक किसी के द्वारा समझाये नहीं गये। ठीक इसी प्रकार से हम अपने स्कूलों में यह भी सीखते हैं कि *amo* (**आमो**) का अर्थ

आ—वाक्य में आये शब्दों का क्रम बदलने से। शब्दों का क्रम इस प्रकार बना दिया जाता है कि वह संज्ञा शब्द जो वाक्य के भीतर करण कारक में हो उसे क्रिया से पहले रख दिया जाता है और उस शब्द के वाक्य के बाद कर्मकारक संज्ञा रख दी जाती है। उदाहरणार्थ i cha tchi **(इ च त्चि), हिन्दी में इन शब्दों का क्रम यह होगा—'लटकाने से उसने मारा उसको', अर्थात् 'उसने उसको टांगकर मारा।'**

१. इसी प्रकार के एक कारण से उत्तरी अमेरिका के रेड इण्डियन लोगों की भाषा में धातुओं की बड़ी भरमार है। उदाहरणार्थ मछली खाना, मांस खाना, पशुओं का तथा मनुष्यों का मांस खाना, फल तथा शाक सब्जी खाना इनके लिए अलग अलग धातुएं हैं; किन्तु उनके पास 'मैं हूं, मैं रखता हूं' के लिए कोई शब्द नहीं मिलता। Cf. Du Poncean, **पृ० १९५-२००।**

'मैं प्यार करता हूं' है और *amavi* (आमावी) का अर्थ है 'मैंने प्यार किया', पर ध्यान देने की बात है कि **'मैं प्यार करता हूँ'** या **'मैं अब प्यार नहीं करता** हूं' इन दो अंगरेजी वाक्यों का प्रतिनिधित्व लैटिन में o **(ओ)** का परिवर्तन *avi* **(आवी)** रूप में करके या अंगरेजी भाषा में केवल मात्र D **(डी)** जोड़कर, जैसे वर्तमान काल के रूप *love* **(लव)** का भूतकाल का रूप *loved* **(लव्ड)** होने पर, यह शब्द भिन्न काल का द्योतक बन गया, इसका कारण न तो कोई पूछता है और न कोई इसका उत्तर दे सकता है।

अब यह मानना पड़ेगा कि यदि भाषा-विज्ञान वर्तमान हो तो उसे इस प्रकार के प्रश्नों का या शंकाओं का समाधान करना पड़ेगा। यदि इन प्रश्नों या शंकाओं का कोई उत्तर नहीं दिया जा सकता अथवा समाधान नहीं किया जा सकता तो हमें किसी भाषा के नाम और धातु की रूपावलियों और भाषा के लिखने अथवा बोलने के नाना नियमों से सन्तोष करना चाहिए और यदि नामों और धातुओं के प्रत्ययों को हम परम्परागत तथा ऐसे उपाय समझें जो हमें बोलचाल में सहायता करते हैं तथा समाज में बोलचाल के दौरान में रूढ़ि-से हो गये हैं या यदि हम इन्हें भाषा का रहस्यमय उच्छिष्ट समझें, तो यह मानना पड़ेगा कि भाषा-विज्ञान नाम के किसी पदार्थ का अस्तित्व नहीं है और हमें यह संतोष करना पड़ेगा कि भाषा की कला (तेखनै) या व्याकरण ही भाषा के विषय पर सब-कुछ हैं।

किसी समस्या के समाधान को यदि हम स्वीकार करें या उसे अस्वीकार करें तो उससे पहले यह उचित है कि हम इस बात का निर्णय कर लें कि समस्या का हल निकालने के लिए हमारे पास कौन-कौन साधन या उपाय विद्यमान हैं। इस दृष्टि से यदि हम अंगरेजी भाषा की समस्या और उसके समाधान पर विचार करें तो सबसे पहले जो प्रश्न पैदा होता है वह यह है कि हमारे पास इस तथ्य का निर्णय करने के लिए कौन-कौन से साधन हैं, जिनसे हमें पता चल जाय कि I *love* (=मैं प्यार करता हूँ) किस कारण से I am actually loving (=मैं वर्तमान समय में प्यार कर रहा हूँ) यह अर्थ बताता है, जब कि I *loved* (=मैंने प्यार किया) यह तथ्य बताता है कि प्यार की भावना मेरे मन से उठ चुकी है और यह भूतकाल में विद्यमान थी। या यदि हम उन भाषाओं की ओर देखें जिनके नाम और रूपों में अंगरेजी की अपेक्षा अधिक परिवर्तन देखे जाते हैं तो हमें यह आविष्कार करने का प्रयत्न करना चाहिए कि किस प्रक्रिया से, और किन परिस्थितियों के कारण *amo* (मैं प्यार करता हूँ) लैटिन भाषा में केवल *r* **(आर)** अक्षर के

जोड़ने से *amor* **(अमोर)** बन गया तथा अब यह शब्द 'मैं प्यार करता हूँ' का द्योतक नहीं रहा बल्कि 'मैं प्यार किया जाता हूँ' अर्थ व्यक्त करता है। क्या नाम और धातु की रूपावलियाँ एक वृक्ष में पुष्पों की तरह खिलने लगीं? क्या ये रूपावलियाँ किसी रहस्यमय शक्ति ने तैयार गढ़कर मनुष्य को वरदान के रूप में दीं? या किन्हीं विद्वान् मनुष्यों ने इनका आविष्कार किया और चिन्ताधारा के विशेष-विशेष पहलुओं के लिए विशेष-विशेष अक्षर निश्चित किये, अर्थात् उस प्रकार का काम किया जैसा कि गणित शास्त्र के विद्वान् अज्ञात संख्याओं को बीजगणित में काम में आनेवाले विशेष अक्षरों से संपन्न करते हैं, जो कि मनमाने रूपों में अंकों के साथ अपने स्थान पर रख दिये जाते हैं। इस स्थान पर अकस्मात् अपने प्यारे विज्ञान की सबसे बड़ी और कठिनतम समस्या के सामने हम पहुँच गये हैं। वह समस्या है कि भाषा की उत्पत्ति कैसे हुई; लेकिन इस समय हमारे लिए यह उचित होगा कि हम सिद्धान्तों (theory) से अपनी आँखें मोड़ लें और इस समय अपना ध्यान तथ्यों पर केन्द्रित करें।

हम यहाँ पर अंगरेजी के पूर्ण भूतकाल के द्योतक I LOVED **(=मैंने प्यार किया)** को ही अपनी दृष्टि में रखें और यह भी तुलना करें कि इसके वर्तमान काल का रूप I *love* **(=मैं प्यार करता हूं)** होता है। हम यहाँ अंगरेजी भाषा के व्याकरण का समाधान नहीं कर सकते। लेकिन यदि हम एक रूप की भी सच्ची उत्पत्ति के स्थान तक उसका पीछा या खोज करके उसका पता लगा पायेंगे तो सम्भवत: इस जाति के शेष रूपों को खोज निकालने में हमें कोई कठिनाई नहीं मालूम होगी। अब देखिए कि यदि हमारे मन में यह प्रश्न उठे कि किस प्रकार क्रिया के अन्त में D अक्षर जोड़ने से बहुत ही बड़ा महत्त्वपूर्ण बदलाव 'प्रेम में मग्न होने' की अवस्था से 'प्रेम से उदासीन रहने' की अवस्था में हो गया, तो पहला काम जो हमें करना होगा वह इस तथ्य को नाना कारण देकर समझाने का प्रयत्न करने से पहले यही होगा कि I *loved* (=मैंने प्यार किया) रूप का सबसे पुराना और सबसे मौलिक रूप अनुसन्धान करके स्थापित कर दिया जाय। इस नियम को स्वयं अफलातून ने अपने भाषा-दर्शन में स्वीकार किया है, यद्यपि उसकी पुस्तकें पढ़ने पर यह मानना पड़ता है कि इस नियम का पालन उसने बहुत ही थोड़े-से स्थानों पर किया है। हम जानते हैं कि किसी भाषा के कोश और व्याकरण के भीतर ध्वनिपरिवर्तन और विकार सत्यानाश का क्या तमाशा दिखाने लगते हैं और यदि हम नाना अनुमानों और अटकलों से इन रूपों का निर्णय करना चाहेंगे

तो अपनी दयनीय दशा संसार को वता देंगे, क्योंकि यह ध्वनि-विकार और परिवर्तन, जो विभिन्न रूपों और शब्दों में पाया जाता है, किसी भाषा के इतिहास का अध्ययन करके वड़ी आसानी से पर्याप्त रीति से समझा जा सकता है। अब विचार कीजिए कि अंगरेजी भाषा के इतिहास से जिसका नाम मात्र भी परिचय हो उसे पता चल जायगा कि इस भाषा का आधुनिक व्याकरण उसी प्रकार का नहीं है जैसा कि वाइक्लिफ ने अपने समय में रचा था। इसके बाद हम देखते हैं कि वाइक्लिफ की अंगरेजी, उसकी खोज करने पर सर फ्रेड्रिक मैण्डन की शोध के अनुसार मध्य युग की अंगरेजी कही जा सकती है। इसका काल १३३० ई० से १५०० ई० तक का माना जाता है। मध्य युग की अंगरेजी, शोध करते-करते प्रथम युग की अंगरेजी तक पहुँचती है, जिसका काल १२३० से १३३० ई० तक है। प्राचीन समय की अंगरेजी की यदि शोध की जाय तो वह आदि-सैक्सन भाषा तक पहुँचेगी जिसका काल ११०० से १२३० ई० तक पाया जाता है। यह अर्ध सैक्सन भाषा इससे भी पुरानी वोली ऐंग्लो-सैक्सन तक पहुँचती है।[१] अब यह अति स्पष्ट मालूम पड़ने लगा कि यदि हम I love शब्द के I loved में परिवर्तन का मूल रूप और उद्देश्य समझना चाहें तो हमें इनके वे मूल रूप ढूंढ़ने होंगे और उनको जानना होगा जिनसे हमारी कुंजी मिले और यह काम हमें तब तक करना होगा जब तक आदि-रूप का पता न चल जाय। हम यह कभी नहीं जान सकते थे कि *priest* (पुरोहित) शब्द का अर्थ इसकी उत्पत्ति के हिसाब से बड़ा या जेठा होता था। यह तथ्य हमारी आँखों से तब तक ओझल रहा जब तक हमने इसका मूल रूप *presbyter* (प्रेसबीटर) नहीं खोज निकाला। इस प्रकार ग्रीक भाषा का कोई विद्वान् तुरत पहचान लेता है कि उक्त शब्द *presbys* (प्रेसबिस=बूढ़ा या जेठा) का अतिशय-वाचक रूप है। यदि हम इसकी व्युत्पत्ति केवल अंगरेजी भाषा की सहायता से निकालना चाहते तो हमारा प्रयास कुछ इस तरह का होता कि हम priest शब्द का सम्बन्ध praying या preaching (प्रार्थना करना या धर्मोपदेश करना) शब्दों से कर बैठते, परन्तु इस प्रक्रिया से हम इस शब्द की सच्ची मूल व्युत्पत्ति तक नहीं पहुँच पाते। हमारा नवीन शब्द gospel (सुसमाचार)

१. इस विभाग की आलोचना देखिए मार्क्स कृत "Lecture on the English Language" p. 48.

किसी भी अर्थ का द्योतक नहीं है, लेकिन जैसे ही हम इसके मूल रूप की शोध करके इसके प्राचीन और मूल रूप goddspell (गौडस्पेल) की खोज करने में सफल होते हैं तो हमें पता चलता है कि यह शब्द Evangelium (इवां-गेलियुम) अर्थात् शुभ समाचार या शुभ सन्देश का शब्द-प्रति-शब्द अनुवाद है। अंगरेजी भाषा में यदि हम Lord (लार्ड) शब्द कहें या लिखें तो इसका कोई अर्थ नहीं होगा; यह केवल एक उपाधि समझी जायगी और तब तक इसका रहस्य न खुलेगा जब तक कि हम इसके मूल रूप को ढूँढ़ न निकालें। यह शब्द ऐंग्लो-सैक्सन भाषा में hlaf-ord (ह् लाफ़्-और्ड) था और उक्त भाषा में इसका अर्थ था 'वह स्थान जहाँ से रोटी मिलती है।' उक्त भाषा में रोटी के लिए ह्लाफ़् और स्थान के लिए और्ड[१] शब्द काम में लाया जाता था।

परन्तु यह सब कर चुकने पर भी जब कि हमने एक नवीन अंगरेजी शब्द का मूल रूप ऐंग्लो-सैक्सन भाषा तक पहुँच कर खोज निकाला तो इसका अर्थ कदापि यह नहीं माना जा सकता कि ऐंग्लो-सैक्सन शब्द ही इसका मूल रूप होगा, या हम इस शब्द को पाकर इसके भीतर काट-छाँट कर इसके मूल अर्थ या उद्देश्य का रहस्य खोलने में समर्थ होंगे, क्योंकि ऐंग्लो-सैक्सन स्वयं एक मौलिक या इंग्लैण्ड की अपने देश में प्राकृतिक रूप में पैदा हुई भाषा नहीं है। स्वयं इसका रूप ही इसके परदे को खोलता है और हमें सूचना देता है कि यह यूरोप की दो भिन्न-भिन्न जातियों, सैक्सनों और ऐंग्लों की भाषा थी। इस कारण हमें अपने इस शब्द की शोध और आगे करनी पड़ेगी। हमें भिन्न-भिन्न प्रकार की सैक्सन बोलियों की छानबीन करनी होगी और साथ ही निम्न-जर्मन बोलियों की भी खोज करनी होगी। यह शोध तब तक चलती रहेगी जब तक कि हम जर्मन भाषा की सबसे पुरानी स्थिति और रूप की खोज में जहाँ तक पहुँच सकते हैं वहाँ न पहुँच पायें, अर्थात् ईसवी सन् की चौथी सदी में जर्मनों द्वारा बोली जाने वाली गौथिक भाषा में इसका प्राचीनतम रूप न देख लें। अब इस व्युत्पत्ति की शोध का चमत्कार देखिए कि इस पड़ाव पर पहुँच कर भी हम आराम नहीं कर सकते, क्योंकि हमारे पास, इस समय, ऐसे साधन वर्तमान नहीं हैं कि यह शोध करते-करते गौथिक से भी पुरानी भाषा ट्यूटानिक

१. Grimm Deutscha Grammatik, i p. 229. Lady in A. S. halfdige, i. c. ii p.405.

का भी ज्ञान प्राप्त करके उस भाषा में इसका मूल रूप देखें। इस प्रकार हम तुरन्त जान जाते हैं कि गौथिक भी एक नवीनतर भाषा है और जब **बिशप उलफिलास** ने बाइबिल के अपने गौथिक अनुवाद में यह शब्द लिखा, उससे पहले यह शब्द अवश्य ही बहुत से विकसित रूपों में नाना भाषाओं में होकर हमारे पास तक पहुँचा है।

यहाँ स्वभावतः यह प्रश्न उठता है कि इस दशा में उक्त शब्द का प्राचीनतम मूल ढूंढ़ निकालने के लिए हमें कौन-कौन उपाय करने पड़ेंगे। इसके लिए हमें वही रास्ता पकड़ने का प्रयत्न करना चाहिए जिसका अनुसरण हमें रोमन से निकली नवीन भाषाओं के विषय में लिखते समय करना पड़ता है। यदि ऐसी परिस्थिति हमारे सामने आती है कि फ्रेंच शब्द की व्युत्पत्ति हम लैटिन मूल से नहीं निकाल पाते तो हमें इसके इटालियन रूप की ओर देखना चाहिए और यह प्रयत्न करना चाहिए कि इस इटालियन शब्द की व्युत्पत्ति इसके मूल लैटिन शब्द तक पहुँचकर खोज निकाली जाय। अब एक उदाहरण ले लीजिए, यदि हमें यह संदेह रह जाय कि आग के लिए आनेवाले फ्रेंच शब्द FEU का मूल रूप क्या रहा होगा, तो हमें विशेष परिश्रम की नाम मात्र आवश्यकता नहीं है। हम उसी अर्थ में आने वाला इटालियन शब्द *fuoco* **(फुओको)** किसी कोश में ढूंढ़ निकालेंगे और हमें यह मालूम हो जायगा कि *fuoco* और FEU ये दोनों शब्द लैटिन भाषा के एक ही मूलरूप *focus* (=संस्कृत 'पावक') से निकाले गये हैं। हम खोज के इस पथ का अनुसरण इसलिए करेंगे कि हमें भली भाँति विदित है कि फ्रेंच और इटालियन इन दो बोलियों के शब्द लैटिन मूल के दो भिन्न-भिन्न रूप हैं और इसलिए भी कि हमने बहुत पहले अपनी शोध द्वारा यह निदान ढूंढ़ निकाला है कि ठीक किस मात्रा तक ये दोनों भाषाएँ आपस में किस प्रकार सम्बन्धित हैं। अब तर्क के लिए मान लीजिए कि इटालियन कोश में आग के लिए शब्द ढूंढ़ने के स्थान पर फ्रेंच FEU की उत्पत्ति का खुलासा हम जर्मन भाषा के आग के पर्यायवाची शब्द को कोश में देख समझना चाहें तो हम उचित पथ पर न बढ़ पायेंगे, क्योंकि भले ही जर्मन में अग्नि के लिए *feuer* **(फौयॅर)** है और यद्यपि यह शब्द फ्रेंच भाषा के शब्द *feu* की अपेक्षा इटालियन शब्द **फुओको** से अधिक साम्य रखता है, तो भी ध्वनिपरिवर्तन के नियमों से फौयॅर फ्रेंच *feu* का रूप कभी धारण नहीं कर सकता।

अब और देखिए, फ्रेंच में एक शब्द *hors* **(होर)** है जिसका अर्थ फ्रेंच भाषा

में 'बाहर' होता है। इसकी व्युत्पत्ति हम बहुत आसानी से निकाल सकते हैं, यदि हमें पहले से यह मालूम हो कि यह **होर** शब्द इटालियन शब्द *fuora* **(फुओरा)** और स्पेनिश शब्द *fuera* **(फुएरा)** का प्रतिरूप है। अब देखिए कि फ्रेंच भाषा के शब्द *fromage* **(फ्रौमाज=पनीर)** की व्युत्पत्ति पर लैटिन भाषा से कोई प्रकाश नहीं पड़ता; परन्तु जिस क्षण हमें यह तुलना खटकती है कि इटालियन शब्द *formaggio* **(फौरमाज्जिओ)** उक्त फ्रेंच शब्द के कुछ निकट मालूम पड़ता है तो हमें अविलम्ब यह पता चल जाता है कि **फौरमाज्जिओ** और **फ्रौमाज** ये दोनों शब्द *forma* **(फौरमा)** से निकाले गये हैं। इटली में छोटी-छोटी टोकरियों या सांचों में दूध रखकर पनीर बनाया जाता है। *feeble* **(फीबल=निर्बल)** और इसका फ्रेंच पर्याय *faible* **(फैब्ल)** थे। दोनों शब्द स्पष्टतया लैटिन से निकाले गये हैं, लेकिन जब तक हम यह न जानेंगे कि इटालियन भाषा में इसका पर्याय *fievole* **(फीएवोले)** है और इस शब्द द्वारा हमें लैटिन मूल रूप FLEBILIS **(फ्लेबिलिस=आंसुओं से भरी)** की याद आ जाती है तब तक हमें इसकी व्युत्पत्ति का पता न चलेगा। हमें फ्रेंच शब्द PAYAR **(पेइए)** की व्युत्पत्ति कभी प्राप्त न होती, यदि हम इटालियन-स्पेनिश आदि भाषाओं के कोशों में पर्यायवाची शब्द ढूंढ़ न निकालते जिनमें फ्रेंच शब्दों के प्रतिरूप पाये जाते हैं। इन कोशों से हमें पता चलता है कि to pay (वेतन-मजदूरी आदि देना) के लिए इटालियन भाषा में *pagare* **(पागारे)** और स्पेनिश में *pagar* **(पागार)** शब्द मिलते हैं और केवल provencaal (प्रोवांशाल=मध्य-दक्षिण फ्रांस की भाषा) में हम देखते हैं कि इसके दो रूप चलते हैं—*pagar* और PAYAR। *pagar* शब्द स्पष्टतया यह बताता है कि यह लैटिन शब्द *pacare* **(पाकारे)** का परम्परा से प्राप्त प्रतिरूप है। इस लैटिन शब्द का अर्थ प्राचीन काल में 'शान्त करना' या 'समझा-बुझाकर किसी को मनाना' था। अब भाषाशास्त्र के टेढ़े-मेढ़े रास्ते देखिए कि महाजन या दूकानदार से समझौता करने का अर्थ यह लगाया गया कि उसका ऋण या माल के दाम चुका दिये जायँ। यह ठीक उसी प्रकार की बात हुई जैसे *une quittance* **(यू क्तितांस, 'एक भरपाई या रसीद')** का मूल लैटिन रूप QUIETANTIA **(किएतांतिआ)** था। इस मूल लैटिन शब्द का अर्थ 'चुप कराना' था और यह मूल लैटिन शब्द QUIETUS (क्वायटुस=चुप या शान्त) से निकला है।

इसलिए यदि हम यह चाहते हों कि अपनी शोध के पथ का अनुसरण करें और

उसे आगे बढ़ायें, अर्थात् एक अंगरेजी शब्द की खोज को गौथिक भाषा तक पहुँचाकर भी हमें पूरा सन्तोष न हो और हम यह जानने की इच्छा करें कि उक्त शब्द का रूप गौथिक से भी पुरानी कोई भाषाएँ यदि हों तो उनमें क्या रहा होगा, तो हमें यह निर्धारित करना होगा कि क्या कुछ ऐसी भाषाएँ भी हैं जिनका गौथिक से वैसा ही सम्बन्ध रहा होगा, जैसा कि इटालियन भाषा स्पेनिश और फ्रेंच से घनिष्ठ सम्बन्ध रखती है। इस काम के लिए हमें अधिक शोध करनी होगी और जहाँ तक हमारे प्रयत्न और ज्ञान द्वारा सम्भव हो सके, मनुष्य की नाना भाषाओं के भिन्न-भिन्न परिवारों का एक वंश-वृक्ष बनाना होगा। यह काम करने से हमें भाषा-विज्ञान की दूसरी स्थिति में, जिसे भाषा-विज्ञान में वर्गीकरण की अवस्था कहा जाता है, प्रवेश करना होगा। हमें भाषा का वंश-वृक्ष, जहाँ-जहाँ इससे काम चलता है, तैयार करना होगा, और इस प्रकार का वर्गीकरण, वर्गीकरण का सर्वोत्तम और सर्वांगपूर्ण रूप माना जाता है। श्लेगल, हम्बोर्ट, प्रिचाड़े, बौंप, बुर्नूफ़, ग्रिम, पैाॅट, बेन्फ़े, कून, कुर्टिउस आदि–आदि जो भाषा-विज्ञान की इस प्रमुख शाखा के पण्डित हैं और इस विषय पर वे जिस परिणाम पर पहुँचे हैं उनकी जाँच-पड़ताल करने से पहले अच्छा यह होगा कि पहले हम उन महापण्डितों के समय से पहले की मानवजाति की अनगिनत बोलियों के वर्गीकरण के क्षेत्र में क्या-क्या उन्नति हुई है या कि इस विषय पर क्या-क्या प्रयत्न किये गये हैं, उस ओर भी एक दृष्टि डाल लें।

ग्रीक विद्वानों ने मानव-जाति की भिन्न-भिन्न भाषाओं के वर्गीकरण संबंधी सिद्धान्त के भाषाशास्त्र में उपयोग करने का कभी विचार भी न किया। उन्होंने भाषा के दो ही विभाग किये; एक ओर तो उनके लिए अपनी भाषा ग्रीक थी तथा दूसरी ओर ग्रीक को छोड़कर संसार की अन्य सभी भाषाएँ थीं। संसार की अन्य जो भी भाषाएँ थीं उनका ग्रीक में बहुत आसान नाम बर्बर कहा जाता था। हाँ, वे वास्तव में ग्रीक भाषा की चार भिन्न-भिन्न बोलियों का वर्गीकरण थोड़ी-बहुत यथार्थता के साथ करने में सफल हुए; पर वे इस अन्धाधुंध ढंग से अन्य सब भाषाओं के लिए इस बर्बर शब्द का प्रयोग करते थे कि ग्रीक भाषा की चार बोलियों तथा भाषाओं (पेलासगियनों, कारिअनों, मेसिडोनिअनों, थ्राकिअनों और इलिरिअनों की भाषाओं) के वैज्ञानिक वर्गीकरण का प्रयोजन जहाँ पड़ता था, उसकी ओर दृष्टि-पात भी न करते थे, यद्यपि ये भाषाएँ ग्रीक से बहुत कुछ मिलती-जुलती थीं। उक्त भाषाओं के सम्बन्ध में ग्रीक भाषा के प्राचीन लेखकों ने जो-जो ऊटपटांग बातें लिखी

हैं उनका भाषाविज्ञान के क्षेत्र में कोई भी प्रयोग नहीं किया जा सकता, क्योंकि उन्होंने उक्त भाषाओं को भी बर्बर भाषाओं की दृष्टि से ही देखा है।[1]

अफलातून ने, अवश्य ही, अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ **क्राटीलुस** (Cratylus) में यह सुझाव भी दिया है कि ग्रीक लोगों ने अपनी भाषा के बहुत-से शब्द शायद बर्बर लोगों की भाषाओं से लिये हों, क्योंकि ये बर्बर लोग ग्रीस देश में स्वयं ग्रीकों से भी पुराने समय के बसे हुए थे; लेकिन उसने अपने इस सत्य कथन का पूर्ण महत्त्व नहीं समझा। वह सरसरी तौर पर यह बताता है कि ग्रीक भाषा के थोड़े-से शब्द, जैसे आग, पानी और कुत्ते के लिए काम में आनेवाले शब्द फ्रीगियन भाषा में वही हैं जो ग्रीक भाषा में बोले जाते हैं। और उसका यह अनुमान है कि ये शब्द ग्रीक लोगों ने फ्रीगियन लोगों से उधार लिये होंगे। पर उसके दिमाग में यह तथ्य कभी घुस ही न पाया कि बर्बर लोगों तथा ग्रीकों की भाषा का मूल स्रोत एक ही हो सकता है। यह भी आश्चर्य का विषय है कि अरस्तू के समान महापण्डित की उदार बुद्धि यह बात समझ न पायी कि भाषा के क्षेत्र में भी वही थोड़े-से नियम काम करते हैं और वही व्यवस्था इस क्षेत्र में भी चलती है जिसका उसने प्रकृति के राज्य में अन्य सब जगह आविष्कार करने का प्रयत्न किया। भाषा के इस क्षेत्र में अरस्तू ने हाथ ही नहीं डाला, इस कारण हमें कोई विस्मय न करना चाहिए कि इस ओर ग्रीक लोगों

१. हेरोडोटस ने एओलिअन और अयोनिअन जातियों का पुराना नाम पेलाश्गी बताया है। हेरोडोटस ने येलोपोनिसस् तथा उसके द्वीपों के निवासी एओलियन और अयोनियन को पेलाशी बताया है, तो भी उसने अपने समय में बोली जाने वाली पलाशिया, क्रेस्टोन और स्कुलाके नगरों में बोली जाने वाली भाषा के आधार पर बताया है कि ये लोग बर्बर भाषा बोलते थे। इसलिए उसे यह स्वीकार करना पड़ा कि ऐटिक जाति को पहले पेलाश्गी जाति की होने के कारण अपनी प्राचीन भाषा पेलाश्जिक का त्याग करना पड़ा। See Diefenbach Origines Europ. p. 59. Dionyrius of Halicarnassus. (1.17) **हेलीकार्नस इस कठिनता से अपने को बचाने के लिए कहता है कि पेलाश्गी जाति आदि से ही यूनानी जाति हुई, किन्तु यह उसका अपना ही सिद्धांत है। होमर ने पेलाश्गी लोगों को बर्बर बताया है, किन्तु स्ट्राबो बहुत सावधानी से कहता है कि उन लोगों को बर्बर न गिना जाना चाहिए।**

ने कोई नियम स्थापित करने का प्रयत्न ही नहीं किया, और भाषा की यह समस्या ग्रीक देश में आनेवाले दो हज़ार वर्षों तक किसी ने नहीं सुलझायी। रोमन लोग प्राय: सभी वैज्ञानिक अध्ययन और आविष्कारों के विषय में ग्रीक लोगों के पढ़ाये हुए तोता मात्र थे। उन्होंने सुग्गे की तरह वही बातें रट ली थीं जो ग्रीक लिख गये थे। ग्रीक लोग रोमवालों को भी बर्बर जाति नाम से सम्बोधित करते थे। जब रोमन साम्राज्य स्थापित हुआ तो रोमन लोगों ने अन्य जातियों को बर्बर कहना सीख लिया। अब तमाशा देखिए कि बर्बर जाति एक ऐसा गोलमोल अर्थ रखने वाला शब्द है जो भाषाशास्त्र से अनभिज्ञ लोगों को ऐसा मालूम पड़ता है कि इसके अर्थ के भीतर बहुत-सी बातें आ गयी हैं, पर यदि वास्तव में ढूंढ़ा जाय तो इसके भीतर कोई अर्थ नहीं है। यह निरर्थक शब्द है। इसका प्रयोग ग्रीकों और रोमनों ने निधड़क और अंधाधुंध रूप में उसी प्रकार किया जिस प्रकार ईसाई धर्म के गुरुओं तथा स्वयं यूरोपियन ईसाइयों ने मध्य युग में Heretic (अधर्मी, नास्तिक) जैसे शब्दों का किया। यदि रोमन लोगों को यह **बर्बर जाति** शब्द जो बहुत ही आसान और सुलभ नाम है और जो ग्रीक लोगों द्वारा बहुत सुन्दर रूप में तैयार किया गया था, न प्राप्त होता तो वे अपने कैल्ट और जर्मन पड़ोसियों के साथ अधिक सम्मान और सहानुभूति के साथ व्यवहार करते। यह तो निश्चित ही है कि चाहे जो होता, वे उनको कुछ अधिक आदर की दृष्टि से अपनाते। और यदि वे ऐसा व्यवहार कर पाते तो उन्हें कुछ समय में यह पता चल जाता कि बाहरी नाना विभिन्नताओं के रहते हुए भी ये बर्बर जातियाँ, उनसे अधिक सभ्य या सुसंस्कृत न होने पर भी, उनके दो-चार पुश्त दूर के सम्बन्धी या चचेरे भाई हैं। गौल और जर्मनी नामक देशों में जिन जातियों के विरुद्ध सीज़र जान लड़ाकर युद्ध कर रहा था उनकी भाषाओं और रोमन लोगों की भाषा तथा स्वयं ग्रीक कवि होमर की भाषा में भी बहुत-कुछ समानता थी— रोम निवासी यह भी देख पाते। सीज़र की सी सूझ-समझ और तीक्ष्ण बुद्धि वाला मनुष्य यह बात तुरन्त ताड़ जाता यदि वह परम्परा से प्राप्त वाक्यों और मुहावरों के कारण इस ओर से पूरा अन्धा न बन जाता। इन तथ्यों के वर्णन में लेश मात्र अत्युक्ति नहीं हुई है। यहाँ पर हम केवल एक उदाहरण देकर अपनी बात समझायेंगे। यदि हम अपनी भाषा अंगरेजी में बार-बार आनेवाली क्रिया, To have (होना) ले लें तो हमें पता लगेगा कि लैटिन और गौथिक भाषाओं में इसके रूप प्राय: एक-से ही चलते हैं—

अंगरेजी में	लैटिन में	गौथिक में
I have	habeo	haba
Thou hast	habes	habais
He has	habet	habaith
We have	habemus	habam
You have	habetis	habaith
They have	habent	habant

इतनी अधिक समानता को एक-दूसरे के निकट रहने पर भी न देखना स्वयं अपने को कुछ सीमा तक अन्धा बनाना है, बल्कि यों कहिए कि कान ठीक होते हुए भी वहरा वन जाना है, और यह अन्धापन तथा वहरापन, मेरा विश्वास है, ग्रीक भाषा के केवल एक शब्द **बर्बर-जाति** ने उत्पन्न किया है। जब तक वह **बर्बर-जाति** शब्द मानवजाति के कोश में से निकाल नहीं दिया जाता तथा उसके स्थान पर **भ्राता** शब्द नहीं रखा जाता और जब तक संसार की सब जातियों का यह अधिकार कि वे एक जाति या एक प्रकार की हैं, न माना जाय तब तक हम भाषा-विज्ञान के स्वयं ककहरे के आरम्भ का ध्यान भी नहीं कर सकते। ईसाई धर्म या ईसाइयत ने हम लोगों के दृष्टिकोण में यह परिवर्तन कर दिया। क्योंकि देखिए कि हिन्दुओं के लिए प्रत्येक मनुष्य जो द्विजाति के भीतर न आता हो, म्लेच्छ ही रह गया; ग्रीक लोगों में प्रत्येक मनुष्य जो ग्रीक भाषा नहीं बोलता था, बर्बर जाति का कहा जाता था, यहूदियों के लिए सब आदमी जो खतना नहीं कराते थे, Gentile (जण्टाइल=अधर्मी) थे और एक मुसलमान के लिए वे सब लोग जो एक अल्लाह और उसके रसूल हजरत मुहम्मद को नहीं मानते वे गब्र या काफिर बन जाते हैं। यह एक मात्र ईसाई धर्म ही था कि जिसने सबसे पहले यहूदी और जण्टाइल के बीच जो अलंघ्य दीवार खड़ी थी, उसे तोड़ डाला तथा जो दीवार ग्रीक मनुष्य और बर्बर जाति के मनुष्य के बीच मेल न होने देती थी, उसे चूर-चूर कर दिया और इसके साथ-साथ गोरे-काले का भेद भी मिट गया। अफलातून या अरस्तू के उत्तमोत्तम दार्शनिक ग्रन्थों में यदि आप **मानव जाति** या **मनुष्यता** शब्द ढूंढ़ना चाहेंगे तो बालू से तेल निकालने जैसा प्रयत्न होगा। यह मानव जाति की कल्पना, जिसमें संसार के सब मनुष्य एक समान बिना ऊँच-नीच भेद-भाव के एक परिवार की तरह और एक ईश्वर के बच्चों के रूप में रहते हैं, यह भावना ईसाई धर्म ने सर्वप्रथम हमारे संसार को दी। इस कारण मानव जाति के विज्ञान और मानव जाति की भाषाओं

के विज्ञान का ईसाई धर्म के बिना उत्पन्न होना कभी भी सम्भव न था। जब जनता को यह सिखाया गया कि संसार के सभी आदमियों को अपना भाई समझो और उनके साथ भाई का व्यवहार करो, तभी, और केवल तभी, मनुष्य की भाषाओं और बोलियों के भिन्न-भिन्न रूप चिन्ताशील विद्वानों और निरीक्षकों के सामने एक समस्या के रूप में खड़े हुए, जिसका समाधान करना अति आवश्यक था। इस कारण, मैं पैण्टेकौस्ट नामक ग्रन्थ के आरम्भ के दिन को भाषा-शास्त्र के वास्तविक प्रारम्भ की तिथि मानता हूँ। उस दिन के बाद जब कि लोग नाना भाषाएँ बोलने लगे तो सारे संसार में एक नया प्रकाश फैल गया और हमारी दृष्टि के आगे वे सब पदार्थ दीखने लगे जो अभी तक प्राचीन युगों की जातियों की आँखों से ओझल थे। प्राचीन शब्द नये अर्थों में काम में आने लगे। प्राचीन समस्याओं में नयी दिलचस्पी पैदा हो गयी और पुराने विज्ञानों में नये-नये प्रयोजन दिखाई देने लगे। मानव-समाज की एक मूल स्रोत से उत्पत्ति, मनुष्यों के वंश और उनकी भाषाओं में विभिन्नताएँ और यह सिद्धान्त कि सभी जातियों के लोग उच्चतम मानव संस्कृति के अधिकारी और उसे प्राप्त करने के योग्य हैं; ये बातें नयी दुनिया में, जिसके भीतर ही हम भी रहते हैं, वैज्ञानिकों के सामने समस्याओं के रूप में आ उपस्थित हुईं, और सच पूछिए तो इनमें वैज्ञानिक ही नहीं, बल्कि हम भी समाज की उन्नति की भिन्न-भिन्न दृष्टियों से रस लेने लगे। ईसाई धर्म के विरुद्ध यह कोई शक्तिशाली आपत्ति नहीं मानी जा सकती कि ईसाई धर्म ने जो नया प्राण मानव जाति में डाला और जो प्रेरणा वैज्ञानिक शोध की प्रत्येक शाखा को दी उससे पहले ईसाई धर्म बहुत समय तक निश्चेष्ट-सा रहा। हम स्पष्ट ही देखते हैं कि ईसाई धर्म के मनुष्य-जाति की एकता और समानता के उदार विचारों से भले ही सैकड़ों बरस बाद अंकुर उपजा, किन्तु यह निश्चय है कि इसके उदार सिद्धान्तों ने **अल्बर्टुस माग्नुस**[१] के

१. बौलस्टात का काउन्ट अलबर्ट, या जैसा साधारण तौर पर वह अल्बेर्टुस माइगनुस कहा जाता है, आधुनिक भौतिक विज्ञान का एक उन्नायक था, वह लिखता है—"परमात्मा ने मनुष्य को आत्मा दी है और इसके साथ-साथ उसे बुद्धि भी प्रदान की है, जिससे मनुष्य परमात्मा को पहचानने के लिए इनका उपयोग करे। परमात्मा आत्मा द्वारा पहचाना जाता है और उसकी पहचान का उपाय इसके साथ ही बाइबिल पर विश्वास है।" फिर वह दूसरे स्थान पर लिखता है—"परमात्मा

दर्शनशास्त्र के उदात्त विचारों को जन्म दिया, यह तथ्य स्वीकार करना ही पड़ेगा। भले ही ईसा की मृत्यु के प्रायः बारह सौ वर्ष बाद केपलर[1] जनमा हो

की महिमा और उसका यश गाने के लिए तथा अपने भाइयों के हित के लिए हम भगवान् की सृष्टि की प्रकृति का अध्ययन करते हैं। सारी प्रकृति में और सब जीवों में हम जो रचना कौशल या सामंजस्यपूर्ण संग्रथन देखते हैं, उससे भगवान् के बनाये नाना रूपों की महिमा का गान कर सकते हैं और हमें यह करना भी चाहिए।"

१. केपलर के ग्रंथ "Harmony of the world" में लिखा है—"हे भगवन् ! तू ने प्रकृति की ज्योति से हमारी आत्मा के भीतर अपनी करुणा का दिया जलाया है, जिससे हम उठ खड़े हों और तेरी महिमा की ज्योति का दर्शन करें। तुझको बार-बार धन्यवाद है। हे सृष्टिकर्ता और प्रभो ! तू मुझे अपनी सृष्टि से आनन्द प्राप्त करने का अवसर दे रहा है। सब भाइयो देखो ! मैंने भगवान् की दी हुई बुद्धि की शक्ति से अपने जीवन का काम पूरा कर लिया है। हे परमात्मन् ! मैंने मनुष्यों के आगे तेरी सृष्टि की महिमा गायी है और जहाँ तक मैं समझ पाया हूँ मैंने तेरी अनन्त महानता का यशोगान किया है। मैंने अपने आचरण की शुद्धता और आत्मा के विश्वास के साथ अपनी इंद्रियों को सजग रखकर, जहाँ तक मेरी शक्ति थी वहाँ तक शोध करने का प्रयत्न किया है। यदि मैंने, जो तेरी महान् आँखों के सामने एक कीड़ा हूँ और पापी हड्डियों के साथ जनमा हूँ, कोई ऐसी बात उपजायी हो जो तेरे आदेशों के विरुद्ध हो तो मुझे अपने तेज से प्रेरित कर कि मैं ऐसी अशुद्धि को शुद्ध कर सकूँ। यदि तेरी सृष्टि की आश्चर्यमय सुन्दरता से प्रभावित होकर मुझमें यह साहस हुआ कि मैं कुछ कार्य करूँ तथा यदि मैंने मनुष्यों के बीच आदर प्राप्त करने की इच्छा की और मैं अपने उस कार्य में आगे बढ़ा, जिसका परिणाम तेरी ही पूजा करना था तो हे भगवन् ! अपनी करुणा और मुक्तहस्तता के कारण मुझे क्षमा कर और अपनी दया से मेरी यह प्रार्थना स्वीकार कर कि तेरी कृपा से मेरा ज्ञान तेरे यशोगान में भाग ले और सब मनुष्यों की भलाई करने में सफल हो। हे स्वर्गीय सामंजस्य और समन्वय ! हे मनुष्यो ! जो इस नये सामंजस्य को समझने लगे हो तो भगवान् की महिमा गाओ। हे मेरी आत्मा ! केवल भगवान् का गुणगान कर और जब तक मैं जीवित हूँ केवल उसी का गान कर। उस ईश्वर के भीतर ही सब कुछ है। भले ही

किन्तु उसके हृदय में वैज्ञानिक सत्य का आविष्कार करने की जो प्रेरणा पैदा हुई वह ईसाई धर्म के उच्च विचारों का फल थी, और अपने इस युग के बड़े-बड़े दार्शनिकों के जो उच्चतम और उदात्त विचार हमारे सामने आ रहे हैं वे भी इसी धर्म के फलस्वरूप पैदा हुए हैं। चिन्ताधारा के संगीत की यह ध्वनि और रागिनी पहले-पहल सारे विश्व को अपना समझने वाले और उसके लिए प्रेमपूर्ण हृदय का परिचय देने वाले ईसा मसीह ने छेड़ी।[1] उसके विषय में साफ ही कहा गया है--"क्योंकि उसकी वे रहस्यपूर्ण बातें, जिन्हें हमारी दृष्टि नहीं देख सक रही है उसे हम विश्व की सृष्टि के भीतर भली-भाँति देख सकते हैं। उस ईश्वर ने जो-जो पदार्थ बनाये उससे हम उसकी रहस्यमय बातें समझ सकते हैं, इतना ही क्यों, इस सृष्टि के भीतर हम उस भगवान् की अनादि और अनन्त शक्ति और स्वयं उसके ईश्वरत्व का पता लगा सकते हैं।"

हम अब आगे देखेंगे कि भाषा-विज्ञान को इससे केवल पहली प्रेरणा ही नहीं

वह भौतिक पदार्थ हो या आध्यात्मिक। हमारा सब ज्ञान, जिसे हम जानते हैं और हमारा वह ज्ञान जिसे हम अब तक नहीं जानते, उसके भीतर ही है, क्योंकि अभी बहुत काम करना शेष है जो हम अभी तक नहीं कर सके।"

ये शब्द इस कारण अधिक महत्व के बन जाते हैं कि ये उस मनुष्य द्वारा लिखे गये हैं, जिसको ईसाई पादरियों ने जनम भर नास्तिक समझ कर महान् कष्ट दिया। इस पर भी इस वीर ने अपने को ईसाई धर्म का पक्षपाती बताने में कभी लज्जा न की।

मैं एक बहुत ही प्रसिद्ध भौतिक-विज्ञानवेत्ता के शब्दों से अपना कथन समाप्त करता हूँ—"प्राचीन सभ्यता के जो अवशेष रह गये हैं, उनके भीतर एक पुरातत्त्ववेत्ता, सचेतन बुद्धि का महान् कार्य देखता है। वह उस प्राचीन सभ्यता का युग स्थिर करने में भले ही असफल हो। भले ही वह उस सभ्यता के क्रमिक विकास या उन्नति के विषय में पूरा निश्चय न कर सके, किन्तु उसकी विशेष बातों और गुणों को देखकर समझता है कि ये सब काम कलाकार के हैं और मेरे जैसे आदमियों ने ही प्राचीन समय की उस सभ्यता का निर्माण किया होगा जिसके भग्नावशेष शेष हैं। इनमें वह एक अति उच्च बुद्धि का कार्य देखता है।"

१. Rom. i. 20.

मिली बल्कि और भी बहुत सी सामग्री प्राप्त हुई। हमारे भाषा-विज्ञान का रास्ता तैयार करने वाले ईसा मसीह के वे दूत थे जिन्हें उसने आज्ञा दी थी—'जाओ और मेरे धर्म का संसार के कोने-कोने में प्रचार करो और प्रत्येक प्राणी के कान में मेरा बताया हुआ सुसमाचार डालो।' और ईसा मसीह के इन दूतों की परम्परा में इनके जो सच्चे उत्तराधिकारी पैदा हुए, उनमें ईसाई धर्म के वे प्रचारक ही थे जिनके द्वारा भाषा-विज्ञान का मार्ग प्रशस्त हुआ। ईसाई धर्म की प्रभु की प्रार्थना या स्वयं बाइबिल का संसार की प्रत्येक बोली में अनुवाद आज भी तुलनामूलक भाषा-वैज्ञानिक के लिए अत्यन्त मूल्यवान् सामग्री मानी जाती है। जिस समय तक संसार की ज्ञात भाषाओं की संख्या संसार में इनी-गिनी थी, तब तक किसी के मन में यह विचार उत्पन्न न हो पाया कि भाषाओं का वर्गीकरण करना उचित है। किसी विज्ञान में किसी शाखा का विभाजन करने से पहले यह अति आवश्यक है कि इतनी अधिक मात्रा में तथ्यों का संग्रह हो जाय कि उनको देखकर माथा चक्कर में पड़ने लगे। जिस समय तक यूरोप में अथवा ईसाई धर्म माननेवाले लोगों में केवल ग्रीक, लैटिन और इबरानी भाषाओं का अध्ययन होता रहा, तब तक भाषाओं का विभाजन केवल पवित्र धार्मिक भाषा और अपवित्र, अधर्म की भाषा ; या प्राचीन यूरोप की भाषाएँ तथा पूर्वी देशों की भाषाएँ—इनका नामकरण उक्त दो सीधे सादे नामों से ही किया जाता था; पर जब ईसाई धर्म के आचार्यों और पादरियों ने अरबी, खल्दी और सीरिया की भाषाओं का अध्ययन करना आरम्भ किया तथा भाषापरिवार के अध्ययन का विस्तार किया तब से भाषाओं के[1] परिवार या वर्गों को स्थापित करने की ओर एक कदम, और वह भी बहुत महत्त्वपूर्ण, आगे

१. सोलहवीं सदी में भाषाविज्ञान पर लिखे गये निम्न ग्रंथों के नाम पादरी हरवास ने उद्धृत किये हैं—Introductio in chaldaicam Linguam, Siriacam, atque Armenicam, et decem alias, a Theseo Ambrosio, Papiae, 1539, 4 to. De Ratione Communi omnium Linguarum et Litterarum commentarius, a Theodoro Bibliandro, Tiguri, 1548, 4 to. इसमें ईसाइयों के ही प्रभु की प्रार्थना "चौदह भिन्न-भिन्न भाषाओं में अनूदित की गयी है। बिबलेंडर ने वेल्श और कौर्निश भाषा को ग्रीक से निकली हुई बताया है। उसका कहना है कि इन देशों में ग्रीक भाषा फ्रांस के मारसेल्स नगर

बढ़ाया। ऊपर लिखी भाषाओं के अध्ययन ने, अनायास ही यह तथ्य प्रकट कर दिया कि उक्त भाषाएँ एक-दूसरी से बहुत ही निकट सम्बन्ध रखती हैं, और वे ग्रीक व लैटिन भाषाओं से हर बात में पूर्णतया भिन्न हैं तथा आपस में सभी बातों में उनमें एकता और समानता है। १६०६ ईसवी में, जो कि यथेष्ट प्राचीन काल

से होकर आयी है। उसका कथन है कि आर्मीनियन और खल्दी भाषा में बहुत कम विभिन्नता पायी जाती है। उसने एक लेखक पोस्टेल का उद्धरण दिया है, जिसमें तुर्कों को आर्मीनियनों का वंशज बताया है; क्योंकि आर्मीनियाँ में तुर्की भाषा बोली जाती थी। वह बताता है कि ईरानी लोग शैम के वंशज हैं और उसने फारसी भाषा का संबंध सीरिया की अरबी और इबरानी से बताया है। उसके कथनानुसार सर्वीयन और जीऔरजियन भाषाएँ भी ग्रीक भाषा की बोलियाँ हैं।

सोलहवीं सदी में भाषाशास्त्र पर जो ग्रंथ निकले उनके नाम नीचे दिये जाते हैं---

Periom, Dialogorum de Linguae Gallicae Origine ejusque cum Graeca Cognatione, libri quatuor, Parisus, 1554.

लेखक कहता है कि बैबिल के बुर्ज से जो बहत्तर भाषाएँ निकली हैं उनमें फ्रेंच का नाम नहीं मिलता इसलिए यह ग्रीक से निकली होगी। वह सीजर की किताब से उदाहरण देता है (De Bello Gallico VI,14) जिससे यह प्रमाणित होता है कि ड्रुइद लोग ग्रीक बोलते थे और तब ड्रुइदों की भाषा से वह फ्रेंच भाषा की उत्पत्ति बताता है।

फ्रेंच विद्वान् आँरीएस्तीएन इन लोगों से बहुत ही पक्के सिद्धांतों पर अपना ग्रंथ लिखता है। उसके ऊपर यह झूठा आक्षेप किया गया है कि उसने फ्रेंच को ग्रीक से निकली बताया है। देखिए उसकी पुस्तक Traicte de la Conformite du Langage francais avec le grec. यह किताब प्रायः १५६६ ई० में निकली। इस ग्रंथ में मुख्यतः रचना और व्याकरण संबंधी बातें बतायी गयी हैं और इसका उद्देश्य यह प्रमाणित करना है कि ग्रीक भाषा के बात करने का ढंग जो परस्पर विरोधी तथा क्लिष्ट लगता है, उसकी यदि फ्रेंच भाषा की उसी प्रकार की बातों से तुलना की जाय तो वह सरल लगने लगेगा।

विनलिऐंडर ने १५४८ ई० में ईसाई धर्म की 'प्रभु की प्रार्थना' चौदह भिन्न-भिन्न भाषाओं में प्रकाशित की और १५९१ में राखा नामक पादरी ने उसे छब्बीस

कहा जा सकता है, हमें पता लगता है कि उस समय के प्रसिद्ध फ्रेंच लेखक पादरी **गिशार** ने अपने ग्रन्थ Harmonie Etymologique (हारमोनी एटीमोलोजीक, व्युत्पत्ति का सामंजस्य) में यह बताया कि इबरानी, खल्दी और सीरिया की भाषाएँ एक मूल से निकली हैं तथा भाषाओं के एक ही वर्ग की हैं, जो अन्य भाषाओं से भिन्न हैं। और उसने यह भी एक भेद बताया कि रोमन स्रोत से पैदा होनेवाली और इटली, फ्रांस, स्पेन आदि देशों में बोली जाने वाली भाषाएँ ट्यूटानिक स्रोत से उत्पन्न भाषाओं से सर्वथा भिन्न हैं।

भाषाशास्त्र की प्रगति दीर्घ काल तक इसलिए रुकी रही कि विद्वानों में मध्यकाल में यह विचार सर्वमान्य हो गया था कि मनष्यजाति की मूल भाषा इबरानी थी और इस कारण स्वभावतः सभी भाषाएँ इसी एक भाषा से निकलनी चाहिए। गिरजे के पादरियों में इस विषय पर कभी कोई सन्देह नहीं रहा। सेंट जिरोम, दमसुस को लिखे अपने पत्र में कहता है—"सारा प्राचीन विश्व (universa antiquitas) घोषित करता है कि इबरानी जिसमें हमारी पुरानी धर्मपुस्तक लिखी गयी है, संसार की सभी भाषाओं की जननी है। ओरिगेन अपने ग्रन्थ **संख्या की पुस्तक के उपदेश** के सातवें अध्याय में अपना पक्का विश्वास व्यक्त करता है कि इबरानी भाषा जो ईश्वर ने आदम के द्वारा दी, संसार के उस भाग में रही जो परमेश्वर की अति प्रिय भूमि थी। यह भाग जगत के और हिस्सों से श्रेष्ठ था, क्योंकि इस भाग में स्वयं ईश्वर तथा उसके दूत राज करते थे। इस कारण जब पहले एइल भाषा के वर्गीकरण करने का प्रयत्न किया गया तो गिशार और टोमस्सां सरीखे विद्वानों के सामने प्रश्न उपस्थित हुआ—"इबरानी तो अवश्य ही

भाषाओं में प्रकाशित किया (Bibliotheca Apostolica Vaticana, a fratre Angelo Roccha, Romae, 1591, 4 to)। **१५९० में प्रभु की यह प्रार्थना मेगीसेरुस नामक पादरी ने ४० भिन्न-भिन्न भाषाओं में प्रकाशित करवायी।** (Speciman XL Linguarum et Dialectorum ab Shieronymo Megiseroa Diversis auctoribus collectarum quibus oratio Dominica est expressa, Francofurti 1542.) **इसी पादरी ने १५९३ ई० में प्रभु की यह प्रार्थना ५० भिन्न-भिन्न भाषाओं में छपवायी** (Oratio Dominica L diversis Linguis, cura H. Megiseri, Francofurti, 1593, 8 Vo.)।

सब भाषाओं की जननी है, अब हम उस प्रक्रिया को कैसे समझायें जिससे इबरानी की इतनी बोलियां बन गयीं, जैसे ग्रीक, लैटिन, कौप्टिक (अबीसीनिया की भाषा—अनु०), फ़ारसी, तुर्की; ये किस प्रकार अपनी एक मात्र जननी इबरानी तक पहुँचायी जायँ।"

यह देखकर कान खड़े हो जाते हैं कि इस समस्या का समाधान करने में, सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी में, कितने पाण्डित्य और बुद्धि-चातुरी का सत्यानाश किया गया। कदाचित् इसका एक ही और उदाहरण मिलता है। इसके समान ही प्राचीन समय के ज्योतिषियों का सिद्धान्त था कि सूरज, चन्द्रमा आदि पृथ्वी के चारों ओर घूमते हैं और पृथ्वी विश्व का केन्द्र है तथा स्थिर है। यह बात मानकर वे बहुत श्रम करके, हिसाब लगाते थे और अपनी बात सिद्ध करने का बहुत यत्न करते थे। पर, फिर भी आकाश के ज्योति-पिण्डों की ठीक चाल वे बता न सकते थे। जो हो, यद्यपि इस समय हम जान गये हैं कि टोमास्सां सरीखे महापण्डितों का श्रम बरबाद गया और जिस आधार पर उनकी खोज चली उसका परिणाम फलहीन होना ही चाहिए था; इस पर भी हमें अपना मन छोटा न करना चाहिए कि मानवजाति की प्रगति में महान् पुरुषों को निरुत्साह करनेवाला व्यर्थ का परिश्रम करना पड़ा। इस निराशापूर्ण दृष्टि से हमें यह विफलता न देखनी चाहिए। यह सत्य है कि उन्होंने विपरीत दिशा में काम किया, पर सत्य का आविष्कार करने की इनकी लगन हमें आज भी उत्साहित कर रही है। हमें यह भी न भूलना चाहिए कि ऐसे मनीषियों की असफलता की घटना ने स्वयं जनता के इस विश्वास का जबरदस्त प्रचार करने में बड़ी सहायता की कि इस समस्या में ही अवश्य कहीं दाल में काला है। फल यह हुआ कि अन्त में एक निर्भीक और साहसी प्रतिभा ने इस समस्या को उलट दिया और समाधान भी कर दिया। जब यह सिद्ध करने में कि ग्रीक, लैटिन तथा अन्य सब भाषाएँ इबरानी से निकली हैं और किस प्रकार निकली हैं, ग्रन्थों पर ग्रन्थ लिखे गये और किसी पुस्तक ने इस समस्या का सन्तोषजनक समाधान न कर पाया, तो पाठकों के मन में प्रश्न उठा कि 'इबरानी को ही क्यों सब भाषाओं का मूल-स्रोत माना जा रहा है?' लोगों के मन में उक्त प्रश्न उठते ही, इस समस्या के समाधान के श्रीगणेश का लग्गा लग गया। चौथी और पाँचवीं सदी के धर्मशास्त्रियों के लिए, जिनमें से अधिकांश न इबरानी जानते थे और न ही ग्रीक और लैटिन, वे तो अपनी बोली जानते थे—यह माना हुआ सिद्धान्त था कि इबरानी में प्राचीन धर्मपुस्तक लिखी गयी है, इस कारण इबरानी

ही सब भाषाओं की जननी है। अब तमाशा देखिए कि न तो पुरानी और न नयी धर्मपुस्तक में एक शब्द भी ऐसा मिलता है जिसमें उक्त तथ्य का लेश मात्र भी उल्लेख हो। आदिम मनुष्य आदम कौन-सी भाषा बोलता था, इसका पता नहीं मिलता। यदि इबरानी भी एक भाषा है जो बैबिल के बुर्ज बनने के समय वहां के मजदूरों में भाषा की गड़बड़ी होते समय उत्पन्न हुई होगी, ये मजदूर परस्पर की भाषा बदलने के कारण एक दूसरे की बात न समझ सके होंगे; तो यह आदम की भाषा नहीं हो सकती और न संसार-भर की भाषा ही हो सकती है। क्योंकि इन भाषा-शास्त्रियों के कथनानुसार 'आदि में जगत की एक ही भाषा थी।'

यद्यपि सेमेटिक भाषा के विद्वानों ने सत्रहवीं सदी में इस प्रकार भाषाओं के वर्गीकरण में कुछ प्रगति की, किंतु यह आंशिक उन्नति वास्तव में भाषाविज्ञान की अग्रगति में अड़चन सिद्ध हुई। फल यह हुआ कि भाषाओं को उनके विशेष-विशेष समान-लक्षणों के अनुसार क्रमबद्ध करने में जो वैज्ञानिक हित है, उस ओर किसी का ध्यान ही न गया और ऐसे भ्रामक विचारों का प्रचार किया गया जिनका प्रभाव अभी तक पूर्णरूप से नहीं मिटा।[1]

पहला विद्वान् जिसने इस पक्षपात-पूर्ण हठ को त्यागा कि, इबरानी भाषा ही सब भाषाओं का मूल स्रोत है, वह था जर्मन लाइबनित्स। यह न्यूटन का समसामयिक और प्रतिद्वंद्वी था। उसने कहा—'मनुष्य जाति की आदिम भाषा इबरानी है, यह कथन उतना ही युक्तियुक्त है, जितना गोरोपिउस का अपनी ऐंटवर्प से १५८० ई० में प्रकाशित पुस्तक में यह सिद्ध करना कि डच ही एक भाषा थी जो स्वर्ग में बोली जाती थी।'[2] टेंत्सेल को लिखे एक पत्र में लाइबनित्स ने लिखा है—'इबरानी को आदिम भाषा बताना वैसा ही है, जैसा किसी पेड़ की शाखाओं को आदिम शाखाएं बताना या कुछ इस प्रकार की कल्पना करना कि किसी देश-विशेष में पेड़ों के स्थान पर कटे-कटाये धड़ उपज सकते हैं।' ऐसे विचार कल्पना में लाये जा सकते हैं, पर[3] इनका सामंजस्य प्रकृति के नियमों के साथ नहीं होता; न ही इनका मेल

१. फ्रेंच विद्वान् गिशार ने यहां तक लिख डाला कि, इबरानी दाहिने से बायें लिखी जाती है और ग्रीक बायें से दाहिने तथा यदि ग्रीक शब्द भी दाहिने से बायें पढ़े जायंगे तो पता लग जायगा कि ग्रीक इबरानी भाषा है।

२. इर्माथेना जोआन्निस गोरोपिई बेकानी : अंदुर्एपिए, १५८० ई० आँर-

विश्व की कलामय एकरूपता से होता है, यह कलामय एकरूपता ही ईश्वरीय ज्ञान है।' लाइबनित्स ने भाषा-ज्ञान के मार्ग से वह विशाल पाषाण हटा दिया जो प्रगति में अड़चन पैदा कर रहा था। उसने इस विषय की शोध में आरोही तर्कपद्धति की युक्ति (Inductive reasoning) का प्रयोग किया, जहां पहले के विद्वान् अटकलपच्चू से काम कर रहे थे। उसने बताया कि इस विषय पर, सबसे पहले यथासंभव अधिक से अधिक तथ्य संग्रह किये जायँ। उसने मिशनरियों, यात्रियों, राजदूतों, राजाओं तथा सम्राटों से निवेदन किया कि वे इस महान् और उसके अति प्रिय विषय की शोध में उसकी मदद करें। इस पर चीनप्रवासी जैसुइट पादरियों ने उसके लिए काम किया। प्रसिद्ध घुमक्कड़ विट्सन[१] ने उसके पास अति

ओरिजिनेस, अंटवेर्पिएनए। आंद्रे केपे ने अपनी स्वर्ग की भाषा के विषय पर लिखी पुस्तक में इस तथ्य की पुष्टि की है, ईश्वर ने आदम से स्वीडिश भाषा में बातचीत की, आदम ने 'डेनिश भाषा में उत्तर दिया और सांप ने आदम की पत्नी हव्वा से फ्रेंच में वार्तालाप किया। फ्रेंच पर्यटक चार्डचाँ (Chardin) ने लिखा है कि ईरानी लोग विश्वास करते हैं कि बिहिश्त में सांप अरबी में बोला, आदम और हव्वा फ़ारसी में बोले और जिबराईल तुर्की भाषा में बोला। जे० बी० एर्रो ने अपनी पुस्तक एल् मुंडो प्रिमिटिवो, मैड्रिड १८१४, में बताया है कि आदम ने स्पैनिश में बातें कीं। प्रायः दो सौ वर्ष पहले पांपेलुना के बड़े पादरियों की एक सभा के वादानुवाद में जो निर्णय हुआ वह सभा की रिपोर्ट में यों लिखा गया है—क्या बास्क भाषा (स्पेन की एक बोली—अनु०) मनुष्य की मूल-भाषा है? विद्वान् सदस्यों ने निर्णय किया कि इस बात का पूरा विश्वास होते हुए भी उन्हें स्वीकृति-युक्त उत्तर देने की हिम्मत नहीं हुई। क्या स्वर्ग में आदम और हव्वा ने केवल बास्क ही बोली? इस विषय पर सभा घोषणा करती है कि सभा के सदस्यों के मन में इस विषय में कोई सन्देह हो ही नहीं सकता और इस विषय पर कोई गम्भीर या युक्ति-युक्त आपत्ति की ही नहीं जा सकती। देखिए, हानको भाषाओं की समरूपता पर निबंध, बोर्डो, १८३८, पृ० ६०। कार्थेरिनेन्स डेर ग्रोस्सन फरदीनेंस्टे उम् डी फरालाइशेंदे आखकुंडे, फ्रौन एक आडलुंग, पीटर्सबुर्ग, १८१५।

१. गुहरौअर कृत लाइबनित्स की जीवनी, खंड २ पृ० १२७—'वह अपने ग्रंथ 'जातियों की उत्पत्ति का निबंध' (१७१० ई०) में लिखता है—"भाषाओं का अध्ययन

ही मूल्यवान् भेंट भेजी; उसने उसके पास बाइविल से प्रभु की प्रार्थना भेजी जिसका अनुवाद होटेंटो भाषा में किया गया था। इस सैलानी को धन्यवाद देते हुए लाइवनित्स अपने पत्र में लिखता है—'मेरे मित्र याद रखना, मैं तुमसे गिड़गिड़ा कर विनती करता हूं और मास्को-निवासी अपने अन्य मित्रों से भी अनुरोध करना कि ऐसी शोध करके मेरा हाथ वटायें कि मुझे सीथियन भाषाओं, जैसे, **सामोयद, साइबीरियन, बश्किर, काल्मुक, दुगूशियन** तथा अन्य बोलियों के नमूने भेजें। रूस के नामी सम्राट् पीटर महान् से परिचय होने के बाद लाइबनित्स ने उसे विएना से २६ अक्टूबर १७१३ को निम्न पत्र भेजा—'मैंने यह सुझाव दिया है कि महामहिम सम्राट् के आदेश से जितनी भाषाएं आपके साम्राज्य और उसकी सीमाओं में बोली जाती हैं लिपिबद्ध करवा दी जायं, क्योंकि ये अभी तक पूर्णतया अज्ञात हैं तथा इनका अध्ययन भी आज तक नहीं किया गया है। इनके कोश अथवा छोटी शब्द-सूचियाँ (vocabularies) तैयार करवायी जायं। इन भाषाओं और बोलियों में बाइबिल की दस आज्ञाएं, प्रभु की प्रार्थना आदि का अनुवाद भी किया जाय। इससे महामहिम सम्राट् की महिमा और भी गौरवान्वित होगी; क्योंकि आप बहुत अधिक संख्यक जातियों पर प्रभुता करते हैं और सबकी दशा सुधारने में दत्तचित्त हैं। यह काम भाषाओं की तुलना करने पर उन जातियों के मूल-स्थान का पता देगा जो आपके

किसी अन्य सिद्धान्त पर कभी न किया जाना चाहिए, यह तो केवल एक सिद्धांत पर होना चाहिए अर्थात् तथ्यों से भरे विज्ञान के अनुकूल होना चाहिए। यह अज्ञात तथ्यों से क्यों आरंभ किया जाय? यहाँ तो ज्ञात तथ्यों का संग्रह कर आगे बढ़ना चाहिए। बुद्धि तो बताती है कि हमें इसका आरंभ वर्तमान जीवित भाषाओं के अध्ययन से शुरू करना चाहिए; क्योंकि उनके पास तक हमारी पहुँच है और हम सरलता से उनकी परस्पर में तुलना कर सकते हैं। इससे हमें पता लगेगा कि उनमें आपस में कितनी सजातीयता है या उनमें क्या क्या भेद पाया जाता है। यह कर लेने के बाद उन भाषाओं का अध्ययन किया जाना चाहिए जो प्राचीन समय में वर्तमान जीवित भाषाओं से पहले जीवित थीं, जिससे उनके परस्पर संबंध और उनके मूल का ज्ञान प्राप्त हो। और तब सीढ़ी-दर-सीढ़ी चढ़कर सबसे प्राचीन भाषाओं का अध्ययन करना उचित है। इनके विश्लेषण द्वारा ही पूर्ण विश्वास के योग्य निदान हाथ लगेंगे।

अधीन हैं और जो सीथिया से अन्य देशों को गये हैं। परन्तु इस काम से मुख्यतया इन जातियों में ईसाई धर्म का प्रचार करने में सुविधा होगी जो ये भाषाएं या बोलियां बोलती हैं। इस कारण मैंने एक पत्र रूस के बड़े पादरी को भी लिखा है।'[1]

लाइबनित्स ने अति सरल और बहुत आवश्यक शब्दों की एक सूची बनायी। ये शब्द इन भाषाओं से तुलना के लिए चुने गये। वह इतिहास की भी शोध कर रहा था। उसने जर्मन भाषा के मूल इतिहास पर प्रकाश डालनेवाली सभी सामग्री एकत्रित की और एकार्ड के समान विद्वानों को प्रोत्साहित किया। उसने बोलियों का भी महत्व बताया तथा प्रादेशिक और स्थानीय शब्दों का महत्त्व भी बतलाया। उसने सिखाया कि उक्त शब्दों का अध्ययन करने से ही व्युत्पत्ति की ग्रंथियां खुलती हैं। लाइबनित्स ने भाषा के सारे क्षेत्र का वर्गीकरण नहीं किया और न ही उसने अपनी सीखी हुई बोलियों का वर्गीकरण किया। उसने नाना भाषाओं का अध्ययन करके यह निदान निकाला कि एशिया और यूरोप के उत्तर में जैफेटिक भाषाएं बोली जाती हैं तथा दक्षिण में आरामेइक। उसका विश्वास था कि सब भाषाओं का मूल एक ही है तथा मानवजाति पूर्व दिशा से पश्चिम को आयी। मगर वह भाषाओं के परस्पर सम्बन्ध में ठीक किस परिमाण में भेद है, यह न जानता था। उसने फिनिश, तातारी आदि तूरानी भाषाओं को जैफेटिक भाषा-परिवार में शामिल कर दिया। यदि लाइबनित्स को अपने उपजाऊ और बहुज्ञ मस्तिष्क से उत्पन्न सभी योजनाओं पर काम करने का समय मिलता या उसके समसामयिक विद्वान् उसको उचित रीति से समझते तथा उसकी मदद में जुट जाते तो भाषाविज्ञान एक सदी पहले आरोही पद्धतिवाले विज्ञानों में माना जाने लगता। किन्तु लाइबनित्स जैसा प्रतिभाशाली व्यक्ति जो महापंडित था, धर्मोपदेशक रहा, होशियार वकील माना गया, इतिहास का परमज्ञानी विख्यात था और गणित शास्त्र में कमाल रखता था, किंतु भाषा के

१. निकोलाएस् विट्सन, ऐम्सटर्डम का नगरपति (Burgomeister) **था। उसने १६६६ से १६७२ ई० तक रूस की यात्रा की और १६७७ ई० में अपना यात्रा-वृत्तांत प्रकाशित किया। यह ग्रंथ रूस के सम्राट् पीटर महान् को अर्पण किया गया। इसका दूसरा संस्करण १७०५ ई० में निकला। इसमें कई भाषाओं की शब्द-सूचियां दी गयी हैं।**

विकास का अध्ययन कैसे किया जाना चाहिए, इस पर पथ-प्रदर्शन ही कर सकता था। लाइबनित्स ने अवकल-कलन (differential calculus) का आविष्कार किया। वह उनमें से एक था जिन्होंने पहले-पहल बताया कि भूगर्भ में समय समय पर परतें पड़ती गयीं, जो तथ्य आज भी पृथ्वी की रचना के ढंग और उसके काल का पता देता है। वह हिसाब करनेवाली एक मशीन के बनाने में लगा हुआ था, जिसकी रूप-रेखा उसने वचपन में वनायी थी। जर्मनी की सीमाओं पर आक्रमण करने के विचार से फ्रांस के राजा लूई चौदहवें के मन को दूर रखने के लिए उसने मिस्र पर धावा करने की एक योजना वड़े परिश्रम से तैयार की और वह फ्रांस के नरेश को दी। इस महात्मा ने वोस्सुए के साथ दीर्घ काल तक पत्र-व्यवहार किया कि ईसाई सम्प्रदाय प्रोटेस्टेंटों और रोमानिस्टों में फिर से मेल-मिलाप हो जाय और उसने **थेओडिके** तथा अन्य लेखों में इंग्लैण्ड और फ्रांस के भौतिक दर्शनों के आक्रमण के विरुद्ध अभियान आरम्भ किया तथा सत्य और धर्म की रक्षा करने का प्रबल प्रयत्न किया। इतने पर भी यह कहा जाता है कि लाइवनित्स के आविष्कारों ने वहुत कम काम किया और उनमें से अधिकांश फिर से सिद्ध करने पड़े। पर भाषा-विज्ञान के संबंध में यह नहीं कहा जा सकता। भाषाओं के अध्ययन के प्रति जो नया प्रेम लाइबनित्स ने उपजाया या जो नया जीवन इस विषय को दिया, वह फिर ठंडा नहीं हुआ। जब विद्वानों ने एक बार यह समझ लिया कि शब्द-संग्रह की भाषाविज्ञान के लिए आवश्यकता है तो मिशनरियों, घुमक्कड़ों आदि ने अपना परम कर्तव्य समझा कि नयी नयी जातियों के संपर्क में आने पर उनकी भाषा के शब्दों के कोश और व्याकरण तैयार किये जायं। हमारी सदी (उन्नीसवीं, अनु०) के आरम्भ में, इन अन्वेषणों के फलस्वरूप दो महान् ग्रंथ निकले—मेरा अभिप्राय हर्वास के **भाषाओं की सूची** और आडलुंग के विशाल ग्रंथ **मिथ्रादातेस्** से है—ये दोनों ही लाइबनित्स के साक्षात् प्रभाव के फल हैं। हर्वास ने लाइबनित्स के ग्रंथ बहुत ध्यान से पढ़े थे, यद्यपि कई बातों में उसका लाइबनित्स से मतभेद रहा तो भी वह अपने ग्रंथों में यह स्वीकार करता है कि भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन की प्रगति में लाइबनित्स का बहुत हाथ है। आडलुंग का ग्रंथ **मिथ्रादातेस्** और उस पर लाइबनित्स का जो ऋण है, वह आगे दिखाया जायगा।

हर्वास १७३५ से १८०९ तक जीवित रहा। उसका जन्म स्पेन में हुआ और वह जेसुइट पादरी था। जब वह अमेरिका में प्रचारक पादरी का काम कर रहा था, तब उसके मन में अमेरिकन इंडियनों की भाषाओं के व्यवस्थित और नियमबद्ध रूप

से ज्ञान प्राप्त करने का विचार आया और उसने इस क्षेत्र में महान् परिश्रम और लगन से काम किया। वह अमेरिका से रोम बुलाया गया और वहां बहुत से प्रचारक पादरियों के साथ रहा जो उस समय संसार के कोने कोने से वापस बुलाये गये थे। इन्होंने जिस-जिस देश में ईसाई धर्म का प्रचार किया था, वहां वहां की भाषाओं का भी ज्ञान प्राप्त कर रखा था। हर्वास को इनसे बड़ी सहायता मिली। उसने भाषाओं का अध्ययन जारी रखा। उसने अधिकांश ग्रंथ इटालियन भाषा में लिखे। बाद को इनका अनुवाद स्पेनिश भाषा में किया गया। हम उसकी साहित्यिक कृति का सिंहावलोकन नहीं करेंगे, क्योंकि उसने अनेक विषयों पर लिखा। उसने अपने समस्त ग्रंथों में एक उद्देश्य रखा था; उसने उन सब में विश्व का एक व्यवस्थित चित्र देने का यत्न किया है। उसके ग्रंथ के अनेक खंड हैं और नाम है Idea del universo (अर्थात् **विश्व का चित्र—अनु०**)। हमें इसके उस भाग से दिलचस्पी है, जिसमें विश्व के एक अंग के रूप में मानव और उसकी भाषाओं पर लिखा गया है और इस भाग में भी सबसे अधिक रस हमें उसके बृहत् प्रकरण **भाषाओं की नामावली** में आता है, जो १८०० ई० में स्पेनिश भाषा में ६ खंडों में प्रकाशित हुई थी।

यदि हम हर्वास के उक्त ग्रंथ की तुलना इसी विषय पर लिखे गये दूसरे ग्रंथ से करें, जो गत (अठारहवीं, अनु०) शताब्दी के अन्त में प्रकाशित हुआ था तथा जिसने अपने समय में समसामयिक विद्वानों का ध्यान अपनी ओर जोर से खींचा था—मेरा मतलब कूर द गबल्याँ के **मौंद प्रिमिटीफ**[1] (=आदिम जगत, अनु०) से है—तो हम तुरन्त ताड़ लेंगे कि स्पेन का जोसुइट पादरी फ्रेंच दार्शनिक से अपने विषय का बहुत ही अधिक विशेषज्ञ है। गबल्यां ने फ़ारसी, अरमीनियन, मलाया और कौप्टिक भाषाओं को इबरानी समझकर कलम चलायी थी और वह अमेरिका के रेड-इंडियनों की बोलियों में इबरानी, ग्रीक, अंगरेजी और फ्रेंच शब्द देखता है।

इसके विपरीत, हर्वास ने अपनी नामावली में गबल्याँ से पांच गुने अधिक भाषाओं के नाम दिये हैं, पर उसके सामने जो भाषाएं थीं, उनकी तुलना से जो प्रमाण मिलते थे, उनका उल्लेख करने के अतिरिक्त उसने व्यर्थ एक भी निदान न निकाला

१. *Monde primitif analyse et compara avec le monde moderne,* Paris, 1773. **आदिम संसार की अर्वाचीन संसार से तुलना और विश्लेषण, पेरिस १७७३। (अनु०)**

और ऐसा कोई सिद्धांत भी नहीं रखा। इस समय जब कि भाषा-विज्ञान विकसित हो गया है, उसके ग्रंथों में भूल-चूक या उसकी अशुद्धियां दिखलाना आसान है, परन्तु मैं देख रहा हूं कि जिन विद्वानों ने उसके विचारों में अधिक से अधिक दोष दिखाये हैं, वे वही हैं जिन्होंने उससे बहुत-कुछ सीखा है और जिन्हें उसके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करनी चाहिए थी। यह कोई मामूली बात नहीं है कि उसने तीन सौ भाषाओं के नमूने एकत्र किये और उन पर अपने विचार लिखे। हर्वास ने इससे भी महत्त्व का काम किया। उसने स्वयं चालीस से अधिक भाषाओं के व्याकरण लिखे।[1] वह पहला भाषाशास्त्री था जिसने प्रतिपादित किया कि भाषाओं की एक जातीयता[2] निश्चय करने में व्याकरण के रूपों की समानता की साक्षी प्रमाणभूत है। शब्दों की एक-रूपता कुछ सिद्ध नहीं कर सकती। उसने शब्द तथा धातु-रूपावलियों का मिलान करके यह भी सिद्ध किया कि इबरानी, खल्दी (Chaldee), सीरियन, अरबी, एथिओपिया की भाषा और अम्हारिक, एक आदि-भाषा की बोलियां हैं और एक भाषा-परिवार में शामिल हैं जिनका नाम है **सेमेटिक** भाषा-परिवार। इबरानी से मनुष्य की सब भाषाओं के निकालने के प्रयास की उसने हँसी उड़ायी।

१. काटालोगो, प्रथम खंड, पृ० ६३।

२. किसी भाषा-परिवार को जानने के लिए परिवार की भाषाओं के व्याकरण पढ़े जाने चाहिए। विशेषताओं में क्या समता और भेद है, इसका ज्ञान प्राप्त करने के लिए, उन भाषाओं के व्याकरण का ढंग प्रमाण है। काटालोगो, प्रथम खंड, पृ० ६५। १७९५ ई० में लार्ड मौन्बोडो ने इसी सिद्धांत का निम्न शब्दों में प्रतिपादन किया था। यह उनके ग्रंथ एन्शेंट मेटाफ़िज़िक्स, खंड ४, पृ० ३२६ में है—'मेरा नवीनतम निदान यह है कि चूंकि भाषा की कला में मनमानी का बहुत कम राज है और इसके ऊपर ध्वनि तथा अर्थ से भी अधिक, नियमों का आधिपत्य है, ये नियम मुख्य पदार्थ हैं जिनसे एक भाषा का अन्य भाषाओं के साथ संबंध स्थापित किया जाता है। इसलिए जब हम जानते हैं कि दो भाषाएँ व्युत्पत्ति, रचना के ढंग और रूपावलियों में मिलती हैं और इनका एक-सा व्यवहार करती हैं तो मेरे विचार से हम पक्का निदान निकाल सकते हैं कि एक भाषा या तो मूल भाषा रही होगी नहीं तो दोनों भाषाएं एक मूल भाषा की बोलियां होंगी।'

उसने फिनिश, लैपलैण्ड की और हंगेरियन भाषा में एक-जातीयता के अनेक प्रमाण पाये। इस समय इन भाषाओं को तूरानियन परिवार[1] (अब इन्हें फिनो-उग्रिश-परिवार की कहा जाता है—अनु०) की कहते हैं। हर्वास ने यह भी बताया कि बास्क (स्पेन की पुरानी एक भाषा—अनु०) भाषा, जैसा कि विद्वान् उस समय तक समझते थे, केल्टिक-परिवार में नहीं है, बल्कि वह एक स्वतंत्र भाषा है जिसके परिवार की अन्य भाषाएं नहीं मिलतीं। यह स्पेन के प्राचीनतम निवासियों द्वारा बोली जाती रही होगी, जैसा कि स्पेन के पर्वतों और नदियों के नामों से सिद्ध होता है।[2] इतना ही नहीं, भाषा-विज्ञान के इतिहास में अत्यन्त उज्ज्वल यह आविष्कार कि अफ्रीका के पूर्व में मैडागास्कर द्वीप से, २०८ अंश रेखांतर तक के विस्तार में, अमेरिका के पश्चिम, ईस्टर द्वीप तक फैली हुई भाषाओं के परिवारों का निर्णय हर्वास ने बहुत पहले कर लिया था कि ये मलाया और पोलिनेशियन[3] हैं, भले ही यह तथ्य बहुत बाद को हम्बोल्ड्त ने संसार को बताया।

१. काटालोगो, खंड दो, पृ० ४६८। खंड एक, पृ० ४९, मई २२, १६९८ ई० में भेजे गये अपने एक पत्र में विट्सन ने लाइबनित्स को लिखा है कि तातार और मंगोलिया की भाषाओं में स-जातीयता है। उसने फ्रेंच भाषा में साफ लिखा है—'मुझसे कहा गया है कि मंगोलियन और तातारी भाषा में उतना ही भेद है जितना जर्मन तथा फ्लामांद भाषाओं में और काल्मुक तथा मंगोलियन में भी इतना ही अन्तर है। कलेक्टानेआ इटिमोलोगिका, खंड दो, पृ० ३६३।

२. लाइबनित्स का भी यही मत था। देखो हर्वास, काटालोगो, खंड १, पृ०५०।

३. मलाया नाम की भाषा जो मलाका के प्रायद्वीप में बोली जाती है, आस-पास के पोलिनेशियन द्वीपों की बोलियों की जननी है जो लंबाई में दो सौ रेखांश में फैले हुए हैं और प्रशांत महासागर में हैं। काटालोगो, खंड १, पृ० ३०।

मलाका (मलाया) के प्रायद्वीप अर्थात् हिंद महासागर से लेकर प्रशांत महासागर तक के द्वीपों में जो लोग मूलतः फैले हुए हैं, वे हबशी नहीं मालूम होते, किसी दूसरी जाति के लोग हैं। इनमें से अधिकतर मलाया जाति के हैं, और आस-पास की भूमि में बहुतायत से आबाद हैं। एशिया महाद्वीप के इस प्रायद्वीप में मलाया भाषा बोली जाती है। यह भाषा मालदिव द्वीप से, जो हिंद महासागर में है, अफ्रीका महाद्वीप के तट पर बसे मैडागास्कर तक एक ओर फैली है और दूसरी तरफ सौंडा,

हर्वास को यह ज्ञान भी था कि संस्कृत और ग्रीक में व्याकरण के रूपों की समता पायी जाती है। किंतु वह व्याकरण के रूपों की यह समता और उसका महत्व भली भाँति न समझ पाया, क्योंकि उसने यूरोप में संस्कृत का पहला व्याकरण लिखने वाले कारमेलाइट प्रचारक पादरी फ्रा पाओलिनो द सान बार्तोलोमेओ से अधूरी सूचना पायी, इस कारण वह भ्रम में पड़ गया (यह व्याकरण रोम में १७९० में छपा) जिसके कारण उसे उक्त दोनों भाषाओं की तुलना करने में हिचक हो गयी। हर्वास सत्य के आविष्कार के कितने निकट पहुंच चुका था, इसका प्रमाण निम्न शब्दों की तुलना है। उसने ग्रीक शब्द **थेऔस** 'ईश्वर' की तुलना संस्कृत शब्द देव से की है, जिसका अर्थ 'ईश्वर' ही है। उसने ग्रीक क्रिया **एइमि, एइस्** और **एस्ति,** जिनका अर्थ क्रमशः 'मैं हूं', 'तू है' तथा 'वह है' है, संस्कृत के **अस्मि, असि** और **अस्ति** से की है। उसने इस तथ्य का परदा भी खोला कि ग्रीक के **औस्, ए, औन** जो पुंलिंग-स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंग-वाचक प्रत्यय हैं, वही हैं जिनका रूप संस्कृत में **अस्, आ, अम्,** मिलता है।[1] किन्तु उसका विचार था कि ग्रीक दर्शन और दैवतशास्त्र (Mythology) भारत से आये,[2] इसलिए स्वभावतः उसने कल्पना की कि ग्रीक लोगों ने कुछ शब्द भारत की भाषा से लिये होंगे और साथ ही लिंगों का भेद बतानेवाले प्रत्यय भी वहीं से आये होंगे।

इस सदी के आरंभ में जिस दूसरे ग्रंथ ने भाषाविज्ञान का प्रतिनिधित्व किया और जिस पर लाइबनित्स की प्रेरणा का और भी अधिक प्रभाव पड़ा वह आडलुंग का लिखा **मिथ्रिदातेस्** था। आडलुंग के ग्रंथ का आधार आंशिक रूप में हर्वास की कृति थी और आंशिक रूप में शब्दों के वे संग्रह थे जो लाइबनित्स की प्रेरणा से रूसी सरकार की संरक्षकता में बने थे। स्पष्ट ही है कि ये संग्रह लाइबनित्स की प्रेरणा से

मोलूका, फिलीपाइन द्वीप-पुंज, सान लाजारो के टापू से अमेरिका के करीब तक फैली हुई है। मैडागास्कर द्वीप ६० रेखांश पर है और अमेरिका के निकट के द्वीप पास्कौ और डेविस २६८ पर। यहां भी मलाया की बोलियां बोली जाती हैं। इस प्रकार, मलाया बोलियां २०८ रेखांशों की लंबाई में बोली जाती हैं। काटालोगो, खंड दो, पृ० १०।

१. काटालोगो, खंड दो, पृ० १३४।

२. काटालोगो, खंड दो, पृ० १३५।

एकत्र किये गये थे। यद्यपि पीटर महान् को तुलनामूलक भाषाशास्त्र की ओर न तो रुचि थी और न ही उसके पास इसके अध्ययन के लिए समय था, तो भी रूस की सरकार ने सदा यह बात ध्यान में रखी कि, रूसी साम्राज्य के सब भागों की बोलियों का संग्रह किया जाय। भाषाविज्ञान के भाग्य में विजय पर विजय लिखी थी। रोम में पोप अपने प्रचारक पादरियों द्वारा संसार की भाषाओं के शब्दों के संग्रह तैयार करवा रहा था। रूस की साम्राज्ञी काथेरिना महान् (१७६२-१७९६) भाषाविज्ञान की और भी महान् संरक्षक निकली; जिस समय तक वह रानी न हुई थी उस समय भी उसके मस्तिष्क में धुन समा गयी थी कि संसार की सब भाषाओं का एक कोश तैयार किया जाना चाहिए। इसकी प्रेरणा उसे लाइबनित्स से मिली थी और उसने लाइबनित्स की योजना के अनुसार ही कोश तैयार करने का विचार किया था। उसने इस काम के लिए, सेंट पीटर्सबुर्ग (वर्तमान लेनिनग्राड) की ब्रिटिश कोठी में पादरी रेवरेंड डैनिएल ड्यूमरैस्क को प्रोत्साहित किया। उसने कोश का यह काम अपने हाथ में लिया। कहा जाता है कि साम्राज्ञी की इच्छा के अनुसार, उसने **प्राच्य भाषाओं का तुलनामूलक कोश** लिखा। यदि यह ग्रंथ कभी प्रकाशित किया गया हो तो, अब इसका पता भी नहीं चलता। इसका नामी लेखक, चौरासी वर्ष की आयु में, १८०५ ई० में, लंदन में मरा। जब काथेरिना सिंहासन पर बैठी तो उसने अपना अधिक समय तुलनात्मक भाषाशास्त्र के अध्ययन में लगाया, अपनी विजय की योजनाओं को कार्यान्वित करने की उपेक्षा करके वह साल भर तक एक कोठरी में बन्द रही और वहां उसने अपना सारा समय नाना भाषाओं की तुलनामूलक नामावली लिखने में लगाया। मेरे कुछ श्रोताओं को उसका इस विषय का एक पत्र, जो उसने ९ मई १७८५ ई० को, त्सिमरमान को भेजा था, बड़े काम का और रसभरा लगेगा। पत्र यों था—"तुम्हारे पत्र ने मुझे उस एकांतवास से बाहर निकाल दिया है, जिसमें मैंने अपने को एक कमरे में बन्द कर लिया था और जिसमें हिलना तक मुझे कष्टकर मालूम पड़ा। तुम अनुमान भी नहीं लगा सकते कि कमरे में अपने को बन्द करके मैं क्या काम कर रही थी? मैं यह रहस्य तुम पर खोलूंगी, क्योंकि ऐसी बातें हर रोज नहीं हुआ करतीं। मैं रूसी भाषा के दो सौ से तीन सौ तक मूल शब्दों की सूची तैयार करने में लगी थी और मैंने उनका अनुवाद जितनी अधिक रूसी भाषाओं और असंस्कृत बोलियों में संभव था, कराया है। इस समय इन शब्दों की संख्या दो सौ से ऊपर जा चुकी है। प्रति दिन मैं एक शब्द लेती थी और उसका अनुवाद जितनी भाषाओं में संभव था, कराती थी। इस काम से मुझे ज्ञात हुआ है

कि ओस्टाकियन भाषा केल्टिक के समान है; यह भी मालूम हुआ है कि एक भाषा में जिस शब्द का अर्थ 'आकाश' है, दूसरी भाषाओं में उसका, अर्थ 'बादल', 'कुहरा' आदि होता है; ईश्वर शब्द दूसरी भाषाओं में 'भला' अर्थ भी रखता है (मिलाओ हमारा शिव—अनु०) और किसी-किसी भाषा में इसका अर्थ 'सर्वोच्च' और किसी में 'सूर्य' या 'अग्नि' हो जाता है। (यहां तक उसका पत्र फ्रेंच भाषा में लिखा गया है, इसके बाद एक पंक्ति जर्मन में है—) **एकांतवास** पर आपकी पुस्तक पढ़कर मैं इस शौक से ऊब गयी। (इसके बाद पत्र फिर फ्रेंच में लिखा गया है—) इन हस्तलिखित कागजों के ढेर को आग में फेंकने से मेरे मन को बड़ी व्यथा होती। मैंने अध्यापक पाल्लास को अपने पास बुलाया और अपने पाप को ईमानदारी से स्वीकार किया। हम दोनों ने परामर्श करके यह निश्चय किया कि शब्दों का यह संग्रह प्रकाशित किया जाय, ताकि इससे वे लोग लाभ उठायें जो दूसरों के फेंके हुए खिलौनों से अपना मन बहलाना चाहते हैं। मैं पूर्वी साइबेरिया के कुछ शब्दों की बाट जोह रही हूं। हमारा विस्तृत जगत इस ग्रंथ में, नाना प्रकार के उपयोगी विचार पायेगा या नहीं, यह तो नाना मनुष्यों की नाना प्रवृत्तियों पर निर्भर है, पर इस बात की मुझे नाम मात्र चिंता नहीं है।"

यदि एक साम्राज्ञी पर कोई शौक सवार होता है तो सभी उसकी सहायता को तैयार रहते हैं। सब रूसी राजदूतों को लिखा गया कि कोश की सामग्री संग्रह करें, इतना ही नहीं, जर्मन महापंडितों ने[1] नाना भाषाओं के व्याकरण और कोश लिखकर साम्राज्ञी को भेजे, यहां तक कि अमेरिका के राष्ट्रपति वाशिंगटन ने स्वयं, काथेरिना के चुने हुए शब्दों की सूची युक्त-राष्ट्र अमेरिका के गवर्नरों और जनरलों के पास भेजी कि वे मूल अमेरिकनों की भाषाओं में उनके प्रतिशब्द भेजें। इस शाहन्शाही कोश (Imperial Dictionary) का पहला खंड १७८५ ई० में प्रकाशित किया गया।[2] इसमें शब्द-संख्या २८५ थी तथा इसका अनुवाद यूरोप की एकावन और

१. साम्राज्ञी ने बर्लिन में निकोलाइ के पास पत्र भेजा कि वह नाना भाषाओं के व्याकरणों और कोशों का सूचीपत्र तैयार करे। उसने १७८५ ई० में यह सूचीपत्र भेजा था।

२. Glossarium comparativum Linguarum totius Orbis **(समग्र विश्व की भाषाओं की तुलनात्मक शब्द-सूची) पोटर्सबुर्ग १७८७।**

एशिया की एक सौ उनचास भाषाओं में किया गया। इसमें संदेह नहीं कि इस साम्राज्ञी की इस महान् कार्य के लिए जितनी प्रशंसा की जाय, वह थोड़ी है; किन्तु यहां यह भी याद रखना होगा कि इस वैज्ञानिक कार्य का बीज, सौ बरस पहले लाइब्नित्स ने बोया था और वह बीज उर्वरा भूमि में पड़ा।

हर्वास के ग्रंथ, साम्राज्ञी काथेरिना का महान् कोश और आडलुंग का विशालकाय संग्रह **मिथ्रिदातेस्** संसार की भाषाओं के शब्द-संग्रह के रूप में बहुत महत्त्व के हैं; यद्यपि इधर पचास वर्षों में (१८१०-१८६०) भाषाओं के वर्गीकरण के क्षेत्र में दिन दूनी और रात चौगुनी ऐसी प्रगति हुई है कि बहुत कम भाषाशास्त्री इन पुराने संग्रहों को पढ़ते हैं। इसके अतिरिक्त, इन ग्रंथों में वर्गीकरण के जिस सिद्धांत पर काम किया गया है, वह वैज्ञानिक नहीं कहा जा सकता। इनमें संसार खंडों के अनुसार बाँटा गया है। यूरोप, एशिया, अफ्रीका, अमेरिका और पोलिनेशिया के नाम पर भाषाओं का विभाग किया गया है। अवश्य ही इन पुस्तकों में सजातीय भाषाओं की समानता २०८ रेखांश की दूरी तक की दिखायी गयी है। इन विद्वानों का विचार था कि जैसे किसी महासागर में द्वीप बहते हों वैसे ही मनुष्य की वाणी के महासागर में भाषाएं भी मानो, इधर-उधर भटकती हैं तथा इनके बड़े-बड़े महाद्वीप मानो नहीं बन सकते हैं। ऐसा समय किसी विज्ञान के इतिहास में संकट-काल कहा जाता है। अचानक एक ऐसी शुभ घटना हुई जिसने बिजली की चिनगा ी की भाँति भाषाविज्ञान के इन इधर-उधर बहते और भटकते विचारों को निश्चित रूप दे दिया। यदि ऐसा न होता तो यह बहुत पक्का मालूम पड़ता है कि हर्वास और आडलुंग के ग्रंथों में भाषाओं

इसके दूसरे संस्करण में शब्द वर्णक्रम के अनुसार सजाये गये थे। इसके संपादक थे यांकिएविव्च द मिरिएवो और यह चार खंडों में १७९०-९१ ई० में प्रकाशित किया गया। इसमें २७९ (२७२) भाषाओं के शब्द एकत्रित किये गये हैं, जिनमें १७१ एशिया की, ५५ यूरोप की, ३० अफ्रीका की और २३ अमेरिका की भाषाओं के हैं। विद्वान् पौट के ऊनग्लाइशहाइट (अ-समानता) ग्रंथ के पृष्ठ २३० के अनुसार इस कोश में २७७ भाषाओं के शब्द हैं, जिनमें एशिया की भाषाओं के १८५, यूरोप की २२, अफ्रीका की २८ और अमेरिका की १५ भाषाओं के शब्द दिये गये हैं। मगर इस हिसाब से सब भाषाओं की कुल संख्या २८० हो जाती है। जो हो, यह ग्रंथ अपने ढंग का अनूठा है।

और बोलियों की जो बहुत लम्बी सूची दी गयी है तथा उन पर जो टीका-टिप्पणी की गयी है, वह भाषा-शास्त्रियों को दीर्घकाल तक सरस न लगती। यह बिजली की चिनगारी संस्कृत भाषा का आविष्कार था। संस्कृत हिंदुओं की प्राचीन भाषा है। प्रायः तीन सौ वर्ष ईसा-पूर्व से संस्कृत भारत की बोलचाल की भाषा नहीं रही।

उक्त समय से भारत के आर्य लोग कई बोलियां बोलने लगे थे जिनका वैदिक-संस्कृत से वही संबंध था जो लैटिन से इटालियन भाषा का है। भारत के नाना प्रदेशों में भिन्न-भिन्न बोलियां बोली जाती थीं और हम इनमें से कुछ भाषाओं को जानते हैं, क्योंकि राजा अशोक ने कुछ शिलालेख कई प्रदेशों में खुदवाये। ये धौली, गिरनार, कपूर दी गिरि आदि स्थानों में पाये जाते हैं। प्रिंसेप, नौरिस, विल्सन और बुर्नूफ ने इनको पढ़कर इनका भेद खोला। हम इन स्थानीय बोलियों का विकास उस पाली में पाते हैं जो सिंहल द्वीप के बौद्ध धर्म की भाषा है और जो कभी बौद्ध धर्म की जन्मभूमि वर्तमान बिहार या प्राचीन मगध प्रान्त की बोली थी।[1] ये स्थानीय बोलियां प्राकृत के रूप में हमें फिर संस्कृत नाटकों और जैनों की धर्म-पुस्तकों में मिलती हैं। इन बोलियों में कुछ काव्य भी रचे गये हैं। हम अब यह भी देख रहे हैं कि भारत के नाना विजेताओं की भाषाओं के शब्द इनमें घुल-मिल जाने के कारण इनमें अरबी, फारसी, मंगोलियन, तुर्की आदि के शब्द और मुहावरे घुस गये हैं और साथ-साथ इनका व्याकरण बिगड़ने से हिन्दी, हिन्दुस्तानी, मराठी, बंगाली आदि भाषाएं उत्पन्न हो गयी हैं। इस सारी अवधि में ब्राह्मणों की साहित्यिक भाषा संस्कृत ही रही। अपनी बहु-संख्यक संतानों को जन्म देने पर भी, लैटिन की भाँति यह मरी नहीं; और आज भी शिक्षित ब्राह्मण हिंदी, बंगला आदि से संस्कृत में अधिक धड़ाके के साथ लिखता है। संस्कृत का आज भी वही मान है जो एलेक्जेण्ड्रिया में ग्रीक का रहा और जो प्रतिष्ठा लैटिन की मध्ययुग में रही। यह ब्राह्मणों की साहित्यिक और धार्मिक पवित्र भाषा थी और है। स्वयं वेद की पवित्र ऋचाएं इसी भाषा में रची गयीं, बाद के धार्मिक ग्रंथ मनुस्मृति, पुराण आदि भी इसी भाषा में लिखे गये हैं।

१. सिंहली लोग पाली को मुंगल कहते हैं तथा बर्मावाले इसे मगदबासा नाम देते हैं।

यूरोपियनों को बहुत पुराने समय से यह बात मालूम थी कि इस प्रकार की एक भाषा जो प्राचीन समय में बोली भी जाती थी तथा जिसमें बहुत-सा साहित्य भी लिखा गया था, भारत में थी, और यदि इसके विषय में आज भी **'संस्कृत भाषा की मौलिकता के विषय में कुछ विचार'** नामक अपनी पुस्तक में जैसे डुगाल्ड स्टेवर्ट ने इस भाषा के समय और उसकी प्रामाणिकता के बारे में संदेह प्रकट किये हैं, किन्हीं औरों को भी कुछ संशय हो तो, उसका निवारण भारत का इतिहास पढ़कर कर लें और साथ ही वे वह भी पढ़ लें जो नाना देशों के यात्रियों ने भारत जाकर इस भाषा और साहित्य का सुन्दर आंखों देखा वर्णन अपने यात्रा-ग्रन्थों में किया है।

यह विषय कि ग्रीक तथा रोमन लेखकों ने भारत के जिन स्थानों और व्यक्तियों के नाम दिये हैं वे विशुद्ध संस्कृत रूपों के ग्रीक और रोमन उच्चारण के अनुसार हैं, बड़े-बड़े विद्वानों द्वारा सिद्ध किया जा चुका है। इस विषय पर ये विद्वान् कलम तोड़ चुके हैं। इस कारण अधिक कुछ कहना पुनरुक्ति ही होगी।

इसके बाद दूसरी जाति जिसने भारत की इस भाषा और उसके साहित्य से परिचय प्राप्त किया, वह चीनी थी, यद्यपि **मिंग-ति**[1] राजा के समय ६५ ई० से पहले बौद्ध धर्म तीसरे धर्म के रूप में चीन में राज-मान्य नहीं हुआ था, किन्तु बौद्ध धर्म के प्रचारक ईसा-पूर्व तीसरी सदी से अपने धर्म के प्रचार के लिए चीन पहुँचने लगे थे। चीन के इतिहास में ई० पू० २१७ में एक बौद्ध प्रचारक का उल्लेख मिलता है। ई० पू० १२० में एक जनरल ने गोबी की मरु-भूमि के उत्तर में कुछ बर्बर जातियों को लड़ाई में हराकर, विजय के स्मारक के रूप में सोने की एक प्रतिमा प्राप्त की थी, यह मूर्ति बुद्ध की थी। स्वयं बुद्ध के नाम चीनी में **फो-त् ओ** (Fo-to) और **फो,** विशुद्ध संस्कृत शब्द के चीनी उच्चारण के अनुसार रूपांतर हैं। यही दशा बौद्ध धर्म के प्रत्येक शब्द और हर-एक विचार की है। बौद्ध धर्म के पवित्र साहित्य को भली भाँति समझने के लिए जिस भाषा के शिक्षणार्थ, चीनी यात्रियों ने भारत का लंबा और कठिन सफर किया, वह संस्कृत थी। संस्कृत का नाम उन्होंने **फान** रखा और जैसा कि मो० स्टानिसलास जुलिआँ ने सिद्ध किया है, यह **फान-लान-मो** का संक्षिप्त रूप है और उक्त शब्द ही चीनी उच्चारण पद्धति के अनुसार ब्राह्मण के स्थान पर

१. **मैक्समूलर कृत** *Buddhism and Buddhist Pilgrims*, पृ० २३।

बोला जा सकता है।[1] प्राचीन चीनी इतिहास में यह भी पाया जाता है कि हान वंश के सम्राट् **मिंग-ति** ने बौद्ध धर्म का अध्ययन करने के लिए **त्साइ-इन** तथा और कई पदाधिकारियों को आज्ञा दी। उन्होंने **मतांग** और **त्च-फा-लान** नामक दो परम पंडितों को बौद्ध धर्म के सिद्धांतों का अध्ययन करने के लिए भारत भेजा—और इन लोगों ने बौद्ध धर्म के कई महत्वपूर्ण ग्रन्थों का चीनी भाषा में अनुवाद किया। भारत प्रायद्वीप और भारत के उत्तर के महाद्वीप चीन के बीच यह बौद्धिक आदान-प्रदान कई सदियों तक निरंतर चला। भारत की धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक और भौगोलिक दशा का विवरण, चीन के सम्राट्, और मठों को देने के लिए चीन से बार बार दूतों के दल भेजे गये। जिस बात से चीन वालों को सबसे अधिक प्रेम था, और जिस उद्देश्य से राजदूत एवं राजा द्वारा भेजे हुए दल भारत आये और उन्होंने हिमालय का दुर्गम पथ पार किया, वह था बुद्ध का धर्म। सम्राट् **मिंग-ति** के समय में बौद्ध धर्म के राजमान्य होने के तीन सौ वर्ष बाद से चीनी यात्रियों के दलों का तांता बंध गया। इन यात्रियों का पहला वर्णन जो प्राप्त होता है, वह है **फा-हियान** की भारत-यात्रा। उसने चौथी सदी के अन्त में भारत-यात्रा की। इसका अनुवाद पहले-पहल रेमूजा ने फ्रेंच भाषा में किया। फा-हियान के बाद होइ-सेंग और सौंग-युन ने भारत की यात्राएँ कीं। ये, बौद्ध धर्म की पुस्तकें और बुद्ध के अवशेष संग्रह करने के लिए चीन की सम्राज्ञी द्वारा ५१८ ई० में भारत भेजे गये। इसके बाद हुएन-त्सांग ने ६२९-६४५ ई० तक भारत की यात्रा की। इस यात्रा का वृत्तांत, **हुएन्-त्सांग की जीवनी** के साथ मो० स्टानिसलास जुलिआँ ने अति उत्तम और मनोहर अनुवाद द्वारा बहुत ही लोकप्रिय रूप में प्रस्तुत कर दिया है। फिर ७३० ई० में छप्पन चीनी बौद्ध भिक्षुओं की यात्राएं आयोजित की गयीं। तीन सौ यात्रियों के पथ-प्रदर्शक बनकर खि-निए ने ९६४ ई० में अपनी यात्रा की।

इन चीनी यात्रियों ने देखा कि उनके समय में भारत की साहित्यिक भाषा संस्कृत थी, इन चीनी यात्रियों के ग्रंथों में बहुत-से नाम और धार्मिक तथा दार्शनिक

१. *Methode pour dechiffrer et transerire les noms sanscrits qui se rencontrent dans les livres chinois, inventee et demontree* par M. Staiuslas Julien, Paris 1861, p. 103.

पारिभाषिक[1] शब्द ही नहीं पाये जाते बल्कि **हुएन-त्सांग के यात्रा-वृत्तांत** के भीतर संस्कृत शब्दों और धातुओं की संक्षिप्त रूपावली भी पायी जाती है।

जैसे ही मुसलमान भारत पहुँचे तो फारसी और अरबी में धड़ाधड़ संस्कृत ग्रंथोंके अनुवाद किये जाने लगे।[2] अब्बासी खलीफ़ा अलमन्सूर के राज्य-काल में, ७७३ई० में अपने शास्त्र का महाज्ञानी एक भारतीय गणित-ज्योतिषी खलीफा के दरबार में पहुँचा और अपने साथ ग्रहों के समीकरण का चित्र-फलक भी लें गया जो औसत गति के हिसाब से बनाया गया था। इसमें सूर्य और चन्द्र-ग्रहणों के संबंध में कुछ सिद्धांत भी दिये गये थे। उक्त ज्योतिषी के अनुसार ये चित्र-फलक एक भारतीय राजा ने तैयार किये थे, जिसका नाम अरबी में **फिगार** लिखा गया है। खलीफ़ा ने इस शुभ अवसर से लाभ उठाया और अपने दरबार के एक विद्वान् द्वारा ज्योतिषी के इस संस्कृत ग्रंथ का अरबी में उल्था कराया। उसने बताया कि उसका उद्देश्य इस ग्रंथ को अरबी में अनुवाद कराने का यह था कि अरबों को सितारों की गति के पथ-प्रदर्शन के लिए यह किताब समय-समय पर काम दे। ग्रंथ को अरबी में तरजुमा करने का भार **मुहम्मद बिन इब्राहीम अलफजारी** पर पड़ा। इस अनुवाद का नाम **हिंद-सिंद** या **सिंद-हिंद** है, क्योंकि यह नाम दोनों रूपों में पाया जाता है[3] (ऐसा मालूम पड़ता

१. 'Fan-chou (Brahmākshara) les caracteres de l' ecriture indienne inventee par Fan, c'est-a-dire Fan-lan-mo (Brahma).' Stanislas Juliensl, Voyages des Pelerins. Buddhistes, Vol, ii. p. 505.

२. Historians of India by Sir Henry Elliot. p. 259.

३. बेन-अल्-अदमी के अनुसार सिंदहिंद का अर्थ संक्रांति काल है। कोलब्रुक का अनुमान है कि यह संस्कृत शब्द सिद्धांत है और उसके कथनानुसार इसका संस्कृत मूल ब्रह्मगुप्त, का ब्रह्मसिद्धांत रहा होगा। मो० रेनो अपने ग्रंथ *Memoire sur L. inde* के पृष्ठ ३१२ में तारीख-अल-हुकमा से निम्न उद्धरण देता है—'भारत से १५६ हिजरी (७७३ ई०) में एक परम पंडित बगदाद पहुंचा। वह अपने देश के ज्योतिष का सिद्धांत पूरा पूरा जानता था। उसे तारों की गति का पूरा परिचय था, उसने रेखांशों की चौथाई के हिसाब से समीकरण कर रखा था। ग्रहण बताने का उसे नाना प्रकार का ज्ञान था। उसे राशिचक्र बनाने की भी जानकारी थी। उसने एक ज्योतिष ग्रन्थ का संक्षिप्त रूप तैयार कर रखा था। मूल-ग्रन्थ राजा

है कि उक्त ज्योतिषी, **सिद्धांत** नाम का कोई ग्रंथ अपने साथ ले गया होगा। ज्योतिष के ऐसे ग्रंथ बहुधा सिद्धांत कहलाते हैं। इसका अरबी में **सिंद-हिंद** हो गया होगा—अनु०)। इस सिंद-हिंद के आधार पर थारिक (Tharic) के पुत्र याकूब ने, प्रायः उसी समय, गणित ज्योतिष पर एक ग्रंथ लिखा। हारून-अल्-रशीद (७८६-८०९) के दरबार में **मंक** और **सलेह** नाम के दो वैद्य रहते थे। **मंक** ने सुश्रुत का आयुर्वेदिक ग्रंथ पहलवी में अनूदित किया और उसने एक पुस्तक गारुड-विद्या (जहर के उपचार) पर भी लिखी। कहा जाता है कि यह शास्त्र चाणक्य का बनाया हुआ था। इसका **मंक** ने संस्कृत से पहलवी में अनुवाद किया। अल्-मामून के खिलाफत-काल में बीज-गणित पर एक विख्यात पुस्तक, मुहम्मद बिन मूसा ने संस्कृत से अरबी में अनूदित की (यह ग्रंथ मूल अरबी में नोटों के साथ, एफ-रोजन ने संपादित किया है)।[१]

प्रायः १००० ई० में **अबुराहान-अल-बिरूनी ने** (जन्म ९७०, मृत्यु १०३८ ई०) भारत में अपने जीवन के चालीस साल बिताये और उसने ज्ञान से भरे अपने श्रेष्ठ ग्रंथ **तारीखुल्-हिंद** की रचना की। ख्वारज़्म के सुलतान ने **अल्-बिरूनी** को अपने राजदूत के साथ गजनी के महमूद के दरबार में भेजा और उसे एक पदाधि-

फिगार का लिखा था। इसमें मिनटों के हिसाब से 'क्रमज्या' का अनुमान लगाया गया था। खलीफ़ा ने आज्ञा दी कि इस ग्रंथ का अनुवाद अरबी में किया जाय; क्योंकि इससे अरब के मुसलमान सितारों के विषय में ज्ञान प्राप्त करें। अनुवाद करने का काम इब्राहीम-अल्-फजारी के पुत्र मुहम्मद को सौंपा गया। यह पहला मुसलमान था, जिसने गणित ज्योतिष के प्रगाढ़ अध्ययन में अपना सारा जीवन लगा दिया। कुछ समय बाद इस पुस्तक का नाम बदलकर बृहत् सिंदहिंद (बृहत् सिद्धान्त—अनु०) रखा गया। अल्-बिरूनी के अनुसार यह अनुवाद ७७१ ई० में हुआ।

१. Colebrooke, Miscellaneous Essays, ii. p. 504 **में बेन-अल्-अदमी के 'ज्योतिष की कुछ सरणियां' ग्रंथ की भूमिका से कुछ उद्धरण दिये गये हैं, यह ग्रंथ ९२० ई० में अदमी के साहित्यिक वारिस अल् कासिम ने प्रकाशित किया। संस्कृत अंकों के विषय में एशियाटिक रिसर्चेज, खंड १२ पृ० १८४ और कोलब्रुक का ऐलजेब्रा देखिए।**

कारी नियुक्त कर साथ ही इसे लाहौर के मसूद के पास भी भेजा। महाविद्वान् आविचिन्ना को भी निमंत्रण दिया गया कि इस यात्रा में सम्मिलित हो, किन्तु उसने निमंत्रण अस्वीकार कर दिया था। अल्-बिरूनी ने अवश्य ही संस्कृत का पूरा ज्ञान प्राप्त कर लिया होगा, क्योंकि उसने सांख्य पर संस्कृत के एक ग्रंथ का और योगशास्त्र पर एक संस्कृत पुस्तक का अरबी में अनुवाद ही नहीं किया, बल्कि स्वयं अरबी से दो ग्रंथों का संस्कृत में भी उल्था किया।[1]

अबू सालह् ने प्रायः ११५० ई० में राजाओं की शिक्षा पर एक संस्कृत ग्रंथ का अरबी में अनुवाद किया था, यह सुना जाता है।[2]

दो सौ बरस बाद, फीरोज शाह ने नगरकोट जीतने पर, दर्शन के कई संस्कृत ग्रंथों का अनुवाद मौलाना **इज्जु-दीन** खलीदखानी से करवाया, ऐसा बताया जाता है। **शालोत्तर** की लिखी पशु-चिकित्सा पर एक पुस्तक सन् १३८१ ई० में संस्कृत से अनूदित हुई।[3] इसकी एक प्रति लखनऊ के शाही कुतुबखाने में सुरक्षित की गयी थी।

१. इलियट रचित हिस्टोरियेन्स आफ इंडिया, पृ० ८६। अल्-विरूनी हरिवंश से परिचित था और उसने "पंच सिद्धांतों" की तिथियों का निर्णय किया। अल्-विरूनी के कार्य के महत्त्व के ऊपर फ्रेंच विद्वान् मो० रेनो ने अपने ग्रंथ Memoire sur l, Inde (भारत के विषय में स्मृति-पत्र) में बहुत प्रकाश डाला है।

२. फ़ारसी ग्रन्थ मुजमालु-त्-तवारीख में अबू-सालेह् बेन शिब बेन जावा की पुस्तक से कई परिच्छेदों के फ़ारसी अनुवाद के उद्धरण दिये गये हैं। अबू सालेह् ने सौ वर्ष पहले एक संस्कृत पुस्तक "राजाओं को उपदेश" या "राजनीति" का अनुवाद अरबी में किया था और स्वयं उसका संक्षिप्त रूप भी तैयार किया था। इसका फ़ारसी अनुवादक ११५० ई० के लगभग जीवित था। विशेष विवरण के लिए इलियट का ऊपर उद्धृत ग्रंथ देखें।

३. इस विषय के ग्रन्थ का, सालोतर नाम का कोई लेखक ज्ञात नहीं है। राजा राधाकांत के शब्दकल्पद्रुम में सालोतरीय नाम मिलता है जो संभवतः शालातुरीय के स्थान पर आया है, किन्तु शालातुरीय पाणिनि का एक नाम है और सुश्रुत के गुरु दिवोदास का भी वह नाम बताया जाता है। प्रोफेसर वेबर ने अपने Catalogue of Sanskrit Manuscripts, पृ० २९८ में बताया है कि यह सालोतर शालिहोत्र

फिर दो सौ बरस के बाद अकबर बादशाह (१५५६-१६०५ ई०) गद्दी पर बैठा। उसका पालन-पोषण मुसलमान धर्म में हुआ, किन्तु उसने हज़रत मुहम्मद के धर्म को अंधविश्वास-सा समझा और वह सच्चे धर्म की खोज में लगा।[1] उसने ब्राह्मणों और अग्निपूजक पारसियों को अपने दरबार में आने का निमंत्रण दिया और उन्हें आदेश दिया कि उसकी उपस्थिति में ये दोनों मतावलम्बी अपने-अपने मत पर शास्त्रार्थ करें तथा साथ ही मुसलमान मौलानाओं से भी मज़हब पर बहस-मुबाहसा करें। जब उसने सुना कि गोआ में जेसुइट पादरी ईसाई मत का प्रचार करने यूरोप से आये हैं तो अकबर ने उनको भी अपनी राजधानी दिल्ली आने का न्योता भेजा। बरसों तक लोग समझते रहे कि वह गुप्त रूप से ईसाई धर्म में दीक्षित हो गया है। वास्तव में वह बुद्धिवादी और एक ईश्वर का माननेवाला था। उसने कभी उस बात पर विश्वास नहीं किया जो उसकी समझ में न आती थी। उसने जिस धर्म की स्थापना

होगा। इसका नाम पंचतंत्र में आया है और उसमें यह भी कहा गया है कि यह पशु-चिकित्सा का एक नामी वैद्य था। इस पशु-चिकित्सक का उल्लेख गर्ग ने अपने ग्रंथ अश्वायुर्वेद में कर रखा है। औफरेष्ट ने एक पुस्तकालय में शालिहोत्र की लिखी वैद्यक की एक पुस्तक का पता लगाया है। शालिनाथ की रची हुई एक आयुर्वेद की पुस्तक का नाम फोर्ट विलियम कालेज की संस्कृत हस्तलिखित पुस्तकों की सूची के पृष्ठ २४ में पाया जाता है। पशु-चिकित्सा पर चाणक्य द्वारा रचित एक ग्रंथ का उल्लेख हाजी खलीफा ने पृष्ठ ५९ में किया है। अरबी ग्रंथों की एक सूची (फ़िह्‌रिस्त) में जो ९८७ ई० में तैयार की गयी थी, एक अरबी अनुवाद का नाम दर्ज है जो चरक-संहिता के फ़ारसी अनुवाद का अरबी तरजुमा था। इसका जिक्र अल्-बिरूनी ने भी किया है और बताया है कि यह बर्मिकिडीज के लिए किया गया था। जिन विद्वानों द्वारा इस ग्रंथ में भरा ज्ञान परंपरा-गत रूप में प्रस्तुत हुआ था, उनके नाम अल्-बिरूनी ने इस प्रकार गिनाये हैं—ब्रह्मन्, प्रजापति, अश्विनौ, इंद्र, अत्रि ऋषि के पुत्र और अग्निवेश। इस विषय पर विल्सन द्वारा संपादित अष्टांगहृदय की भूमिका का पृष्ठ २९८ देखिए।

१. वैन्स कैनैडी का निबंध "अकबर द्वारा स्थापित धर्म के विषय की विज्ञप्ति" देखिए, जो बम्बई की लिटररी सोसायटी की वृत्तान्त-पत्रिका (Transctions), खंड दो, पृष्ठ २४२-२७० तक में १८२० ई० में छपा है।

की वह तथाकथित इलाही सम्प्रदाय, विशुद्ध एकेश्वरवाद था; उसमें एक विशुद्ध ईश्वर के अति उच्च प्रतीक के रूप में सूर्य की पूजा[1] भी की जाती थी। यद्यपि अकबर को पढ़ना-लिखना कुछ नहीं आता था और उसके लिए काला अक्षर भैंस बराबर[2] था, तो भी उसका दरबार नाना विद्याओं के विशेषज्ञों से खचाखच भरा रहता था। जिन विषयों में उसे दिलचस्पी थी उन पर लिखी किसी पुस्तक का नाम सुनते ही, भले ही वह किसी भाषा में हो, वह उसे मंगाता था और उसका अनुवाद फारसी में कराता था। उसकी आज्ञा से ईसाई धर्म की पुस्तक 'नया सुसमाचार' का फ़ारसी अनुवाद किया गया। इसी प्रकार महाभारत, रामायण और अमरकोश[3] का अनुवाद भी फ़ारसी में किया गया। संस्कृत साहित्य के अन्य उत्तम ग्रंथों का भी फ़ारसी में तरजुमा किया गया।[4] अकबर यद्यपि सभी जातियों के धर्मग्रंथों को महा-मूल्यवान् समझता था, किन्तु उसे ब्राह्मणों से वेदों का अनुवाद करवाने में सफलता नहीं मिल सकी। फिर भी उसने

१. इलियट, हिस्टोरियन्स आफ़ इंडिया, पृष्ठ २४९।

२. म्युलबौअर कृत गेशिष्टे डेर कार्योलिशन् मिस्सि ओनन् ओस्टइंडियन्स, पृ० १३४।

३. इलियट, हिस्टोरियन्स आफ इंडिया, पृ० २४८।

४. " " " " २५९, २६०। बदायूं के शाह, मुल्ला अ-ब्दु-ल्-कादिर मलूक ने तारीखे-बदायूनी या मुंतख़ाबु-त्-तवारीख नामक ग्रन्थ १५५५ ई० में समाप्त किया। यह ग्रन्थ गजनवी के समय से अकबर के राज के चालीसवें साल तक का भारत का इतिहास है। लेखक अन्धविश्वासी कट्टर मुसलमान था और यद्यपि अकबर ने उस पर बड़े-बड़े अहसान कर रखे थे तो भी उसने अकबर की बहुत ही कटु आलोचना की है। अकबर ने उसे अरबी और संस्कृत ग्रंथों के फ़ारसी अनुवाद करवाने के काम पर नियुक्त किया था। उसने वाल्मीकि-रामायण का फ़ारसी में अनुवाद किया। महाभारत के अठारह पर्वों में से उसने आदि के दो पर्वों का उल्था भी फ़ारसी में किया और कश्मीर के एक इतिहास का संक्षिप्त रूप भी तैयार किया। यह अनुवाद-कार्य फैजी के तत्वावधान में करवाया गया, जो मंत्री अबुल फजल का भाई था। हर्वास ग्रंथावली, खंड दो पृष्ठ १३६ में लिखा हुआ है—'अकबर का मंत्री अबुल फजल अमरसिंह (कोश) तथा महाभारत का बड़ा मान करता था, इनका उसने फ़ारसी में अनुवाद कराया।'

हाजी इब्राहीम सरहिंदी से अथर्ववेद[1] का फ़ारसी अनुवाद करवाया, लेकिन इस वेद का कभी वह आदर नहीं हुआ जो अन्य तीन वेदों का, जो त्रयी कहे जाते हैं। यह भी संदेह की बात है कि अथर्ववेद का महत्त्व उपनिषदों से अधिक है या नहीं? अवश्य कुछ उपनिषदों का भी उसने अपने लाभ के लिए फ़ारसी भाषा में अनुवाद करवाया होगा। अकबर के समय की एक कथा है जो साफ ही कल्पित-सी मालूम देती है, पर इससे एक सत्य का पता चलता है कि मुगल बादशाहों के शासनकाल में भी ब्राह्मणों ने संस्कृत भाषा की किस प्रकार रक्षा की।

'(कहा जाता है कि) अकबर के कड़े आदेशों और मुंह-मांगा पुरस्कार देने के अनेक वचनों ने भी ब्राह्मणों को अपने धर्म के गुप्त मूलतत्त्वों को प्रकाश में लाने के भुलावों या प्रलोभनों में फँसने न दिया। इसलिए उसने चालाकी से काम लेना चाहा। उसने एक कपटपूर्ण उपाय से काम लिया। उसने फैज़ी नामक एक लड़के को ब्राह्मण का पुत्र बताकर, एक अनाथ के रूप में हिंदुओं द्वारा ही ब्राह्मणों को सौंपा कि वे इसे पालें-पोसें और हिन्दू शास्त्रों में पारंगत बनायें। अपनी **चटशाला** में प्रारंभिक संस्कृत का ज्ञान प्राप्त करके वह और ऊंची शिक्षा प्राप्त करने, संस्कृत ज्ञान के केन्द्र काशी भेजा गया। वहां वह एक विद्वान् ब्राह्मण के घर में रहा। वहां उक्त विद्वान् ब्राह्मण ने उसे अपने सगे पुत्र की भाँति परम पंडित बना दिया। जब फैज़ी ने दस बरस बनारस में रहकर संस्कृत का पूरा ज्ञान प्राप्त कर लिया तो अकबर ने उसे वापस बुलाना चाहा; किन्तु फैज़ी अपने गुरु की सुन्दरी कन्या के प्रेम की डोरी में बँध चुका था। वृद्ध ब्राह्मण यह ताड़ गया था और उसने भी इस परस्पर के प्रेम-भाव को देख कुछ बुरा न माना और डोरी ढीली कर दी। वह फैज़ी की विद्या-बुद्धि देख बहुत प्रसन्न था। उसने सहर्ष अपनी प्यारी बेटी का विवाह फैज़ी से कर दिया। अपने गुरु से इतना महान् छल का व्यवहार करने से फैज़ी महान् मानसिक संकट में पड़ गया। उसने अपने गुरु को अपनी घोर कृतघ्नता बतला दी और अपने कुकृत्य के लिए अति दीनता से क्षमा-याचना की तथा गुरु के पैरों में पड़ गया। गुरु अवाक् रह गया, एक शब्द न बोला। उसने अपनी कमर से तलवार ली और फैज़ी पर चलाने ही को था कि फैज़ी ने उसका हाथ थाम लिया। वह फिर गिड़गिड़ाता रहा और अपनी कृतघ्नता क्षमा कराने के लिए कोई भी दंड भुगतने को तैयार हो

१. देखिए मैक्समुलर का—History of Sanskrit Lsterature, पृ० ३२७।

गया। तब उसके ब्राह्मण गुरु ने रोते हुए उससे वचन लिया कि तुम एक प्रतिज्ञा करो कि वेदों का अनुवाद न करोगे और किसी हिंदू धर्मशास्त्र का भी उल्था न करोगे तथा ब्राह्मणों का गायत्री मंत्र भी किसी को न बताओगे। फैज़ी सहमत हो गया और उसने वचन दिया कि हिंदू धर्म की आज्ञाओं के विरुद्ध वह एक भी काम न करेगा। इसका पता नहीं चलता कि फैज़ी ने कहां तक अपना वचन निबाहा? पर हिंदुओं के पवित्र धर्मग्रंथों का अनुवाद मुगल काल में कभी नहीं हुआ।"[१]

पाठक देखेंगे कि, हमने सिकंदर के समय से अकबर बादशाह के राज्य-काल तक भारतीय साहित्यिक भाषा के रूप में संस्कृत के अस्तित्व के चिह्नों का मार्गानुसरण किया है। सौ वर्ष बीतने पर, फिर शाहजहां के अभागे बेटे दारा शिकोह ने संस्कृत में अति आनंद प्राप्त किया और धार्मिक विचारों में भी वह अपने दादा की भाँति मगन रहा। उसने स्वयं संस्कृत का अध्ययन किया और वेदों के साथ संबन्धित उपनिषदों का फ़ारसी में अनुवाद किया। यह घटना १६५७ ई० की है, इसके एक साल बाद ही वह अपने धर्मान्ध छोटे भाई औरंगज़ेब द्वारा मार डाला गया। इस शाहजादे के ग्रंथों का अनुवाद १७९५ ई० में फ्रेंच विद्याप्रेमी आँकेतेई दुपरों ने फ्रेंच में किया। १७९५ में फ्रेंच प्रजातंत्र का संवत् चल चुका था। यह फ्रेंच प्रजातंत्र का चौथा वर्ष था। बहुत समय तक हिंदुओं की धर्मपुस्तकों का दूसरा कोई अनुवाद किसी यूरोपियन भाषा में नहीं हुआ था, इस कारण यूरोप के विद्वान् इसे ही पढ़कर हिंदू शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त करते थे।

इस समय हम जिस काल की चर्चा कर रहे हैं अर्थात् औरंगज़ेब के जीवन-काल की, जो फ्रांस के राजा लूई चौदहवें का समसामयिक था, उस वक्त यद्यपि यूरोप में संस्कृत के अस्तित्व का विशेष ज्ञान नहीं था, किंतु भारत-प्रवासी यूरोपियन और खास कर प्रचारक पादरी इस भाषा और इसके साहित्य से भली भाँति परिचित हो गये थे। यह बताना बहुत कठिन है कि पहला यूरोपियन जो संस्कृत के विषय में जानता था या जिसने संस्कृत भाषा का ज्ञान प्राप्त किया था, वह कौन

१. अबे बार्नाल की पुस्तक का जे० जुस्टामों द्वारा किया हुआ अनुवाद—"पूर्वी भारत और वेस्ट इंडीज में यूरोपियनों की बस्तियों का इतिहास"—यह ग्रंथ डबलिन में १७७६ में छपा था, देखो खंड १, पृष्ठ ३४।

था। (यह विद्वान् एक इटालियन व्यापारी था—अनु०।) जब वास्को डी गामा १४९४ की नवीं मई को कालीकट पहुँचा तो पादरी पेद्रो वहां के निवासियों को देशी भाषा में धर्मोपदेश करने लगा, यह पादरी उसी वर्ष, भारत के आविष्कारक के लिसबन पहुँचने से पहले, शहीद हो गया। इसके बाद जो जहाज भारत आया, उसमें प्रचारक पादरी भी आये, पर किसी ने कभी अपने पत्रों में संस्कृत या संस्कृत साहित्य का उल्लेख न किया। पादरी फ्रैंसिस जो अब सेंट ज़ेवियर कहलाता है, पहला प्रचारक था जिसने भारत की जनता में 'सुसमाचार' (Gospal) फैलाने का काम किया (१५४२ ई०)। उसने अपूर्व उत्साह और हार्दिक श्रद्धा से ईसाई धर्मप्रचार का काम किया तथा छोटे-बड़े सब के ही हृदय पर ऐसी विजय प्राप्त की कि उसके मित्रों ने लिखा है कि उसने नाना चमत्कारी काम किये और सब-से-बड़ा चमत्कार जो उसने किया वह नाना भारतीय भाषाओं में बोलने का चमत्कार है।[1] स्वयं सेंट ज़ेवियर ने कभी नहीं कहा कि भगवान् ने उसे भाषाभिज्ञता का वरदान दिया था। पहले-पहल १५५९ ई० में, ऐसा बताया गया है, कि गोआ के प्रचारक पादरी, ईसाई धर्म में प्रविष्ट ब्राह्मणों से हिंदुओं के धर्मशास्त्र तथा दर्शन के ग्रंथ पढ़ने लगे और ब्राह्मणों के साथ आम सड़कों पर शास्त्रार्थ करने लगे।

एक यूरोपियन पादरी के संस्कृत भाषा की कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करने का सच्चा, ऐतिहासिक उदाहरण बाद को पाया जाता है। यह घटना **रौबेर्टो द नोबिली** नामक पादरी के समय की है, जो सेंट ज़ेवियर के समय से चौसठ वर्ष बाद भारत आया (१६०६ ई०)। यह ईसाई धर्मोपदेशक अच्छे कुल में जनमा, उसके विचार सुसंस्कृत और अति सुंदर थे। मदुरा आदि में जो ईसाई बस्तियां पादरियों ने बसायी थीं, उनमें कोई ब्राह्मण ईसाई नहीं हुआ था। जो ईसाई वहां बसते थे वे छोटी जाति के ही थे और इनमें न शिक्षा थी, न ही सभ्यता तथा संस्कृति। इसलिए द नोबिली, ब्राह्मणों के ईसाई बनने के पथ में जो-जो अड़चनें थीं, उन्हें तुरंत ताड़ गया। उसने हिम्मत बांधी और ब्राह्मण का वेश बना लिया। इस वेश में वह सब अच्छे-अच्छे ब्राह्मणों और कुलीनों के बीच आने जाने लगा और पंडितों तथा ज्ञानियों से मिलने लगा। उसने अपने को एक कोठरी में बंद कर लिया और

१. म्युलबौअर कृत गेशिष्टे डेर कायोलिशन् मिस्सिओनुम् ओस्ट-इंडियन्स, पृष्ठ ६७।

रात-दिन तमिल, तेलगू और संस्कृत के अध्ययन में लीन रहा। जब उसने देखा कि वह ब्राह्मणों की भाषा, साहित्य और धर्मशास्त्र में पूरा पंडित हो गया है और अपने विरोधियों के साथ निधड़क शास्त्रार्थ कर सकता है तो वह बाहर निकला और उसने ब्राह्मण—हू-बहू ब्राह्मणों का भेष धारण किया, सिर पर तिलक धारण किया, गले में जनेऊ डाला, उनका-सा ही खान-पान का ढंग पकड़ा, यहां तक कि वह जात-पांत, छुआ-छूत के सभी नियम विधिपूर्वक पालन करने लगा।

ब्राह्मण उसके पीछे पड़ गये और उन्होंने उसे बहुत कष्ट दिया, क्योंकि उससे वे बहुत घबराये तथा उसके साथ काम करने वाले पादरी भी उसकी अजीब नीति देखकर हैरान-परेशान थे कि यह कर क्या रहा है! इस पर भी वह इस नीति के बल-बूते पर अति ही सफल रहा। वह बुढ़ापे में अंधा हो गया था और भारत में ही मरा। उसकी जीवनी बहुत मनोहर और ईसाई-धर्मोपदेशकों के बड़े काम की है। मैंने तो उसका उल्लेख यहां इसलिए किया है कि वह पहला यूरोपियन था जो संस्कृत का पूरा पंडित था। वह ऐसा पुरुष था जो तुरंत मनुस्मृति के श्लोक सुना देता था, पुराणों की कथाएं उद्धृत करता था और आपस्तंब-सूत्र की बातें बताता था। यह आपस्तंब-सूत्र अभी तक छपा नहीं है (अब, इसके अनेक संस्करण यूरोप और भारत में छप चुके हैं—अनु०)। उसने इस धर्म-ग्रंथ की हस्तलिखित प्रति पढ़ी होगी, जैसा कि यूरोप के विद्वान् आज भी (१८६१ ई०) कर रहे हैं। वह अपने शास्त्रार्थों में यह दावा करता था कि मैं उस चौथे वेद[१] का प्रचार करने आया हूँ जो

१. 'यजुर्-वेद' नामक ग्रंथ, रौबर्ट द नोबिली का लिखा नहीं है। यह संभवतः उसके द्वारा ईसाई धर्म में दीक्षित किसी हिंदू का लिखा है। यह संस्कृत में है और श्लोकों में पुराणों के ढाँचे पर बनाया गया है। इसमें हिन्दू और ईसाई धर्मों के विचारों की खिचड़ी पकायी गयी है। इसका फ्रेंच अनुवाद वौल्टेयर के पास भेजा गया था जो उसने १७७८ ई० में पेरिस से प्रकाशित किया। इसका नाम रखा गया "ल' एजुर् वेदम्, एक ब्राह्मण द्वारा संस्कृत से अनूदित"। वौल्टेयर ने इस ग्रंथ की भूमिका में बताया कि सिकंदर बादशाह के भारत आने से चार सौ वर्ष पहले यह वेद रचा गया था। यह वह अनमोल हीरा है जिसके लिए यूरोप भारत का सदा ऋणी रहेगा। इसकी संस्कृत मूल-प्रति मि० एलिस को पांडीचेरी में मिली। (एशिऐटिक रिसर्चेज, खंड चौदहवां।) इसे रौबर्ट का लिखा बताने का कोई कारण नहीं

कभी का लुप्त हो गया है। इससे साफ़ मालूम होता है कि वह जिस धर्म के विरुद्ध प्रचार करने आया था उसकी शक्ति और दुर्बलता भली भाँति जानता था। उस पर रोम के कुछ पादरियों ने मूर्ति-पूजा का दोष भी लगाया था। उसने अपना बचाव करने को जो आवेदन-पत्र पोप को भेजे उनमें हिंदुओं के धर्म, रीति-रिवाज़, धर्मग्रंथ, साहित्य आदि का अति और सच्चा, उत्तम वर्णन किया था, उसकी ओर यूरोप के विद्वानों का ध्यान ही नहीं गया। वर्षों तक बड़े पादरी और पोप विचार करते रहे कि उसे भारत में धर्मोपदेशक रहने देना चाहिए या यूरोप वापस बुला लेना चाहिए, किंतु आश्चर्य है कि उनमें से एक ने भी इस सर्वांगपूर्ण, उन्नत और अति प्राचीन सभ्यता के अस्तित्व पर रत्ती भर भी दृष्टिपात न किया। खेद है कि ऐसे समय में जब कि ग्रीक भाषा की एक भी हस्तलिखित पुस्तक का पता लगना यूरोप के सभी विद्वानों में बड़ी हलचल मचा देता है और ऐसे ग्रंथ का सर्वत्र सहर्ष स्वागत किया जाता है, ऐसे समय में भी एक समृद्ध साहित्य का सारा खजाना उपेक्षा की दृष्टि से देखा गया। संस्कृत भाषा और उसके साहित्य के स्वागत का समय अभी नहीं आया था।

पहले ईसाई प्रचारक पादरी जिन्होंने यूरोप के विद्वानों का ध्यान संस्कृत भाषा के अपूर्व आविष्कार की ओर खींचा वे फ्रेंच जैसुइट थे। इनको लूई चौदहवें ने ईसाई धर्म के प्रचारार्थ १६९७ ई० में भारत भेजा था।[१] फादर पौन्स ने संस्कृत भाषा और उसके समृद्ध साहित्य के विषय में मदुरा के अंतर्गत कारीकल से २३ नवंबर १७४० ई० को पादरी द्युहाल्दे के नाम यह रिपोर्ट भेजी और यह **लैत्र एदिफिआँत** (शिक्षापूर्ण पत्र) नामक पत्र-संग्रह में छपी।[२] इस पत्र में पादरी पौन्स ने संस्कृत साहित्य के नाना अंगों का बहुत ही मनोरम और मोटे तौर पर बहुत ही ठीक

है और न इसका उल्लेख उसकी ग्रंथावली में है। (बर्टा-कृत ला मिस्सिऑं द मदूरे, पेरिस, १८४७-१८५०, खंड तीन, पृष्ठ ११६, Mull bauer, पृ० २०५ Note.)।

१. कहा जाता है कि एक अंगरेज मि० मार्शल १६७७ ई० में भारत में रहता था जो संस्कृत का यथेष्ट ज्ञान प्राप्त कर चुका था। इलियट कृत हिस्टोरियन्स आफ़ इंडिया, पृष्ठ २६५।

२. इस पत्र का उत्तम वर्णन जूर्नाल दे सावाँ, १८६१ ई० में अपने एक लेख में मो० बिओ ने प्रकाशित किया है।

वर्णन किया है। उसने चारों वेदों, व्याकरण के ग्रंथों, छः के छः दर्शनों और हिंदुओं के ज्योतिष शास्त्र पर उचित प्रकाश डाला है। कई बातों में वह सर विलियम जोन्स की शोध के परिणाम को पहले ही लिख गया है।

यद्यपि पादरी **पौन्स** के इस पत्र ने यूरोप के विद्वानों में संस्कृत के प्रति अगाध प्रेम के भाव भर दिये, किंतु प्रेम के इन भावों का फल कुछ न हुआ। इसका कारण यह था कि उस समय यूरोप में संस्कृत सीखने के कुछ साधन न थे। न तो व्याकरण पर ग्रंथ थे और न ही संस्कृत का कोश तथा न संस्कृत की पाठ्य पुस्तकें थीं, जिन्हें पढ़कर विद्वान् इस भाषा को उसी चाव से सीखते जिस उत्साह से वे ग्रीक और लैटिन का अध्ययन कर रहे थे। पहला विद्वान् जिसने इस आवश्यकता की पूर्ति का प्रयत्न किया यह कारमेलाइट संप्रदाय का एक फक़ीर था। वह जर्मन था और उसका नाम था **योहान फिलिप व्हेस्डिन,** पर लोग उसे **पौलिनुस् आ सांत्तो बार्टो-लेमो** नाम से अधिक जानते थे। वह १७७६ से १७८९ ई० तक भारत में रहा और उसने अपना संस्कृत-व्याकरण १७९० ई० में रोम से प्रकाशित किया। यद्यपि उसके संस्कृत-व्याकरण की खूब छीछालेदर हुई, और अब कोई विद्वान् उस व्याकरण को देखता भी नहीं, पर यह ध्यान में रखने की बात है कि किसी भाषा का पहला व्याकरण लिखना, अनगिनत और अति कठिन अड़चनों का सामना करना है। इसके अनंतर रास्ता खुल जाता है और सब सरल हो जाता है।[1]

इस प्रकार, अब हम जान गये हैं कि संस्कृत भाषा और उसका साहित्य तब से विदेशियों को मालूम था, जब से सिकंदर और उसके साथी भारत के संपर्क में आये। परंतु जो तथ्य ज्ञात न था, वह यह था कि जो वाणी सिकंदर के समय भारत में बोली जाती थी, जो बादशाह सुलेमान के काल में भारत में प्रचलित थी, इतना ही क्यों, इससे भी सैकड़ों वर्ष पहले जो भारत की बोल-चाल की भाषा थी, वह ग्रीक और लैटिन से निकट संबंध रखती थी; सच तो यह है कि उक्त भाषाओं से संस्कृत का वही संबंध था जो फ्रेंच का इटालियन या स्पेनिश भाषा से है। यूरोप में संस्कृत के तुलनात्मक विज्ञान के अध्ययन का श्रीगणेश १७८४ ई० में कलकत्ते में रॉयल

१. Sidharubam Seu Grammatica Samscrdamica (**सिधरुबम् सेउ ग्रामाटीका संस्क्रदमिका**), रोम १७९०।

एशियाटिक सोसाइटी की स्थापना के दिन से हुआ।[1] यह, सर विलियम जोन्स, केरी, विलकिन्स, फौर्स्टर, कोलब्रुक आदि, इस स्वनामधन्य सभा के सदस्यों के कठिन श्रम का फल था कि हिंदुओं की प्राचीन और पवित्र भाषा तथा उसका साहित्य यूरोपियन विद्वानों के पास तक पहुँचा; और यह बात तो अब तक भी निश्चित रूप से नहीं कही जा सकती कि दोनों में से—संस्कृत भाषा से या उसके अगाध साहित्य से—किसने अधिक गहरा और टिकाऊ प्रभाव डाला। संस्कृत की धातु- और शब्द-रूपावलियां ऐसी हैं कि चाहे आप कितनी ही सरसरी नजर से उन्हें क्यों न देखें, तुरंत यह तथ्य सामने आ जाता है और एकदम खटक जाता है कि संस्कृत, ग्रीक और लैटिन के व्याकरणों में असाधारण रूप से समानता दिखाई देती है; कहीं-कहीं तो पूरी समानता देखी जाती है। इससे भी पहले १७७८ ई० में हौलहेड ने बंगला का व्याकरण (Grammar of Bengali) प्रकाशित किया। इसकी भूमिका में उसने लिखा है[2]—'मुझे यह देखकर अपने आश्चर्य का ठिकाना न रहा कि संस्कृत के शब्दों में बहुत-से ऐसे हैं जो फ़ारसी, अरबी बल्कि ग्रीक और लैटिन शब्दों से मिलते-जुलते हैं। इनमें केवल पारिभाषिक और आध्यात्मिक शब्द ही समानता नहीं दिखाते, क्योंकि ऐसे शब्द कभी-कभी सुललित कलाओं और सुसंस्कृत रीति-रिवाजों के आदान-प्रदान के कारण किसी भाषा में बाहर से भी आ सकते हैं, किंतु उक्त भाषाओं में मुख्य और बुनियादी शब्दों में समानता देखी जाती है, इनके एक एक अक्षर से बने शब्दों में यह मेल पाया जाता है, इनकी

१. इसके पहले प्रकाशन भगवद्गीता का विलकिन्स द्वारा अंगरेजी अनुवाद, १७८५; उक्त विद्वान् द्वारा हितोपदेश का अनुवाद, १७८७; विलियम जोन्स का शकुंतला का अंग्रेजी अनुवाद, १७८९ छपे। कोलब्रुक ने मूल संस्कृत व्याकरण छपवाया, १८०५; केरी का व्याकरण १८०६; विलकिन्स का १८०८; फौर्स्टर १८१०; येटस् १८२० और विलसन १८४१ में छपे। जर्मनी में बौप ने अपना संस्कृत व्याकरण १८२७ में तथा बेन्फे ने १८५२ में छापा।

२. हालहेड ने १७७६ ई० में *The code of Gentoo Laws* नामक ग्रंथ छापा। इसमें संस्कृत की अधिकांश स्मृतियों का अंगरेजी अनुवाद है। इस ग्रंथ के संकलन में ग्यारह पंडितों से सहायता ली गयी थी और वारन हेस्टिंग्स के आदेश से यह काम हुआ था।

संख्याओं के नाम एक-समान हैं, और उन पदार्थों के नाम भी एक-से हैं जो सभ्यता के जन्म लेते ही आदि-मानव-समाज ने अपनी आवश्यकतानुसार भिन्न-भिन्न नामों से पुकारे।' सर विलियम जोन्स (मृत्यु-काल १७९४) ने संस्कृत पर दृष्टि डालते ही ये उद्‌गार निकाले—'यह भाषा चाहे जितनी पुरानी हो, यह अत्यंत विस्मयकर बनावट की भाषा है, यह ग्रीक से भी अधिक परिपक्व और संपन्न है, लैटिन से भी अधिक परिपूर्ण है और इन दोनों भाषाओं से अधिक सु-संस्कृत है, इस पर खूबी यह है कि उक्त दोनों भाषाओं से इसका बिरादरी का अति निकट संबंध है।' सर विलियम जोन्स ने यह भी लिखा है—'कोई तुलनात्मक भाषाशास्त्री, जो संस्कृत, ग्रीक और लैटिन की तुलना एवं इस आधार पर इनकी परीक्षा करेगा, बिना इस विश्वास के नहीं रह सकता कि ये तीनों भाषाएं एक समान मूल स्रोत से उत्पन्न हुई हैं, जो मूल अब अस्तित्व में नहीं है। ऐसा ही समान कारण जो इतना जोरदार नहीं कहा जा सकता, यह अनुमान लगाने का अवसर देता है कि गौथिक तथा केल्टिक का भी मूल वही है जो संस्कृत भाषा का है। इस भाषा-परिवार के साथ हम प्राचीन फ़ारसी (प्राचीन फ़ारसी का मतलब आजकल उस भाषा से होता है जिसका प्रचलन दार्यवहुश के समय था। सर विलियम जोन्स का अर्थ यहां अवेस्ता की भाषा तथा पहलवी आदि से है—अनु०) को भी सम्मिलित कर सकते हैं।'

सर विलियम जोन्स का अनुमान ठीक था, अब हम भारत से यूरोप तक की नाना आर्य-भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन के फलस्वरूप जानते हैं कि ये भाषाएं किस कारण से एक जाति या परिवार की हैं? किंतु उस समय यह तथ्य अज्ञानांधकार के गर्भ में था। यूरोप के विद्वान् आश्चर्यचकित थे। ईसाई धर्म के बड़े बड़े धुरंधर सिर हिलाने लगे, ग्रीक और लैटिन के विद्वान् यह विश्वास न कर सके कि ग्रीक और लैटिन का संस्कृत भाषा से कोई संबंध हो सकता है; दार्शनिक लोग, अपने सामने उपस्थित किये गये तथ्यों से जो एक मात्र निदान निकलता था, उससे बच निकलने के लिए ऊटपटांग बातें करने लगे और लगे बेपर की उड़ाने। भाषा-शास्त्र के पुराने तथ्यों से उन्होंने संसार के इतिहास का रहस्य खोलने के लिए जो अंड-बंड सिद्धांत बनाये थे वे उलट-पुलट हो गये। लार्ड मौन्वोड्डो ने इस संकट काल में अपना महान् ग्रंथ समाप्त किया था। इसमें उसने सिद्ध किया था कि मानव-जाति बंदरों के इने-गिने जोड़ों से उत्पन्न हुई है, और मनुष्यों की सभी बोलियां मिस्र के कुछ देवताओं द्वारा बनायी गयी एक मौलिक भाषा की संतान हैं।

इस समय संस्कृत का आविष्कार उसके ऊपर मेघहीन आकाश से वज्र-सा कड़का। उसकी प्रशंसा में यह कहा ही जाना चाहिए कि इस आविष्कार का अपार महत्व उसने तुरत ताड़ लिया। यह आशा तो उससे नहीं की जा सकती थी कि वह अपने आदि-कालीन बंदरों तथा मिस्र की अति प्राचीन मूर्तियों को संस्कृत के आविष्कार की बलि-वेदी पर चढ़ा दे; इस एक अपवाद को छोड़, जब उसके मित्र और संस्कृत के एक सबसे पहले व्याकरण के रचयिता मि० विलकिन्स ने उसके सामने संस्कृत भाषा का आविष्कार तथा उसके अति प्राचीन होने के प्रमाण रखे तो उसने इस तथ्य से ठीक ही निदान निकाले। इससे इस स्कॉच न्यायाधीश की बुद्धि की प्रखरता का भी प्रमाण मिलता है। उसने १७९२ ई० में लिखा—'संसार में एक भाषा इस समय भी अस्तित्व में है और जिसे भारत के ब्राह्मणों ने छाती से लगा रखा है और जो वास्तव में होमर की लिखी ग्रीक भाषा से भी अधिक समृद्ध तथा सब प्रकार से सुललित और सुसंस्कृत है। इस भाषा से भारत की सभी भाषाएं बहुत मिलती हैं। इस भाषा का नाम **संस्कृत** है। भारत की अन्य भाषाएं इसकी बोलियां हैं और इससे निकली हैं। **संस्कृत** उनसे नहीं निकली। इस बात के तथा इस भाषा की और छोटी-मोटी विशेषताओं के विषय में, भारत से मुझे इतनी निश्चित सूचनाएं प्राप्त हुई हैं कि यदि मैं अपना **मनुष्य का इतिहास** समाप्त करने तक जीवित रहा, जो मैंने अपने **प्राचीन अध्यात्मवाद** नामक तीसरे खंड में आरंभ किया है, तो मैं यह सिद्ध करने में सर्वथा समर्थ हूँगा कि ग्रीक भाषा **संस्कृत** से निकली है। यह संस्कृत प्राचीन मिस्र की भाषा थी और इसे मिस्री अपने साथ भारत ले गये, साथ-साथ वे अपनी अन्य कलाएं भी भारत को ले गये। मिस्रियों ने ग्रीस में अपने उपनिवेश बसाये और वहां भी वे अपनी भाषा और कला साथ ले गये।'

कुछ वर्ष बाद (१७९५ ई० में) संस्कृत और ग्रीक भाषा के संबंध में उसके विचार अधिक स्पष्ट और निश्चित हो गये। उसने फिर लिखा—'मि० विलकिन्स ने मेरे लिए सिद्ध कर दिया है और इस पर मेरा पक्का विश्वास हो गया है कि ग्रीक और संस्कृत में इतनी समानता है कि एक भाषा, अवश्य, दूसरी की बोली होगी, या दोनों भाषाएं एक मूल-भाषा की संतान हैं। ऐसा मालूम होता है कि अवश्य ही ग्रीक **संस्कृत** की बोली नहीं है और न **संस्कृत** ग्रीक से निकली है। इसलिए ये दोनों एक ही मूल भाषा की बोलियां मानी जानी चाहिए। यह मूल भाषा प्राचीन मिस्र की भाषा के अतिरिक्त दूसरी हो नहीं सकती। इसे मिस्री देवता ओसीरिस

भारत ले गया था और इसमें कुछ भी संदेह नहीं है कि ग्रीक इसकी एक बोली है, और मैं समझता हूं कि मैंने यह सिद्ध कर दिया है।'

इस समय हम लार्ड मौन्बोड्डो का मिस्र और ओसीरिस पर जो काल्पनिक सिद्धांत ऊपर दिया गया है, उसकी सत्यता या असत्यता की जांच न करेंगे। किंतु उसका एक और उद्धरण देंगे जो बहुत दिलचस्प है तथा जिससे यह भी पता चलेगा कि लार्ड मौन्ब्रोड्डो—उसके पूंछ वाले मनुष्य और बिना पूंछ के बंदरों को छोड़ कर—जो तथ्य और प्रमाण उसके सामने रखे गये उन्हें बड़ी योग्यता से अपने विवेक और बुद्धि की चलनी में छान सकता था और उनकी छान-फटक ठीक ढंग से कर सकता था। उद्धरण यों है—

'यदि मैं अपने इन विचारों के अनुसार, मि० विलकिन्स द्वारा आविष्कृत **संस्कृत** और ग्रीक भाषाओं के बीच समानता पर टीका-टिप्पणी करूं तो मैं उन शब्दों से आरंभ करूंगा जो सभी भाषाओं के मूल शब्द रहे होंगे, क्योंकि वे जिन-जिन पदार्थों को बताते हैं वे सभ्यता की आदिम दशा में वर्तमान रहे होंगे और उस समय उनका नामकरण किया गया होगा। इस दशा में यह असंभव था कि एक जाति दूसरी जाति से ये आदिम शब्द प्राप्त करती; हां, एक ही बात संभव थी, वह यह कि यह एक ही भाषा से निकली हुई या उसकी ही एक बोली रही होगी। संख्याओं के नाम, मानव-शरीर के भिन्न-भिन्न अंगों के सूचक शब्द और संबंधियों के नाम, जैसे पिता, माता, भ्राता आदि के नाम उस अवस्था में रख लिये गये होंगे। अब संख्याओं के नाम लीजिए, ये अवश्य ही सभ्यता के आदि में चल गये होंगे। संस्कृत में एक से दस तक की संख्याओं के नाम हैं, **एक, द्वि, त्रि, चतुर्, पंच, षट्, सप्त, अष्ट, नव, दश**—ये उसी परिवार के हैं जिसके ग्रीक और लैटिन संख्याओं के नाम। फिर ये संख्याएं बीस की ओर बढ़ती हैं एवं दस और एक, दस और दो आदि कहा जाता है, अंत में ये बीस तक पहुँचती हैं; क्योंकि उसकी गणना दशमलव रीति पर चलती है, जैसी हमारी। बीस को **विंशति** कहते हैं (पाठक इन अंकों के नाम संस्कृत के अनुसार ठीक कर लें। मौन्बोड्डो ने ये उस समय अशुद्ध रूप में लिखे जब यूरोप में संस्कृत भाषा का ज्ञान प्रवेश ही कर रहा था। इस कारण उन्होंने संस्कृत को **शंस्कृत, द्वि** को **द्वी, त्रि** को **त्री, चतुर्** को चतूर आदि लिखा है। इससे यह भी पता चलता है कि लार्ड मौन्बोड्डो संस्कृत से पूर्णतया अनभिज्ञ थे—अनु०)। तब वे इसी प्रकार तीस की संख्या तक बढ़ते हैं और तीस को **त्रीसत्** (त्रिंशति, अनु०—) कहते हैं। इस शब्द में तीन का वाचक

त्री, सारे शब्द के एक भाग के रूप में वर्तमान है। ग्रीक और लैटिन संख्याओं के नाम इसी रूप से चलते हैं। वे इसी प्रकार, चालीस, पचास आदि को व्यक्त करते जाते हैं और चार, पांच आदि संख्याओं को शब्द के आदि में लगाते जाते हैं। इस रीति से वे सौ की संख्या तक पहुँचते हैं। संस्कृत में सौ को सत् (=शत–अनु०) कहते हैं, इस शब्द के नाम ग्रीक और लैटिन में बिलकुल भिन्न हैं। परंतु इन संख्या-वचनों में बीस या एकीस (एक बीस–अनु०) के वाचक **संस्कृत** शब्द और उसी संख्या के वाचक ग्रीक और लैटिन प्रतिशब्दों में रूप की असाधारण समानता पायी जाती है। क्योंकि इन तीनों भाषाओं में बीस के नाम के साथ आरंभ में 'दो' शब्द आया ही नहीं है, जिससे मालूम हो कि बीस, दो को दस से गुणा करके बनाया गया है, जैसा कि तीस, चालीस, पचास आदि में आरंभ में तीन, चार, पांच जोड़ कर संख्याएं बनायी गयी हैं। ग्रीक में बीस को **एइकोसि** कहते हैं, इसमें दो का कहीं नाम ही नहीं है, दो से **एइकोसि** का कोई संबंध है, इसका पता ही नहीं चलता। लैटिन में बीस के लिए **विगिंति** शब्द काम में लाया जाता है, और इस शब्द की सं० **बीस शब्द** से अवश्य अधिक समानता दिखाई देती है। यह दृष्टिगोचर होता है कि यद्यपि स्वयं ग्रीक और लैटिन शब्दों में कुछ अनियमितता है, फिर भी उक्त दोनों भाषाओं के शब्दों की **संस्कृत** से कुछ समान-रूपता है।'

लार्ड मौन्बोड्डो ने संस्कृत **पद** की तुलना ग्रीक **पोउस्, पोदौस्** से की है और संस्कृत **नास** की तुलना लैटिन नासुस् से की है; संस्कृत **देव** की तुलना ग्रीक **थेऔस्** तथा लैटिन **देउस्** 'ईश्वर' से की है; संस्कृत **आप** 'जल' की लैटिन **अकुआ** से की है और **विधवा** की लैटिन शब्द **विदुआ** 'विधवा' से। उसने संस्कृत शब्द **गोनिय** (? कोण—अनु०) 'कोना', **केंद्र** 'मध्य', **होरा** 'घंटा' आदि शब्दों पर लिखा है कि ये साफ ही ग्रीक मूल से आये हैं, जो संस्कृत में ले लिये गये। तब वह संस्कृत और ग्रीक तथा लैटिन भाषाओं के व्याकरणों के रूपों में जो समानता है, उसका वर्णन करता है। वह जुड़े हुए या संयुक्त शब्दों का वर्णन करता है। उसने **त्रिपद** शब्द दिया है जो **त्रि** और **पद** का संयुक्त है 'तीन पांववाला, तिपाया'। उसने इस विलक्षण तथ्य पर लिखा है कि संस्कृत में ग्रीक भाषा की तरह एक नकार-सूचक विशेषण **अ** आदि में जुड़ने से नकार या इनकार करनेवाला बन जाता है। तब वह व्याकरण के वे रूप देता है जिन्हें वह मि० विलकिन्स का अति मूल्यवान् उपहार समझता है। वह बताता है कि **अस्ति** 'वह है', **सन्ति** 'वे हैं' अस् धातु के रूप हैं, इनके ग्रीक भाषा में **एस्मि** 'मैं हूँ', **एइस** 'तू है' और **एस्ति**, 'वह है' रूप मिलते हैं;

सन्ति के स्थान में लैटिन में **सुन्त** रूप मिलता है। इस शब्द-सादृश्य पर वह अति मुग्ध था।

दूसरा स्कॉच दार्शनिक ड्यूगैल्ड स्टेवर्ट इतनी जल्दी संस्कृत भाषा के आविष्कार का महत्व मानने को तैयार न निकला। इसमें संदेह नहीं कि एक विद्वान् जो जीवन भर इस विश्वास पर पला था कि ग्रीक और लैटिन या तो अपने देशों की आदिम भाषाएं थीं या इबरानी भाषा का परिवर्तित रूप थीं, वह यह क्रांतिकारी सिद्धांत मानने को कैसे तैयार होता कि एक असभ्य जाति की फूहड़ बोली से ग्रीक और लैटिन का भाईचारे का रिश्ता है। उस समय मुगल बादशाहों की सब प्रजा असभ्य समझी जाती थी। मगर यदि संस्कृत भाषा के संबंध में जो नये तथ्य आविष्कृत हुए थे, वे वास्तव में सत्य होते हैं तो उक्त निष्कर्ष से बचने का उपाय ही नहीं है, यह बात तेज बुद्धिवाले ड्यूगैल्ड स्टेवर्ट ने भांप ली। इस कारण उसने संस्कृत भाषा का अस्तित्व ही अस्वीकार कर दिया और लिखा कि संस्कृत नाम की कोई भाषा न आज है और न कभी थी। सचमुच में यह भाषा जालसाजी और छल-कपट करने में सिद्ध-हस्त तथा झूठों के राजा ब्राह्मणों ने ग्रीक और लैटिन की नकल पर गढ़ी है और संस्कृत का सारा साहित्य बहुत बड़ा कपट और दुनिया को धोखा देने वाला है। इस तथ्य का उल्लेख मैं इस स्थान पर इसलिए कर रहा हूँ कि, इस एक घटना से अन्य सब बातों से अधिक, इस सत्य का उद्‌घाटन होता है कि संस्कृत भाषा के आविष्कार से प्रत्येक शिक्षित यूरोपियन के उन पक्षपातपूर्ण विचारों को कितना बड़ा धक्का पहुँचा होगा जो पहले से ही उसके मन में दृढ़ रूप से जमे बैठे थे। कुछ समय तक तो इन लोगों ने जो मन में आया वह कहा और लिखा, यह न सोचा कि हम जो कह रहे हैं उसमें कुछ अर्थ है या नहीं ? उन्हें कुछ ऐसी बात कहनी थी जो उन्हें संस्कृत के आविष्कार और उससे सिद्ध हुई ग्रीक-लैटिन से संस्कृत की सजातीयता का खंडन कर, इस लज्जाजनक स्थिति से भागने का मार्ग बताये कि उनकी सुसंस्कृत भाषाएं ग्रीक और लैटिन, भारत के काले निवासियों की भाषा की बहनें थीं। संस्कृत भाषा के आविष्कार के महत्वपूर्ण तथ्य और संस्कृत के गहरे अध्ययन के निष्कर्षों को उत्साह और वीरता से स्वीकार करनेवाला एक जर्मन कवि था, जिसका नाम था फ्रेडरिक श्लेगल। वह १८०१–१८०२ ई० तक इंग्लैण्ड में रहा और उसने मि० एलेक्जेंडर हैमिल्टन से संस्कृत का प्रारंभिक ज्ञान प्राप्त किया। उसने पेरिस जा कर वहाँ भी संस्कृत भाषा का अध्ययन किया। उसने १८०८ में **भारतीयों की भाषा और उनकी बुद्धिमत्ता पर** नाम की एक पुस्तक प्रकाशित की। भाषाविज्ञान

की बुनियाद इस ग्रंथ पर पड़ी। यद्यपि यह ग्रंथ आडलुंग के **मिथ्रिदातेस्** के प्रकाशित होने के केवल दो वर्ष बाद निकला, तो भी **मिथ्रिदातेस** और श्लेगल के ग्रंथ में उतना ही महान् भेद है जितना टॉलेमी के ज्योतिषशास्त्र की व्यवस्था और कोपर्निकस के वैज्ञानिक ज्योतिषशास्त्र में है। श्लेगल बड़ा विद्वान् नहीं था। उसके बहुत से कथन असत्य सिद्ध हो गये हैं और उसके निबंध के चिथड़े उड़ाना किसी के भी बायें हाथ का खेल है और बड़ी आसानी से उसकी हँसी उड़ायी जा सकती है। किंतु हमें विवश हो यह मानना ही पड़ता है कि श्लेगल महान् प्रतिभाशाली मनीषी था और जब कभी नये विज्ञान की सृष्टि की जाती है तो कवि की सिरजनहार कल्पना की आवश्यकता होती है। ऐसे समय परम पंडित के सूक्ष्म निरीक्षण की इतनी अधिक जरूरत नहीं होती। निस्संदेह कवयः किं न पश्यंति के सिद्धांत की विजय हुई; कवि की विशाल दृष्टि ने ही भारत, ईरान, ग्रीस और जर्मनी की भाषाओं का प्राण पहचाना और इनका सीधा-सादा नामकरण किया 'इंडों-जर्मन भाषाएं।' यह श्लेगल का महान् कार्य था। सत्य ही कहा गया है कि ज्ञान के इतिहास में यह एक नयी दुनिया का आविष्कार था।

हम अगले भाषण में देखेंगे कि किस प्रकार जर्मनी में श्लेगल के सिद्धांत का वहां के विद्वानों ने पीछा न छोड़ा और कैसे इसके बाद तुरत ही भाषाओं का वंश-वृक्ष बन गया तथा संसार की सब भाषाओं का वर्गीकरण भी हो गया।

पाँचवाँ भाषण

भाषाओं की वंश-परपंरा के अनुसार उनका वर्गीकरण

इससे पहले के भाषण में हमने भाषा के वर्गीकरण के जो प्रयत्न विद्वानों द्वारा १८०८ ई० तक किये गये उनका पूरा विवरण दिया है। इस वर्ष प्रसिद्ध जर्मन विद्वान् फ्रेडरिक श्लेगल ने वह पुस्तक लिखी जिसने तुलनामूलक भाषाशास्त्र की जड़ जमा दी। यह विद्वान् उन इने गिने भाषा-वैज्ञानिकों में गिना जाता है, जिन्होंने तुलनामूलक भाषाविज्ञान का, सर विलियम जोन्स के बाद अपनी छोटी-सी पुस्तक "भारतीयों की आर्य भाषा और ब्राह्मणों का ज्ञान" में सप्रमाण संस्कृत और यूरोपियन भाषाओं के आधार पर विवेचन किया है।[१] यह पुस्तक मानो सारे यूरोप में आग फैला गयी। यह जादू की छड़ी की तरह निकली और इसने बता दिया कि भाषा के रत्नों से भरी खान किस स्थान पर खोदने से मिल सकती है। फल यह हुआ कि इस पुस्तक के प्रकाशित होने के थोड़े दिनों बाद कई बड़े-बड़े विद्वान् इस खान के भीतर खनन कार्य में सहायता करने वाले नाना यंत्र डालने लगे। कुछ दिनों तक यूरोप के अन्य विश्वविद्यालयों में संस्कृत की पढ़ाई प्रायः नहीं के बराबर थी और जिस विद्यार्थी को संस्कृत पढ़ने की उत्सुकता रहती थी उसे अपने ज्ञान के लिए लंदन आना ही पड़ता था। भाषाविज्ञान के पिता बौप, श्लेगल, लासन, रोज़न, बुर्नूफ आदि ने संस्कृत का ज्ञान प्राप्त करने के लिए कुछ न कुछ समय लंदन में बिताया। इन लोगों ने ईस्ट इंडिया कम्पनी द्वारा प्राप्त किये गये कई उत्तम-उत्तम संस्कृत के हस्तलिखित ग्रंथों की, ईस्ट इंडिया हाउस नामक भवन में प्रतिलिपि की। इस काम में उन्हें संस्कृत के आदि अंग्रेज़ विद्वान् विलकिन्स, कोलब्रुक, विलसन और पुरानी इंडियन सिविल सर्विस के (आई० सी० एस०)

१. Conjugationssystem, Frankfurt, 1816.

अन्य संस्कृत-विशेषण विद्वानों से बहुत सहायता मिलती थी। सबसे पहले जिस परम पंडित ने ग्रीक-लैटिन, आदि-फारसी, फारसी और जर्मन भाषा से संस्कृत की तुलना की और इस विषय पर ग्रंथ लिखा, वह था फ्रेसिस (फ्रैन्तसिस) बौप।[1] इसके कई अन्य निबंध भी बाद को निकलते रहे और १८३३ ई० में उसने संस्कृत, ज़ेन्द (अवेस्ता की भाषा), ग्रीक, लैटिन, लिथवानियन, रूसी भाषा और उसकी नाना शाखाओं, गौथिक तथा जर्मन भाषाओं का तुलनात्मक व्याकरण संसार के सामने रखा। इसके तीन खंड निकले और इस महान् कार्य में प्रायः बीस वर्ष लग गये तथा इसका अंतिम खंड १८५२ ई० में प्रकाशित हुआ। इस ग्रंथ का बहुत बड़ा महत्त्व है और इस पुस्तक ने सदा के लिए तुलनात्मक भाषा-विज्ञान की जड़ मजबूती और निर्विवाद रूप से जमा दी। विलहेल्म फोन श्लेगल ने जो फ्रेडरिक श्लेगल का बड़ा भाई था और जर्मनी भर में एक उत्तम कवि समझा जाता था, संस्कृत का जर्मनी में प्रचार करने के लिए अपना जीवन अर्पण कर दिया। उसने संस्कृत के ग्रंथों का अनुवाद बहुत सुन्दर रूप में निकाल कर उनका प्रचार किया। इस ग्रंथ-भंडार का नाम इस कवि ने इन्डिशे-बिबलिओटेक (Indische Bibliothek) रखा। यह ग्रंथ भंडार १८१९ से १८३० ई० तक प्रकाशित होता रहा और यद्यपि इस ग्रंथ-संग्रह का उद्देश्य मूलतः संस्कृत-साहित्य के श्रेष्ठ ग्रंथों का जर्मनी में प्रचार करना था, तो भी संस्कृत ग्रंथों के जर्मन अनुवाद के साथ-साथ इसमें कभी-कभी तुलनात्मक भाषा-विज्ञान पर भी शोधपूर्ण लेख प्रकाशित किये जाते थे। अब तुलनात्मक भाषा-विज्ञान को जो बहुत बड़ा संरक्षक मिल गया वह था विलहेल्म फोन हम्बोल्द्त, यह जर्मनी के प्रसिद्ध शासनकर्ता एलेक्जेंडर फोन हम्बोल्द्त का सगा भाई था। उसने कई विद्वत्ता पूर्ण ग्रंथ लिखे। भाषा-दर्शन पर उसने जो निबंध लिखे वे जर्मनी में अति लोकप्रिय रहे और उसने जो सबसे बड़ा काम किया वह जावा की कवि-भाषा पर एक शोधपूर्ण और अति उत्तम ग्रंथ रचना है। यह बृहत् पुस्तक उसके मरने के बाद १८३६ ई० में प्रकाशित हुई। दूसरा विख्यात भाषा-वैज्ञानिक, जिसे तुलनात्मक भाषाशास्त्र की बुनियाद डालने वालों में अग्रगण्य माना जाता है, वह है

१. इस ग्रंथ का दूसरा संस्करण १८५६ ई० में निकला और इस दूसरे संस्करण में अनेक भूलें शुद्ध की गयीं तथा परिवर्धन भी उचित समझा गया।—अनु०

प्रोफेसर पौट। इसने व्युत्पत्ति पर बहुत शोध की और इस शोध का एक भाग पहले पहल १८३३ ई० में प्रकाशित किया गया। इस महत्वपूर्ण ग्रंथ के अन्य संस्करण १८५९ और १८६१ में छापे गये। इस विद्वान् ने अन्य ग्रंथ भी लिखे। पौट ने जिप्सियों (हाडी-हाबूड़ा आदि भारतीय जातियों के यूरोप में बसने वाले संबंधियों) की भाषा पर भी एक ग्रंथ लिखा जो १८४६ ई० में प्रकाशित हुआ। उसने इस ग्रंथ में बताया है कि यूरोप के जिप्सी भारतीय आर्य-भाषा बोलते हैं। उसने व्यक्तिगत नामों की व्युत्पत्ति पर भी बहुत कुछ लिखा है। उसका यह ग्रंथ १८५६ ई० में प्रकाशित हुआ था। पौट साहब के ग्रंथों की अपेक्षा अधिक सीमित उद्देश्य से लिखा गया, किन्तु भाषा-विज्ञान के साधारण सिद्धान्तों पर आधारित ग्रंथ प्रसिद्ध जर्मन भाषाशास्त्री ग्रिम का ट्यूटोनिक भाषा का व्याकरण है जो सचमुच में 'अति विशाल' कहा जाता है। इसका प्रकाशन वर्षों तक चलता रहा। यह पूरा ग्रंथ बीस साल में छपा, अर्थात् १८१९ ई० में इसका छपना आरंभ हुआ और १८३७ में इसका अंतिम भाग छपा। इस स्थान पर मैं आपको उस विख्यात मनीषी रास्क का भी स्मरण कराना चाहता हूँ जो डेनमार्क का निवासी था। इसने यूरोप के उत्तरीय भाग के देशों (स्वीडेन-नार्वे-डेनमार्क-हालैण्ड-जर्मनी आदि) की भाषा का सूक्ष्म गंभीर अध्ययन किया। उसने १८१६ ई० में ईरान और भारत-भ्रमणार्थ प्रस्थान किया। इस ज्ञानी ने पहले पहल ज़ेन्द भाषा का अध्ययन किया। यह ज़ेन्द अवेस्ता की भाषा है और अवेस्ता पारसियों का धर्मग्रंथ है, जो लगभग तीन हज़ार वर्ष पहले वेदों से मिलती-जुलती भाषा में लिखा गया। किन्तु बड़े खेद का विषय है कि वह अपनी इन शोधों का फल अपने जीवन काल में प्रकाशित न कर सका। इस पर भी उसने पूर्णतया प्रमाणित कर दिया कि पारसियों के इस धर्म-ग्रंथ की भाषा ब्राह्मणों के धर्म-ग्रंथ वेदों की भाषा से बहुत ही समानता रखती है और संस्कृत के समान ही अवेस्ता की भाषा में भारोपा भाषा के अति प्राचीन रूप रह गये हैं। इस प्राचीन फारसी भाषा का अध्ययन एक और पंडित ने आरंभ किया, उसका नाम था यूजैन बुर्नूफ। यद्यपि जरत्थुष्ट्र के धर्मग्रंथ बुर्नूफ से भी पहले आंकेतई-द्यूपेरों ने भारत जाकर फ्रेंच में अनूदित कर लिये थे किन्तु उसने इन्हें मूल भाषा से अनूदित नहीं किया था। उसने इन्हें अवेस्ता की भाषा से गुजराती में अनूदित एक ग्रंथ से रूपान्तरित किया था। यह बुर्नूफ़ का ही काम था कि उसने संस्कृत का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करके और तुलनात्मक व्याकरण का भली-भाँति अध्ययन करके अवेस्ता की भाषा का पता चलाया। अर्थात् उसने

पारसियों के ज्योतिर्मय धर्म के संस्थापक जरत्थुष्ट्र के मुँह से निकलने वाली बोली का सर्वप्रथम पता लगाते हुए उसका रूप स्थिर किया। और देखिए, वह पहला विद्वान् था जिसने इस शोध की प्रणाली का प्रयोग करते हुए दार्यवश के बहिस्तून और पर्सीपोलिस के विजयस्तंभों पर खोदे गये कोणाकार अक्षरों में लिखे हुए शिलालेखों की भाषा का पूर्ण सफलता के साथ अध्ययन और आविष्कार किया तथा उनका अनुवाद फ्रेंच भाषा में प्रकाशित किया। उनकी अकाल मृत्यु पर प्राच्य भाषाओं के ज्ञान के इच्छुक सदा दुःखित होते रहेंगे और मैं तो उनसे व्यक्तिगत रूप से बहुत परिचित हूँ और उनके चरणों में ही बैठा हूँ। अतः मुझे तो इस दुर्घटना का हार्दिक और विशेष खेद है।

इस भाषण में मैं उन सब भाषावैज्ञानिकों के नाम नहीं गिना सकता जो बौप-श्लेगल-हम्बोल्ट-ग्रिम और बुर्नूफ के बाद इस क्षेत्र में नये-नये आविष्कार कर गये। यह विज्ञान किस प्रकार दिन दूनी और रात चौगुनी तेजी से आगे बढ़ा और पनपा इस बात का पता तब चलता है, जब हम किसी अच्छे पुस्तकालय में जायँ और वहाँ भाषाविज्ञान तथा तुलनामूलक भाषाविज्ञान की ढेर की ढेर पुस्तकों का अवलोकन करें। जर्मनी में तुलनात्मक भाषाशास्त्र के लिए गत दस वर्षों से एक उत्तम सामयिक पत्र भी निकल रहा है। लंदन में एक सभा है जो तुलना-मूलक भाषा-विज्ञान के संबंध में समय-समय पर विचार-विमर्श करती है और वर्ष के अंत में अपने वाद-विवादों की रिपोर्टों का एक बड़ा पोथा निकालती है। साथ ही, यू ोप भर के सब विश्वविद्यालयों में संस्कृत पढ़ायी जाती है और इस की पढ़ाई के साथ-साथ तुलनामूलक भाषाओं का व्याकरण और भाषा-विज्ञान भी सिखाया जाता है।

भाषा के वर्गीकरण के क्षेत्र में संस्कृत के इस आविष्कार ने एक महान् क्रान्ति-कारी परिवर्तन कर दिया। परिवर्तन कैसे कर दिया? यह प्रश्न आप सब लोगों के मन में उठ रहा होगा क्योंकि यह स्वाभाविक है। यदि संस्कृत मनुष्य-जाति की आदिम बोली होती अथवा यदि यह ग्रीक-लैटिन-जर्मन आदि बोलियों की जननी होती तो हमको समझना चाहिए कि इसके आविष्कार के कारण उक्त भाषाओं के एक दम नये वर्गीकरण का सामान उपस्थित हो जाता। किन्तु संस्कृत वैसी स्थिति में नहीं है, क्योंकि ग्रीक-लैटिन-टयूटौनिक-कैल्टिक और रूसी जाति की भाषाओं के साथ इसका वह संबंध नहीं है जो लैटिन का फ्रेंच भाषा, इटालियन और स्पेनिश भाषाओं से है। अर्थात् ग्रीक आदि भाषाएँ संस्कृत की पुत्रियाँ नहीं

हैं। संस्कृत इन भाषाओं की जननी नहीं बनायी जा सकती। अब तक इसकी जो शोध हो चुकी है, उसके अनुसार यह इनकी बड़ी बहन मानी जा सकती है। यूरोप की उक्त प्राचीन भाषाओं के साथ इसका वही संबंध है जो लैटिन से निकली हुई इटालियन, स्पेनिश, फ्रेंच आदि भाषाओं के साथ दक्षिण फ्रांस में बोली जाने वाली प्रोवाँशाल भाषा का है। यह तथ्य पूर्णतया सत्य है, किन्तु यह अत्यन्त आवश्यक था कि हम जान पाते कि संस्कृत का उक्त यूरोपियन भाषाओं से ठीक-ठीक और बहुत स्पष्ट रूप में कैसा घनिष्ठ संबंध था। और जब यह संबंध भली-भाँति मालूम हो गया तो स्वभावतः इससे वह महत्त्वपूर्ण परिणाम निकला कि हमें भाषा-विज्ञान के क्षेत्र में एक ऐसा साधन हाथ लग गया जिसने भाषा-विज्ञान का रूप ही पलट दिया। इस आश्चर्यजनक आविष्कार ने हमें ध्वनिपरिवर्तन के वे निश्चित नियम बता दिये कि हम सहजात भारोपा भाषा की नाना भाषाओं और बोलियों की तुलना करने लगे और हमें पता चल गया कि कौन बोली और भाषा संस्कृत से कितनी दूर और कितनी निकट है। इसका फल यह हुआ कि हमने मनुष्य की नाना भाषाओं के वंश-वृक्ष को खड़ा कर दिया। जब भारोपा भाषाओं के क्षेत्र में संस्कृत ने अपना उचित स्थान ग्रहण कर लिया अथवा जब लोग भली-भाँति समझ गये कि ग्रीक, लैटिन और संस्कृत से भी पुरानी तथा इनकी जननी एक भाषा रही होगी, जिससे ये सब भाषाएँ और ट्यूटानिक, रूसी जाति की भाषाएँ आदि-आदि जनमी होंगी, तो इन सब भाषाओं का उचित क्रम और स्थान दिखाई देने लगा और स्पष्ट हो गया। भाषा विज्ञान की जिस भूलभुलैया ने पुराने भाषा-विज्ञानियों को इस विज्ञान का रहस्य खोलने में भ्रमित कर रखा था, उसकी कुंजी हाथ लग गयी। अब केवल इस बात की आवश्यकता बाकी रही कि हम धीरज के साथ एक आविष्कार से दूसरे पर पहुँचें और दूसरे से ीसरे पर आदि-आदि। जिस कारण से यह सिद्ध हो गया कि संस्कृत और ग्रीक, दोनों भाषाएँ एक ही क्रम में साथ-साथ उत्पन्न हुई हैं, उसी कारण से यह भी भली-भाँति प्रमाणित हो जाता है कि लैटिन और ग्रीक का भी परस्पर यही संबंध है। और बाद को जब विद्वानों ने यह प्रमाणित किया कि कई रूपों और कई स्थानों में लैटिन भाषा ग्रीक से भी पुरानी है तो यह सिद्ध करना बहुत ही आसान हो गया कि टयूटौनिक, केल्टिक और रूसी जाति की भाषाओं में कई रूप ऐसे हैं जो संस्कृत, ग्रीक और लैटिन में भी नहीं पाये जाते हैं। इसके बाद यह भी देखा गया कि ये सब भाषाएँ एक और समान वर्ग की ही भाषाएँ हैं।

संस्कृत के आविष्कार के द्वारा भाषा-विज्ञान की उन्नति के पथ में जो सबसे बड़ा कदम उठाया गया और जिसने भाषा के वर्गीकरण में बड़ा काम किया, वह यह था कि भाषावैज्ञानिक इतना जानकर ही हाथ-पाँव नहीं छोड़ बैठे। वे सभी भारोपा भाषाओं में साधारण संबंध स्थापित करके ही चुप नहीं रहे, अब उन्हें यह जानने की धुन लगी कि एक-एक वर्ग की नाना बोलियाँ और भाषाएँ परस्पर कितनी दूर और निकट हैं। अब यह भी मालूम हो गया कि अब तक जो केवल वर्ग का नाम लिया जा रहा था उसके स्थान पर, पहले पहल, सुनियमित भाषा-परिवार का नाम भी सुनाई देने लगा।

पहले आविष्कार से स्वभावतः दूसरे आविष्कार पर पहुँचा गया। अब ये विद्वान् साधारण रूप से यह नियम स्थापित करने लगे कि कई निश्चित भाषाओं का मूल कभी एक ही भाषा रही होगी। इस उद्देश्य से जब वे नाना भाषाओं की संख्याओं , सर्वनामों, प्रत्ययों, अव्ययों, क्रियाविशेषणों तथा अति आवश्यक नामों और क्रियाओं की तुलना करने लगे तो इससे यह स्पष्ट हो गया कि उक्त भाषाओं के संबंध में बहुत बारीकी से जाँच होनी चाहिए, जिससे इनके परस्पर की घनिष्ठता मालूम हो। ऐसा एक मापदंड तुलनामूलक व्याकरण ने प्रस्तुत कर दिया, अर्थात् दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि जो भाषाएँ परस्पर संबंधित समझी गयीं, उनके व्याकरणों के रूपों की आपस में तुलना करने से यह पता चला कि इन भाषाओं में ध्वनि-परिवर्तन के विशेष नियम चलते हैं, इससे यह जाना जा सकता है कि परस्पर संबंधित भाषाएँ एक दूसरी से कितनी निकट या दूर हैं।[1]

यह बात भाषा के आधुनिक इतिहासों से स्पष्ट हो जायगी। इस बात में नाम मात्र का संदेह नहीं हो सकता कि इटालियन, वल्लाखियन, प्रोवाँशाल, फ्रेंच, स्पेनिश और पुर्तगाली भाषाएँ, जिन्हें हम रोमान्स भाषाएँ कहते हैं, आपस में घनिष्ठ संबंध रखती हैं। इनके ज्ञाता प्रत्येक मनुष्य को सहज में ही यह विश्वास हो जाता है कि उक्त सब भाषाएँ लैटिन से निकली होंगी। रेनूआर एक फ्रेंच विद्वान् हैं जिन्होंने रोमान्स भाषाओं और साहित्य के इतिहास के संबंध में अन्य

१. यहाँ मैक्समुलर साहब इस बात का निर्देश करते हैं कि ध्वनि-परिवर्तन एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण आविष्कार है।—अनु०

सब विद्वानों से बहुत अधिक काम किया है और अपना मत दिया है कि लैटिन भाषा की पुत्री केवल प्रोवाँशाल है, जब कि फ्रेंच, इटालियन, स्पेनिश और पुर्तगाली प्रोवाँशाल की बेटियाँ हैं। उनका यह भी मत था कि लैटिन भाषा सातवीं सदी से नवीं सदी तक ध्वनि-परिवर्तन के कारण बीच की स्थिति में एक विशेष विकार युक्त बोली से गुजरते हुए प्रायः प्रोवाँशाल या त्रुबादोरों की भाषा में परिणत हो गयी। इस विद्वान् के अनुसार जब लैटिन भाषा बिगड़कर 'रोमन भाषा' बनी अर्थात् लैटिन का रूप बिगड़कर जनता में उसका नया रूप आ खड़ा हुआ तो इसके साथ ही प्रोवाँशाल भाषा भी जन्मी और यह भाषा नाना बोलियों के रूप में ध्वनि परिवर्तन की प्रतिक्रिया के अनुसार पुर्तगाल में पुर्तगाली, फ्रांस में फ्रांसीसी, इटली में इटालियन और स्पेन में स्पेनिश के रूप में बोली जाने लगी। वह सिद्धान्त, जिसका आगुस्त फौन श्लेगल ने बहुत ज़ोर से खंडन किया और श्लेगल के बाद जिसकी कड़ी आलोचना सर कार्नवाल लूविश ने प्रकाशित की, उसका खंडन तभी किया जा सकता है जब इन सब भाषाओं के व्याकरण की तुलना प्रोवाँशाल भाषा के व्याकरण से की जाय। अब यहाँ विचार कीजिए कि सहायक क्रिया **होना** के नाना रूपों की तुलना प्रोवाँशाल तथा फ्रेंच भाषाओं में करें तो बिना विलंब पता चल जायगा कि बहुत-से फ्रेंच रूपों ने मूल लैटिन भाषा के रूपों को अभी तक सुरक्षित कर रखा है और ये रूप प्रोवाँशाल भाषा में उतने पुराने नहीं मिलते। इसी लिए यह प्रायः असंभव हो जाता है, जैसा कि हम यह कहने लगें कि फ्रेंच प्रोवाँशाल की बेटी है और प्रोवाँशाल फ्रेंच भाषा की जननी है। इस कारण फ्रेंच भाषा लैटिन की पोती हुई। प्रोवाँशाल में **सेम** (Sem) है और फ्रेंच में इसका प्रतिरूप **नू सोम** (nous Somme, हम हैं), प्रोवाँशाल में इसका एक रूप **एद्ज़** (etz) है, इसका फ्रेंच प्रतिरूप **ऐत** (etes, है) है। प्रोवाँशाल भाषा में इस सहायक क्रिया का एक रूप **सौँ** (son) भी मिलता है जिसका फ्रेंच प्रतिरूप (Sont साँ, वे हैं) है। यह घटना अत्यन्त आश्चर्यजनक मानी जायगी यदि प्रोवाँशाल भाषा के 'सेम', 'एद्ज़' और 'सौँ' रूपों को फ्रेंच भाषा में लैटिन भाषा के 'सोम' 'ऐत' और 'साँ' जैसे अधिक स्वस्थ और पुराने रूपों में बाद को बदल दिया गया हो।

अब हम यदि इसी प्रकार की जाँच-पड़ताल और तुलना संस्कृत, ग्रीक तथा लैटिन के बीच में करेंगे तो हम तुरत ताड़ जायंगे कि आर्य भाषाओं के वंश-वृक्ष में इन भाषाओं के स्थान इन तीनों के व्याकरण के नाना रूपों के तुलनात्मक

अध्ययन से निश्चित हो जायंगे। लैटिन को ग्रीक से निकालना या ग्रीक को संस्कृत से उत्पन्न हुई बताना उतना ही असंभव है जितना कि फ्रेंच भाषा की उत्पत्ति प्रोवांशाल भाषा से बताना है। जब हम उस सहायक क्रिया 'होना' की ही तुलना करते हैं तो हमें यह पता चल जाता है कि संस्कृत में एक रूप **अस्मि** पाया जाता है, यही रूप ग्रीक में **एस्मि** रूप में दिखाई देता है, लिथवानिया में बोली जाने वाली व`मान काल की भाषा में यह रूप **एस्मि** ही है। इन सब में क्रिया के अंत में **मि** प्रत्यय जोड़ दिया गया है।

अब और सुनिए कि द्वितीय पुरुष का परिचायक प्रत्यय **सि** है। हम यह देख आये हैं कि संस्कृत की **अस्** धातु ग्रीक और लिथवानियन भाषा में **एस्** हो गयी है। अब इन धातुओं के द्वितीय पुरुष एक वचन में बनने वाले रूप देखिए—

संस्कृत रूप **अस्-सि** रहा होगा जो ध्वनि की सुविधा के लिए **असि** बना दिया गया। ग्रीक में यह रूप **एस्-सी** वर्तमान है और लिथवानियन भाषा में भी यह रूप **एस-सी** अभी तक वर्तमान रह गया है। जैसा ऊपर लिख चुके हैं, इस प्रसंग में यह बात विशेष ध्यान देने की है और यह बताती है कि मुँह को अधिक कष्ट करना असुविधाजनक लगता है और इस कारण संस्कृत में अति प्राचीन काल में ही **अस्-सी** का रूप **असि** हो गया था। अब भली-भाँति विचार कर लीजिए कि ग्रीक रूप **एस्-सी** आज भी लिथवानियन में अपने प्रारंभिक रूप में बोला जाता है और **अस्+सि** का रूप संस्कृत से लुप्त हो गया है और उसका विकृत रूप आरंभ से ही **असि** चलता है। तब यह किस प्रकार संभव हो सकता है कि **अस्-सि** के उच्चारणार्थ मुख-सुख के कारण बिगड़े हुए रूप **असि** से ग्रीक और लिथवानियन प्रतिरूप बने होंगे? उनमें आज तक मूल रूप दिखाई देता है, तो वे **असि** से कैसे निकले होंगे?

प्रथम पुरुष एक वचन के रूप संस्कृत, ग्रीक और लिथवानियन में एक से हैं। संस्कृत **अस्-ति** ग्रीक और लिथवानियन में भी प्रायः एक-सा है और लैटिन में इसका रूप **एस्-त** है जिसमें अंतिम प्रत्यय **इ** घिसते-घिसते लुप्त हो गया है। यदि हम अन्य भारोपा भाषाएँ देखें तो हमें पता चलेगा कि लैटिन में इसका प्रतिरूप **एस्त्** है और गौथिक में यह रूप **इस्ट** हो गया है और रूसी में **एस्त** ही रह गया है।

अब हम यदि इस सहायक क्रिया **होना** की और गहरी छान-बीन करें तो यह

भी प्रमाणित हो जायगा कि लैटिन ग्रीक-भाषा से होकर हमारे पास नहीं आयी है, अर्थात् इसका मार्ग स्वतंत्र था और ग्रीक तथा लैटिन भी एक आदि आर्य भाषा से जनमी हैं। एक वचन में लैटिन उतनी पुरानी नहीं है जितनी कि ग्रीक, क्योंकि **एस्-उम** के स्थान पर **ए** घिसकर लैटिन में **सुम्** रूप रह गया है। **एस्-सी** के स्थान पर **सी** प्रत्यय घिस गया है और लैटिन में केवल इसका **एस्** रूप रह गया है एवं मूल **एस्-ति** के स्थान पर लैटिन में **एस्-त्** रह गया है। इसी प्रकार उत्तम पुरुष बहुवचन में लैटिन भाषा में **एस्-उमुस** के स्थान पर **ए** घिस कर सुमुस ही रह गया है। ग्रीक भाषा का **एस्-मेस्** संस्कृत भाषा में केवल **अ** या **ए** घिसकर **स्मस्** रह गया है। मध्यम पुरुष में यह रूप इस प्रकार हो गया है कि मूल रूप **एस्-तिस्**, ग्रीक **एस्-ते** बन गया है और यह रूप स्पष्ट ही संस्कृत **स्थ** से बहुत ही पुराना मालूम पड़ता है। अब और तमाशा देखिए कि प्रथम पुरुष बहुवचन के रूपों में लैटिन के रूप ग्रीक भाषा के रूपों से भी प्राचीन हैं। इसमें व्याकरण के नियमों के अनुसार शुद्ध रूप **अस्-अन्ति** होना चाहिए था, किन्तु संस्कृत भाषा में आरंभ का अ घिसकर लुप्त हो गया है और हम देखते हैं कि केवल **सन्ति** रूप रह गया है और ग्रीक में यह रूप ध्वनि-परिवर्तन के चक्कर में पड़कर गड़बड़झाला **एइ-सि** हो गया है। इसके विपरीत लैटिन भाषा ने मूल धातु **एस्** की रक्षा की है, किन्तु संस्कृत शब्द **सन्ति** की भाँति ही, **अस्** धातु के प्रतिरूप एस् का **ए** उसमें भी उड़ गया है और संस्कृत भाषा के **सन्ति** (हैं) की भाँति ही उसमें **सुन्त** रूप है जिसका अर्थ भी "हैं" है।

विद्वान् श्रोताओं के सामने मुझे यह कहने की अधिक आवश्यकता नहीं मालूम पड़ती कि I am, Thou art और He is उक्त रूपों के दूसरी बार के ध्वनि-परिवर्तन से बने विकृत रूप हैं। गौथिक भाषा में इम im के स्थान पर **इस्म** रूप आता था और Is के स्थान पर गौथिक में Iss (इस्) बोला जाता था और इसका दूसरा रूप **इस्त** भी था।

ऐंग्लो-सेक्शन में **स्** के स्थान पर र हो जाता है (मिलाइए बहिर्गत और बहिष्कार, जहाँ **र=ष** दोनों रूप बहिस् से निकले हैं--अनु०), इसमें एक-वचन में Eorm (एऔर्म) का Eom (एऔम) बन गया और isind (**इसिन्द,** उच्चारण में इज़िन्द) का इ लुप्त होकर Sind **(जिन्द)** रूप चलता था जो जर्मन में अब भी वर्तमान है। एक वचन में ears (एआर्स) रूप चलता था जो **eart (एआर्ट) (ट=त) हो गया।** ऐंग्लो-सेक्शन में अंग्रेजी is (**इज**) के स्थान

पर is (**इज**) ही है। इसका बहुवचन ऐंग्लो-सेक्शन में गौथिक के समान **जिन्द** (Sind) ही है।

अन्य सब भाषाओं की इसी तरह की जाँच-पड़ताल करके विद्वान् लोगों ने अर्थात् तुलनात्मक भाषा-विज्ञान के संस्थापकों ने यूरोप और एशिया की भाषाओं का कुछ परिवारों में वर्गीकरण कर दिया और उन्होंने प्रत्येक भाषा-परिवार में नाना शाखाएँ आविष्कृत कीं जिनमें से प्रत्येक के भीतर बहुत-सी बोलियाँ प्राचीन और नवीन वर्तमान हैं।

इस समय कुछ भाषाएँ शेष रह गयी हैं जिनको हम परिवारों में नहीं बाँट सके हैं। इसमें कोई संदेह नहीं है कि इनमें से कई भाषाएँ निकट भविष्य में वंश-वृक्ष में अपने-अपने स्थान पर इसी जाँच-परख के फलस्वरूप निश्चित कर दी जायंगी। साधारण सिद्धान्त से सदा सतर्क रहना चाहिए क्योंकि उसमें कुछ अपवाद भी होते हैं। यदि हम इस सिद्धान्त पर दृष्टि डालें तो सब मिलाकर आज तक इस विषय में तथा भाषाओं के वंश-वृक्षों पर जो काम हुआ है वह यथेष्ट वैज्ञानिक ढंग पर हुआ है। भाषा-विज्ञान के भीतर भाषा के वंश-वृक्षों का वर्गीकरण निस्संदेह अन्य विज्ञानों से बहुत पूर्णता के साथ किया गया है, किन्तु भौतिक विज्ञान की बहुत कम शाखाएँ ऐसी मिलेंगी जिनमें वंश-वृक्ष के वर्गीकरण का काम अभी तक आंशिक रूप में ही हो पाया है, पूर्णता से नहीं। भाषा-विज्ञान में वंश-वृक्षों का वर्गीकरण एक ही प्रकार से हो सकता है और हुआ है, अर्थात् नाना भाषाओं के रूपों की तुलना और व्याकरण संबंधी नियमों की तुलना करके। इन रूपों और व्याकरण के नियमों द्वारा, शब्दों की ध्वनि घिस जाने और विकृत हो जाने पर भी सब भाषाओं की परंपरा का सूत्र प्राप्त करके हम यह तुलना का काम कर सकते हैं। हम यह जान जाते हैं कि फ्रेंच, इटालियन, स्पेनिश और पुर्तगाली भाषाएँ एक सामान्य भाषा लैटिन से निकली हैं, क्योंकि हम साफ-साफ देखते हैं कि इन सबके व्याकरण के रूप एक समान पाये जाते हैं और ये व्याकरण के रूप ऐसे हैं कि जिन्हें इन भाषाओं में से कोई भी स्वतंत्र रूप से निकाल नहीं सकती थी। इन भाषाओं में जो व्याकरण के रूप हैं, वे स्वयं इन भाषाओं में कोई अर्थ नहीं रखते अर्थात् दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि इन भाषाओं में व्याकरण के जो रूप वर्तमान हैं यदि उनको देखा जाय तो उनमें कोई जान नहीं है। वे निरर्थक हैं। देखिए कि स्पेनिश भाषा में किसी क्रिया में **ब** प्रत्यय जोड़ा जाता है और इटालियन में इसी के समान **व** जोड़ा जाता है, जिससे एक क्रिया Canto

(काण्टो) **कान्टाबा** या **कन्टावा** में वदल जाती है। उस **ब** या **व** प्रत्यय का कोई अर्थ नहीं है। यह पुछल्ले के रूप में लगा दिया जाता है। इटालियन या स्पेनिश भाषा में देखा जाय तो इस प्रत्यय का कोई अर्थ नहीं लगता। यह पुरानी पीढ़ियों से परंपरा द्वारा आया है। उस समय इस **ब** का कोई अर्थ भी था। खोज करते-करते हमको पता चलता है कि यह लैटिन के Cantabam (कान्टा-बाम) का **बाम** है और अब जब हम यहाँ पहुँच गये हैं तो आसानी से प्रमाणित किया जा सकता है कि यह **बाम** (Bam) मूल में एक स्वतंत्र सहायक-क्रिया रहा होगा। यह संस्कृत के **भवामि** में वर्तमान है और यही बाम ऐंग्लोसेक्शन के Beom (बेऔम) में भी छिपा हुआ है।

इसी कारण भाषा के वंश-वृक्षों का वर्गीकरण उन्हीं भाषाओं पर लागू होता है जो घिसकर विकृत हो गयी हों और जिनकी व्याकरण की प्रगति अवाध गति से न होती हो। यह इस लिए होता है कि पुरानी भाषा एक नया रूप ग्रहण कर लेती है और उसमें नया जानदार साहित्य पैदा हो जाता है। इस नयी भाषा में जहाँ तक संभव हो सकता है प्राचीन भाषा की रक्षा करने का प्रयत्न किया जाता है और इस भाषा में प्रगति या भाषा के इतिहास का कोई अर्थ नहीं रहता, उसका एक मात्र अर्थ यही रह जाता है कि इस भाषा के शब्द अपनी मूल भाषा के रूप और ध्वनि को बहुत तेजी से घिसते और माँजते हुए विकृत करते जाते हैं। यह बात भी समझ लेनी चाहिए कि किसी भी भाषा[1] में विकार आने से पहले एक समय ऐसा आता है कि जब वह भाषा उन्नति के शिखर पर पहुँच जाती है। तब ऐसा मालूम पड़ता है कि एक तथ्य हम लोगों ने अपनी आँखों से एकदम ओझल कर दिया कि वे भाषाएँ जो एक मूल भाषा से इधर-उधर बिखरने लगती हैं, उनमें कुछ इस प्रकार का फेर-फार हो जाता है कि उनके वंश-वृक्षों का वर्गीकरण करना या करने का प्रयत्न करना बहुत कठिन हो जाता है। यदि आप लोगों को वह ढंग याद होगा, जिसके अनुसार चीनी तथा अन्य भाषाओं में बहुवचन बनाया जाता है तथा जिसकी जाँच हमने पहले दिये गये एक भाषण में की थी, तो आप

१. भारत में एक ही मूल स्रोत से निकली पंजाबी, बंगाली, असमी, उड़िया, मराठी, गुजराती आदि भाषाओं में इसी नियम के आधार पर भेद हुआ है, क्योंकि इनका मूल संस्कृत है और ये पाली, प्राकृत से होकर हमारे पास तक पहुँची हैं।—अनु०

देखेंगे कि प्रत्येक भाषा और बोली बहुवचन के रूपों के लिए अपने-अपने रूप और प्रत्यय मनमाने तौर पर बना लेती है। उदाहरणार्थ जैसे बहुवचन के लिए heap, class, kind, flock, cloud आदि आदि। यह आशा करना युक्तिसंगत नहीं होगा कि यदि हम उक्त शब्दों में बहुवचन का प्रत्यय जोड़ दें और यह जान रखें कि उक्त शब्द कुछ प्राचीन भाषाओं के शब्दों के घिसे-मँजे विकारयुक्त रूप हैं तो इनमें जो बहुवचन का प्रत्यय जोड़ दिया जायगा वह कोई माने न रखेगा, क्योंकि वह भी शब्दों के साथ ही विकृत हो गया है। यह सत्य होने पर भी इससे यह निष्कर्ष किसी प्रकार से भी नहीं निकाला जा सकता है कि इन भाषाओं की उत्पत्ति एक समान-भाषा से नहीं हुई। भाषाओं की उत्पत्ति एक समान भाषा से हो सकती है और इस पर भी वे शब्द जो उस समान भाषा में सार्थक रूप से कारक-वचन-पुरुष और काल को बताने के लिए इनके सूचक सार्थक चिह्न के रूप में वर्तमान थे, वे शब्दों और इन चिह्नों के घिस-मँजकर विकृत होने के कारण सार्थक नहीं रह जाते। यदि इन चिह्नों की तुलनामूलक व्याकरण के सिद्धान्तों के अनुसार जांच की जाय तो इनका कोई विशेष परिणाम नहीं निकलेगा। ऐसी नयी बनती हुई भाषा के वंश-वृक्षों का वर्गीकरण उनका पूरा रूप न बन सकने के कारण बिलकुल असंभव है।

कुछ लोग ऐसा सोचेंगे कि ऐसी भाषाएँ यद्यपि व्याकरण के नियमों में भले ही एक समान न हों तो भी उनकी धातुएँ बहुत कुछ समानता रखती हैं और इस समानता के कारण उनकी एकता का परिचय मिलता है। यह भी बहुत सम्भव है कि उनमें उनकी संख्या, कुछ सर्वनाम और कुछ प्रति दिन के व्यवहार के काम में आने वाले अति साधारण शब्द शेष रह गये हों। पर इस हालत में भी हमें बहुत आशा नहीं रखनी चाहिए और कभी कभी ऐसा भी होता है कि जितने की हम आशा रखते हैं उससे बहुत कम समानता देखने को मिलती है। आप सज्जनों को यह याद ही होगा कि फ्रीजियन बोलियों में पिता शब्द के रूप कई मिलते हैं। लैटिन भाषा में भाई के लिए फ्रातर (Frater) शब्द है और तमाशा देखिए कि स्पेनिश में, जो लैटिन से निकली है, भाई को Hermano (हरमानो) कहते हैं। लैटिन में आग के लिए संस्कृत अग्निः का प्रतिरूप इगनिस (ignis) है, पर देखिए उसी भाषा की बेटी फ्रेंच भाषा में इसके लिए feu (उच्चारण कुछ फ्वे के समान) और इटालियन भाषा में फूओको (fuoco) (मिलाओ संस्कृत 'पावक'—अनु०)। इस बात में किसी को संदेह नहीं है कि जर्मन और अंग्रेजी

एक मूल समान भाषा से निकली हैं, तो भी अंग्रेज़ी का first (पहला) रूप जर्मन में नहीं मिलता। वहाँ छोटे राजाओं को Furst (फ्युर्स्ट) इसी लिए कहते हैं कि वे सबसे पहले या चोटी के गिने जाते हैं, किन्तु जर्मन में पहले के लिए Der Erst (डेर एरस्ट) कहते हैं। इसके विपरीत दूसरे के लिए जर्मन में व्याकरण-सम्मत रूप Zweite (त्स्वाइटे) आता है और अंग्रेजी में Second है, साथ ही इसकी भी तुलना कीजिए कि अंग्रेजी में प्रथम पुरुष संबंध-कारक शब्द its है और इसका प्रति-रूप जर्मन में Sein (ज़ाइन) है। इसको बोलियों की विभिन्नता या स्वतंत्रता कहते हैं। ाचीन तथा असाहित्यिक भाषाओं में इस स्वतंत्रता का बहुत दौर-दौरा है। और वे विद्वान् जिन्होंने बहुत सूक्ष्म दृष्टि से बोलियों की प्रगति का निरीक्षण किया हो उन्हें यह जानकर नाम मात्र आश्चर्य न होगा कि जो बोलियाँ एक समान भाषा से आयी हों उनमें बहुत भिन्नता देखने में आती है। यह भेद केवल व्याकरण की रूप-रेखा में ही नहीं पाया जाता बल्कि स्वयं उन विशेष शब्दों में, जो भाषाओं के वर्गीकरण में स्पष्ट रूप से बताते हैं कि अमुक-अमुक भाषाएँ एक समान भाषा से निकली हैं, क्योंकि उन भाषाओं में अमुक-अमुक शब्द हैं, जो बताते हैं और प्रमाणित करते हैं कि अमुक-अमुक भाषाओं का मूल एक है। हम थोड़ी देर बाद देखेंगे कि यह जानना किस प्रकार संभव होता है कि दो या अधिक भाषाओं में क्या संबंध है ? इस समय यह संतोषजनक माना जाना चाहिए कि मैंने आप लोगों को इतना तो स्पष्ट रूप से समझा ही दिया है कि भाषा के क्षेत्र में वंश-वृक्षों के वर्गीकरण का सिद्धान्त सब भाषाओं के लिए प्रयुक्त करने में कई स्थानों पर कठिनाई आ पड़ती है और इसे अति आवश्यक न समझना चाहिए कि भाषा के क्षेत्र में सर्वत्र यह सिद्धान्त लागू किया जाय। दूसरी बात यह है कि कई भाषाओं को, यद्यपि उनके वंश-वृक्षों का वर्गीकरण करना कठिन हो जाता है, तो भी अति प्राचीन काल से ही भिन्न वर्ग की न समझना चाहिए।

अब हमें यह देखना चाहिए कि भाषाओं के वंश-वृक्षों का वर्गीकरण कहाँ तक आगे बढ़ गया है और अब तक कितनी भाषाओं या बोलियों के परिवार संतोषजनक रूप से निश्चित किये जा चुके हैं। आप लोग अब इस बात को फिर याद करें कि कौन-सा कारण है जिसने हमें यह सुझाव दिया कि भाषाओं के वंश-वृक्षों का वर्गीकरण अवश्य होना चाहिए। इसका कारण यह है कि हम यह जानना चाहते थे कि अंग्रेजी में कुछ शब्दों का मौलिक अर्थ क्या था और उनका व्याकरण

का रूप क्या रहा होगा? और हमने यह पाया कि यदि हम कुछ शब्दों की खोज में गहरे पानी में पैठें—मान लीजिए कि हम I love और उसके भूतकाल के रूप I loved की छानबीन करना प्रारंभ करें, तो हमें उनके प्रारंभिक रूपों तक पहुँचना होगा। रोमान्स भाषाओं के शब्दों का इतिहास जानने के प्रयास में हम पता लगा चुके हैं कि एक बोली में पाये जाने वाले शब्दों के मूल रूप उसी भाषा की दूसरी बोलियों में सुरक्षित पाये जाते हैं। इस कारण यह अत्यन्त आवश्यक है कि हम इन प्राचीन भाषाओं को भी वंश-वृक्ष में वही स्थान दें, इनका वही संबंध स्थापित करें जो फ्रेंच, इटालियन, स्पेनिश और पुर्तगाली भाषाओं को एक ही परिवार के सदस्य सिद्ध करता है।

इंग्लैंड की आज बोली लिखी जाने वाली भाषा अंग्रेजी से आरंभ करके हमने इसकी खोज ऐंग्लोसेक्शन भाषा तक की। इसमें हम ईसा की सातवीं सदी तक पहुँच गये, क्योंकि केम्बल और थैर्प ने प्राचीन अंग्रेज़ी महाकाव्य Beowulf (बेओउल्फ)का उल्लेख किया है। इंग्लैंड में इससे पहले बेओउल्फ का कोई ज़िक्र नहीं मिलता। हम यह भली-भाँति जानते हैं कि सेक्शन्स, ऐंग्ल्स्, जूट्स यूरोप से हमारे यहाँ आये और उनके वंशजों ने जर्मनी के उत्तरी समुद्र के किनारे-किनारे पुरानी बोली जीवित रखी और आज भी वे निम्न जर्मन neder-duilsch (नेडर-डौयच्श) बोलते हैं जिसे अनेक अंग्रेज़ मल्लाहों ने वहाँ उनसे मिलने पर अंग्रेज़ी भाषा ही समझा। इन मल्लाहों ने एन्टवेर्प, ब्रेमेन और हाम्बुर्ग में वहाँ के लोगों से मिलने पर यही समझा कि इन बंदरगाहों में भी अंग्रेज़ी बोली का एक रूप बोला जाता है। निम्न जर्मन भाषा के भीतर बहुत-सी बोलियाँ सम्मिलित हैं, यह भाषा जर्मनी के उत्तरी भाग की निम्न भूमि में बोली जाती है, किन्तु खास जर्मनी में ये भाषाएँ भले ही कहीं-कहीं बोली जाती हों किन्तु साहित्यिक रचना में इनका व्यवहार कभी नहीं किया जाता। फीजियन प्रदेश की बोलियाँ निम्न जर्मन परिवार की हैं। इसी प्रकार डच भाषा और बेल्जियम में बोली जाने वाली फ्ले-मिश भाषा इनके भीतर शामिल की जाती हैं। फ्रीजिअन भाषा का अपना साहित्य है और वह बहुत पुराना है। इस भाषा में बारहवीं सदी के हस्तलिखित ग्रंथ मिलते हैं, इसलिए यह भी संभव है कि फ्रीज़ियन भाषा और भी पुरानी हो।[1]

१. "यद्यपि फ्रीज़ियन के प्राचीन हस्तलिखित कागज-पत्र और ग्रंथ प्राचीन

डच-भाषा एक देश की साहित्यिक और सारे हालैंड की राष्ट्र-भाषा है। यद्यपि हालैंड छोटा देश है जहाँ यह बोली जाती है, तो भी इसका महत्त्व है और इस भाषा की परंपरा भी इसकी शोध करते-करते, पुरानी सोलहवीं सदी की फ्रीजिअन भाषा तक पहुँचती है। प्राचीन समय में फ्रीजिअन भाषा की एक बोली फ्रेंडर्स और ब्रावांत नामक छोटे राज्यों के दरबारों में बोली जाती थी, किन्तु उस समय के बाद फ्लेमिश लोगों का अपना राज्य न रहने के कारण नाना दिशाओं से इसको दवाया गया। यह भाषा सौभाग्य से अभी तक मरी नहीं क्योंकि फ्लेमिश लोग आज भी इसे बोलते हैं, यद्यपि वेल्जियम के फ्लेमिश निवासी राज-काज में फ्रेंच और फ्लेमिश का व्यवहार करते हैं तथा हालैंड के फ्लेमिश लोग डच-भाषा का। फ्लेमिश-भाषा की सबसे पुरानी साहित्यिक कृति ईसाई धर्म पर एक महाकाव्य है, जिसका नाम हेल्यांट (Heljand=Heiland=मसीहा या मुक्तिदाता) है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति जो नवीं सदी में लिखी गयी थी आज भी प्राप्त है। यह महाकाव्य उस समय उन नये ईसाई बनाये गये लोगों को ईसा मसीह की भक्ति की प्रेरणा देने के लिए लिखा गया था। हमारे पास सेक्शन भाषा के हस्त-लिखित ग्रंथ भी हैं, जो हमको उसी समय से उसके साहित्य का परिचय देते हैं। सेक्शन भाषा का साहित्य सारे मध्य युग में पनपता रहा और सत्रहवीं सदी में वह लुप्त हो गया। इस साहित्य के अवशेष थोड़े ही पाये जाते हैं। यह भाषा भी निम्न जर्मन ही थी। निम्न जर्मन बहुत कुछ आगे बढ़ती, किन्तु मार्टिन लूथर ने

जर्मन की अपेक्षा मध्य काल की जर्मन भाषा से अधिक मिलते हैं, पर इन पत्रों और ग्रंथों से फ्रीजियन भाषा और पुरानी लगती है, क्योंकि यह प्राचीन उच्च जर्मन भाषा से मिलती-जुलती है। फ्रीजियन लोग अपने राजनीतिक इतिहास में और जातियों से अलग रहे और उन्होंने बड़ी ही उदारता के साथ अपने परम्परागत रीति-रिवाजों से प्रेम रखा। इस कारण उनकी भाषा में प्राचीनता की यथेष्ट सुरक्षा की गयी है। चौदहवीं सदी के बाद फ्रीजियन भाषा की प्राचीन शब्द-रूपावली सरासर विकृत होने लगी, लेकिन हम देखते हैं कि बारहवीं और तेरहवीं सदी में जो फ्रीजियन भाषा लिखी जाती थी, वह नवीं और दसवीं सदी की ऐंग्लोसेक्शन भाषा के टक्कर की है।"

Grimm, German Grammar (1st ed.) Vol. i. p. lxviii.

अपनी बाइबिल उच्च जर्मन में लिखी और उसका जनता में (भारत के 'रामचरित मानस' की तरह) काफी प्रचार हुआ तथा निम्न जर्मन मुरझा गयी।

जर्मनी की साहित्यिक भाषा **शार्लमान्य** (Sharles-Magne) के समय से उच्च जर्मन ही रही। पूरे जर्मनी में[१] यह भाषा और इसकी नाना बोलियाँ बोली जाती हैं। इसके इतिहास के स्पष्टतया तीन युग हैं। वर्तमान समय की भाषा इसका ही एक भेद है और आजकल पूरे देश में प्रचलित है। इस भाषा का लूथर के समय से बोलबाला है। मध्ययुग की उच्च जर्मन लूथर के समय तक रही और उसका आरंभ बारहवीं सदी में हुआ था। प्राचीन उच्च जर्मन का समय ग्यारहवीं सदी से सातवीं सदी तक था।

इस कारण ऊपर लिखे वर्णन के अनुसार हमें स्पष्ट ही पता चलता है कि उच्च जर्मन और निम्न जर्मन, जो दोनों भाषाएँ ट्यूटानिक-भाषा की शाखाएँ हैं, उनमें सातवीं सदी तक के साहित्यिक प्रमाण मिलते हैं। इससे हमें यह निष्कर्ष न निकालना चाहिए कि ईसा की सातवीं सदी तक जर्मन जाति की उपजातियाँ एक समान भाषा ट्यूटानिक बोलती रही होंगी और हमें यह भी न समझना चाहिए कि वाद के युग में इस ट्यूटानिक की दो अलग-अलग शाखाएँ निम्न तथा उच्च जर्मन हो गयी होंगी। एक सर्वसाधारण रूप की तथा व्याकरण के एक ही प्रकार के रूपों वाली ट्यूटानिक भाषा का अस्तित्व ऐतिहासिक काल में कभी नहीं रहा। इस बात का भी कोई प्रमाण नहीं मिलता जिससे यह सिद्ध किया जा सके कि इतिहास में किसी समय समान रूप से बोली जाने वाली निम्न तथा उच्च जर्मन सबकी बोली रही होगी और न ही कोई साधारण ट्यूटानिक भाषा ऐसी भाषा कभी रही होगी जिससे निम्न और उच्च जर्मन भाषाएँ निकाली गयी हों। नवीं सदी की फ्रीजिअन भाषा की एक शाखा सेक्शन भाषा के हस्तलिखित ग्रंथ फ्रीजिअन, ऐंग्लोसेक्शन, फ्लेमिश, डच तथा प्लाटडायत्श भाषाओं की भी उत्पत्ति नहीं बता सकते। इस विषय पर हम निश्चित रूप से इतना ही कह सकते हैं कि इंग्लैंड, हालैंड, फ्रीजिया और निम्न जर्मनी की भाषाएँ भिन्न-भिन्न समय में उन एक समान परिस्थितियों से गुजरीं, अर्थात् दूसरे शब्दों

१. स्वाबिया, बवेरिया, आस्ट्रिया, फ्रेंकोनियाँ आदि में और समुद्र के तटों पर इसी भाषा की बोलियाँ बोली जाती हैं।

में हम यह भी कह सकते हैं कि इस तरह उनके व्याकरण की प्रगति एक ही स्थान पर आकर रुक गयी। मैं यहाँ पर यह कहना भी उचित समझता हूँ कि इन नाना बोलियों के इतिहास का अध्ययन करते हुए हम जितनी सदियाँ पीछे को हटते जाते हैं, मालूम होता है कि उतना ही इनका रूप धीरे-धीरे खुलता जाता है और इनमें समान रूप से स्पष्टता आती जाती है। किन्तु इसका एक भी ऐसा प्रमाण नहीं मिलता कि जिससे हम दावे के साथ यह कह सकें कि कभी एक सबसे पुरानी और एक समान बोली जाने वाली कोई निम्न जर्मन भाषा रही होगी, जिससे नाना निम्न-जर्मन बोलियाँ उत्पन्न हुई होंगी। ऐसी एक प्रारंभिक, सर्वत्र समान रूप से बोली जाने वाली भाषा का आविष्कार व्याकरण-कारों की कपोल-कल्पना है, क्योंकि ये विद्वान् यह नहीं समझ सकते कि कभी-कभी नाना बोलियों की जड़ में एक प्रारंभिक समान-भाषा नहीं होती। इसी प्रकार वे इस बात का भी दावा करते हैं कि हमें आदि काल में साधारण रूप से बोली जाने वाली एक उच्च जर्मन भाषा भी माननी पड़ेगी, जो प्राचीन, मध्ययुग और अर्वाचीन काल की उच्च जर्मन की ही नहीं, बल्कि इस भाषा की आस्ट्रिया, बवेरिया, सुवाबिआ और फ्रेंकोनियाँ प्रदेश की स्थानीय बोलियाँ भी आदि काल की उस मूल उच्च जर्मन भाषा की संतान हैं। यह तमाशा देखिए कि ये विद्वान् यह भी चाहते हैं कि हम इस तथ्य पर विश्वास करें कि निम्न और उच्च-जर्मन शाखाओं के विभाजित होने से पहले सब प्रकार से संपूर्ण एक ट्यूटानिक भाषा रही होगी, जिसमें निम्न और उच्च-जर्मन एक साथ सम्मिलित थीं और इस ट्यूटा-निक भाषा में उक्त दोनों भाषाओं का बीज उपस्थित होगा। निदान निकालने का यह ढंग भले ही व्याकरण की छान-बीन के लिए उपयुक्त हो, लेकिन जब इन निदानों की हम ऐतिहासिक वास्तविकता से तुलना करते हैं तो ये हानिकारक सिद्ध होते हैं। जैसे कि संगठित होने से पहले एक जाति, परिवार, कुल, ग्राम तथा उपजाति में से होती हुई आगे बढ़ी होगी, उसी प्रकार नाना बोलियों से होकर, अंत में भाषा बनती है। वह व्याकरणकार जो यह सिद्धान्त निश्चित करता है कि ट्यूटानिक भाषा का अस्तित्व ऐतिहासिक होना चाहिए, वह उस ऐतिहासिक से किसी प्रकार अच्छा नहीं कहा जा सकता जो यह प्रमाणित करना चाहता है कि हेक्टर का नाती फ्रेकुस फ्रेंक जाति के सब मनुष्यों का पूर्वज है; और ब्रूटुस नाम से यह निदान निकालना चाहता है कि वह सब ब्रिटन लोगों का कभी तथा-कथित पिता रहा होगा। जब जर्मनों की नाना जातियाँ डेन्यूब नदी के रास्ते और

बाल्टिक होकर रोमन साम्राज्य पर आक्रमण करने और इटली में बसने के लिए नीचे को उतरीं तो गौथ्स-लोम्बार्ड-वेन्डाल (इस शब्द का अर्थ अंग्रेज़ी में डाकू है। यह एक जर्मन जाति थी जो बड़ी खूंखार और लुटेरी थी), फ़ेकस और बुर्गुंडियन नामक जर्मन उपजातियाँ अपने-अपने राजाओं के साथ अपने अलग नियमों और रीति-रिवाजों की रक्षा करती हुईं इटली, फ्रांस और स्पेन में बस गयीं। न्होंने रोमन साम्राज्य के संहार और विनाश की अंतिम दयनीय दशा पर दुलत्ती झाड़ कर उसे धूल में मिला दिया और आप वहाँ बस गयीं। तब हमारे पास कोई ऐसा कारण नहीं है जिससे हम विश्वास करें कि वे सब उपजातियाँ एक ही बोली बोलती थीं। यदि हमें कभी इन जर्मन उपजातियों की साहित्यिक कृतियों का कोई अवशेष मिल सकेगा तो हमें उन कृतियों में यह स्पष्ट दिखाई देगा कि उक्त उपजातियों में कुछ लोग निम्न जर्मन भाषा को अपनी खास विशेषताओं के साथ बोलते होंगे और कुछ उच्च-जर्मन की नाना बोलियाँ बोलते होंगे। इस कथन को केवल मेरा अनुमान ही नहीं मानना चाहिए, क्योंकि कुछ ऐसा अवसर आ पड़ा है कि एक सौभाग्यपूर्ण घटना आविष्कृत हुई है। इन जातियों में से कम से कम एक की बोली हमारे पास तक पहुँची है। प्राचीन काल में विशप उल्फिला ने बाइबिल का अनुवाद गौथिक भाषा में किया था।

इस महान् और विख्यात मनुष्य की कृति के बारे में मैं यहाँ दो शब्द कहने से न चूकूँगा। धर्म के इतिहासकारों ने इसकी जीवनी तथा इसके जीवन से संबंधित तिथियों के बारे में परस्पर विरोधी बातें लिखी हैं। इसका कारण आंशिक रूप से तो यह है कि उल्फिला Arian (अरिआन) सम्प्रदाय का ईसाई था और उसके विषय में हमें जो तथ्य प्राप्त होते हैं वे दो परस्पर विरोधी मत माननेवाले लेखकों के लिखे हुए हैं, ये लेखक कुछ तो अरिआन सम्प्रदाय के हैं और कुछ अथानेशिअन मत के हैं। इन तथ्यों से यदि हम उल्फिला के चरित्र का अंदाज लगाना जरूरी समझेंगे तो हमें उसके विषय में लिखे गये दोनों मतों के लेखकों के तथ्यों की छान-फटक कर सत्य का अंश अलग करना होगा। साथ-साथ यदि न्याय की दृष्टि से उसकी जीवनी के लेखकों के तथ्यों का विचार किया जाय तो यह मानना ही पड़ेगा कि जिस समय हम उसके जीवन की तिथियों और साधारण तथ्यों की जाँच-पड़ताल करेंगे, तो साफ ही है कि उसके जो मित्र रहे होंगे उनकी बातें अधिक सत्य होंगी क्योंकि वे रात-दिन आपस में मिलते रहते होंगे और उनकी पहुँच उस तक बहुत आसान रही होगी। इस कारण उसके जीवन की विशेष

घटनाओं और ऐतिहासिक रूपरेखाओं को हमें उसके अपने संप्रदाय के लेखकों के तथ्यों पर आधारित करना चाहिए।

विशेष लेखकों में, जिनसे हमें विशप उल्फिला के जीवन के विषय में बहुत कुछ सामग्री मिल सकती है, एक है फ्लोसटार्गियूस (Philostorgius) जिसकी रचनाओं की रक्षा फोट्यूस् (Photius) ने कर रखी है और दूसरे आक्सीन्टीउस (Auxentious) की रचनाएँ, जिनकी रक्षा मैक्सीम्युनुस् (Maximunus) ने उनकी हस्तलिखित कापी करके की है। ये ग्रंथ हाल में ही प्रोफेसर वित्स (Witz)[१] ने पेरिस के एक पुस्तकालय में से प्राप्त किये हैं।

इस हस्तलिखित प्रति में मैक्सीम्युनुस ने अपने वे विचार भी प्रकट कर रखे हैं, जिन्हें वह अरिआन सम्प्रदाय पर रखता था और उसने उल्फिला के जीवन का भी वह वर्णन लिख रखा है जो विशप आक्सीन्टीउस ने लिख रखा था। यह आक्सीन्थीउस उल्फिला का शिष्य था।

आक्सीन्टीउस का वर्णन जो मैक्सीम्युनुस ने मूल में से नकल करके हमारे लिए बचा रखा है, उससे यह पता चलता है कि विशप उल्फिला कुस्तुनतुनियाँ में मरा। वहाँ के सम्राट् ने उसे एक शास्त्रार्थ के अवसर पर उसमें भाग लेने के लिए निमंत्रित किया था। यह घटना तीन सौ इक्यासी ईसवी से बाद की नहीं हो सकती है, क्योंकि उसी आक्सीन्टीउस के कथनानुसार उल्फिला चालीस वर्ष तक विशप के पद पर काम करता रहा और फिलसटार्ग्यूट के अनुसार यूसेबिउस ने उसका विशप के पद पर अभिषेक किया। अब देखिए कि निकोमीडिया का यह यूसेबिउस पादरी (३४१ ई०) **तीन सौ इकतालीस** ईसवी में मरा। और दूसरे लोगों के अनुसार विशप उल्फिला कुस्तुनतुनियाँ में **तीन सौ इकतालीस** (३४१) ईसवी में ही मरा, किन्तु उस समय उसकी आयु सत्तर वर्ष की थी।

× × ×

१. Ueber das Leben und die Lehre des Ulfila, Hannover, 1840, **(उल्फिला के जीवन और उसकी शिक्षा पर)**।

Ueber das Leben des Ulfila von Dr. Bessell, Gottingen, 1860, **(उल्फिला के जीवन पर)**।

उल्फिला[१] ने बाइबिल के बादशाह नामक (Kings) भाग को छोड़कर सारी की सारी पुस्तक का अनुवाद किया है। पुरानी एंजील को उसने सेप्टागिंट से अनूदित किया और नये सुसमाचार का अनुवाद उसने ग्रीक रूपान्तर से किया। पर यह अनुवाद ठीक उस रूप में नहीं किया गया जिस रूप में बाइबिल का अंग्रेजी अनुवाद हमारे सामने है। यह बड़े ही दुर्भाग्य का विषय है कि उसके गौथिक अनुवाद का बहुत बड़ा भाग अब मिलता ही नहीं है और जो भाग हमारे पास तक आया है, वह भी कुछ कम नहीं; क्योंकि वह भाषाशास्त्र के काम के लिए पर्याप्त है। इसमें संत पाल के मूल पत्र हैं, और वे भी सब पूरे-पूरे नहीं मिलते, पर यथेष्ट हैं, और कुछ भाग भजनों के मिलते हैं, जिनमें एजरा और नेहेमियाँ के भजन हैं। यद्यपि उल्फिला पश्चिमी गौथ जाति का था, किन्तु इसका बाइबिल का अनुवाद सभी गौथिक जातियाँ बहुत प्रेम से पढ़ती थीं, भले ही वे स्पेन और इटली में जाकर बस गयी थीं। गौथिक भाषा नवीं सदी के बाद नहीं बोली जाने लगी और मर गयी। जब इन गौथों के विशाल साम्राज्य का सूरज अस्त हो गया तो साथ-साथ गौथिक भाषा का दिया भी बुझ गया। बस, उल्फिला का बाइबिल का गौथिक अनूवाद भी साथ-साथ नष्ट हो गया, किन्तु पाँचवी सदी में नकल की गयी इसकी एक प्रति जर्मनी के वेरडेन नामक नगर के गिरजाघर में सुरक्षित रखी गयी और ईसा की सोलहवीं सदी के अंत में एक मनुष्य जिसका नाम आर्नोल्डमर-काटोर था और जो राजा चौथे विलियम के दरबार में नौकर था तथा यह राजा हेस्सिया राज्य का सरदार था, उस मनुष्य ने सबका ध्यान इस चर्मपत्र पर लिखे गये उल्फिला के बहुत बड़े बाइबिल के अनुवाद के खंडों की ओर खींचा। बाद को यह हस्तलिखित ग्रंथ प्राग ले जाया गया। १६४८ ई० में स्वीडन के राजा कोएनिक्समार्क ने प्राग पर आक्रमण किया और विजय प्राप्त करने पर इस राजा ने इस ग्रंथ को स्वीडन के अपसाला नामक नगर के विश्वविद्यालय में पहुँचा दिया। यह बहुमूल्य हस्तलिखित ग्रंथ वहाँ आज भी सुरक्षित है। इस हस्तलिखित पुस्तक के चर्मपत्र का रंग बैंगनी है और उस पर जो अक्षर लिखे

१. उल्फिला की जीवनी के विषय में हम लोगों को कोई विशेष रस नहीं मिलता और न उसका भाषाशास्त्र से कोई संबंध है। इस कारण उसकी जीवनी के संबंध का कुछ अंश छोड़ दिया गया है। (अनु०)

गये हैं वे चांदी के रंग के हैं तथा उस पर जो जिल्द चढ़ायी गयी है वह ोस चांदी की है।

१८१८ ई० में इसकी एक हस्तलिखित प्रति और आविष्कृत हुई। कार्डिनल माई और काउन्ट कास्टिल्लयो नेबोब्बियो के ईसाई मठ में गये और वहाँ उनको यह हस्तलिखित प्रति सुरक्षित रूप में मिली। ऐसा पता चला है कि यह प्रति और भी पुरानी है। गौथिक सम्राट् टेयोडोरिक का साम्राज्य जब इटली में नष्ट-भ्रष्ट हुआ तो यह उस समय नकल की गयी थी।

उल्फिला अवश्य ही एक असाधारण व्यक्तित्व का मनुष्य रहा होगा। यह कम हिम्मत की बात नहीं है कि उस अंधकार के युग में जब कि ईसाई धर्म में सर्वत्र लैटिन भाषा का ही साम्राज्य रहा, तब उसके मन में बिना किसी संकोच के यह विचार उठा कि बाइबिल का अनुवाद एक गँवारू समझी जाने वाली बोली में किया जाय। उस समय एक पादरी लैटिन और ग्रीक के सिवा किसी अन्य भाषा में लिखने की हिम्मत ही नहीं कर सकता था। इनके सिवा और सब भाषाएँ उस समय बर्बर समझी जाती थीं। यह बात आश्चर्य की है कि उसने उसी समय देख लिया था कि भले ही गौथिक साम्राज्य अभी नष्ट हो गया हो, किन्तु इसका भविष्य बहुत उज्ज्वल है और यह भी उसने ताड़ लिया था कि रोमन और बाइजेन्टाइन साम्राज्य निःसत्त्व हो गये हैं और होंगे। इस विश्वास ने उल्फिला को यह साहस दिया कि बाइबिल का गँवारू भाषा गौथिक में उल्था करे। उल्फिला की मृत्यु के बाद शीघ्र ही कुस्तुनतुनियाँ के गौथ लोगों में ईसाइयों की संख्या दिन दूनी और रात चौगुनी बढ़ी और वहाँ का पादरी क्रीसोस्टाम जो कुस्तुनतुनियाँ का विशप था उसे यह आवश्यकता पड़ी कि इस राजधानी में एक नये गिरजे की स्थापना हो, जहाँ प्रार्थना आदि ईसाई धर्म के सब काम गौथिक भाषा द्वारा चलाये जायं।

उल्फिला की गौथिक भाषा, जहाँ तक इसकी ध्वनियों की बनावट का संबंध है, यह निम्न-जर्मन भाषा से बहुत कुछ मिलती-जुलती है; किन्तु जहाँ तक इसके व्याकरण के रूपों का संबंध है, यह ऐंग्लोसेक्शन भाषा की सबसे पुरानी कृति बेओउल्फ से बहुत ही प्राचीन है। यह राजा शार्लमान्य के समय की प्राचीन उच्च जर्मन से भी अधिक पुरानी है। ये थोड़े-से अपवाद, इस कारण से बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं कि इनसे प्रमाणित होता है कि व्याकरण के रूपों की दृष्टि से और साथ ही साथ ऐतिहासिक तुलनात्मक दृष्टि से इस गौथिक भाषा से ऐंग्लोसेक्शन या

उच्च-जर्मन भाषा इन-दोनों[1] का निकलना असंभव है। उदाहरणार्थ यह दिखलाना प्रायः असंभव होगा कि उच्च-जर्मन के, वर्तमान काल के रूप, **नेरियामेस** के (Nergames) को हम गौथिक रूप **नस्याम्** (Nasjam) से किसी प्रकार नहीं निकाल सकते, क्योंकि हम को मालूम है कि उत्तम पुरुष वहुवचन में संस्कृत में **मस्** **(स्म)** और ग्रीक में **मेस्** है तथा लैटिन-भाषा में यही रूप **मुस्** हो गया है।

जर्मन जाति की अनेकानेक बोलियों में से एक गौथिक है। इनमें से कुछ अन्य ब्रिटिश टापुओं, हालैंड, फ्रीजिआ और निम्न तथा उच्च-जर्मन भाषाओं के साहित्यिक रूप में पायी जाती हैं। कुछ अन्य भाषाएँ कभी की मर चुकी हैं तथा कुछ दूसरी भाषाएँ सदी-दर सदी-चलती रहीं और उनमें साहित्य का कभी नाम भी न रचा गया। चूँकि गौथिक ही एक ऐसी भाषा है जिसकी खोज में चलते-चलते हम चौथी सदी तक पहुँच चुके हैं, जर्मन जाति की अन्य बोलियाँ ईसा की सातवीं सदी में ही लुप्त हो चुकी थीं, इस कारण, कुछ विद्वानों ने भूल से इसे ट्यूटानिक भाषा का मूल स्रोत समझा। यहाँ वही दलील लागू होती है, जो हमने प्रसिद्ध भाषावैज्ञानिक रेनुआर के विरुद्ध प्रस्तुत की थी कि दक्षिण फ्रांस की प्रोवाँशाल भाषा, लैटिन से निकली हुई अन्य छः भाषाओं की जननी नहीं हो सकती। हम इसके साथ पूरे जोर से यह कह सकते हैं कि जो लोग यह दावा करते हैं कि गौथिक ट्यूटानिक भाषा-परिवार की बोलियों में इस समय सबसे पुरानी है यहाँ तक तो ठीक है; वह सबसे जेठी बहन है, किन्तु इसे उस परिवार का मूल स्रोत नहीं कहा जा सकता।

बात यह है कि वास्तव में ट्यूटानिक भाषा-परिवार की एक तीसरी धारा भी है, जो निम्न और उच्च-जर्मन की भाँति ही यह दावा करती है कि वह भी उक्त भाषाओं के समान ही इस परिवार-वर्ग के भीतर होने पर भी पूर्ण स्वतंत्र है और जिसे हम गौथिक, निम्न तथा उच्च-जर्मन भाषाओं के समान ही रख सकते हैं। वह उक्त भाषाओं की बहन है। इस भाषा का परिवार स्केन्डीनेवियन भाषाओं

१. **उन उदाहरणों के लिए जहाँ यह भी देखा जा सकता है कि प्राचीन उच्च जर्मन गौथिक से भी पुरानी है, देखिए** Schleicher, Zeitscrift fiir, V. S. b. iv S. 266; Bugge, **उक्त ग्रन्थ** b. v. s. 59.

का है। इसमें तीन साहित्यिक भाषाएँ हैं। स्वीडन, डेनमार्क और आइसलैंड की भाषाओं में पुराना और नया साहित्य बहुत पाया जाता है। इसमें बहुत-सी स्थानीय बोलियाँ ऐसी हैं जो विशेष कर नारवे[1] देश की विरल घाटियों और समुद्र के निकट के फियोर्डों (Fyords) में केवल बोली जाती हैं, किन्तु इन एकान्त और सुदूर स्थानों की साहित्यिक भाषा डैनिश है।

सब लोगों का कुछ ऐसा अनुमान[2] है कि ग्यारहवीं सदी तक—जो अति प्राचीन समय नहीं कहा जा सकता, स्वीडन, डेनमार्क और नारवे में एक ही समान बोली बोली जाती रही होगी और यह भाषा आइसलैंड में जैसी की तैसी अब तक बनी हुई है, किन्तु स्वीडन और डेनमार्क में यह भाषा दो भिन्न-भिन्न राष्ट्रीय भाषाओं में परिणत हो गयी। इस बात में नाम मात्र संदेह नहीं किया जा सकता है कि जब आइसलैंड का चारण (Skald) अपनी वीरगाथा आइसलैंड, स्वीडन, डेनमार्क, इतना ही नहीं बल्कि स्वयं इंग्लैंड में सुनाता था, तो सब सुनने वाले लोग उसे सर्वत्र समझ लेते थे, उन्हें इसे समझने में कठिनाई नहीं पड़ती थी। यह स्थिति तब तक रही जब कि विलियम ने फ्रांस से आकर इंग्लैंड में फ्रेंच चलायी और पूर्व[3] में स्लौवोनिक बोलियाँ चलने लगीं। यद्यपि इन देशों में एक ही और समान भाषा सर्वत्र समझी जाती रही होगी, किन्तु यह संदेह का विषय है कि सब उत्तरीय यूरोप की जातियाँ सोलहों आने एक ही भाषा बोलती होंगी। क्या ग्यारहवीं सदी से पहले स्वीडन की नाना उपजातियाँ और कुल, इसी तरह से डेनमार्क की उपजातियाँ और कुल नाना भाषाएँ नहीं बोलते होंगे? क्या स्केन्डीनेविया जाति की बोलियों में ग्यारहवीं सदी से बहुत पहले ही नाना भेद उपस्थित न हो गये होंगे? यह स्पष्ट है कि यह उत्तरीय भाषा दो शाखाओं में बँट गयी है जिन्हें स्वीडन के विद्वान् पूर्वी और पश्चिमी शाखाएँ कहते हैं। यह पूर्वी भाषा वह है जो प्राचीन समय में नारवे और आइसलैंड में बोली जाती थी और पश्चिमी शाखा प्राचीन समय में स्वीडन और डेनमार्क में जनता द्वारा व्यवहार में लायी जाती थी। अब एक तथ्य और सुनिए कि स्केन्डीनेविअन जाति में यह विभाजन उस काल से पहले

१. See Schleicher, deutsche. Spreiche, p. 94.

२. उक्त ग्रंथ, पृष्ठ ६०

३. Weinhold, Altnordisches Leben, p. 27; Gunnlaugssaga, c. 7.

उपस्थित हो गया था जब कि ये पूर्वी और पश्चिमी भाषा बोलने वाली जातियाँ स्केन्डीनेविआ में बसी भी नहीं थीं। पश्चिमी शाखा रूस होकर पश्चिम में आयी और आइसलैंड द्वीप से भी यूरोप होकर दक्षिणी स्केन्डीनेविआ में बसी और पूर्वी शाखा बौथनिया की खाड़ी से फिनों और लैपों की भूमि में से होकर यहाँ के उत्तरी पहाड़ों में बस गयी और फिर वहाँ से दक्षिण तथा पश्चिम की ओर बढ़ी और वहाँ बस गयी। स्केन्डीनेविअन भाषा के सबसे पुराने रूप दो **एड्डा-ओं** (पौराणिक काव्यों) में पाये जाते हैं। इनमें से पुराना एड्डा जो पद्य में लिखा गया है, इसमें प्राचीन देवताओं की स्तुति में कविता है अर्थात् इसमें पौराणिक वर्णन है और दूसरे तथा बाद के एड्डा का नाम **स्नोरिस-एड्डा** है। यह भी पौराणिक कथाओं से भरा है, पर गद्य में है। ये दोनों एड्डा नारवे में नहीं लिखे गये बल्कि आइसलैंड में, जहाँ नारवे वाले कुछ काल नारवे में रहने के अनंतर गये और बसे, लिखे गये। यह आइसलैंड एक द्वीप है और उतना ही लंबा चौड़ा है जितना आयरलैंड है। इसका पता आठवीं सदी[१] में चला जब कि आयरलैंड का एक फकीर आइसलैंड पहुँचा और बस गया। फिर ईसा की नवीं सदी में तीन नारवेजियनों ने आइसलैंड का आविष्कार नये सिरे से किया और प्यूरीटन धर्म तथा रिपब्लिकन विचारों के नारवेजियन आइसलैंड जाकर बसने लगे। आइसलैंड द्वीप की दूरी नारवे से सात सौ पचास मील है। इसके बाद हारफाग्र नामक राजा ने उत्तरी यूरोप के अधिकांश राजाओं पर विजय प्राप्त की और उसके अत्याचारी राज्य में छोटे-बड़े सभी राजा उसके दरबार में हाजिरी भरने लगे। इनमें कुछ राजा ऐसे थे, जो न तो उसका मुकाबला कर सके और न ही उसके राजदंड के नीचे गुलाम बन सके। ऐसे वीर पुरुषों ने हताश होकर अपना देश छोड़ा और फ्रांस, इंग्लैंड, आइसलैंड में जाकर बस गये। ये वीर ऊँचे खानदानों के थे और इन्होंने सदा स्वतंत्रता को ही अपना पूज्य ध्येय बना रखा था। इन वीरों ने आइसलैंड में जाकर भी वहाँ उच्च जातियों का एक प्रजातंत्र राज्य स्थापित किया। यह राज्य वैसा ही था जैसा कि हेराल्ड के विजय प्राप्त करने से पहले नारवे का था। आइसलैंड का राज्य खूब चमका और १००० ई० में यहाँ के निवासियों ने ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया। यहाँ शिक्षा के लिए बहुत-सी पाठशालाएँ खोल दी गयीं, दो विशप भी पोप ने

१. **देखिए** Dasent's Burnt Njal Introduction.

यहाँ भेजे और ग्रीक तथा लैटिन की बहुत अच्छी और ढंग की पढ़ाई होने लगी। वहाँ के निवासियों ने अपना साहित्य का अध्ययन भी न छोड़ा और अपने प्राचीन नियमों का संकलन किया तथा उनका अध्ययन जा ी रखा और उनका ठीक-ठीक निरूपण करने का प्रयास किया। आइसलैंड वालों को घूमने-फिरने का बड़ा शौक था और उनका नाम प्रसिद्ध यात्रियों में गिना जाता है। इन लोगों को अध्ययन की इतनी बड़ी चाट थी कि आइसलैंड के विद्यार्थियों के नाम यूरोप के बड़े-बड़े नगरों के विद्यालयों में ही नहीं पाये जाते बल्कि ये लोग ज्ञान की धुन में पूर्वी देशों को भी ज्ञान-आहरण के लिए गये। ईसा की बारहवीं सदी के आरंभ में आइसलैंड की जनसंख्या पचास हज़ार हो चुकी थी। तेरहवीं सदी तक उनकी बौद्धिक और साहित्यिक उन्नति होती रही जिस समय नारवे के राजा छठे हाकौन ने इन थोड़े से धीरों पर विजय प्राप्त की। १३८० ई० में, आइसलैंड और नारवे डेनमार्क के अधीन हो गये। १८१४ ई० में जब डेनमार्क ने स्वीडन को नारवे का देश दे दिया तो भी आइसलैंड डेनमार्क के अधीन ही रहा,[१] जैसा कि यह आज भी है (१८६८ ई० में)।

पुराने काव्य जिनका नारवे में आठवीं सदी में बहुत ही प्रचार था और वह भाषा जो चारणों द्वारा नवीं सदी में उन्नत की गयी वह स्वयं नारवे में कभी की लुप्त हो गयी होती, यदि यह महान् उत्साही और ज्ञान के प्रेमी आइसलैंड्रों द्वारा बहुत यत्न से सुरक्षित न रखी जाती। इन साहित्यिक कृतियों में सबसे महत्त्वपूर्ण वे छोटे-छोटे गीत हैं, जिन्हें आइसलैंड की भाषा में **हिलिआर्ड** या क्वीडा कहते हैं। इनमें उन्होंने अपने देवताओं और वीरों की गाथा गा रखी है। इन गीतों का समय बताना टेढ़ी खीर है, परन्तु यह निश्चित है कि ये गीत इन वीरों के नारवे से आइसलैंड को भागने से पहले बन गये थे। संभव यह है कि इनका निर्माण ईसा की सातवीं सदी में हुआ हो। यह वही सदी है जिस समय के ऐंग्लो-सेक्शन और निम्न तथा उच्च-जर्मन के कुछ अधूरे लेख प्राप्त हुए हैं। इन गीतों का संग्रह बारहवीं सदी में सेमोन जग़िफुस्सो ने किया था। सोलहवीं सदी में इन गीतों का एक और संग्रह प्रकाशित किया गया जो तेरहवीं सदी के किसी हस्त-लिखित ग्रंथ से लिया गया था। इस मुद्रित संस्करण का नाम 'एड्डा' या 'पर दादी'

१. द्वितीय महायुद्ध के बाद आइसलैंड पूर्ण स्वतंत्र हो गया। (अनु०)

रखा गया था। यह संग्रह प्राचीन या एड्डा काव्य कहा जाता है। क्योंकि कुछ समय बाद एक और एड्डा भी बना जिसके विषय में कहा जाता है कि यह स्नोरिस स्टुल्सोन ने रचा था। उक्त नामों से दोनो **एड्डा** ठीक-ठीक पहचाने जा सकें इस लिए उक्त दो नामकरण किये गये।. . .यह स्नोरिस स्टुल्सोन आइसलैंड का हेरोडोटस कहा जाता है और इसका मुख्य ग्रंथ हाइम्स्कूंगला अर्थात् संसार की 'अंगूठी या घेरा' है. . .इसमें उसने अपने अति प्राचीन इतिहास के लिए लोक-गीतों के भी उद्धरण दिये, जिनसे पुरानी भाषा के अवशेष भी उसमें संचित रखे गये हैं। इनकी भाषा तेरहवीं सदी की कविता की है और बहुत ही कृत्रिम है। यह प्राचीन एड्डा से बहुत ही भिन्न है जिसमें कविता का प्रवाह स्वाभाविक है। स्नोरिस स्टुल्सोन ने अपने संचित गीतों में 'कविता कला' भी दिखलायी है जो तेरहवीं सदी की तरह बिलकुल कृत्रिम है। उदाहरणार्थ ये नयी कविता वाले किसी भी पदार्थ को उसके असली नाम से नहीं लिखते थे बल्कि शब्दों को तोड़-मरोड़कर और घुमा-फिराकर उसका आशय प्रकट करते थे। जैसे जहाज को वे लोग जहाज के नाम से नहीं पुकारते थे, बल्कि उसे जल का महापशु[1] कहते थे, रक्त को वे रक्त नहीं कहते थे, बल्कि 'यंत्रणा के ओस कण या तलवार का पानी' कहते थे, योद्धा को योद्धा नहीं कहते थे बल्कि उसके लिए उनका प्रयोग था 'सशस्त्र वृक्ष या युद्ध तरु', तलवार को वे तलवार नहीं कहते थे बल्कि उसके स्थान पर 'घावों की ज्वाला' का प्रयोग करते थे। इस प्रयोगवादी भाषा में कविता लिखी जाती थी। इसका तमाशा देखिए कि इस कविता में एड्डा काव्य के प्रसिद्ध नायक ओडिन के नाम के एक सौ पंद्रह भिन्न-भिन्न प्रयोग थे और इन कृत्रिम कवियों की भाषा का चमत्कार देखिए कि एक द्वीप के एक सौ बीस ऐसे ही भिन्न-भिन्न नाम गढ़े गये थे।

इस प्रकार हमने ऊपर के वर्णन में यह निदान निकाला है कि ट्यूटानिक भाषा की चार धाराएँ अर्थात् उच्च-जर्मन, निम्न-जर्मन, गौथिक और स्केन्डीनेविअन भाषाएँ हैं और हमने यह भी सिद्ध किया है कि ये चार भाषाएँ और इन भाषाओं की अनेक छोटी-मोटी बोलियाँ आरंभ में एक-सी रही होंगी और वे

१. पाठक हिन्दी कविता के क्षेत्र में प्रयोगवादी कविता को देखें। इसमें फिर वही नवीनतम एड्डा की बोली का रूप प्रकट होने लगा है। (अनु०)

ट्यूटानिक भाषा के नाना रूप हैं। अपनी सुविधा के लिए हम इस ट्यूटानिक भाषा को आर्य भाषा के उस महान् भाषा-परिवार की एक महान् शाखा समझेंगे, जिससे इसका बहुत बड़ा नाता है, किन्तु हमें सदा यह ध्यान रखना चाहिए कि इस सबसे प्राचीन और समान भाषा का अस्तित्व कभी देखने में नहीं आया। यह भी हमें समझ लेना चाहिए कि सब भाषाओं के समान जर्मन भाषा की भी उत्पत्ति बोलियों से हुई, जो जर्मनी के आसपास के नाना देशों की राष्ट्रीय भाषा बनकर इस समय हमारे सामने खड़ी है। अब हम तेज़ी के साथ आगे बढ़ेंगे और सैनिक नकशों के अति सूक्ष्म विस्तार को छोड़कर हमें अब मोटी रूपरेखा से संतोष करना पड़ेगा और उस भाषा का नामकरण करना होगा जो अन्य भाषाओं को शामिल करके तथा ट्यूटानिक भाषा को अपने में मिलाकर एक महान् भाषापरिवार कहा जायगा और उसका नाम है—**भारोपा या आदि आर्य-भाषा परिवार।**

अब हम पहले रोमान्स या लैटिन से निकली हुई भाषाओं का वर्णन करेंगे। छोटी-मोटी बोलियों को ध्यान में न रखते हुए, इस समय, यूरोप में लैटिन से निकली हुई छः भाषाएँ राष्ट्रीय भाषाओं के रूप में चल रही हैं। यदि हम यह बात ठीक-ठीक शब्दों में कहें तो यह कहना पड़ेगा कि, ये सब रोमान्स भाषाएँ असल लैटिन के बाद की पुरानी इटालियन भाषा से निकली हैं। ये भाषाएँ हैं—पुर्तगाल, स्पेन, फ्रांस, इटली, वल्लाखिआ[1] और स्विटजरलैंड के एक भाग की भाषा जिसे

१. जिस जाति का नाम हमने वल्लाखियन बताया है वह स्वयं, अपने को रोमानीय कहती है और उसकी भाषा रोमानिअन कहलाती है। यह रोमान्स भाषा वल्लाखिया और मौल्दाविया, हंगरी के कुछ हिस्सों, ट्रांसिलबानियाँ और बेसाराबिया में बोली जाती है। डैन्यूब के दाहिने किनारे पर यह बोली थाकिया, मैसिडौनिया और थेसाली में भी बोली जाती है।

डेन्यूब इस बोली के दो भाग कर देती है। एक भाग का नाम है उत्तरीय अर्थात् डेको रोमानी और दूसरे भाग का नाम है दक्षिणी रोमानी। यह मैसिडोनियाँ में भी बोली जाती है। इस बोली की उत्तरी शाखा में कम मिश्रण है और इसके बोलने वालों में साहित्यिक संस्कृति का भी प्रचार है तथा दक्षिणी शाखा में बहुत-से अल्बानियन और ग्रीक शब्द घुस गये हैं, और इसके व्याकरण के रूप अभी तक स्थिर नहीं हो पाये हैं।

रूमानेज या रोमांश[१] कहते हैं। इन भाषाओं में प्रोवाँशाल भी शामिल है जो मध्ययुग में फ्रांस के ट्रूबाडोर नामक चारणों की भाषा रही और जिसको इन चारणों ने अति प्राचीन समय में ही अपने गीतों द्वारा साहित्य के अति उच्च शिखर पर पहुँचा दिया था, यह भाषा इस समय बहुत ही निम्नकोटि की बोली रह गयी

आधुनिक वल्लाखियन भाषा रोमन साम्राज्य के डाकिया नामक प्रदेश में बोली जाने वाली भाषा की वंशज है।

इस डाकिया प्रदेश के रहने वालों का पुराना नाम थ्राकियन था और इनकी बोली का नाम इलीरियन था। यह इलीरियन भाषा अब इतनी नष्ट हो गयी है कि इस समय इसका हमारे पास कोई नमूना नहीं है कि हम स्थिर कर सकें कि इसका ग्रीक या किसी अन्य भाषा से क्या संबंध था ?

रोमन लोगों ने ईसा से पूर्व २१९ सन् में इस इलीरिया प्रदेश को जीता। ईसा के ३० वर्ष पूर्व इन्होंने मोएसिआ को जीता और १०७ ई० में तरायान नामक राजा ने इस डाकिया को रोमन साम्राज्य का एक प्रदेश बना दिया। इस समय थ्राकियन लोग सार्माशियन जातियों के आक्रमण कर देने के कारण अपने देश से भाग गये। जिन रोमनों ने यहाँ उपनिवेश बसाये उन्होंने अपनी भाषा लैटिन का भी यहाँ प्रचार किया और २७२ ई० तक डाकिया रोमन साम्राज्य का एक प्रदेश बना रहा। उस समय यहाँ गौथों का आक्रमण हुआ और उस समय रोमन सम्राट् औरेलियन ने यह देश उनको अर्पण कर दिया। उस समय रोमन उपनिवेश के बहुत-से लोग वहाँ से भाग गये और डैन्यूब नदी के किनारे पर जाकर बस गये।

४८९ ई० में स्लेवोनिक जातियाँ मोएसिया और थ्राकिया की ओर आगे बढ़ीं और बस गयीं। ६७८ ई० तक वे मोएसिया में अच्छी तरह बस गयीं और अस्सी वर्ष बाद मैसिडोनिया में एक प्रदेश बनाया गया जिसका नाम स्लाविनिया रखा गया। यह स्लाविनिया आजकल स्लोवेनियाँ हो गया है। (अनु०)

१. बाइबिल सोसायटी ने इस रूमानी अथवा रोमांश भाषा में सारी बाइबिल का अनुवाद कर दिया है, ताकि स्विटजरलैंड के ग्रीजों, कैंटन के निवासी उससे लाभ उठा सकें। बाइबिल का अनुवाद निम्न-रूमानी भाषा में भी हो गया है जो आस्ट्रिया के टाइरोल नामक प्रदेश की उत्तरी सीमा पर बोली जाती है।

हैं। सबसे प्राचीन प्रोवाँशाल कविता जिसका नाम बोएटीउस का गीत है, दसवीं सदी में रची हुई बतायी जाती है। लबोएफ इसे ग्यारहवीं सदी में रची गयी बतलाता है। इस समय हमें उत्तरी फ्रांस की बोली के एक गीत का पता चला है, जिसका नाम 'यूलालिया' का गीत है, यह लांग द ओई (Langue d' oi) अर्थात् उत्तरी फ्रांस की भाषा में रचा गया है और यह लांग-द् आक (Langue d' Oc) अर्थात् फ्रांस के दक्षिण में प्रचलित प्रोवाँशाल भाषा की कृति से भी पुराना है। प्राचीन आर्य-भाषाओं के अध्ययन के लिए कोई दूसरा ग्रंथ इतना सहायक और मूल्यवान् सिद्ध नहीं हो सकता जितना कि विद्वान् डिएज़ (Diez) द्वारा संकलित किया हुआ उक्त 'छः रोमान्स भाषाओं का तुलनात्मक व्याकरण'।

यद्यपि साधारण रूप से हम इन छः रोमान्स भाषाओं की खोज करते-करते लैटिन तक पहुँचते हैं तो भी विद्वानों ने हम लोगों की ज्ञानवृद्धि के लिए यह तथ्य खोला है कि इनकी उत्पत्ति प्राचीन लैटिन भी हमें ठीक-ठीक नहीं बता सकती। इन नव्य लैटिन भाषाओं की सामग्री लैटिन में नहीं बल्कि इटली और उसके भिन्न-भिन्न प्रदेशों के भीतर ढूंढ़ी जानी चाहिए। रोमन साम्राज्य के स्थापित होने से पहले इटली के नाना प्रदेशों में भिन्न-भिन्न बोलियाँ बोली जाती थीं। हमारे पास इस समय के बहुत-से शिलालेख वर्तमान हैं जो प्राचीन इटली के देश अम्ब्रीया और औस्किया में बोली जाने वाली भाषाओं में खोदे गये हैं....। उनके साहित्य के कुछ भग्नावशेष भी साहित्यिकों ने खोज निकाले हैं। औस्कियन रोमन सम्राटों के समय में भी बोली जाती थी और इसी प्रकार उत्तर और दक्षिण रोमन साम्राज्य में नाना छोटी-मोटी बोलियों का दौर-दौरा था। जैसे ही रोम की पुरानी भाषा लैटिन पुरानी हो गयी और लोगों की समझ में न आने लगी तथा उसका व्याकरण अंतिम रूप से स्थिर हो गया तो ऊपर लिखी छः बोलियों का जन्म आरंभ हुआ। स्वयं दाण्ते के समय में इन बोलियों को **भाखा** या ग्रामीण बोलियाँ कहा जाता था, क्योंकि इन बोलियों के बोलने वाले जनता के अनपढ़ लोग थे। इसमें कोई संदेह नहीं कि इन नव्य लैटिन भाषाओं की विकृति का बहुत बड़ा भाग इस कारण हुआ कि इनको हम इस समय जिस रूप में देख रहे हैं, वह नव्य लैटिन भाषा है, जो ट्यूटानिक जाति के बर्बर लोगों द्वारा अपनायी गयी और उनके अशुद्ध शब्दों का भी इसमें समावेश हो गया है। अब तमाशा देखिए कि इसमें ट्यूटानिक शब्दों की ही भरमार नहीं है, बल्कि इनमें ट्यूटानिक मुहावरे—वाक्यांश और उनके व्याकरण के रूप भी भरे पड़े हैं। फ्रेंच भाषा फ्रेंच देश की लैटिन है जो ट्यूटानिक बर्बरों की एक जाति फ्रेंक्स

द्वारा बोली जाती थी और बोली जाती है। इसी प्रकार अन्य सब रोमांस भाषाओं में भी यह ट्यूटानिक बर्बरता अल्प या अधिक रूप में प्रवेश कर गयी है। किन्तु यह बात भी जानना महत्त्वपूर्ण है कि अपने आरंभ काल से जिस मूल स्रोत से ये भाषाएँ बननी आरम्भ हुईं वह स्रोत विशुद्ध लैटिन का नहीं था। वह तो उस ग्रामीण भाषा या **भाखा** का था जो लैटिन भाषा के समाप्त होने के बाद इटली की नाना विकृत बोलियों से निकली, इन बोलियों को रोमन साम्राज्य के निम्नतम श्रेणी के लोग बोलते थे। बहुत से शब्द जो फ्रेंच तथा इटालियन भाषाओं में कुछ ऐसा आभास देते हैं जिससे हम समझते हैं कि इन भाषाओं का मूल स्रोत लैटिन रही होगी, वे इन भाषाओं में बहुत दिन बाद आये और वे उन भाषाओं में मध्य युग के विद्वानों, वकीलों और पादरियों द्वारा लिये गये। इन शब्दों द्वारा इन भाषाओं में ट्यूटानिक भाषा के जो क्लिष्ट और कर्कश रूप थे और ट्यूटानिक विजेता राजाओं के कारण बहुत प्रचलित हो गये थे उनमें लैटिन के इन नये नये लिये गये मधुर शब्दों की वजह से मृदुता आ गयी।

अब हम **भारोपा** या आदि **आदि आर्य** की दूसरी बड़ी शाखा को लेते हैं जिसमें ग्रीस की बोलियाँ हैं। महाकवि होमर के समय से आज तक का इसका इतिहास सभी विद्वान् जानते हैं। इस विषय पर तुलनामूलक भाषा-विज्ञानी अपने विज्ञान की दृष्टि से केवल एक बात कह सकता है कि लैटिन भाषा ग्रीक भाषा से नहीं निकली है। ऐसा कहना, यह कहने से भी अधिक असत्य है कि अंग्रेजी जर्मन से निकली है। तथ्य यह है कि लैटिन व्याकरण के कुछ रूप ग्रीक भाषा के रूपों से भी बहुत पुराने हैं। कुछ विद्वान् जो यह कहते हैं कि ग्रीक और लैटिन भाषाओं से पहले इस परम्परा में एक पेलासजियन भाषा वर्तमान रही होगी, जो इन दोनों की समान-जननी थी; यह भी एक व्याकरण संबंधी दंतकथा है। अब इसका इतना सयुक्तिक खंडन हो गया कि अब इस पर प्रकाश डालने की कोई आवश्यकता ही नहीं रही।

इस **आदि आर्य** भाषा की एक और शाखा केल्टिक है। ऐसा मालूम पड़ता है कि केल्ट जाति आर्यों की पहली जाति है, जो यूरोप में आकर बसी; किन्तु इसके बाद जो-जो जातियाँ आयीं, जैसे ट्यूटानिक आदि, वे केल्टों को दबाती गयीं और केल्ट पश्चिम की ओर खिसकते गये, यहाँ तक कि ये यूरोप के सबसे पश्चिमी द्वीप आयरलैंड में जाकर बसे और वहाँ भी इनके पीछे आने वाली अन्य आर्य जातियों के दबाव के कारण ये केल्ट अटलांटिक महासागर के पार जाकर बस गये। इस समय यूरोप में इनकी दो बोलियाँ शेष रह गयी हैं। इनमें से एक का नाम किमरिक है और

दूसरी का नाम गईडाहेलिक है। किमरिक के भीतर निम्नलिखित बोलियाँ शामिल की जाती हैं—वेल्स भाषा, कार्निस-भाषा जो हाल में ही मर गयी या लुप्त हो गयी है और ब्रिटानी में बोली जाने वाली आरमोरिक भाषा। गईडाहेलिक में निम्न भाषाएँ शामिल की जाती हैं—आयरिश भाषा, स्काटलैंड के पश्चिमी समुद्र-तट की भाषा गेलिक और आइल आफ मैन नामक द्वीप में चलने वाली बोली। यद्यपि इनमें से अधिकांश केल्टिश बोलियाँ आज भी बोली जा रही हैं तो भी केल्ट लोग एक अलग और स्वतंत्र जाति के रूप में नहीं माने जा सकते हैं, जैसा कि हम एक स्वतंत्र जर्मन या स्लैव जाति का अस्तित्व मानते हैं। प्राचीन समय में उन्होंने केवल राजनीतिक स्वतंत्रता का ही उपयोग नहीं किया बल्कि रोमनों और जर्मनों के विरोध और युद्ध करने पर भी अपनी स्वतंत्रता की पूर्ण रक्षा की। गौल, वेल्जियम और ब्रिटेन में केल्टिक जाति का ही सर्वत्र राज्य था और इटली के उत्तरी प्रदेश में इस केल्ट जाति की ही प्रधानता रही। हेरोडोटस के समय में यह देखा जाता है कि स्पेन, स्विटजरलैंड, टाइरोल (आस्ट्रिया) और डेन्यूब के दक्षिण के देश इन केल्टों से ही आवाद थे। किन्तु बाद को इन्होंने सभ्य देशों पर आक्रमण किये। ग्रीक और लैटिन लेखकों ने इनके बड़े-बड़े राजाओं की नामावली भी दी है। दबते-दबते ये पूर्वी यूरोप से नदारद ही हो गये। इस भाषा में एक शब्द **ब्रेन्नुस** काम में लाया जाता था। इसका अर्थ राजा बताया जाता है। वेल्स की भाषा में यह शब्द **ब्रेन्निन** है। एक **ब्रेन्नुस** ने ईसा पूर्व ३९० में रोम पर विजय प्राप्त की और दूसरे **ब्रेन्नुस** (केल्टिक राजा) ने डेल्फी पर आक्रमण करने की धमकी दी (सन् ईसा पूर्व २८०)। इसी समय केल्ट जाति के कुछ लोगों ने पश्चिमी एशिया के गलाटिया नामक स्थान में अपना एक उपनिवेश स्थापित किया जिसकी बोली ईसाई संत जीरोम के समय में भी केल्टिक ही रह गयी थी। केल्टिक भाषा के शब्द जर्मन, रूसी जाति की भाषाओं और स्वयं लैटिन भाषा में भी पाये जा सकते हैं, किन्तु उक्त भाषाओं में ये विदेशी भाषा के रूप में घुस आये हैं और इनकी संख्या जितनी समझी जाती थी उससे बहुत कम है। इधर देखा गया है कि वर्तमान केल्टिक बोलियों में जर्मन और लैटिन शब्दों की भरमार हो गयी है और केल्टिक भाषा के पक्षपातियों और उत्साहियों ने इन शब्दों को भूल से मूल केल्टिक शब्द समझ लिया है। असल में ये शब्द कई जर्मन और लैटिन शब्दों के मूल रूप हैं।

आदि भाषाओं की पांचवी बड़ी शाखा श्लेवोनिक (रूसी जाति की) भाषाएं हैं। मैं इन भाषाओं का नामकरण **विन्डिक** करना उचित समझता हूँ, क्योंकि

यूरोप के अति प्राचीन ऐतिहासिकों ने इनको विन्डी नाम दिया है। यह नाम बड़ा व्यापक है। इसमें कई जातियाँ सम्मिलित हैं। इस जाति के दो प्रमुख विभाग हैं; एक लैटिक (लैटलैंड[1] और लिथवानियाँ में रहने वाले) और दूसरा श्लेवोनिक (रूसी बोली बोलने वाले चेकोस्लोवाकिया, पोलैंड, बुल्गारिया, रूस के नाना प्रदेशों में वसने वाले लोग)। श्लेवोनिक के और भी दो विभाग किये जा सकते हैं—(१) दक्षिण पूर्वीय देशों में बोली जाने वाली रूसी जाति की भाषा। (२) दूसरी पश्चिम श्लेवोनिक शाखा कही जा सकती है।

लैटिक विभाग उन भाषाओं का है जिससे साहित्य के विद्यार्थी अपरिचित है; क्योंकि इनमें वहुत कम साहित्य है, पर भाषा की खोज करने वाले विद्वानों के लिए इनका महत्त्व और मूल्य बहुत ही अधिक है। लैटिक वह भाषा है, जो इस समय रूस के यूरोपीय भाग में पश्चिमी सीमा पर लैटलैंड में बोली जाती है। लिथवानिअन इसी जाति की एक दूसरी बोली है, जो पूर्वी प्रशिया तथा लिथवानियाँ में बोली जाती है। लिथवानियाँ में सबसे पुराना जो ग्रंथ मिलता है वह ईसाई धर्म की प्रश्नोत्तरी है, जो १५४७ ई० में लिखी गयी थी। इस पुस्तिका में और लिथवानिअन किसानों द्वारा बोली जाने वाली भाषा में आदि आर्य भाषा के व्याकरण के कुछ ऐसे रूप पाये जाते हैं जो संस्कृत से बहुत ही मिलते-जुलते हैं और ऐसा मालूम पड़ता है कि व्याकरण के ये रूप ग्रीक और लैटिन भाषाओं के रूपों से भी प्राचीन हैं। प्राचीन प्रशियन भाषा जो लिथवानि-अन भाषा से घनिष्ठ संबंध रखती है, ईसा की सातवीं सदी में समाप्त हो गयी और इसका सारे का सारा साहित्य जो इस समय हमें प्राप्त है ईसाई धर्म की एक प्रश्नोत्तरी है। पहले लैटलैंड इस प्रदेश को कूरलांड और लेवोनिआ कहते थे। लैटिक भाषा का व्याकरण लिथवानियन भाषा के व्याकरण से नव्यतर है, किन्तु यह लिथवानियन भाषा से उत्पन्न नहीं हुई है।

इस पर इतना विचार करने के बाद अब हम उस शाखा का विचार करेंगे जो उचित रूप में ही श्लेवोनिक कही जाती है, इसकी पूर्वी शाखा में रूसी भाषा और इसकी कई स्थानीय बोलियाँ, बल्गेरिअन और इलीरियन भाषाएँ शामिल हैं। इस पूर्वीय भाषा-जाति का सबसे प्राचीन लेख बुल्गारियन भाषा में मिलता है, इस

१. Schleicher, Beitrage, i. 19.

भाषा को गिरजे की श्लेवोनियन या बल्गेरियन कहते हैं। इसमें सिरीलुस और मैथोडिउस दो पादरियों ने नवीं सदी में बाइबिल का अनुवाद किया था। बाइबिल का यह अनुवाद आज भी प्रामाणिक[1] माना जाता है और श्लैव जाति के सभी ईसाई इसे अब भी काम में लाते हैं। भाषाविज्ञान के अध्ययन करने वालों के लिए बाइबिल के इस अनुवाद का वही महत्त्व है जो जर्मन-भाषा-विज्ञान की शोध करने वालों के लिए उल्फिला के गौथिक अनुवाद का। अर्वाचीन बुल्गारियन भाषा जो आज कल बोली जाती है उसका व्याकरण बहुत घटा दिया गया है। अन्य रूसी जाति की भाषाओं में यह इतना कम नहीं है।

सर्वियन, क्रोआटिअन और श्लोवेनियन भाषाओं को **इलीरियन भाषा** कहते हैं। श्लोवेनियन भाषा में दसवीं सदी के[2] थोड़े से साहित्यिक भग्नावशेष पाये जाते हैं।

श्लोवेनिक भाषा की पश्चिमी शाखा में निम्नलिखित भाषाएँ सम्मिलित हैं। पोलैंड, चेकोस्लोवाकिया और लुसाकिया की भाषाएँ। पोलिश भाषा का सबसे पुराना लेख जो हमें प्राप्त है, वह है मारग्राव की लिखी 'भजन-माला'। चेकोस्लोवाकिया की भाषा की प्राचीन परम्परा का पता ईसा की नवीं सदी तक पाया जाता है, पर उस समय की लिखी कविताओं में से बहुत बड़ा भाग इस समय नकली या बनावटी माना जाता है। और यह भी बहुत ही अधिक संदेहजनक है कि संत जान रचित सुसमाचार का दसवीं सदी में पंक्ति-प्रति-पंक्ति जो अनुवाद किया गया था वह भी शायद असली न होकर बनावटी ही हो और बाद में लिखा गया हो।

लुसाकिया की भाषा थोड़े से ही लोग बोलते हैं जो जर्मनी में वेन्ड कहे जाते हैं।

यहाँ तक हमने, यूरोप में बोली जाने वाली सभी आर्य भाषाओं का वर्णन कर दिया है। इनमें अभी एक अपवाद रह गया है अर्थात् हमने अल्बानियन भाषा का उल्लेख नहीं किया। यह भाषा भी आर्य-भाषा परिवार की एक शाखा है। इसकी खूबी यह है कि इसका साम्य ऊपर लिखे किसी भी आर्य जाति के भाषा परि-

१. इसकी सबसे पुरानी हस्तलिखित प्रति १०५६ ई० की पायी जाती है, जो राजा औस्ट्रोमीर के लिए लिखी गयी थी। इसके कुछ पुराने हस्तलिखित नमूने भी मिलते हैं। Schleicher, Beitrage, b. i. p. 20...

२. Schleicher, Deutsche Sprache, s. 77.

वार से नहीं है। इसकी खोज करते-करते यह पता लगा है कि यह पड़ोसी ग्रीस देश की एक जाति इलीरियनों की भाषा से निकली है और यह भी मालूम हुआ है कि ग्रीस की भाषाओं में ग्रीस में घुसने वाली अनेक बर्बर जातियों की बोलियों का यह एक मात्र अवशेष है।

अब हम यूरोप के विषय में लिख चुके हैं और एशिया में आर्य-भाषा-परिवार की कौन-कौन-सी बोलियाँ हैं, उनका वर्णन आरंभ करेंगे। इस संबंध में हम सबसे पहले दक्षिण के एक सिरे में बसे हुए देश भारत की आर्य भाषा परिवार की नाना भाषाओं से आरंभ करेंगे। मैंने अपने एक पिछले भाषण में संस्कृत भाषा का थोड़ा-सा इतिहास दिया है। इस कारण इस स्थान पर इतना कहना ही यथेष्ट होगा कि हम इस भाषा के इतिहास की परम्परा के भिन्न-भिन्न युगों का वर्णन करेंगे। यहाँ की सबसे पुरानी बोली वैदिक भाषा है, जो ईसा से डेढ़ हजार वर्ष पहले भारत में प्रचलित थी। इसके बाद संस्कृत का युग आरंभ हुआ, जिसके नाना ग्रंथ आज भी मिलते हैं। इसके बाद पाली और प्राकृत-भाषाओं का युग आता है, जिनमें साहित्य का बहुत बड़ा भंडार पाया जाता है। आज कल की भाषाएँ हिन्दी, हिन्दुस्तानी, मराठी, बंगाली आदि उसी परम्परा में हैं। भारत की भाषा के दीर्घकालीन इतिहास में अनेक तथ्य ऐसे मिलते हैं, जो भाषा-शास्त्र के अध्ययन करने वालों के लिए बहुत महत्त्व के हैं। यह बहुत ही सत्य कहा गया है कि भाषा-विज्ञान की शोध करने वाले के लिए संस्कृत का वही महत्त्वपूर्ण स्थान है, जो गणित-ज्योतिष के लिए गणित-विज्ञान का। इस भाषण में जो कि केवल भाषा-विज्ञान का परिचय मात्र देने के लिए दिया जा रहा है, इन भाषाओं की मूलभाषा संस्कृत के व्याकरण के सुगठित रूप के बारे में अधिक विस्तार से लिखना उचित न होगा।

एक ही विषय ऐसा है जिस पर विशेष प्रकाश डालने की आज्ञा मैं श्रोताओं से चाहता हूँ। मुझसे बार-बार पूछा गया है कि संस्कृत साहित्य को आप जितना पुराना बताते हैं, उसे सिद्ध करने के लिए आपके पास क्या-क्या प्रमाण हैं? आप सिकन्दर के भारत पर आक्रमण करने से पहले के संस्कृत-साहित्य की तिथियाँ किस प्रकार प्रमाणित रूप से बता सकते हैं? संस्कृत-साहित्य के ग्रंथों पर, जो कि जाली और बनावटी भी हो सकते हैं तथा जिनके भीतर समय-समय पर क्षेपक भी डाले गये हैं, ऐसे साहित्य के ग्रंथों पर आप कैसे प्रामाणिकता का भरोसा कर सकते हैं? ऐसे प्रश्न पूछने में कुछ लगता नहीं, किन्तु इन प्रश्नों का उत्तर देना बहुत टेढ़ी खीर है। विशेष कर उनका संक्षेप में और सयुक्तिक उत्तर देना बहुत कठिन

है। मुझे भरोसा है कि शायद निम्नलिखित दलीलें इस प्रश्न का आंशिक रूप में उत्तर देने में समर्थ होंगी और यह सिद्ध कर देंगी कि संस्कृत भाषा हमारे सुलेमान बादशाह के समय से कई सौ वर्ष पहले भारत में बोली जाती थी। संस्कृत की सबसे पुरानी रचना वेदों के सूक्तों में ऋषियों ने अधिकतर उत्तरपश्चिमी भारत पर ही अपनी दृष्टि डाली है, इनमें बहुत कम स्थानों में ऐसे उल्लेख पाये जाते हैं, जिनमें समुद्र या समुद्र तट का वर्णन हो। इन पुराने ऋषियों ने जो गीत गाये हैं, उनमें हिमाच्छादित पर्वत-मालाओं का सुन्दर वर्णन है। पंजाब की सभी नदियों का बड़े उत्साह और कविता की भाषा में आनन्दप्रद वर्णन किया गया है और उत्तरी भारत में पायी जाने वाली गंगा और उसकी मनोहर घाटियों का भी इन ऋषियों ने बड़े उत्साह से वर्णन किया है। वेदों को पढ़ने से इस पर नाम मात्र संदेह नहीं रह जाता कि संस्कृत बोलने वाले लोग उत्तरापथ के रास्ते से तथा पश्चिम की ओर से भारत में आये और वे धीरे-धीरे दक्षिण और पूरब को आगे बढ़े और वहाँ बस गये। यह भी आसानी से प्रमाणित किया जा सकता है कि सुलेमान के समय में संस्कृत भाषा का प्रचार भारत में सिन्धु नदी के मुहाने तक तो अवश्य ही था।

आपको यह बात स्मरण कराने की आवश्यकता नहीं है कि थारसिस[1] का बेड़ा जो सुलेमान बादशाह ने समुद्री यातायात के लिए तैयार कर रखा था और इसके साथ ही साथ हीरम बादशाह की जल सेना, जो इसके ही साथ प्रति तीन वर्ष में एक बार भारतीय समुद्र के तट पर आती थी और यहाँ से सोना, चाँदी, हाथी-दाँत, बन्दर और मोरों को सुलेमान बादशाह के देश में ले जाती थी। इसी बेड़े के विषय में जो लाल समुद्र के तट पर तैनात रहता था, यह कहा गया है कि यह ओफिर[2] जाकर वहाँ से सुलेमान बादशाह के लिए सोना लाता था और यह भी कहा गया है कि यह बेड़ा ओफिर से अलगम (Algum) तथा बहुमूल्य हीरे आदि लाता था।

अब, हम जानते ही हैं कि यह ओफिर स्थान कहाँ था? इसके बारे में बहुत कुछ लिखा जा चुका है और इसमें किसी को नाम मात्र संदेह नहीं है कि यह भारत में था। और देखिए कि हेब्रू या इब्रानी भाषा में बन्दर, मोर, हाथी-दाँत और अलगम वृक्ष के नाम विदेश से आये हुए माने जाते हैं। ये उसी प्रकार विदेशी शब्द रह

१. King viii 21. **(बाइबिल की राजा नामक पुस्तक)**
२. King ix 26.

गये हैं जैसे कि इस समय गटापारचा और तंबाकू (Tobacco) शब्द अंग्रेजी में विदेशों से आये हैं। अब थोड़ा सा विचार कीजिए कि यदि हम यह जानना चाहें कि गटा-पारचा ब्रिटेन में किस देश से आया होगा तो यह निदान निकालना स्वाभाविक ही होगा कि यह उस देश से मँगाया गया होगा जहाँ की बोली[1] में यह शब्द प्रचलित है या रहा होगा। इस कारण यदि हम उस भाषा से परिचित हो जायँ जिसमें मोर, बंदर, हाथी-दाँत और अलगम वृक्ष, जो इबरानी भाषा में विदेशी शब्द हैं, सदा से प्रचलित रहे हों तो हमें इस निश्चित निदान पर पहुँचने में देर न लगेगी कि यह देश, जहाँ ये शब्द बोले जाते थे, वह बाइबिल में वर्णित ओफिर देश ही है और यहाँ की भाषा अति प्राचीन काल से संस्कृत ही रही है।

इबरानी भाषा में बन्दरों को **कोफ** कहते थे। सेमिटिक भाषाओं में इस शब्द की कोई व्युत्पत्ति ही नहीं मिलती, पर यह बात हम आसानी से समझ सकते हैं कि बन्दर को संस्कृत में **कपि** कहते हैं तथा यह **कोफ** यहूदियों द्वारा बोली जाने वाली इबरानी भाषा में इसी **कपि** का ध्वनि-विकार वाला रूप रहा होगा।

इबरानी भाषा में हाथी-दाँत को **करनोथ शेन्** और **दाँत के सींग** या **शेन हबिम** कहते हैं। इनमें से **हबिम** शब्द की व्युत्पत्ति **इबरानी** भाषा में नहीं मिलती और यह बहुत ही संभव है कि **हबिम** संस्कृत **इभ** का ध्वनि-विकार युक्त रूप है।

इबरानी भाषा में मोरों को **तुखी-इम्र** कहते हैं। इसका खुलासा इस तथ्य से स्पष्ट हो जाता है कि मलाबार के समुद्रतट के निवासी इसे आज भी **तो-गाई** कहते हैं। यह शब्द वास्तव में संस्कृत **शिखिन्** का ध्वनि-विकार है, जिसका अर्थ 'शिखा या शेखर वाला' है।

एक बात और ध्यान देने योग्य है कि हाथीदाँत, सोना, बंदर, मोर आदि काल से भारत में पाये जाते हैं और भले ही ये पदार्थ संसार के कई अन्य देशों में भी पाये जाते हों, पर **अलगम** वृक्ष दक्षिण भारत में ही पाया जाता है, क्योंकि विद्वानों ने **अलगम** या **अलमग** वृक्ष का परिचय 'चंदन के वृक्ष' से दिया है और यह बात बड़े मार्के की है कि चंदन के वृक्ष मलाबार के समुद्र तट पर ही होते हैं और उक्त प्रदेश की बोली में तथा

१. गुटा का अर्थ मलाया की भाषा में गोंद है, पर्चा का अर्थ वह वृक्ष है जिससे यह गोंद निकलता है, अथवा उस द्वीप का यह नाम है जहाँ से गोंद का यह वृक्ष मलाया लाया गया था।

स्वयं संस्कृत में चंदन का नाम **वल्गुक** है। इस **वल्गु (क)** से ही फुनीशियन और यहूदी बनियों ने भारतीय नाम बिगाड़ कर चंदन का नाम **अलगम** रखा और इबरानी भाषा में यह नाम वर्ण-व्यत्यय द्वारा **अलमग** भी बन गया।

अब देखिए कि सुलेमान और हीरम के जहाजी बेड़े लाल सागर से नीचे उतरकर स्वभावतः ओफिर अर्थात् सिन्धु नदी के मुहाने पर जाकर लगे। संभव यही है कि सोना, हीरा, रत्न आदि पदार्थ भारत में कहीं उत्तर पश्चिम से सिन्धु नदी के मार्ग से ओफिर तक आये होंगे तथा चन्दन की लकड़ी, मोर, बंदर मध्य और दक्षिण भारत से यहाँ व्यापार के लिए लाये गये होंगे। इस स्थान के आस-पास ही टोलेमी ने एक अबीरिया स्थान का नाम बताया है और बताया है कि यह पत्तलिने नामक स्थान से कुछ उत्तर की ओर है। संस्कृत में कई ग्रंथों में इसी स्थान पर अभीर या आभीर स्थान बतलाया गया है और इसी स्थान के पड़ोस से मेकमर्डोक ने एक जाति का पता लगाया है जिसका नाम अहीर[1] है। ये अहीर, वहुत संभव है कि इन अभीरों या आभीरों के ही वंशज हैं। इन्हीं अभीर या आभीरों ने सुलेमान और हीरम द्वारा भेजे हुए जहाजों और जहाजवालों के हाथ सोना, हीरा आदि बहुमूल्य पत्थर, बंदर, मोर और चन्दन[2] की लकड़ी बेची होगी।

इस कारण से वेदों में जो जाति संस्कृत बोल रही थी, वह भारत के उत्तर पश्चिम प्रांत तक ही सीमित थी। इसके विपरीत सुलेमान और हीरम के समय में संस्कृत भाषा का प्रचार सिन्धु नदी के मुहाने, कच्छ प्रदेश और स्वयं मलाबार के समुद्र-तट तक पाया जाता है। इससे प्रमाणित होता है कि चाहे जो हो, इतना निश्चित है कि

१. **देखिए** Sir Henry Elliot's Supplementary Glossary, S. V. Aheer.

२. **कैत्रएर ने अपने ग्रंथ** Meoire sur lepays d' ophir **में जो यह बात कही है कि ओफिर भारतीय समुद्र के तट पर नहीं है, यह निदान रूप में नहीं मानी जा सकती और उसने जो ओफिर से निर्यात होने वाले पदार्थों से युक्तियां प्रस्तुत की हैं उनके विषय में उसका ज्ञान बहुत कम है। इस बात का उल्लेख यहाँ पर इसलिए किया जा रहा है कि कैत्रएर के नाम का बहुत बड़ा प्रभाव है और ओफिर पर उसका निबंध हाल में** Bibliotheque classique des celebrites contemporaines, 1861 **में दूसरी बार फिर प्रकाशित हुआ है।**

संस्कृत हाल-हाल में नहीं जनमी और यह कम से कम उतनी पुरानी है जब कि जौब की किताब लिखी गयी थी जिसमें ओफिर के सोने का यह उल्लेख[1] है।

जेन्द-अवेस्ता[2] की प्राचीन भाषा वेदों की संस्कृत से बहुत ही निकट का संबंध रखती है और वेदों से मिलती जुलती है। इसे अवेस्ता की भाषा कहते हैं। यह पारसियों की धार्मिक भाषा है। ये लोग अग्नि को ही पूजते हैं और उसका हवन करते हैं और उनके ईश्वर का नाम अहुर-मज़्द है। सच तो यह है कि संस्कृत की सहायता से और तुलनात्मक भाषा-शास्त्र के सहारे ही ईरान की सबसे प्राचीन भाषा अथवा

१. बाइबिल का ग्रंथ जौब XXII, २४.

मेरे कुछ समालोचकों ने इस युक्ति को पूरे मन से स्वीकार नहीं किया है क्योंकि उनका मत है कि बाइबिल की 'राजाओं की पुस्तक' नामक ग्रंथ सुलेमान बादशाह का समसामयिक नहीं है। इतना तो प्रायः निश्चित है कि सुलेमान बादशाह के समय में इन पदार्थों के नामों का अस्तित्व रहा होगा और यह बात अभी तक प्रमाणित नहीं हो सकी है कि इन पदार्थों के नाम सेमेटिक भाषाओं में भी रहे होंगे। और यह सिद्ध नहीं हो सका है कि जब भारत और फिलस्तीन के बीच व्यापारी जहाजों का आवागमन बिलकुल बन्द हो गया तो सेमेटिक भाषाओं के नाम के स्थान पर बाद को भारतीय नामों ने स्थान ग्रहण कर लिया होगा।

२. जेन्द-अवस्ता नाम मुसलमान लेखकों ने अपने ग्रंथों में दिया है। पारसी लोग अवेस्ता और जेन्द शब्दों का प्रयोग करते हैं। वे लोग अवेस्ता को अपना धर्मग्रन्थ मानते और जेन्द को अवेस्ता की पहलवी टीका का नाम मानते हैं। मुझे इस बात पर बहुत सन्देह है, जेंद शब्द का मूल अर्थ ऐसा न रहा होगा। जेंद वही शब्द मालूम पड़ता है, जिसे संस्कृत में छंदस् कहते हैं और यह नाम वेद के सूक्तों को दिया गया है। अवेस्ता का संस्कृत रूप अवस्थान हो सकता है। अवस्थान शब्द संस्कृत में नहीं मिलता है किन्तु यदि मिलता तो इसका अर्थ होता "निश्चित किया हुआ पाठ।" अवस्थित का अर्थ संस्कृत में "नीचे दिया गया" या "निर्णय" किया गया है। अवेस्ता में इस समय चार ग्रंथ हैं; यश्न, विस्पर्द, यश्थ और वेन्दीदाद (वि-दैवदात)। डा० हौग ने अपने सुन्दर भाषण "पारसी धर्म की उत्पत्ति" में बताया है कि अवेस्ता सबसे प्राचीन पाठ का नाम है और जेंद उसकी टीका है तथा पाजन्द टीका-टिप्पणियों की भी व्याख्या है और ये सब ग्रंथ जेन्द भाषा में लिखे गये हैं।

कहिए कि वहाँ के अग्निहोत्रियों की वाणी का पता चलाया गया। बम्बई के पारसी पुरोहितों या दस्तूरों ने इस प्राचीन भाषा के साहित्य का बड़ा संग्रह जमा कर रखा था। ये दसवीं सदी[1] में मुसलमानों के हाथ से बचकर भाग कर भारत आये थे। अब ये पारसी धीमे-धीमे बहुत धनाढ्य हो गये हैं और इनका प्रभाव भी बहुत बढ़ गया है। इन अग्निपूजकों की बस्तियाँ ईरान के पड़ोस में यज्द में भी हैं और ईरान के कर्मान प्रदेश में भी ये पाये जाते हैं। अवेस्ता का पहला अनुवाद एक प्रसिद्ध फ्रेंच यात्री आंकतईद्युपेरों ने किया, किन्तु यह मूल अवेस्ता का नहीं था, वर्तमान पारसियों की भाषा में अनूदित अवेस्ता से यह किया गया था। पहला यूरोपियन विद्वान् जिसने ईरान जाकर जरथुष्ट्र की भाषा और मूल अवेस्ता के शब्दों का अध्ययन करने का बीड़ा उठाया, वह था डेनमार्क का प्रसिद्ध भाषाशास्त्री रास्क। उसकी असामयिक मृत्यु के बाद प्राच्यविद्याविशारद फ्रेंच पंडित बुर्नूफ महोदय ने एक आश्चर्यजनक काम किया, अर्थात् अवेस्ता की भाषा का पूरा पता लगा लिया और तब से अवेस्ता की भाषा का अध्ययन बड़ी तेज़ी से आगे बढ़ा। बुर्नूफ साहब ने स्पष्ट कर दिया कि अवेस्ता की भाषा संस्कृत से बहुत ही निकट संबंध रखती है।

इस नये आविष्कार ने यूरोप में फिर एक नयी हलचल मचा दी। इसके समय और इसकी असलियत के विषय में फिर यूरोप के विद्वान् नयी नयी शंकाएँ उपस्थित करने लगे और फिर वही बातें दोहराने लगे जो उन्होंने वेदों के असली होने के विषय

१. 'किस्सए संजान' नामक एक पारसी ग्रंथ में, जो ऐतिहासिक दृष्टि से बिलकुल निकम्मा और बहुत ही कम विश्वास योग्य है, यह लिखा गया है कि पारसियों के संवत् यज्द गिर्द के आरंभ होने से ४९ साल पहले (६३२ ई०) पारसी लोगों ने खुरासान में शरण ली और वहाँ प्रायः एक सौ वर्ष रहे और तब वहाँ से फारस की खाड़ी के निकटवर्ती नगर हौरमजद चले गये और वहाँ १५ वर्ष रहकर बंबई के ड्यू नामक स्थान पर चले आये। यह काठियावाड़ के किनारे पर एक छोटा सा द्वीप है। यहाँ वे १९ साल रहे अर्थात् वे ७१७ तक यहीं रहे और तब वे संजान नामक स्थान को गये। यह कसबा दामन से २४ मील दक्षिण को है। वहाँ वे तीन सौ वर्ष तक जमे रहे, तब गुजरात में आस-पास के शहरों में फैलने लगे और उन्होंने अपनी पवित्र अग्नि के मंदिर बलसाड़, सूरत के निकट नवसारी तथा बम्बई नगर में स्थापित किये। Bombay Quarterly Review, 1856, No. VIII, p. 67.

में कही थीं। बड़े-बड़े प्राच्य-विद्याविशारद स विषय पर अपना संदेह प्रकट करने लगे। बु ूफ ने तुलनात्मक व्याकरण की दृष्टि से अवेस्ता की भाषा के विषय में अपने अकाट्य प्रमाणों से दिखला दिया कि ये दोनों भाषाएँ सगी बहनें हैं। अब इस समय जो दार्यवश (Darius) और जरक्सीज के शिलालेख कोणाकृति अक्षरों में मिले हैं उनसे बुर्नूफ के सिद्धान्त नये सिरे से प्रमाणित हो गये हैं। यह तथ्य तो बुर्नूफ के बहुत पहले से मालूम था कि कभी कोई जरथुष्ट्र संसार में हुआ था। यह बात बहुत पहले से संसार में प्रसिद्ध थी। प्लेटो ने एक जरथुष्ट्र का नाम अपने ग्रंथों में दिया है और बताया है कि यह जरथुष्ट्र **अहुर-मज्द** का पुत्र था।

यह **अहुर-मज्द** नाम बड़ा महत्त्वपूर्ण है। इस अहुर-मज्द को प्लेटो ने ओरोमजेस नाम से लिखा है और यह पारसियों के ईश्वर का नाम है। **दार्यवश** और **जरक्सीज** के शिलालेखों में यह नाम **अउर-मज्द** लिखा गया है और जहाँ तक ध्वनि का संबंध है, यह **अउर-मज्द** प्लेटो के **ओरोमजेस**[1] का मूल रूप है। इस प्रकार दार्यवश ने अपने शिलालेख के एक स्थान पर कहा है,—"**अउर-मज्द** की महान् कृपा से मैं राजा बना हुआ हूँ। **अउर-मज्द** ने मुझे इतना बड़ा राज्य दिया।" किन्तु अब प्रश्न यह उठता है कि इस **अउर-मज्द** शब्द का अर्थ क्या है? इस विषय पर हम ऊपर बताये गये आखेमीनियन राजाओं के शिलालेखों में कुछ संकेत पाते हैं। एक स्थान पर वहाँ इस शब्द के दो भाग किये गये हैं और उनके संबंधकारक के रूप भी दिये गये हैं और वहाँ ये शब्द आये हैं **अउर्ह्यआ-मज्दाहा,** किन्तु ये शब्द अस्पष्ट हैं और ठीक समझ में नहीं आते। यह उस मूल नाम का ध्वनि-विकार वाला रूप है जो पारसियों के परमेश्वर का है तथा अवेस्ता में बार-बार दोहराया गया है। अर्थात् यह अहुरो-मज़्दाओ का घिसा हुआ रूप है। उक्त नाम के दोनों शब्द विभक्त और कारकयुक्त हैं। इस **अहुरोमज़्दाओ** के नाम पर कहीं-कहीं हम मज़्दाओ-अहुरो[2] भी पाते हैं। पारसियों का यह अहुरो-मज़्दाओ अवेस्ता में सृष्टिकर्ता और संसार का शासक बताया गया है। इसके गुणों का यह वर्णन किया गया है कि यह विश्व का उपकारक, पवित्र और सत्य है और यह उन सब शक्तियों से लड़ता रहता है जो संसार और

१. **शिलालेखों में हम यह पाते हैं**—Auramazda, gen. Auramazdaha, acc. Auramazdam.

२. Gen. Ahuraho mazdao, dat. mazdai, acc. mazdam.

उसके जीव-जन्तुओं को हानि पहुँचाते हैं तथा जो अंधकारमय है और बुराई की मूर्तियाँ हैं। अवेस्ता में लिखा है—"इस परम ज्ञानी आत्मा के ज्ञान द्वारा बुरे जीव-जन्तु नाश को प्राप्त होते हैं।" अवेस्ता के सबसे पुराने भाग में इस अंधकारमय शक्ति का, जो अहुराओ-मज़्दाओ का भयंकर विरोध करती है, कोई निश्चित नाम नहीं मिलता। इसे बाद को **ऐंग्रोमैन्यु** नाम से संबोधित किया गया और इसके भी बाद इसका नाम अहरिमैन् पड़ा। यह बुरी शक्ति होने के कारण इसका नाम दुरुख्स् पड़ा और जरथुष्ट्र के धर्म का, जिसका उसने प्रचार किया, यह सिद्धान्त था कि हमें इन दोनों शक्तियों में भेद करना होगा और हमें अच्छा बनना होगा न कि बुरा। इस विषय पर उसने नीचे लिखे शब्द अवेस्ता में दिये हैं—"आरंभ में विश्व में एक जोड़ा जनमा। दो ऐसी आत्माएँ आयीं जिनमें स्पष्ट ही अलग-अलग गुण थे। इनमें से एक सद्गुणों से भरा था, दूसरा नीति-विचारों, शब्दों और कर्मों से जघन्य था। इन दोनों में से एक को पसन्द करो। सदाचारी बनो और दुष्ट-वृत्ति छोड़ो।"[१] जरथुष्ट्र ने अवेस्ता में यह भी कहा है—"अहुर-मज्दा सत्य है, पवित्र है, उसकी पूजा सत्य और पवित्र आचरण द्वारा की जाती है।" "तुम उक्त दोनों की एक साथ सेवा नहीं कर सकते।"

अब देखिए कि यदि आप यह सिद्ध करना चाहें कि ऐंग्लोसेक्शन वास्तव में एक भाषा थी और यह भाषा अंग्रेज़ी से अधिक पुरानी थी, तो कुछ ही शब्दों की तुलना से यह बात प्रमाणित हो सकती है। उदाहरण के लिए ऐंग्लोसेक्शन शब्द Hlaford (ह्लाफोर्ड) और अंग्रेजी के लार्ड[२] (Lord) शब्द की तुलना कीजिए और इसी

१. Haug, Lecture p. 11; and in Bunsen's Egypt.

२. **लार्ड शब्द के मूल अर्थ के विषय में निम्नलिखित विचार मुझे आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी में ऐंग्लोसेक्शन भाषा के प्रो० डा० रेवरेंड बौसवर्थ से प्राप्त हुए हैं, उन्होंने बताया है कि लार्ड शब्द का अर्थ "रोटी देने वाला" है। इसका एक जर्मन रूप** Brot-Herr **है, जिसका अर्थ है "अन्नदाता" या "रोटी देने वाला स्वामी।"**

यह लार्ड शब्द ऐंग्लोसेक्शन के Hlaf-ord **से निकला है। इस शब्द में** Hlaf **(ह्लोएफ) का अर्थ "रोटी" है। और्ड का अर्थ है "उत्पत्ति करना"। इस प्रकार इसका अर्थ हुआ "रोटी का कारण" या "रोटी देने वाला"।** Lady **(लेडी) शब्द ऐंग्लोसेक्शन** Hlaef-dige,-die **से निकला है जिसका अर्थ है, "परिवार में सबको रोटी बनाकर देने वाली।"**

प्रकार ऐंग्लोसेक्शन शब्द god-spel (गाडस्पेल) और gospel (गास्पल) को भी देखिए। ह्लाफोर्ड का स्पष्ट अर्थ है, पर लार्ड शब्द का कोई अर्थ नहीं रह गया है। इस कारण हम निधड़क कह सकते हैं कि यह निरर्थक लार्ड शब्द इस विकृत रूप में कभी न बन पाता यदि ऐंग्लोसेक्शन में सार्थक शब्द ह्लाफोर्ड न रहता। भाषा का इसी प्रकार का ध्वनि-विकार अवेस्ता की भाषा और दार्यवश के कोणाकृति अक्षर वाले शिलालेखों की प्राचीन पारसी भाषा में पाया जाता है। अब देखिए कि उन लेखों का अउर-मज़्दा अवेस्ता के अहुरो-मज़्दाओं का घिसा हुआ रूप है और यदि बहिस्तून के पहाड़ों के शिलालेख नकली न हों, असली ही हों तब दावे के साथ कहा जा सकता है कि अवेस्ता की भाषा असली है तथा बुर्नूफ ने इसका ठीक-ठीक पता लगा लिया है। अवेस्ता की भाषा दार्यवश और जरक्सीज राजाओं के शिलालेखों से भी बहुत पुरानी है। किन्तु अब फिर प्रश्न उठता है कि अहुरो-मज़्दाओ का क्या अर्थ है? इसका ठीक-ठीक पता हमें अवेस्ता की भाषा से नहीं लगता। इसलिए हमें अब अवेस्ता से भी पुरानी आर्य भाषा वैदिक-संस्कृत की ओर देखना पड़ेगा। यह ठीक वैसी ही बात है जैसा कि हमने किसी पहले भाषण में फ्रेंच शब्द **फ़्वे** (feu=आग) के मूल रूप का पता चलाने के लिए इटालियन शब्द ढूंढा था। वैदिक संस्कृत और अवेस्ता की भाषा में जो ध्वनिपरिवर्तन होता है उसके अनुसार अवेस्ता के **अहुरो-मज्दाओ** का संस्कृत रूप **असुर-मेधस** होगा और इन दोनों का अर्थ होगा "ज्ञानी ईश्वर"—और ठीक यही रूप होगा दूसरा कोई नहीं।

इस समय हमारे पास अवेस्ता के कई संस्करण हैं और इसके अनुवाद भी हैं और टीकाएँ भी प्रकाशित हो चुकी हैं। यह काम बुर्नूफ, ब्रौकहाउस, स्पीगल और वेस्टरगार्ड ने किया है। इस पर भी इस विषय पर अभी बहुत कुछ काम होना शेष है। प्रसिद्ध विद्वान् डाक्टर हाग (Dr. Haug) इस समय पूना में पारसी धर्म की अवेस्ता की भाषा के अध्यापक हैं। उन्होंने यह बात बतायी है कि इस समय हमें अवेस्ता का जो पाठ प्राप्त हुआ है, उसमें नाना समयों की भाषा का समावेश है तथा इसमें जो सबसे पुरानी भाषा का भाग है वह गाथा कहलाता है। यह प्राचीन भाग जरथुष्ट्र का रचा हुआ कहा जा सकता है। अभी-अभी मुझे हाग साहब का एक छपा भाषण मिला है, उसमें उन्होंने बताया है—"अवेस्ता की भाषा की यदि तुलना की जाय तो अवेस्ता के भारी-भरकम ग्रंथ में मूल भाषा में लिखा हुआ भाग उरद के दाने में सफेदी के बराबर है किन्तु इसके भीतर जो अलग-अलग बोलियाँ हैं उनकी तुलना करने पर अवेस्ता की मूल भाषा की पहचान तुरन्त कर ली जा सकती

है। अवेस्ता की अपनी विशेषतायुक्त भाषा में जो कुछ रचना की गयी है, उस भाग का नाम **गाथा** अर्थात् गीत है। इसके पांच खंड हैं और उनमें नाना प्रकार के छंदों का प्रयोग किया गया है, जो वेदों के छंदों से सबसे अधिक मिलते हैं। पारसियों की यह भाषा वैदिक बोली से बहुत ही मिलती-जुलती है।" यह खेद का विषय है कि इसी भाषण में हाग साहब ने एक बात ऐसी कही है जो असंगत-सी लगती है अर्थात् उन्होंने इसमें यह भी बताया है कि ऋग्वेद में जो जरदश्ति शब्द आया है वह जरथुष्ट्र के नाम के स्थान पर ही आया है। इस जरदश्ति शब्द का अर्थ विद्वान् लोग उस कोश में देख सकते हैं, जो बोएटलिंक और रोट ने संकलित किया है और पीटर्सबुर्ग में संस्कृत-जर्मन कोश के नाम से, रूसी एकेडेमी की प्रेरणा से तैयार हुआ है। और कोई भी संस्कृत का गंभीर विद्वान् जरदश्ति का अर्थ जरथुष्ट्र नहीं करेगा। जरथुष्ट्र ने कब जन्म लिया और कब अपने धर्म का प्रचार किया इन समस्याओं पर विचार करना और भी टेढ़ी खीर है, इस समय[1] हम इस पर वाद-विवाद में फंसना उचित न समझेंगे। यहाँ इतना कहना ही यथेष्ट होगा और इससे हमारा काम चल जायगा कि जरथुष्ट्र कभी उत्पन्न हुआ था और उसकी भाषा अर्थात् अवेस्ता की भाषा एक वास्तविक और असली भाषा है। यह भाषा प्राचीन फारसी में कोणाकृति अक्षरों में लिखे गये शिलालेखों से बहुत पुरानी है।

१. यूसेबिडस ने आर्मीनिएन भाषा में बेरोसुस के ग्रंथों का जो अनुवाद सुरक्षित कर रखा है, उसमें उल्लेख है कि बेबीलन में एक मीडियन राजवंश था, जिसका पहला राजा जराथुष्ट्र नाम का था। यह नीनोस राजा से बहुत पहले हुआ था। इसका काल ईसा पूर्व दो हजार दो सौ चौंतीस वर्ष है।

डाइगुनीस ने खन्थुस नाम के एक लीडियन का उल्लेख किया है, जिसने लिखा है कि जराथुष्ट्र ग्रीस में लड़ी गयी ट्रोजन की लड़ाई से ६०० वर्ष पहले पैदा हुआ था।

प्लीनी के अनुसार अरस्तू का विचार था कि जोरावास्तर अफलातून से ६००० वर्ष पहले पैदा हुआ था। हर्मीपुस ने लिखा है कि जराथुष्ट्र ट्रोजन के युद्ध से ५००० वर्ष पहले हुआ था।

प्लीनी ने लिखा है कि जराथुष्ट्र हजरत मूसा से कई हजार वर्ष पहले हुआ था और उसने एक धर्म स्थापित किया था जिसका नाम 'मागी' था।

अब हमें यह पता लग गया है कि फारसी भाषा का बाद का इतिहास या परम्परा अवेस्ता की भाषा तक पहुँचती है। इस अवेस्ता के बाद ध्वनि-परिवर्तन के नियम के अनुसार आखमेनियन राजवंश की भाषा प्राचीन फारसी का आविर्भाव हुआ। इसके अनन्तर ईरान में पहलवी भाषा या हुर्ज़वारेश भाषा का दौर-दौरा रहा जिसे हुज़्र-वारेश भी कहते हैं। तब ससानियन राजवंश गद्दी पर बैठा, उस वंश के शासन-काल में ससानियन भाषा चलती थी और इसमें अवेस्ता का अनुवाद भी किया गया। यह भाषा इसके शिलालेखों और सिक्कों में पायी जाती है। इस भाषा में बहुत से अरबी शब्द ले लिये गये हैं और संभवत: ये शब्द सीरिया की अरबी भाषा के हों। इसके बाद फारसी आ गयी और इस फारसी में भी अधिकांश शब्द अरबी के हैं। ये अरबी शब्द पहलवी भाषा के समय से ही फारसी (ईरान की भाषा) में आने लगे थे। फारसी भाषा का पहला कवि फिरदौसी हुआ जिसका शाहनामा मशहूर है। इसके बाद में तो फारसी में अरबी शब्दों की भरमार होने लगी। अरबी शब्दों का जोर मुसलमानों की ईरान-विजय और ईरानियों को मुसलमान धर्म स्वीकार कराने के बाद तो बहुत बढ़ गया। इस समय फारसी में अस्सी प्रतिशत शब्द अरबी के ही हैं।

और भाषाएँ, जो अपने व्याकरण के रूपों तथा शब्दसंपत्ति से स्पष्ट ही प्रमाण देती हैं कि उनका संस्कृत और फारसी से साधारण संबंध है और जिनमें अपने देश की बोलियों और राष्ट्र के सांस्कृतिक रूप की ऐसी विशेष छाप पड़ी है कि उनका रूप स्वतन्त्र बन गया है, वे है—अफगानिस्तान की भाषा अर्थात् पश्तो, बुखारा की बोलियाँ, कुर्दों की बोली और काकेशश के एक भाग में बोली जाने वाली औसेटिअन भाषा और आरमीनिअन। इन भाषाओं के विषय में और उनके आर्य भाषा-परिवार में गिने जाने के विषय में भी बहुत कहा जा सकता है; किन्तु हमारे पास बहुत सीमित समय रह गया है और इनमें से किसी भी भाषा ने वह महत्त्व नहीं प्राप्त किया है जो भारत की वर्तमान नवीन आर्य-भाषाओं, फारसी, ग्रीक, इटली और जर्मनी की भाषाओं तथा आर्य भाषा परिवार की कुछ अन्य भाषाओं ने प्राप्त किया है। इनकी छानबीन पूर्ण रूप से की जा चुकी है और इनके साहित्य की ऐतिहासिक परंपरा की धारा प्राचीन समय से आज तक चली आ रही है और इनका अध्ययन करने के लिए यथेष्ट सामग्री उपस्थित हो चुकी है। अब केवल एक भाषा ऐसी रह गयी है जो आर्य भाषा-परिवार में है, किन्तु जिसका उल्लेख हमने अभी तक नहीं किया है। यह भाषा एशिया तथा यूरोप दोनों महाद्वीपों में बोली जाती है और यह है जिप्सी

लोगों की भाषा। यह भाषा, यद्यपि इसका व्याकरण बहुत ही भ्रष्ट हो चुका है और इसके रूप बहुत बिगड़ चुके हैं, सारे यूरोप की बोलियों की एक खिचड़ी-सी है और जिगाली भाषा से गुजरकर यह आयी है तो भी इसमें कोई संदेह नहीं कि यह भाषा स्पष्ट ही भारत से निर्वासित हुई है।

अब इस भाशा-चित्र का रूप[१] देखकर आप यह स्वीकार करने में जरा भी नहीं हिचकेंगे कि आर्य परिवार की इन सब भाषाओं को हम दो भागों में बाँट सकते हैं—(१) दक्षिणी भाषाएँ, जिनके भीतर भारतीय और ईरानी अर्थात् ईरानी से मिलने वाली भाषाएँ और बोलियाँ; (२) उत्तरी या उत्तर-पश्चिमी भाषाएँ, जिनमें संसार की अन्य सब आर्य-भाषाएँ शामिल हैं। यह बात ध्यान देने योग्य है कि संस्कृत और अवेस्ता की भाषा में कई शब्द और व्याकरण के रूप एक समान हैं। यह बात आर्य-परिवार की अन्य किन्हीं भाषाओं में नहीं पायी जाती और इस बात पर भी नाममात्र का संदेह नहीं किया जा सकता कि वैदिक ऋषियों के पूर्वज और **अहुर-मज्दा** के पूजकों के पूर्वज जब आदि आर्य-भूमि से बाहर आये तो दीर्घ अवधि तक साथ-साथ रहे। अब हम इस तथ्य का विशेष स्पष्टीकरण करेंगे। भाषा के स मानचित्र में भाषाओं के वर्गीकरण का जो चित्र खींचा गया है उससे ऐतिहासिक अभिप्राय की छटा भी हमें दिखाई पड़ती है। जिस निश्चय के साथ हम फ्रेंच, इटालियन आदि छः भाषाओं की खोज करने में परम्परा की डोरी के सहारे उन रोमन गड़रियों तक पहुँचते हैं जो रोम की सात पहाड़ियों पर भेड़ चराते थे। उसी प्रकार आर्य-भाषाएँ सब मिलकर उस समय की ओर संकेत करती हैं जब कि भाषा आदिम अवस्था में थी और भारतीयों, ईरानियों, ग्रीकों, रोमनों और श्लेवों, केल्टों तथा जर्मनों के आदि पूर्वज एक ही स्थान में निवास करते थे, बल्कि इतना ही नहीं वे कभी एक छत के नीचे साथ-साथ निवास करते थे। अति प्राचीन काल में नाना प्रकार के अनेक नामों में से पिता, माता, दुहिता (बेटी); सूनु (बेटा), श्वान तथा गो, स्वर्ग और भूमि आदि शब्दों के लिए आर्य लोग आदिम अवस्था में जो नाना रूप बोलते होंगे, वे अपने जीवन के लिए लड़ते-झगड़ते समाप्त हो गये और उक्त शब्दों ने इस होड़ में विजय पायी और आज ये सब आर्य-भाषाओं में पाये जाते हैं। यही दशा अन्य पर्यायवाची शब्दों तथा पेड़-पौधों और जीव-जन्तुओं के लिए काम में आने वाले

१. जो इन भाषणों के अन्त में दिया जायगा।

शब्दों की हुई । अब आप सहायक क्रिया **अस्** धातु के नाना आर्यभाषाओं में, नाना रूपों की तुलना कीजिए। इसमें हम देखते हैं कि अस् धातु अर्थात् होना के द्योतक अनेक रूप रहे होंगे। इनमें **अस्** विजयी हुआ और इससे, कुछ सर्वनामों के रूप जोड़कर, प्रथम पुरुष, मध्यम पुरुष और उत्तम पुरुष बनाये गये। इनमें **मि** का अर्थ **'मैं' सि** का अर्थ **'तू'** और **ति** का अर्थ **'वह'** था। कई ऐतिहासिक परिस्थितियों के कारण यह सब किया गया। ये रूप किसी विशेष स्थान और किसी विशेष काल में बने होंगे जब कि आर्य परिवार के सभी लोग एक स्थान पर रहते होंगे, क्योंकि इन रूपों की रक्षा आर्य परिवार की सब भाषाओं ने आज तक कर रखी है। इससे स्पष्ट ही यह निदान निकलता है कि जब भारतीयों और ईरानियों के पूर्वज मूल आर्यभूमि को छोड़ दक्षिण ओर आगे बढ़े और ग्रीकों, रोमनों, केल्टिकों, ट्यूटानिकों और श्लेवोनिकों के नेता जब उसी मूल आर्य भूमि से यूरोप की ओर आगे बढ़े, तो यह संभव है कि मध्य एशिया के सबसे उच्च पर्वतों की चोटियों पर एक मूल-आर्य-कुल निवास करता होगा जो ऐसी एक भाषा बोलता होगा जो अभी तक न तो संस्कृत रूप में थी न ग्रीक और न जर्मन रूप में, किन्तु इस भाषा के भीतर सभी भावी आर्यभाषाओं का मूल बीज रहा होगा। भाषाविज्ञान से यह भी पता चलता है कि यह आदिम आर्य-कुल कृषि के क्षेत्र में यथेष्ट उन्नति कर चुका होगा। इस कुल में परस्पर में रक्त-मिश्रण की सीमा भी निर्धारित हो चुकी थी और ये नियम भी बन चुके थे कि हम शादी-विवाह का संबंध किन-किन लोगों से ही कर सकते हैं। और वे लोग उस एक प्रकाश तथा जीवन के दाता, स्वर्ग में रहनेवाले ईश्वर की प्रार्थना उन शब्दों से करते थे जिन्हें आप आज भी काशी के मंदिरों में पूजा के समय सुन सकते हैं और इन्हीं शब्दों को आप रोम के तथा इंग्लैण्ड के गिरजों में सुनते हैं।

जब यह आदिम आर्य कुल, किसी कारण से तितर-बितर होने लगा तो इसके बाद भी भारतीयों और जरथुष्ट्र के धर्म माननेवालों का बहुत दिनों बाद तक साथ रहा। वे बहुत दिनों तक नये उपनिवेश की खोज में भ्रमण करते रहे और जब नयी बस्ती मिल गयी तो बहुत दिनों एक साथ रहे। मेरा विश्वास तो यह भी है कि जब जरथुष्ट्र ने अपना धर्म-प्रचार किया तो इन दोनों अर्थात् देवताओं के पूजकों और जरथुष्ट्र के धर्म माननेवालों में फूट आ खड़ी हुई। हम आर्यों की दक्षिणी और उत्तरी शाखाएँ विभाजित करने के सिवा इसी परख का सहारा लेकर अर्थात् शब्दों में समता खोजकर यह भी बता सकते हैं कि इसके बाद जर्मन और श्लैव कब एक दूसरे से अलग-अलग हुए, केल्ट लोग इटालियनों से और इटालियन लोग ग्रीकों से कब बिछुड़े ? पर यह

बात इस समय की आर्य-भाषा परिवार की खोज की दशा में अभी संभव नहीं मालूम पड़ती। इस विषय पर भिन्न भिन्न भाषाशास्त्रियों ने जो नाना प्रकार की खोज की हैं, उनसे नाना प्रकार के निदान निकले हैं किन्तु वे[१] सन्तोषजनक नहीं मालूम पड़ते। इस समय हमें विशेष रूप से यह काम करना चाहिए कि उत्तर यानी यूरोप की नाना भाषाओं और बोलियों को उनके मूल परिवार तक पहुँचा दिया जाय और इस बात का स्पष्टीकरण कर दिया जाय कि जो समानताएँ अभी तक नहीं ताड़ी गयी हैं, उनकी खोज की जाय। उदाहरणार्थ, हमें सप्रमाण यह दिखाना चाहिए कि ट्यूटानिक तथा श्लेवोनिक भाषाओं में जो शब्दों में विशेष साम्य है उसकी शोध करके यह सिद्ध करना चाहिए कि ट्यूटानिक और श्लेवोनिक बहुत निकट सम्बन्धी थे और इन्होंने अपनी बोली की कई समताएँ हजारों वर्ष तक सुरक्षित रखीं। यह बात उन्होंने आदिम आर्य-कुल से अलग होने के बाद भी की है।

१. देखिए Schleicher, Deutrche Sprache, s. 81.

छठा भाषण

तुलनात्मक व्याकरण

जैसा हम पहले भाषण में देख चुके हैं कि आर्य भाषाओं के वृक्ष का वर्गीकरण, प्रत्येक भाषा के व्याकरण के रूपों की तुलना करके, उन पर आधारित किया गया है और बौप के तुलनात्मक व्याकरण और ऐसी ही अन्य कृतियों का उद्देश्य यह प्रमाणित करना है कि संस्कृत, अवेस्ता की भाषा, ग्रीक, रोमन, केल्टिक, ट्यूटानिक और श्लेवोनिक में व्याकरण के ध्वनि-उच्चारण और उसके नियम सदा के लिए एक बार स्थिर हो चुके हैं। साथ ही यह भी सिद्ध करना है कि संस्कृत, ग्रीक और लैटिन के बाहरी रूपों के प्रत्ययों में जो भेद आ गया है, वह दिखाऊ तथा बाहरी है। और ये सब रूप ध्वनिपरिवर्तन अर्थात् ध्वनिविकार के नियमों से स्पष्ट किये और समझाये जा सकते हैं। आरंभ में जो आदि आर्य भाषा रही, वह नाना देशों में, उन देशों की विशेषताओं के साथ थोड़ी बहुत बदल गयी और प्रत्येक देश ने इसे अपनी राष्ट्रभाषा बनाकर इसकी कई विशेषताएँ बदल दीं। स कारण, ऐसा मालूम पड़ने लगता है कि मानो तुलनात्मक व्याकरण का उद्देश्य उस समय सफल हो जायगा जब एक मूल भाषा से निकली हुई और संबंधित भिन्न-भिन्न भाषाओं में परस्पर दूरी और निकटता का संबंध स्थापित कर लिया जाय। और उन विद्वानों ने जिन्होंने भाषा-विज्ञान की उच्च समस्याओं के प्रति ही अपनी दृष्टि रखी, उन्होंने निधड़क होकर यह सिद्धान्त बनाया है कि इन भाषाओं के नामों या संज्ञाओं के कारक, संख्याएँ, लिंग तथा रूपावलियाँ निश्चय करने में किसी प्रकार की कष्टदायक कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ता। यद्यपि यह निस्संदेह है और इसकी सत्यता का सप्रमाण निश्चय हो चुका है, इस पर भी तुलनात्मक व्याकरण केवल एक साधन है और यह भी निश्चित है कि तुलनात्मक व्याकरण ने हमें जो कुछ भाषा के सिद्धान्त निरूपण करने योग्य थे, वे सब प्रायः बता दिये हैं। आर्य भाषाओं के विषय में तो यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है । तो भी यह आशा करनी चाहिए कि भाषा-विज्ञान में तुलनात्मक व्याकरण का वह प्रमुख स्थान रहेगा जो इसे बौप, ग्रिम, पौट, बेनफे, कुर्टिउस, कून तथा

अन्य विद्वानों ने अपने घोर परिश्रम से दिलाया है। इसके अतिरिक्त तुलनामूलक व्याकरण का काम नाना संबंधित भाषाओं के शब्दों और व्याकरण के रूपों की तुलना करना ही नहीं है। यह तो बहुत आसान काम है कि हम संस्कृत, ग्रीक, लैटिन तथा अन्य आर्य-भाषाओं की धातु तथा शब्द-रूपावलियों के चित्र पास-पास रखकर उनकी तुलना करें और उनमें समानता और विभिन्नता की सीमा निर्धारित करें। यह सब कर चुकने के बाद और इन भाषाओं में जो ध्वनि-परिवर्तन के नियम काम करते हैं, उनको भली तरह समझाने पर भी कि अमुक-अमुक ध्वनि-परिवर्तन के नियमों के अनुसार संस्कृत, ग्रीक तथा लैटिन में अमुक अक्षरों की अमुक ध्वनि हो जाती है, अमुक अक्षर घिस जाते हैं और घिस गये हैं; आदि बताने पर भी भाषा-विज्ञान के क्षेत्र में, हमारे सामने नयी-नयी समस्याएँ आ खड़ी होती हैं। हम यह जानते हैं कि जिन अक्षरों को हम शब्दों में जोड़ते हैं और जिन्हें हम व्याकरण में प्रत्यय कहते हैं, वे अपने प्रारम्भ के समय स्वतन्त्र शब्द थे, जिनका अभिप्राय और अर्थ स्पष्ट और स्वतन्त्र था। क्या यह संभव है कि तुलनात्मक व्याकरण के इन प्रत्ययों के मूल रूप का पता लगाने पर भी हम इनके मूल में जो शब्द रहे होंगे, उनका पता लगा सकेंगे और उनकी शोध करते-करते उन स्वतन्त्र शब्दों को खोज निकालेंगे जिनमें घिसावट-मजावट होने के बाद हमारे ये प्रत्यय बने और उन मूल शब्दों के अभिप्राय और अर्थ का भी पता हम लगा सकेंगे? आप लोगों को स्मरण होगा कि यह वह बात है, जो हम आरंभ में कह चुके हैं। हमने एक भाषण में यह जानना चाहा था कि I loved वाक्य में d के जुड़ने से यह वाक्य भूतकाल सूचक क्यों बन गया? हमने यह भी जान लिया है कि इस प्रश्न का उत्तर देने से पहले हमें इस d प्रत्यय के सबसे पुराने रूप का अन्वेषण करना पड़ा था। हमने इसके मूल की खोज में अंग्रेजी से पीछे जाकर गौथिक रूप ढूँढ़ निकाला; और यदि आवश्यकता ही पड़ेगी तो इसी प्रत्यय की खोज में हमें गौथिक से संस्कृत-भाषा के रूप तक पहुँचना पड़ेगा और पीछे की ओर गौथिक से संस्कृत की ओर जाना पड़ेगा। अब हम फिर अपने मौलिक प्रश्न की ओर आते हैं अर्थात् भाषा में वह क्या तत्त्व है कि I love के स्थान पर I loved कर देने से, इसके रूप में जो परिवर्तन कर दिया गया है, उसके कारण इस वाक्य में अर्थ का इतना महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हो गया है?

अब हमको स्पष्ट रूप से यह जानना चाहिए कि यदि हम एक भाषा के धातु और उसमें जुड़ने वाले प्रत्ययों में भेद करेंगे तो इसका अर्थ क्या होगा? और इन सब रूप बदलने वाले प्रत्ययों से मेरा मतलब यह है कि ये धातु तथा शब्द-रूपावलियों

में जुड़नेवाले प्रत्यय नहीं बल्कि वे सब प्रत्यय हैं, जो अन्त में जुड़ने से शब्दों के अर्थ में फेर-फार कर देते हैं; इनसे मेरा अभिप्राय केवल क्रिया या नामधातु के प्रत्ययों से नहीं है बल्कि सभी प्रत्ययों से है जो भाषा की उत्पत्ति पर हमारा मत निर्धारित करते हैं कि हम शब्दों के रूप बदलने वाले इन प्रत्ययों और शब्दों के मूल में रहनेवाली इन धातुओं पर अपना क्या मत रखते हैं? वे विद्वान् जो भाषा को समाज की परस्पर सहमति द्वारा बनी हुई मानते हैं, उनके मत का आधार ये ही प्रत्यय हैं जो शब्दों में नाना परिवर्तन उपस्थित कर देते हैं। वे कहते हैं कि इन प्रत्ययों के जोड़ने से शब्दों का रूप परिवर्तन ही सबसे बड़ा प्रमाण है, जो यह सिद्ध करता है कि भाषा सामाजिक सहमति से बनी है। वे इन प्रत्ययों को केवल निरर्थक अक्षरों के रूप में मानते हैं और यदि उनसे पूछा जाय कि केवल d जोड़ने से I love का I loved हो गया और अर्थ भी बदल गया इसका क्या कारण है? तथा फ्रेंच भाषा में j' aime (मैं प्यार करता हूँ) में rai जोड़ने से अर्थात् j, aimerai (मैं प्यार करूँगा) अर्थ में इतना परिवर्तन क्यों हो गया? तो वे इसका उत्तर यह देगें कि अति प्राचीन काल से विश्व के इतिहास में कुछ मनुष्य या कुछ परिवार या कुछ कुल आपस में मिले और उन्होंने परस्पर सम्मति से इनके अर्थ निश्चित कर दिये।

इस मत का विरोध उन विद्वानों ने किया है जो यह मानते हैं कि भाषा एक अवयव-युक्त और सजीव पदार्थ है और वे मानते हैं कि ये रूप बदलने वाले प्रत्यय भाषा की प्रकृति में ही रहते हैं क्योंकि भाषा का स्वभाव जीवन के साथ-साथ बढ़ना है। उनका यह मत है कि 'भाषाएँ'[1] जब बढ़ती हैं, "तो वे उस प्रक्रिया से नहीं बनतीं और आगे बढ़तीं, जिस प्रकार निर्जीव पत्थरों पर पत्थर चढ़कर चट्टानें बनती हैं। भाषा के भीतर तो प्राण है, जो स्वभावतः धीरे धीरे बढ़ता है। भाषा का प्रत्येक आवश्यक अवयव उत्पत्ति काल से ही आदिम भाषा में वर्तमान था और जिस प्रकार फूलों की कलियों में सब पत्ते बन्द रहते हैं और फिर सूरज की किरणें लगने तथा हवा के हिलोरे खाने के बाद वे कलियाँ अपने पल्लवों को फैला देती हैं, इसी प्रकार भाषा के प्रत्येक अंग समय के साथ बल पकड़ते जाते हैं।" ये विचार सबसे पहले फ्रेडेरिक[2]

१. Farrar, Origin of Languages, p. 35.

२. व्याकरणकार साधारणतः यह मानते हैं कि ये प्रत्यय किसी अज्ञात प्रक्रिया

श्लेगल ने प्रकट किये। यह बात आज भी बहुत से ऐसे विद्वान् मानते हैं, जो कविता की भाषा में युक्ति का अस्तित्व मानते हैं।

भाषाविज्ञान इन दोनों विचार-धाराओं में से एक को भी नहीं मानता।

के कारण संज्ञा के शरीर से निकले हैं, ठीक उसी प्रकार जैसे एक वृक्ष के शरीर से बहुत-सी शाखाएँ निकलती हैं। ये तत्त्व भले ही सचमुच में कोई अर्थ न रखते हों, किन्तु शब्दों के साथ या तो मनमाने ढंग से या संभवतः रूढ़ि रूप में इनका व्यवहार किया जाता है। श्लेगल इस दूसरी विचारधारा का पक्षपाती है। श्लेगल कहता है कि वे भाषाएँ, जिनमें रूपावलियाँ होती हैं, सप्राण और सांगोपांग भाषाएँ हैं क्योंकि उनमें प्रगति के रूप में जीवन का नियम काम करता है और यह भाषा की ही खूबी है कि उसमें उपजाऊपन की यथेष्ट शक्ति है। इन भाषाओं की बनावट ही कुछ ऐसी है कि ये शब्दों के भिन्न-भिन्न प्रकार पैदा कर देती हैं और इनकी खूबी यह भी है कि ये थोड़े से अक्षरों से बने शब्दों से अपने निश्चित विचार प्रकट करती हैं और यदि इन शब्दों तथा अक्षरों को अलग अलग करके देखा जाय तो स्वयं इनसे कुछ अर्थ नहीं निकलता और तारीफ यह है कि ये अक्षर शब्दों को निश्चित रूप और उन ध्वनियों से निकले निश्चित अर्थ दे देते हैं। मूल अक्षरों (धातु) में थोड़ा फेर-फार करके और धातुओं में ऐसे प्रत्यय लगाकर जिनसे शब्दों का निर्माण होता है, इन अक्षरों से अनेक शब्दों का निर्माण किया जाता है और इन अक्षर और धातुओं से बने हुए इन शब्दों से नये नये शब्द बनाये जाते हैं। कई धातुओं की संधि करके ऐसे समास बनाये जाते हैं कि उनसे बड़े पेचीदे विचार प्रकट किये जाते हैं। अंत में यह भी होता है कि पदार्थवाचक शब्द (संज्ञा), विशेषण और सर्वनामों की रूपावलियाँ बनायी जाती हैं जिनमें उनके लिंग, वचन और कारक दिये रहते हैं। धातु की रूपावली बनायी जाती है जिसमें उसके वाच्य, काल, वचन, पुरुष बताये जाते हैं और इनमें कुछ प्रत्यय लगते हैं और कभी वृद्धि होती है (Augment) और ये ऐसे तत्त्व हैं जिनका कोई अर्थ नहीं होता। कभी-कभी बोलने के इस ढंग में केवल एक शब्द मुख्य विचार को प्रकट कर देता है और बहुधा ऐसा होता है कि यह विचार थोड़े से परिवर्तन से कुछ का कुछ हो जाता है तथा यह बहुत पेचीदा रहता है और नाम-मात्र के शब्दांश आने पर भी सारे वाक्य का अर्थ उलट देता है। Transactions of the Philological Society, Vol. II, p. 39.

अब कल्पना कीजिए कि कर्त्ता-कारक, संबंध-कारक, एकवचन, बहुवचन तथा भाववाच्य क्रियाओं में क्या क्या संबंध हैं ? इस पर विचार करने के लिए एक कांग्रेस का अधिवेशन किया गया और उस सभा में ऐसी भाषा पर विचार किया गया, जिसमें न तो विभक्ति है, न कारक हैं न प्रत्यय ही हैं, तो हमारी बुद्धि यह स्वीकार करने को तैयार नहीं है कि ऐसी जटिल समस्याओं को उस समय की अधूरी भाषा हल करने के योग्य रही होगी। उस समय के लोगों में कोई ऐसी प्रेरणा ही उत्पन्न नहीं हो सकती कि वे आपस में मिलकर प्रयत्न करें कि परस्पर बात करने के साधन अर्थात् भाषा में पूर्णता आ जाय। अब दूसरा मत लीजिए कि यह कल्पना करना बहुत ही कठिन है कि भाषा अर्थात् क्रिया और संज्ञा में भगवान् ने प्राण डाल रखे हैं। यह विश्वास करना भी कठिन है और इस विषय पर इतना ही कह सकते हैं कि हम ऐसे विचार की कल्पना भी नहीं कर सकते। यह तो मानना ही पड़ता है कि भाषा कभी न कभी उत्पन्न हुई होगी। पर यह कल्पना नहीं की जा सकती है कि यह एक ऐसा पदार्थ है जो बढ़ता है और अपने को निरंतर बढ़ाता है। यह भी विचार करने की बात है कि भाषा-विज्ञान केवल मात्र सिद्धान्त से कोई वास्ता नहीं रखता, भले ही वह सिद्धान्त कल्पना में आने योग्य हो या नहीं। इसका काम तथ्यों का संग्रह करना है और इसका एकमात्र ध्येय यथासंभव इन तथ्यों का निरूपण करना है। यह तो अपने मतानुसार विभक्ति, कारक, धातुओं के नाना रूपों आदि को न तो समाज की सम्मति से बना मानता है और न ही इन्हें शब्द की स्वाभाविक वृद्धि के रूप में देखता है। यह तो रूप बदलने वाले प्रत्येक प्रत्यय की अलग-अलग छानबीन करता है। भाषा-विज्ञान इसके प्रारम्भिक रूप तक शोध द्वारा पहुँचता है और इस मूल प्रत्यय की चीर-फाड़ यह उसी प्रकार करता है, जिस प्रकार भाषा के किसी अन्य भाग की। अर्थात् उसका वह मूलरूप ढूँढ़ता है, जिसका कभी अभिप्राय और अर्थ था। भाषा के किसी अंश का मौलिक अर्थ प्राप्त करने में हम समर्थ होंगे या नहीं, यह बिलकुल दूसरी बात है और हमें पहले ही यह बात मान लेनी चाहिए कि व्याकरण के कई मौलिक रूप प्राप्त हो जाने पर भी, यह नहीं कहा जा सकता कि हम उसका मूल अर्थ जान जायेंगे या उसका स्पष्टीकरण कर सकेंगे, किन्तु यह ध्यान देने योग्य बात है कि इस समय प्रति वर्ष तर्कशास्त्र की आरोही पद्धति (Inductive reasoning) द्वारा नये नये आविष्कार हमारे सामने आ रहे हैं। हम प्रति दिन भाषा के रहस्यमय तौर-तरीकों से परिचित होते जा रहे हैं। यह संदेह करने का अब कोई कारण नहीं है कि समय आने पर व्याकरण का विश्लेषण रासायनिक पदार्थों के विश्लेषण के समान ही सफलता

प्राप्त करेगा। यद्यपि व्याकरण आगे की किसी स्थिति में भले ही हमारे लिए भयंकर और बुद्धि को भ्रम में डालने वाला रूप धारण कर ले, तो भी वह प्रारम्भ में इतना भयंकर और घबरा देनेवाला नहीं बना था, जितना कि सर्वसाधारण उसे मान लेते हैं। यदि हम व्याकरण को भली-भाँति विचार करके देखें तो प्रतीत होगा कि यह तो केवल धातु और शब्द-रूपावलियों का संग्रह है। यदि इसकी प्रारंभिक अवस्था देखें तो समें कुछ ऐसे संज्ञा शब्द रहे होंगे, जिनमें वचन और कारक बताने के लिए कुछ सार्थक शब्द भी जोड़ दिये गये होंगे। किसी विगत भाषण में हमने यह भी देख लिया है कि संज्ञा शब्दों में वचन जोड़ने के लिए क्या उपाय किया जाता था? इसी प्रकार की किसी प्रक्रिया से कारक भी सूचित किये जाते होंगे।

अब चीनी भाषा[1] को लीजिए, उसमें अधिकरणकारक सूचित करने के लिए नाना उपाय हैं। एक उपाय यह भी है कि शब्द के अंत में **शुंग** जोड़ दिया जाता है या शब्द के भीतर **नेई** जोड़ दिया जाता है। उदाहरणार्थ **कूओ-शुंग** का अर्थ हो जाता है 'साम्राज्य में'। इसी प्रकार **सुई शुंग** का अर्थ होता है 'वर्ष के भीतर'। करण कारक, **वाई** (y) परसर्ग लगाकर बनता है। यह परसर्ग बहुत पुराना है। किसी समय इसका अर्थ था-'तुम करो'। इस तरह **वाई टिंग** शब्द का अर्थ है—'लाठी से'। यह बात ध्यान देने योग्य है कि लैटिन भाषा में इस स्थान पर अपादान का प्रयोग होता है और ग्रीक में इस स्थान पर सम्प्रदान कारक की विभक्ति से काम चलाया जाता है। अब देखिए कि धातुरूपावली कितनी भी कठिन बन गयी हो किन्तु इतना तो निश्चित ही है कि मूल रूप में धातुओं में प्रत्यय लगाकर ही उनकी रूपावली चलायी जाती रही होगी।

आर्य-भाषाओं में प्रारम्भिक अवस्था में एक कारक था, जो स्थानवाची था और जिसे अधिकरण कहा जाता है। संस्कृत में प्रत्येक पदार्थ का अधिकरण वाला रूप मिलता है और साथ ही इसके संबंध, संप्रदान और कर्मकारक के रूप भी मिलते हैं। इस नियम से संस्कृत में हृदय को **हृद्** कहते हैं और जब हम 'हृदय में' कहना चाहेंगे तब हम कहेंगे **हृदि**। यहाँ आप देखेंगे कि हृद् में खाली **इ** जोड़कर यह कारक बन गया। यह **इ** सार्थक है, क्योंकि यह निश्चयबोधक सर्वनाम है और यह बहुत ही संभव है कि यह वही मूलरूप हो जो लैटिन में **इन्** (in) रूप में मिलता है।

१. Endlicher, Chinesische Grammatik, p. 172.

इस कारण संस्कृत शब्द **हृदि** मूलरूप की संधिवाला शब्द है और इसका अर्थ है 'भीतर हृदय' (heart within) धीमे-धीमे **इ** का अर्थ लोग भूल गये और संस्कृत में जिन शब्दों के अंत में व्यंजन आते हैं, उनके अधिकरण कारक के अर्थ में यह रूढ़ हो गया। अब जब हम चीनी भाषा[1] की ओर दृष्टि फिराते हैं, तो यह साफ दिखाई देता है कि वहाँ भी अधिकरण कारक इसी ढंग से बनता है, किन्तु वहाँ इसके और भी अनेक ढंग हैं। वे स्वतन्त्रता के साथ इस कारक को सूचित करने के लिए स्थानवाचक कई शब्दों का प्रयोग करते हैं। हम देख आये हैं कि 'साम्राज्य में' सूचित करने के लिए **कूओ शुंग** शब्द आये हैं और 'वर्ष में' व्यक्त करने के लिए **सुई शुंग** का प्रयोग हुआ है। इस पर भी शुंग के स्थान पर हम अन्य प्रत्ययों का प्रयोग कर सकते हैं; जैसे हम **नेई** भी जोड़ सकते हैं। इस स्थल पर यह आपत्ति की जा सकती है कि एक ऐसे अति प्राचीन कारक की बनावट के विषय में यानी अधिकरण कारक के संबन्ध में कोई कठिनाई उपस्थित नहीं होती, किन्तु शब्द में अक्षर जोड़कर कारक बनाने की यह प्रक्रिया वहाँ ीक नहीं बैठ पाती है जहाँ अधिक पेचीदे कारकों का प्रश्न उठता है, अर्थात् कर्म, संप्रदान और संबंध कारक में यह प्रक्रिया असफल हो जाती है। यदि हम व्याकरण दर्शन के अनुसार इन कारकों के विषय में अपने विचार स्थिर करें तो यह सच है कि शब्दों में एक अक्षर का प्रत्यय जोड़कर वे पेचीदे संबंध व्यक्त नहीं किये जा सकते जो कर्म, संप्रदान तथा संबंध कारक से सूचित होते हैं। आपको यह बात स्मरण रखनी चाहिए कि ये साधारण रूप हैं जिनके अनुसार दार्शनिकों और वैयाकरणों ने भाषा के तथ्यों को सुव्यवस्थित करके रखा है। जिस जनता के बीच भाषा आगे बढ़ती गयी वह न तो संप्रदान कारक को जानती थी और न कर्म कारक को। व्याकरण में जो विषय इस समय हमें जटिल मालूम पड़ते हैं, वे भाषा की प्रारम्भिक अवस्था में सरल और सार्थक थे। अब एक उदाहरण लीजिए, जब जनता यह कहना चाहती थी—"रोम का राजा," तो उसका वास्तव में यह अर्थ होता था कि—"रोम में राजा।" यह बात उसके व्याकरण के अनुसार अधिकरण कारक में है। रोमन लोगों की विचार-धारा ही कुछ ऐसी थी कि उनके दिमाग में संबंध-कारक का पेचीदा रूप घुस ही नहीं पाया। इससे भी आगे हम यह भी सिद्ध कर सकते हैं कि लैटिन में कई स्थानों पर अधिकरण कारक ने संबंध कारक का स्थान ग्रहण कर लिया। लैटिन में **अ**

१. Endlicher, Chinesische Grammatik, s. 172.

पर समाप्त होनेवाली संज्ञाओं का संबंधकारक का प्राचीन रूप **आम्** था। वहाँ **पातर फामिलिओई** के स्थान पर **पातर फामिलिआस्** रूप चलता था। लैटिन की दूसरी बोलियों—आस्कन और अम्ब्रियन में **अ** पर समाप्त होने वाले सभी संज्ञा शब्दों का संबंध कारक का रूप सदा और सर्वत्र **आस्** ही रहा। संबंध कारक में शब्दों के अंत में जो **ए** (a), पुराना उच्चारण अए लगता है वह भाषा की प्रारंभिक अवस्था में **अई** था। इसका अर्थ यह हुआ कि यह उस प्राचीन अधिकरण कारक का ही प्रत्यय—**इ** है। यदि पूर्वोक्त शब्द का लैटिन में अनुवाद करें तो Rex Romae होगा। इसका अर्थ वास्तव में है ोम में राजा। इस बात से आपको मालूम हो जायगा कि व्याकरण जो सदा तर्कसंगत होना चाहिए, कभी-कभी तर्क-शास्त्र के विरुद्ध भी चला जाता है। अंग्रेजी स्कूलों में विद्यार्थियों को पढ़ाया जाता है कि यदि तुमको कहना है—"मैं रोम में ठहर रहा हूँ।" तो तुमको अधिकरण-कारक को व्यक्त करने के लिए संबंध-कारक के चिह्न काम में लाने चाहिए। यहाँ पर इस बात की जाँच करना हमारा काम नहीं है कि एक वैयाकरण या तर्क-शास्त्री किस प्रकार एक वाक्य के शब्दों को तोड़-मरोड़ सकता है कि उसमें संबंध कारक के प्रत्यय का अर्थ—"एक स्थान पर विश्राम" बन जाय। इस प्रकार व्याकरण की चल पड़ने पर, व्याकरण का विद्यार्थी कार्थेय शब्द को इसी उद्देश्य से संबंध-कारक के कार्थेजिनिस (carthaginis) रूप में बदल देगा और एथेन्स (Athens) का रूप संबंध-कारक मे एथेनारिउम (Athenarium) कर देगा। तब व्याकरण का गुरु उसको बतायेगा कि इन संबंध-कारकों का प्रयोग हम उसी प्रकार नहीं कर सकते, जिस प्रकार—**अ** पर समाप्त होने वाले अन्य संज्ञा शब्दों का। हमको इस बात का ज्ञान नहीं है कि दार्शनिक व्याकरण इन रूपों की सिद्धि कैसे करता है? किन्तु तुलनात्मक व्याकरण इस जटिल समस्या को आसानी से हल कर देता है। लैटिन भाषा की प्रथम रूपावली में अधिकरण-कारक संबंध-कारक के स्थान में आकर बैठ गया है, किन्तु कार्थेजिनिस और ऐथेनारिउम सचमुच में असली संबंध-कारक होने के कारण अधिकरण के स्थान पर किसी प्रकार काम में नहीं लाये जा सकते।

इस एक उदाहरण से आप लोग भली-भाँति समझ जायँगे कि जिसे वैयाकरण अपने पारिभाषिक शब्द में संबंध-कारक कहते हैं, वह प्रत्यय जोड़ने से उसी प्रकार बन गया, जिस प्रकार चीनी भाषा के संबंध-कारक बने थे। हम यह बात भली-भाँति सिद्ध कर सकते हैं कि आदि आर्य-भाषा में भी यही प्रक्रिया काम में लायी गयी थी और यही सिद्धान्त संप्रदान-कारक पर भी लागू होता है। यदि हम एक विद्यार्थी से कहेंगे

कि संप्रदान-कारक एक शब्द का दूसरे से जो संबंध प्रकट करता है वह कर्म-कारक से कम सीधा या कम प्रत्यक्ष है। यह सुनकर विद्यार्थी थोड़ा आश्चर्य में पड़ेगा कि ऐसा कच्चा संबंध व्याकरण वालों ने कैसे स्थापित करवाया होगा। उसे इससे भी अधिक आश्चर्य उस समय होगा जब उसे इस जटिल समस्या के बाद यह भी बताया जायगा कि ग्रीक-भाषा में किसी 'स्थान पर रहने' के लिए अधिकरण के स्थान पर संप्रदान कारक की विभक्ति काम में लायी जाती है। यदि हम यह कहें "मैं सालामिस में ठहर रहा हूँ।" इस 'सालामिस में' के लिए ग्रीक में संप्रदान-कारक की विभक्ति नि (ni) जोड़ दी जायगी और यह शब्द **सालामिनि** हो जायगा। यदि आप पूछें कि ऐसी गड़वड़ी क्यों होती है ? तो समस्या का समाधान भी तुलनात्मक व्याकरण कर सकता है। अब देखिए कि ग्रीक भाषा में संप्रदान कारक के विभक्ति-सूचक रूप में जो अंत में **इ** (i) आता है वह वास्तव में अधिकरण का प्रत्यय है। अधिकरण-कारक काम-चलाऊ रूप में भले ही थोड़ा-बहुत संप्रदान का अर्थ भी व्यक्त कर सकता हो, किन्तु संप्रदान-कारक-विभक्ति का धुँधला (अस्पष्ट) प्रत्यय अधिकरण-विभक्ति के काम में नहीं लाया जा सकता। **सालामिनि** (Salamini) में **इ** जो संप्रदान कारक की विभक्ति है, वह प्रारंभ में अधिकरण की विभक्ति थी।

संज्ञा के कारकों के विषय में जो कहा गया है, क्रिया के बारे में भी वही बात लागू होती है। इसका पता लगाना कठिन है कि ग्रीक और लैटिन क्रिया-धातुओं के अंत में जो प्रत्यय जोड़े जाते हैं, उनकी प्रारंभिक अवस्था में मूल रूप क्या थे ? मगर बुद्धि यह कहती है कि प्रारंभ में इनके रूप सब भाषाओं में समान रहे होंगे। अर्थात् ये व्यक्तिवाचक सर्वनाम रहे होंगे। अंग्रेजी के रूप 'Thou lovest' और 'He loves' में 'st' और s प्रत्यय देखकर हमारा दिमाग ठिकाने नहीं रहता, क्योंकि st और s की समानता चाहे हम जितना सिर मारें देखी नहीं जाती और यह भी thou तथा He के साथ आने पर, परन्तु यदि हम सब आर्य-भाषाओं की तुलना करें तो हमको तुरत ही पता चल जायगा कि ये प्रत्यय उन प्रत्ययों की ओर संकेत करते हैं जो मूल आदि आर्य-भाषा में प्रचलित थे। उनका ध्यान आ गया तो फिर क्या है ? उन्हें इस प्रकार सजाया जा सकता है कि वे अपनी उत्पत्ति की कहानी का बखान स्वयं अपने मुँह से करने लगेंगे।

अब हम यहाँ, व्याकरण के नये रूपों से आरंभ करके पीछे की ओर जायँगे, क्योंकि इस प्रकार हमें अधिक प्रकाश मिलेगा कि हम भाषा की पेचीदा और मनमौजी हरकतों का भली-भाँति निरीक्षण कर सकें। भला तो यह होगा कि हम एक काल्प-

निक उदाहरण लें और एक भावी भाषा के रूप पर विचार करें, क्योंकि इससे हम साफ-साफ देख लेंगे कि व्याकरण के रूप किस प्रकार पैदा होते हैं। आप लोग अब थोड़ा सा अनुमान लगायें कि अमेरिका में हब्शी गुलाम जाति के लोग अपने मालिकों के विरुद्ध विद्रोह करें और क्षणिक विजय प्राप्त करने के बाद उन्हें मध्य अफ्रीका के नाना प्रदेशों में जाना पड़े, जिससे कि वे अपने शत्रुओं से रक्षा पा सकें और इस प्रकार मित्रों से भी दूर हो जायँ। अब यह भी कल्पना कीजिए कि ये लोग अपनी इस एक स्थान पर बंद रहने की अवस्था से अनुभव प्राप्त कर कुछ सबक सीखें और धीरे-धीरे अपनी एक अलग सभ्यता स्थापित कर लें। बहुत संभव यह है कि कुछ सदियों बाद लिविंगस्टन के समान कोई अफ्रीका की खोज करनेवाला इन हब्शी गुलामों के वंशजों के पास पहुँच जाय, तो उसे पता चलेगा कि इनकी भाषा, साहित्य, रीति-रिवाज और आचार हमारी मातृभूमि के लोगों की भाषा, साहित्य, रीति-रिवाज आदि से बहुत कुछ मिलते हैं। यह समस्या किसी भी इतिहासकार और मनुष्य की नाना जातियों का अन्वेषण करनेवाले के सामने बहुत ही रसपूर्ण मालूम पड़ेगी। मनुष्य के प्राचीन इतिहास में ऐसी अनेक दिलचस्प समस्याएँ हैं, जिन्हें भाषा के शोधकों के लिए हल करना अब भी शेष है। मेरा विश्वास है कि इन भागे हुए हब्शी गुलामों के वंशज जो भाषा बोल रहे होंगे, उसे पढ़ और सुनकर कोई भी पूर्ण निश्चय के साथ उस भाषा का प्राचीन इतिहास और पारम्पर्य पहचान जायगा। भले ही इन गुलामों की स्वतन्त्रता और विद्रोह का पता किसी को नाममात्र न हो। आरम्भ में अवश्य ही कुछ ऐसा मालूम पड़ेगा कि जैसे इस विचित्र इतिहास के सूत्र उलझ गये हैं। मान लो कि कोई पादरी ईसाई धर्म का प्रचार करने वहाँ पहुँच जाय और वह वहाँ से इन गुलामों की भाषा के संबंध में लिखे, तो यूरोप के बड़े बड़े विद्वान् आश्चर्य में पड़ जायँगे। वह पहले कुछ इस प्रकार की बातें बतायेगा कि यह भाषा अपूर्ण है, क्योंकि इसमें कई शब्द ऐसे हैं, जिनके अर्थ परस्पर विरोधी हैं। वह अपने पत्रों में यह भी लिख सकता है कि एक ही ध्वनि जिसमें कहीं कोई ध्वनि-बल नहीं पाया जाता, नाना अर्थ रखती है। जैसे एक ही शब्द का अर्थ ठीक, रीति, रिवाज, मजदूर आदि होता है, किन्तु साथ हो यह ध्वनि क्रिया के स्थान पर भी काम में लायी जाती है। और वह यह भी बतायेगा कि उक्त शब्द राइट (Rait) है। अब देखिए कि ध्वनिविकार होते-होते अंग्रेजी **राइट** Right, rite, wright, write की उनमें यह एक ध्वनि और एक रूप बन गया। वह पादरी अपने निरीक्षण से यह भी जान जायगा कि यह बोली उतनी ही शब्द-सम्पत्ति-हीन है, जैसी चीनी भाषा

और इसमें नाममात्र की शब्द और धातु-रूपावलियाँ हैं। इसमें लिंगभेद भी नाम-मात्र का ही है। वह अपने पत्रों में यह जिक्र कर सकता है कि बड़े आश्चर्य की बात यह दिखाई देती है कि इस भाषा में स्त्रीलिंग और पुंलिंग का भेद बताने के लिए कोई प्रत्यय नहीं है और यह बोली **हाँ** और **न** के पीछे किसी पुरुष या स्त्री से बात करते समय प्रत्यय जोड़ती है। ये लोग **हाँ** को अंग्रेजी रूप में **एस** (yes) ही कहते हैं और जब किसी पुरुष को yes कहा जाता है तो उसमें R (र्) जोड़ दिया जाता है और जब यही yes स्त्री से कहा जाता है तो अंग्रेजी **एम** जोड़ दिया जाता है। अर्थात् इसका मतलब यह है कि किसी पुरुष को संबोधित करते समय अमेरिका के गुलामों के ये वंशज yesr (यस्र) कहते हैं और जब किसी स्त्री को संबोधित करते हैं तो yesm (यस्म) बोलते हैं। यह बात आप लोगों के सामने कुछ अनाप-शनाप-सी लग सकती है, किन्तु मैं आप लोगों को विश्वास दिलाता हूँ कि नाना यात्रियों या ईसाई धर्म-प्रचारकों ने कई असभ्य जातियों के बीच पहुँचकर, उनकी भाषा का पहले-पहल जो वर्णन किया है वह इससे भी अधिक विस्मयकारक है। अब थोड़ा विचार कीजिए कि इस स्थिति में भाषा की शोध करनेवाले किसी विद्वान् को क्या करना पड़ेगा; यदि य्स्र् और य्स्म् रूपों से उसे पहली बार परिचित कराया जाय। उसको प्रारंभ में ऐतिहासिक भाषा-विज्ञान का सहारा लेकर इन शब्दों की परम्परा को ध्यान में रखते हुए जहाँ तक सम्भव हो इनके प्राचीन मूलरूप तक जाना पड़ेगा और अगर उसने उक्त शब्दों का सम्बन्ध yes sir और yes madam से जोड़ दिया तो वह बतायेगा कि ग्रामीण या छोटी-मोटी बोलियों में किस प्रकार इस तरह की संधियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। यस्र् और यस्म् की खोज करते-करते उस मूल रूप पर पहुँचने के बाद, जिसे इन स्वतन्त्र हुए हब्शी गुलामों के मालिक बोलते थे, व्युत्पत्ति का पंडित इस बात की जाँच-परख के पीछे पड़ेगा कि अमेरिका महादेश में yes sir और yes madam जैसे रूप, किस कारण चलने लगे?

जब वह देखेगा कि अमेरिका महादेश की प्राचीन बसी हुई जातियों में कहीं इस प्रकार के शब्द का पता नहीं मिलता, तो शब्दों की केवल मात्र तुलना से वह यूरोप की ओर दृष्टि फेरेगा और सबसे पहले इंग्लैण्ड की ओर। भले ही इस विषय पर कोई ऐतिहासिक प्रमाण का लेख कहीं न मिले, किन्तु भाषा के पक्के लेख प्रमाणित कर देंगे कि इन स्वतन्त्र हब्शियों के पूर्वज, जो कभी अमेरिका में थे उन्होंने गोरे मालिकों की सेवा करते समय, उनकी भाषा भी अपना ली थी। और ये अमेरि-कन अपनी आदि जन्म-भूमि इंग्लैंड से आये थे और वह इस तथ्य का भी पता लगा

सकता है कि यह अंग्रेजी भाषा पहले-पहल किस समय अमेरिका पहुँची ? वह विद्वान् जान जायगा कि जो अंग्रेजी अमेरिकन लोग बोलते हैं वह महाकवि चौसर के युग के बाद की है, क्योंकि चौसर के ग्रन्थों में हाँ के लिए दो शब्द काम में आये हैं—yea (ये) और yes (यस्) और इन दोनों रूपों का भेद वह जानता है। चौसर ने नकारात्मक प्रश्नों के उत्तर में yes का प्रयोग किया है। उदाहरणार्थ यदि कोई कहे—'Dose he not go ?' तो चौसर की भाषा में इसके उत्तर में yes आयेगा। और अन्य सब परिस्थितियों में चौसर yea का प्रयोग करेगा। उदाहरणार्थ, यदि कोई यह प्रश्न पूछे 'Does he go ?' तो वह उत्तर में yea शब्द काम में लायेगा। यही भेद चौसर No और Nay में भी करता है। No नकारात्मक शब्दों के उत्तर में आता है और अन्य सभी परिस्थितियों में वह Nay शब्द काम में लाता है। सर टामस मूर[१] के मरने के बाद शीघ्र ही अंग्रेजी से ये भेद उड़ गये और yes sir तथा yes madam परम्परा के क्रम से भाषा में आने के कारण रूढ़ि हो गये।

यह मामला यहीं समाप्त नहीं हुआ। उक्त वाक्यों से हमें अभी और भी ऐतिहासिक बातों का पता चलाना है, yes शब्द ऐंग्लोसेक्शन है। यह उसी प्रकार का है जिस प्रकार जर्मन शब्द Ja (या) है और इस कारण यह शब्द इस तथ्य का उद्घाटन करता है कि जब अमेरिकन गुलामों के गोरे मालिक, जिन्होंने चौसर के समय के बाद इंग्लिश चैनल और एटलांटिक पार किया, ये ऐंगिल, सैक्सन और जूट चौसर से पहले यूरोप महाद्वीप छोड़कर इंग्लैंड आये थे। Sir और Madam शब्द कुछ और भी तथ्यों का उद्घाटन करते हैं, ये शब्द नॉर्मन हैं। जब नॉर्मनों ने इंग्लैंड की विजय की, उसके बाद ही ये शब्द ऐंग्लोसेक्शनों पर लादे गये। ये शब्द और कई बातें खोलते हैं। नार्मन लोग उत्तरी यूरोप के निवासी थे और वे प्राचीन समय में एक ट्यूटानिक बोली बोलते थे, जो ऐंग्लोसेक्शन-भाषा से बहुत घनिष्ठ संबंध रखती थी। एक बात यह भी है कि ट्यूटानिक बोली में Sir और Madam के पर्याय शब्द कभी के मर चुके थे। इससे इस बात का भी पता चलता है कि नार्मनों की इंग्लैंड-विजय से बहुत पहले उत्तर के निवासी ट्यूटानिकों ने एक ऐसे प्रदेश में निवास किया होगा, जो रोमन रहा होगा और जहां रहकर उन्होंने sir और madam अपना लिये होंगे तथा

१. Marsh, p. 579.

उनकी मूल भाषा में उक्त शब्दों के लिए जो पर्यायवाची शब्द थे उन्हें वे भूल गये होंगे।

और तमाशा देखिए कि यह नार्मन भाषा का जो madam शब्द है उसकी व्युत्पत्ति खोजने में हमें फ्रेंच भाषा से सहायता लेनी पड़ती है, जहाँ से हमें पता चलता है कि madam का मूल रूप लैटिन शब्द Mea domina (मेया डोमिना= मेरी स्वामिनी) है। इस पर तुर्रा यह है कि यह डोमिना विकार की प्रक्रिया के चक्कर में पड़ा और इसके रूप फ्रेंच में हो गये दम्ना, दोन्ना तथा दाम (Dame)। यह दाम पुंलिंग में भी काम में आता था और इस लिंग में इसका अर्थ होता था 'दंपति' या घर का मालिक। ये डोमिना, डोमना, और डोन्ना (स्वामी) के घिसे हुए रूप हैं। विशप के नीचे जो पादरी काम करता था उसे Vidame (विदाम) कहते थे। प्राचीन फ्रेंच में एक शब्द पाया जाता है—Dame-Dieu (दाम-दिए), इसका अर्थ है—'प्रभु, ईश्वर'। इसी प्रकार जर्मन शब्द Damsel (डेमसेल, कुमारी), डोमिना से निकला है। इसका मूल रूप dominicella (डोमीनीचेल्ला) है। इसी मूल रूप से फ्रेंच में Demoiselle (डिमोजैल) है। Domino (डोमिनो=प्रभु) कुछ दिन बाद सेनिओर (Senior) बन गया। इस सेनिओर का रूप घिसते-घिसते हमारा सर (Sir) हुआ है। इस प्रकार आपने तुलनामूलक भाषाविज्ञान का महत्त्व देख लिया होगा और समझ लिया होगा कि दो समान शब्दों में—**यस्र्** और **यस्म्** में इतिहास के दीर्घ अध्याय पढ़े जा सकते हैं। यदि कभी सब पुस्तकों का नाश हो जाय जैसा कि चीन में थ्सिन-चि-ह्वांग्-ति राजा के समय हुआ था, तो ऐसे संकटकाल में जब कि सब प्रकार के प्रमाण नष्ट हो गये हों, तो भी भाषा भले ही बहुत गिरी हालत में क्यों न हो, भूतकाल के सभी रहस्य खोल देगी और भावी पीढ़ियों को बता देगी कि अति प्राचीन समय में तुम्हारी आदि भूमि कौन थी? और तुम्हारे पूर्वज किस प्रकार पूर्व से वेस्ट इंडीज को गये?

यह बात कुछ चकित करने वाली-सी है कि हम दो नामों, ईस्ट इंडीज और वेस्ट इंडीज़ में समानता पा रहे हैं और ये दोनों देश उन सीमान्तों, पर स्थित हैं, जिनके बीच में आर्य लोग फैले। किन्तु ये दोनों नाम अपने भीतर ऐतिहासिक अर्थ रखते हैं। ये नाम हमको बताते हैं कि किस प्रकार ट्यूटानिक जाति ने, जो आर्य परिवार में सबसे अधिक शक्तिशाली और संकटों का सामना करने वाली रही, पश्चिम में उस देश को वेस्ट इंडीज का नाम दिया, जिसे अपने संसारभ्रमण और विजय के

दौरे में उन्होंने जीता, क्योंकि उन्होंने यह समझा कि हम स्वयं भारत में ही पहुँच गये हैं।

स्वयं **इंडिया** शब्द का अपना अलग इतिहास है। यह नाम भारतवासियों का रखा नहीं है। हमने यह नाम ोमनों से लिया और रोमनों ने इसे ग्रीक लोगों से पाया और ग्रीकों ने यह शब्द ईरान से लिया। परसिया में यह शब्द हिन्द या हिन्दुस्तान है। वहाँ यह नाम क्यों रखा गया? इस कारण कि वहाँ की भाषा में संस्कृत **स** अक्षर **ह्** रूप में परिणत हो जाता है। ध्वनि-परिवर्तन के नियमों के अनुसार इस ईरानी **ह** का ग्रीक भाषा में लोप हो जाता है। केवल ईरानी भाषा में ही संभव है कि सिन्धु के देश या सप्त सिन्धु के देश, **सिंधिया** का रूप **हिन्दिया**[1] शब्द में बदल सकता है और यही नाम ग्रीक में ह् के लोप हो जाने से **इण्डिया** हो गया है। जरथुष्ट्र के अनुयायी यदि संस्कृत के **स** का उच्चारण **ह** नहीं करते तो **वेस्ट इंडीज** नाम का आविष्कार ही न हो पाता।

हमने एक काल्पनिक उदाहरण प्रस्तुत करके यह देख लिया है कि भाषा की प्रगति के पथ में, हमें किन किन तथ्यों का पता लगाने के लिए तैयार रहना चाहिए। अब हम पहले से और भी भली-भाँति समझ जायँगे कि तुलनामूलक व्याकरण के क्षेत्र में क्यों एक मुख्य या बुनियादी नियम यह बनाया जाना चाहिए कि भाषा में उसके किसी भी अंश को, तब तक शोधित नहीं समझा जाना चाहिए जब तक हम ऐसे सब प्रयत्न न कर लें कि इन बाहरी रूपों को भाषा-विज्ञान के हर पहलू से भली भाँति उनके वास्तविक मूल रूपों तक न पहुँचा दें। हमें कुछ ऐसा अभ्यास पड़ गया है कि हम समझते हैं कि व्याकरण के प्रत्यय-उपसर्ग आदि शब्दों का अर्थ बदल देते हैं। पर हमें ध्यान में रखना चाहिए कि शब्द दूसरे शब्दों द्वारा ही अपना रूप बदलते हैं। इस समय अब तक जो कुछ शोध हुई है उसके आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि व्याकरण के सभी प्रकार के प्रत्ययों की खोज उनके मूल रूप तक हो चुकी है। पर एक बात निश्चित है कि इनमें से सभी प्रत्यय भले ही घिसते-घिसते अब शब्दों के अंत में, अपने केवल एक अक्षर अंश रूप में रह गये हों, फिर भी

१. यह हिन्दिया शब्द ईरानी भाषा में तो नहीं पाया जाता, शायद कहीं उसकी अन्य किसी बोली का हो, जिसने ईरान में जाकर अपना घर कर लिया हो। ईरानी में तो भारत को हिन्द कहते हैं। (अनु०)

भाषा-शास्त्र की इतनी प्रगति हो चुकी है कि हम भाषा का यह नियम भली-भाँति बना सकते हैं कि आरंभ में भाषा में सभी प्रत्यय और रूढ़ि रूप सार्थक नाम या शब्द थे। तर्क के लिए मान लीजिए कि पियर्स प्लाऊमैन से पहले किसी ने अंग्रेजी न लिखी हो तो हम nadistou[१] रूप से क्या समझेंगे ? यह रूप भाषा में ne hadst thou का विकृत रूप बन गया है। एवं 'I reck not' के स्थान पर Ne rechi (ने रिच) किसी प्रकार विकार से बन गया हो ! डार्सेटशाएर में 'alo'm' 'all of them' के स्थान पर बोला जाता है। और इसी स्थान में 'I midden' 'I may not' के स्थान पर बोला जाता है और Icooden, 'I could not' का रूप है। इसी नियम से इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि जब संस्कृत लिपिबद्ध की गयी होगी तो उससे पहले इसमें जनता के मुख द्वारा बिगाड़े गये रूपों की संख्या इन बोलियों[२] से कम नहीं रही होगी—बहुत अधिक ही होगी।

अब एक बार फिर अर्वाचीन साहित्यिक भाषाओं की ओर आप दृष्टि कीजिए। यहाँ हम फिर वही प्रश्न दोहरायेंगे जो हम बार-बार पूछ चुके हैं। आप लोग थोड़ा विचार करें और सोचें कि केवल मात्र d (संस्कृत में **त** और **त्**) **प्रत्यय** जोड़ने से, I love का I loved होकर अर्थ ही बदल जाता है। इस बीच हमने यह भी जान लिया है कि अंग्रेजी ऐंग्लोसेक्शन से निकली है और जर्मनी की पुरानी भाषा सेक्शन और गौथिक से इसका घनिष्ठ संबंध है। इस कारण हमें गौथिक भाषा के अपूर्ण भूत के रूप की याद आ जाती है और हम उसे इसलिए देखते हैं कि उसके अपूर्ण भूत के रूप में इसकी कुछ समानता मिलती है। यदि उसमें इसके समान रूप मिलेगा तो हमको मालूम होगा कि मूल रूप इसमें किस प्रकार से है और वह उससे भी अधिक पुराने मूल रूप से कुछ समानता रखता है और हमने इससे पहले

१. Marsh, p. 387. Barnes, Poems in Dorsetshire Dialect.

२. **ऐंग्लोसेक्शन भाषा में हम** Ne Wot **के स्थान पर** not **पाते हैं। इन दोनों शब्दों का अर्थ है 'मैं कुछ नहीं जानता'। और इस भाषा में 'यह नहीं जानता था' के लिए** Nist **(नेहत, नेस्त) शब्द काम में आता था।** Nim **का अर्थ था 'वे नहीं जानते थे।'** Nolde, Noldest **(नोल्डे और नोल्डेस्ट) शब्दों का अर्थ था 'मैं न चाहूँगा',** nyle **'मैं नहीं चाहता',** enaebbe **मेरे पास नहीं है,** naefth **उसके पास नहीं है,** naeron **वे न थे आदि-आदि।**

कई रूपों का मिलान करके यह देखा है कि हम गौथिक में भी इसके वे रूप पायेंगे, जो विकृत रूप में होंगे और स्वतंत्र शब्दों के भग्नावशेष के रूप में पीछे निरर्थक जोड़ दिये गये होंगे।

गौथिक में एक क्रिया **नस्यन** है, इसका अर्थ है 'पालन-पोषण' या 'पुष्ट करना'। इसके परोक्ष भूत के रूप ये हैं—

(एकवचन)	(द्विवचन)	(बहुवचन)
nas-i-da	Nas-i-dedu	nas-i-dedum
nas-i-des	nas-i-deduts	nas-i-deduth
nas-i-da	—	nas-i-dedun
हेतु-हेतु-मद् भूत		
nas-i-dedjau	nas-i-dedeiva	nas-i-dedeima
nas-i-dedeis	nas-i-dedeits	nas-i-dedeina

ऐंग्लोसेक्शन में इन रूपों का घिसा रूप ऐसा हो जाता है—

(एकवचन)	(बहुवचन)
ner-e-de	ner-e-don
ner-e-de	ner-e-don
ner-e-de	ner-e-don
संशयार्थक रूप	
ner-e-de	ner-e-don
ner-e-de	ner-e-don
ner-e-de	ner-e-don

अब हम ऐंग्लोसेक्शन भाषा में सहायक क्रिया **करना** के रूपों की तुलना करेंगे।

(एकवचन)	(बहुवचन)
dide	didon
didest	didon
dide	didon

यदि हमारे पास केवल ऐंग्लोसेक्शन परोक्ष भूत nerede **नेरेडे** और डिडे (पाला-पोषा हुआ) रूप ही शेष रहते, तो नेरेडे और डिडे में जो de है उसकी समानता तुरत प्रकट न हो पाती। इन बातों से आपको यह स्पष्ट मालूम हो

जायगा कि ट्यूटानिक भाषा के अन्य परिवारों की अपेक्षा गौथिक भाषा द्वारा व्याकरणात्मक तुलना और अन्वेषण करने में अधिक सुविधा प्राप्त होती है। ये रूप केवल गौथिक भाषा में पाये जाते हैं और उसमें भी केवल बहुवचन में इसके रूप dedum, deduth, dedun मिलते हैं। गौथिक एक वचन में nasida, nasides, nasida रूप इन रूपों के स्थान पर आते हैं— nasideda, nasidedes, nasideda । यही घिसावट (या संक्षेपीकरण) ऐंग्लोसेक्शन भाषा में भी केवल एकवचन में ही नहीं बल्कि बहुवचन में भी दिखाई देती है। इस पर गौथिक और ऐंग्लोसेक्शन भाषाओं में इतनी अधिक समानता है कि उनके परोक्ष भूत एक ही मूल रूप से और एक ही नमूने पर बने हैं। यदि आरोही पद्धति के तर्कशास्त्र (Inductive reasoning) में कुछ सत्य हो तो ऐंग्लोसेक्शन भाषा के परोक्ष भूत में इसका मूल रूप दिखाई देता है —

(एकवचन)	(बहुवचन)
ner-e-dide	ner-e-didon
ner-e-didest	ner-e-didon
ner-e-dide	ner-e-didon

और घिस-मँजकर ऐंग्लोसेक्शन में ner-e-dide बन गया। इस भांति nerede का अंग्रेजी में इस समय nered रूप होना चाहिए था, किन्तु कई कारणों से न हो सका। अब हम स्पष्ट देखते हैं कि वह यही d है जो भूतकाल बनाता है और अब हम यह भी समझ गये कि यह d भी did का घिसा हुआ रूप है। जनता की जबान में शब्दों का घिसना स्वाभाविक है। अब देखिए I loved =I love did। (हिन्दी रूप 'मैंने प्यार किया' love did का शत-प्रतिशत अनुवाद है, यह बात ध्यान में रखनी चाहिए—अनु०।) अंग्रेजी की बोलियों में,—यहाँ डारसेटशाएर की बोली को ही ले लीजिए, परोक्ष भूत का प्रत्येक रूप; यदि उसका अर्थ दीर्घकाल तक रहने वाला या बार-बार दोहराया जानेवाला होता है, तो वह I did[1] लगाकर बनाया जाता है और इस प्रकार यहाँ वाक्यों में दो भेद किये जाते हैं। जैसे 'e died easterdae' का अर्थ हुआ वह मर गया है; अब नहीं जी सकता, और दूसरा

१. Barnes, Dorsetshire Dialect, p. 39.

रूप 'the vo'ke did die by scores' भी होता है (इस वाक्य का अर्थ समझ में नहीं आया—अनु०) यद्यपि अपने मूल रूप में died का रूप die did होता है।

अब स्वभावतः और उचित ढंग से यहाँ यह सवाल उठता है कि यह did या ऐंग्लोसेक्शन dide मूल रूप में कैसे बने और किस प्रकार ये परोक्षभूत के सूचक बने। dide रूप के अंत में जो de आया है—यह व्याकरण का प्रत्यय नहीं है। यह धातु का रूप है और पहला अक्षर di मूल धातु का दोहरा रूप है (यह वही बात है जो संस्कृत के **दा** धातु के रूप ददाति आदि में दिखाई देती है। यहाँ ददा में **दा** धातु को दो बार दुहराया गया है—अनु०।) यह दुहराने का काम इस तथ्य के कारण होता है कि कुछ क्रियाएँ संस्कृत और ग्रीक के समान ही परोक्ष भूत में धातु के मूल रूप को दोहराकर बनायी जाती हैं। मूल क्रिया को दोहराने से, पहले ऐसा होता था कि परोक्ष भूत की क्रिया में स्पष्टता[1] मानी जाती थी (संस्कृत में जगाम-चकार-ममार आदि ऐसे ही द्विकार वाले रूप हैं—अनु०)। ऐंग्लोसेक्शन में यह do रूप वही है जो ग्रीक भाषा में **तिथेमि** रूप में **तिथे** धातु है और संस्कृत रूप **दधामि** में **धा** धातु है। इस ढंग से ऐंग्लोसेक्शन में dide संस्कृत रूप **दधौ** 'मैंने धारण किया या रखा' का प्रतिरूप है।

अब आपने, ऊपर की हमारी आर्य-भाषा या भरोपा-भाषा की नाना शाखाओं की क्रियाओं की तुलना से देख लिया होगा कि ये क्रियाएं मूल तक खोज ली गयी हैं और मूल में इनके प्रत्यय स्वतंत्र सार्थक शब्दों के रूप में थे और थोड़े एवं नाममात्र के परिवर्तन भी, जो हमें बहुत ही रहस्यमय लग रहे थे, जैसे कि अंग्रेजी शब्द foot का बहुवचन feet तथा find का भूतकालिक रूप found, अब हमारे सामने स्पष्ट हो गये हैं। इस रीति को भाषा-विज्ञान में भाषा का तुलनात्मक व्याकरण कहा जाता है। इसमें एक भाषा के शब्दों का रूप-परिवर्तन करने वाले तत्त्वों का, जिन्हें हम शब्द के अंत में जुड़ने वाले प्रत्यय भी कह सकते हैं, इनके एक एक रूप का वैज्ञानिक विश्लेषण किया जाता है। भाषा के तुलनात्मक व्याकरण में इस विश्लेषण से पहले हमें

१. **देखिए** M. M.'s Letter on the Turanian languages, pp. 44, 46.

शब्द का एक रूप लेकर उसकी आर्य-परिवार की भाषाओं के भिन्न-भिन्न रूपों से तुलना करनी पड़ती है और उसको उनके मूल रूप तक पहुँचाना पड़ता है। इस तुलना के लिए आर्य-भाषा-परिवार की मुख्य भाषाएँ हैं—संस्कृत, ग्रीक, लैटिन और गौथिक। बहुत-से स्थानों में ऊपर लिखी गयी प्रधान भाषाओं के शब्दों पर आशातीत प्रकाश डालने के लिए हमको अवेस्ता की भाषा, केल्टिक और श्लेवोनिक भाषाएँ अति आवश्यक हो जाती हैं। इस स्थान पर हम, महापंडित बौप के प्रसिद्ध ग्रंथ "आर्य भाषाओं का तुलनात्मक व्याकरण" से जो निदान निकले हैं, उन्हें थोड़े से शब्दों में बतायेंगे। आर्य-परिवार की उपजातियाँ जब अपनी आदि भूमि से इधर-उधर बिखरने लगीं, तब उससे पहले ही आर्य-भाषा के परिपूर्ण व्याकरण का ढांचा, व्युत्पत्ति के मूल तत्त्व और धातु तथा शब्द-रूपावलियाँ स्थिर हो चुकी थीं। इस कारण संस्कृत, ग्रीक, लेटिन तथा अन्य आर्य-भाषाओं में व्याकरण की मोटी-मोटी रूपरेखाएँ वास्तव में एक समान हैं और जो इन भाषाओं में बाहरी रूप में विभिन्नता या अनमेल रूप देखे जाते हैं, उनका कारण ध्वनि-विकार या ध्वनि-परिवर्तन के नियम हैं और यह ध्वनि-परिवर्तन भिन्न-भिन्न आर्य जातियों की वे विशेषताएँ हैं, जो उक्त भाषाएँ बोलने वाली जातियों में पायी जाती हैं।[१] यदि हम मोटे तौर पर कहें तो कहना पड़ेगा कि आर्य-परिवार की सभी भाषाओं का इतिहास या उनकी परंपरा और कुछ नहीं है, केवल मात्र इस ध्वनि-विकार की प्रक्रिया है। इन भाषाओं के नाना शब्दों के साथ जुड़ने वाले प्रत्ययों की जब आदि आर्य-भाषा तक जाकर शोध पूरी की जायगी और अधिकांश प्रत्ययों के मूल शब्दों का अर्थ भी निकाल लिया जायगा तभी यह संभव होगा कि हम बहुत-से प्रत्ययों के मूल शब्दों का अर्थ खोज निकाल सकेंगे। यह काम हम आरोही पद्धति के तर्क-शास्त्र द्वारा ही कर सकते हैं। बिना किसी भाषा के शब्दों की भली-भाँति तुलना किये तथा उनके शब्दों के नाम-रूपों को मिलाये भाषा-विज्ञान अधूरा रह जायगा। आप ऐसी स्थिति का अनुमान करें कि हमारे पास लैटिन-भाषा का कोई भी शब्द

१. ये विशेषताएँ उच्चारण की ध्वनि से प्रकट होती हैं। उदाहरणार्थ, हिन्दी की कई बोलियों में स्नान का असनान और स्तुति का अस्तुति हो जाता है, स्कूल को हमारे बहुत से भाई इस्कूल कहते हैं। पुर्तगाली भाषा में एक शब्द लीलाँवा है वह हिन्दी में नीलाम बोला जाता है। (अनु०)

उस भाषा के खंडहरों के रूप में न बचे। यह भी आप तर्क के लिए मान लीजिए कि हमको यह भी पता नहीं है कि कभी रोमन या लैटिन भाषा का अस्तित्व भी रहा होगा। अब तुलनामूलक भाषा-विज्ञान का चमत्कार देखिए कि यदि वास्तव में ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती तो भी लैटिन से निकली हुई फ्रेंच, स्पेनिश आदि छः वर्तमान भाषाओं की तुलना करके हम यह निदान स्थिर कर सकते कि एक समय अवश्य ऐसा रहा होगा जब इन छः भाषाओं को बोलने वालों के पूर्वज किसी एक ऐसी छोटी बस्ती में बसे होंगे, जहां वे इन बोलियों की किसी एक आदि लैटिन भाषा को बोलते होंगे। इतना ही नहीं, बल्कि हम इन भाषाओं के समान शब्दों को एकत्र करके और इनके रूप ठीक करके स्वयं लैटिन-भाषा का पुनर्निर्माण कर लेते। जब यह कार्य हो जाता तो उन मूल लैटिन शब्दों के बलबूते पर हम रोमन साम्राज्य की सभ्यता की क्या दशा थी, इस विषय की रूपरेखा भी निश्चित कर पाते। यही बात हम तब भी कर सकते जब हम संस्कृत, ग्रीक, लैटिन, गौथिक, केल्टिक और श्लेवोनिक की, उक्त भाँति से तुलना कर, आदि आर्यभाषा का पुनर्निर्माण कर पाते।[१] आर्यों की आदि भूमि से उनकी नाना उपजातियों के बिखरने से पहले के ऐसे कई शब्द निर्मित भी किये जा चुके हैं। आर्य-भाषा के सब परिवारों में जो शब्द समान हैं तथा जिनके रूप एक से हैं और जिनका अर्थ भी एक ही है ऐसे शब्दों की तुलना करके यह निदान निकाला गया है कि ये शब्द तो आदि आर्य-सभ्यता के समय अवश्य रहे होंगे और यदि हम इन शब्दों को बड़ी सावधानी से छान-फटककर इनका आदि रूप स्थिर कर सकेंगे तो ये भी उस सभ्यता के प्रमाण-स्वरूप हमारे सामने उपस्थित होंगे, जो अपना आदि देश छोड़ने से पहले मूल आर्यों ने प्राप्त कर ली थी। भाषा से प्राप्त प्रमाणों के बल पर अभी तक यह प्रमाणित हुआ है कि आदि आर्य इधर-उधर विचरने वाले खेतिहर थे। टेसीटस नामक लेखक ने प्राचीन जर्मनी की सभ्यता का वर्णन इसी प्रकार किया है—"वे हल चलाना जानते थे। सड़क बनाना भी उन्हें आता था। जहाज भी वे तैयार करते थे। बुनना

१. इस आदि आर्यभाषा के पुनर्निर्माण का कार्य बहुत पहले आरम्भ हो चुका था। नाना विद्वानों के परिश्रम से आदि आर्यभाषा के शब्द बन गये हैं। वाल्डे और पोकोर्नी ने इनके तीन कोश भी बनाये हैं। हाल मे ही पोकोर्नी साहब ने अपना आर्य भाषा का कोश पूरा कर दिया है।

और सीना भी उनका काम था। वे घर भी बनाते थे और इतना तो निश्चय है कि उस समय वे सौ तक गिनना जानते ही थे, उन्होंने पशुपालन भी आरंभ कर दिया था, मुख्य-मुख्य काम के पशु, जैसे गाय, घोड़ा, कुत्ता और भेड़ को वे अपने काम के लिए पालते थे। मुख्य-मुख्य धातुओं से वे परिचित थे। उनके पास लोहे की कुल्हाड़ी भी थी। इसे वे लड़ाई में भी ले जाते थे और इससे वे घर का काम भी चलाते थे। वे यह बात मानते थे कि अमुक-अमुक हमारे संबंधी हैं और उनमें हमारा ही रक्त है। किन-किन गोत्रों या कुलों से हम विवाह कर सकते हैं, इसकी सीमा भी उन्होंने निर्धारित कर ली थी। वे अपने नेताओं और राजाओं की आज्ञा पर चलते थे और उचित तथा अनुचित का भेद वे अपने नियमों और रीति-रिवाजों से स्थिर करते थे। दैवी शक्ति का प्रभाव भी उनके मन पर पड़ा हुआ था और वे इस शक्ति को नाना नामों से संबोधित करते थे।" जैसा मैं आप लोगों से पहले कह चुका हूँ, ये सब तथ्य भाषाओं के प्रमाणों पर सिद्ध किये जा सकते हैं। क्योंकि यदि आप यह देखेंगे कि गौथिक, ग्रीक, लैटिन, केल्टिक और श्लेवोनिक भाषाओं में, जो न जाने किस समय से संस्कृत से बिछुड़ी हुई हैं और हजारों वर्षों से उनसे कभी उसका कोई संबंध नहीं रहा, ऐसी स्थिति में यदि कोई शब्द उक्त भाषाओं में समान हो, तो मानना पड़ेगा कि वह उस समय का है, जब आर्य उपजातियों के पूर्वज एक छोटी सी बस्ती में एक साथ रहते होंगे। उदाहरणार्थ, एक शब्द लोहे को ही ले लीजिए, इसे संस्कृत में **अयस्** भी कहते हैं। गौथिक भाषा में लोहे को **अइस्** कहते हैं। यह ऐसा शब्द है जिसे न तो भारतवासी जर्मनों से प्राप्त कर सकते हैं और न ही जर्मनों ने इसे संस्कृत से लिया। यह शब्द अवश्य ही उस समय चलता रहा होगा जब कि ये दोनों जातियाँ एक साथ रहती थीं और तब तक बिछुड़ी न थीं। ग्रीक, लैटिन, श्लेवोनिक और केल्टिक[१] में हमें घर के लिए समान शब्द न मिलता यदि नाना आर्य बोलियों को बोलने वालों के इधर-उधर बिखर जाने से पहले यह शब्द विद्यमान न रहता। इस प्रकार आर्य-सभ्यता का एक इतिहास[२] लिख लिया गया

१. **सं० दम** (dama), **ग्री० दोमौस** (do mos), **लै० दोमुस** (domus), **श्ले० डोम्** (domu), **के० दैम्ह** (Daimh) **घर के नाम पाये जाते हैं।**

२. **देखिए** M. M's Essay on Comparative Mythology, Oxford, Essays 1856.

है, जो भाषा में सुरक्षित भग्नावशेषों से रचा गया है और जो उतने अधिक प्राचीन समय तक पहुँचता है; जब न तो कोई शिलालेख था, न कोई हस्तलिपि।

इस इतिहास में स्वयं आर्य नाम बहुत महत्त्व रखता है, और अब मैं इस भाषण में आगे इस शब्द पर ही अपना भाषण करूंगा। मैं इस प्राचीन शब्द की उत्पत्ति की आदि काल तक शोध करूँगा और आपको यह भी बताऊँगा कि यह किस प्रकार संसार में फैला। मैंने यह भी विचार किया था कि आज के भाषण में तुलनात्मक दैवत-शास्त्र (Mythology) का भी एक छोटा-सा विवरण दूंगा। यह भी भाषा-विज्ञान की एक शाखा है, जो विकृत ध्वनि वाले शब्दों के मूल-रूप का पुर्ननिर्माण करती है। यह शास्त्र भी वही उपाय काम में लाता है, जैसे उपायों द्वारा तुलनात्मक व्याकरण प्रत्ययों के मूल रूप और उनके अर्थ को खोज निकालता है, किन्तु मुझे समय की भी चिन्ता हो रही है और वह बहुत कम शेष रह गया है।

मुझसे यह प्रश्न भी किया गया है कि जिस भाषा-परिवार पर मैं अभी बोला हूँ उसे मैंने आर्य-भाषा-परिवार क्यों कहा ? मुझे ऐसा लग रहा है कि इसका उत्तर देना मेरा परम कर्तव्य है।

आर्य शब्द संस्कृत भाषा का है और पिछले समय की संस्कृत भाषा में इसका अर्थ 'अच्छे परिवार का' या 'उच्च कुल का' है। किन्तु वास्तव में यह जाति का नाम था, क्योंकि हम "मानव-धर्मशास्त्र" में पाते हैं कि भारत का नाम उसमें **आर्यावर्त** दिया गया है। **आर्यावर्त** का अर्थ है आर्य-जाति[१] वालों का देश।

प्राचीन संस्कृत में (जो वैदिक सूक्तों में पायी जाती है) आर्य शब्द बार-बार आता है। उसमें भी यह जाति का नाम है और वेदों में यह आदर-सूचक नाम भी है। इसके भीतर ब्राह्मणों के देवताओं के पूजक, पुरोहित भी शामिल हैं। वेदों में **आर्यों** के शत्रुओं का नाम **दस्यु** है। अब देखिए कि एक सूक्त में एक देवता से, जिसका नाम **इन्द्र** है, जो ग्रीक देवता **जेउस** (संस्कृत **द्यउस**) के टक्कर का है, यह प्रार्थना की गयी है—

"हे इन्द्र! तू आर्यों और दस्युओं का भेद जान। इन अधर्मियों (दस्युओं) को दंड दे और इन्हें पकड़कर अपने सेवकों के हाथ में दे दे। तू अपने याचकों का

१. आर्यभूमि और आर्य देश एक ही अर्थ में काम में लाये जाते हैं।

शक्तिशाली सहायक बन और मैं तेरे इन वीरता के कार्यों को उत्सवों में गाऊँगा" (ऋग्वेद १, ५७, ८)।

ब्राह्मण आदि ग्रंथों में, आर्य शब्द का अर्थ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य जातियाँ हैं, जो शूद्रों से इस शब्द द्वारा भिन्न कर दी गयी हैं। शतपथ ब्राह्मण में साफ-साफ लिखा गया है—"ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ही केवल आर्य हैं, क्योंकि उन्हें यज्ञ करने का अधिकार है। वे सब आदमियों से नहीं मिल सकते।"

यह **आर्य** शब्द **अर्य** शब्द से निकला मालूम देता है और यह **अर्य** शब्द बाद की संस्कृत भाषा में वैश्य वर्ण[१] के लिए काम में आता था। ऐसा प्रतीत होता है कि जिसे संस्कृत में तीसरा वर्ण अर्थात् वैश्य कहा गया है उनकी पुराने समय में कभी बहुतायत रही होगी। इसका कारण यह है कि वे सब लोग जो न तो ब्राह्मण थे न पुरोहित और न सैनिक, वे सब वैश्य कहे जाते थे। इसलिए आप यह भली भाँति समझ सकते हैं कि एक नाम जो पहले खेतिहरों और गृहस्थों के लिए काम में लाया जाता था, बाद को आर्य नाम[२] से संबोधित किया जाने लगा। ये गृहस्थ किस कारण से **अर्य** कहे गये, इस पर विचार करने का यह समय नहीं है क्योंकि इस बात का खुलासा करने में बहुत समय लगेगा। मैं यहाँ केवल इतना ही कहूँगा कि व्युत्पत्ति की दृष्टि से **अर्य** शब्द का अर्थ 'हल चलाने वाला या जोतने वाला' होता है। यह अर्य **अर्** धातु से निकला मालूम पड़ता है। अर्यों ने यह नाम इसलिए अपनाया कि उनमें घर-हीन इधर-उधर विचरने वाली जातियाँ थीं जिन्हें मैं तूरानियन[३] कहूंगा, क्योंकि यह शब्द **तुर्** से निकला हुआ मालूम पड़ता है और **तुर्** का अर्थ है 'घुड़सवार का सरपट—तेज़ दौड़ना।'

भारतवर्ष में बाद को यह नाम विस्मृति के गर्भ में लीन हो गया। यह

१. Pan. iii, 1. 103.

२. एक वेद में अर्या शब्द आर्यों के अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है जो शूद्र से बिलकुल भिन्न वर्ग बताया गया है। (वाजसनेयी संहिता, २०-७१)— "हमने गाँव में, वन में, घर में, खुली हवा में किसी शूद्र या आर्य के विरुद्ध जो भी पाप किया हो, उससे तू ही हमको मुक्ति दिलाने वाला है।"

३. मैक्समुलर का तूरानिअन शब्द अब भाषाशास्त्र से उड़ गया है क्योंकि इसका अर्थ अस्पष्ट है। (अनु०)

केवल आर्यावर्त रूप में संस्कृत साहित्य में जीवित रहा, जिसका अर्थ है 'आर्यों का निवास स्थान।' अब एक विचित्र बात देखिए कि इस शब्द को पारसियों अर्थात् जरथुष्ट्र के अनुयायियों ने जीवित रखा, जो भारत से उत्तर-पश्चिम की ओर गये।[१] इन पारसियों का धर्म अवेस्ता नामक पुस्तक में सुरक्षित है और इस अवेस्ता ग्रंथ के अब कुछ अंश ही पाये जाते हैं। अवेस्ता की भाषा में यह संस्कृत **आर्य** शब्द **अइर्य** रूप में है और इसके अर्थ हैं—'पूज्य' और 'आर्य जाति'। अवेस्ता के एक ग्रंथ 'वेनदीदाद' के प्रथम अध्याय में जरथुष्ट्र के एक प्रश्न के उत्तर में अहुरमज़्द ने बताया कि किस क्रम से उसने सृष्टि रची। इसमें उसने सोलह देशों का नाम बतलाया और यह भी कहा कि प्रत्येक देश, जब उसकी सृष्टि की गयी तो अति पवित्र और सर्वथा सुखी था। पर इन देशों में एंग्रोमैन्यू या अह्रिमन इनको बिगाड़ने के लिए गया और ये सदोष हो गये। यानी बिगड़ गये, इन देशों में सबसे पहले देश का नाम है अर्यन-वएजा (=संस्कृत आर्य-बीज) और इसका स्थान पूर्व में वहाँ तक फैला हुआ होगा जहाँ से बेलुर्ताग़ और मुस्ताग़ के पश्चिमी पहाड़ी ढाल से औक्सस् नदी का सोता निकलता है। और यहीं से यक्सार्टीस नदी का भी उद्गम है। यह पहाड़ी स्थान मध्य एशिया में सबसे ऊँचा माना जाता है और इस देश से, जो आर्यों का बीज या मूल भूमि कही गयी है, आर्य लोग दक्षिण-पश्चिम को बढ़े।[२]

१. यह बात अब खंडित हो गयी है। अब यह माना जाता है कि वैदिक और ईरानी लोग कभी ईरान के आस-पास पड़ोसी के रूप में रहते थे। (अनु०)

२. नाना विद्वानों ने इस तथ्य का खंडन किया है, अब यह बात मानी जाती है कि आर्य लोग पश्चिम से आये और बहुत समय तक ईरानी और भारतीय साथ-साथ भ्रमण करते रहे। ईरानी और भारतीय पहले एक ही धर्म मानते थे और उनके देवता भी प्रायः एक ही थे। अवेस्ता में मित्र, वरुण, इंद्र, यम आदि के नाम मिलते हैं। इनमें मित्र और वरुण क्रमशः उनके पूज्य देवता और राजा थे। जैसा पाठक देख चुके हैं, अवेस्ता और वेद की भाषा प्रायः एक ही मानी जाती है। इन दोनों के बीच कुछ ऐसा झगड़ा खड़ा हो गया जिसका वर्णन हमारे पास तक नहीं पहुंचा है। परिणाम यह हुआ कि इनमें दो फिरके पैदा हो गये जिसके कारण हिन्दूकुश के आस-पास रहने वाले कुछ प्राग्-भारतीय आर्य भारत चले आये और सप्तसिन्धु में रहने लगे। खत्ती (Hittite) भाषा को पहले-पहल पढ़ सकने वाले चेक विद्वान् ह्रौजनी के

अवेस्ता में आर्यों द्वारा बसी हुई विस्तृत भूमि का नाम **एर्य** (=संस्कृत आर्य) है। ये ईरानी आर्य काबुल से कैस्पियन सागर तक फैले हुए थे। हिरकानियाँ इनसे बसी हुई भूमि में ही था और रघा नदी इन्हीं की भूमि में बहती थी। इसका वर्णन **मिष्टथयात** में है। इस देश को अवेस्ता में **बिस्येम्-ऐर्योशयनेम** अर्थात् "सब आर्यों की बस्ती"[1] या "देश" कहा गया है। इन आर्यों के विरोधी लोग **दैन् हवो**[2] कहे गये हैं जिनका वर्णन अन्यत्र भी पाया जाता है। इस नाम के नगर और मनुष्य हिरकानियाँ में पाये जाते हैं। ग्रीस के भौगोलिकों ने **अर्याना** के क्षेत्रफल को अवेस्ता की वर्णित भूमि से भी बढ़ा बताया है। इनके अनुसार **अर्याना** की सीमा के भीतर वे सब देश शामिल थे जिनकी सीमाएँ हैं पूर्व में सिन्धु नदी, दक्षिण में हिन्द महासागर, उत्तर में हिन्दूकुश और पामीर की पर्वतश्रेणियाँ, पश्चिम में काश्पियन सागर के पूर्व की भूमि और ईरान की खाड़ी। स्ट्राबो ने अपने भूगोल में उक्त देशों को **अर्याना** में शामिल किया है, और उसने वकगिया का वर्णन करते समय यह भी कहा है[3] कि वह नगर सारे **अर्याना** देश का अलंकार था और जब जरथुष्ट्र का धर्म ईरान में सर्वत्र फैला तो आसपास के मीडिया-पार्थिया-इलीमिया सब अपने-अपने को आर्य कहने लगे। हिल्लानिकुस, जिसने स्वयं हिरोडोटस से पहले ईरान का भूगोल लिखा है, ईरान को **आर्या** नाम से संबोधित करता है। हिरोडो-

मरने से पहले लिखे गये सबसे नये ग्रंथ, जो प्रायः १५ वर्ष पहले प्रकाशित किया गया था, उसमें इस विषय पर बहुत कुछ लिखा गया है। (अनु०)

१. इसी भाँति जेन्द-अवेस्ता में भी ऐर्यानाम दक्यूनाम (आर्यों का और दस्युओं का) शब्द पाये जाते हैं। (उक्त ऐर्यानाम शब्द ऐर्य का सम्बन्ध-कारक है)। Burnouf, Yasna, 442; and Notes, p. 70.

२. Burnouf, Notes, p. 62.

३. **स्ट्राबो ने** XI. ii; Burnouf, Notes, p. 110 **में लिखा है—एक दूसरे स्थान पर एरोस्थिनीज़ के एक ग्रंथ से उद्धरण मिलता है जिसमें कहा गया है कि यहाँ की पश्चिमी सीमा वह स्थान है जो पार्थेनी को मीडिया से अलग करता है और कर्मानियाँ को पार्तकनी** (Pareatakene) **और ईरान से अलग करता है। इसके भीतर यज्जद और कर्मान आ जाते हैं किन्तु फारस इससे बाहर रह जाता है। देखिए** Wilson, Araian antiqua, p. 120.

टस का कहना है कि ईरान के मीडियन लोग अपने को **अररे** (संस्कृत आर्य) कहते थे और उसने यह भी बताया है कि मीडिया के सबसे उत्तरी भाग **अत्रोपतेन** को वे लोग **अरिइ** कहते थे (यह बात स्टीफान्डस और बिजन्टिन्डस ने अपने लेख में सुरक्षित रखी है)। ऐलम के विषय में यह बात ध्यान देने की है कि इसका नाम **एर्यम** निकाला गया है, जिसे कई विद्वान् अर्यम्[1] शब्द का विकृत रूप मानते हैं। स्ट्राबो[2] ने यह प्रमाण भी दिया है कि उसके समय में पारसी, मीडियन, बैक्ट्रियन और सौग्दियन लोग (शक लोग) एक ही भाषा बोलते थे। इसी बात से हम निदान निकाल सकते हैं कि उन्होंने अपने लिए एकसमान नाम अपनाया होगा, ताकि वे अपने को अपने शत्रु तूरानियों से अलग कर सकें।

दार्यवश के शिलालेखों में भी इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि पारसी साम्राज्य में आर्य शब्द "उच्च पद" का सूचक था। दार्यवश ने इन शिलालेखों में अपने को **अरिय चित्र** बताया है और गर्व के साथ कहा है कि मैं आर्य वंश का हूँ। और उसके शिलालेखों में जो अन्य भाषाओं के अनुवाद साथ में दिये गये हैं उनमें बहिस्तून के शिलालेख में अहुरमज़्द का अनुवाद आर्यों का ईश्वर किया गया है। पारसी लोगों के कई ऐतिहासिक नामों में भी यह आर्य शब्द जुड़ा हुआ है। दार्यवश के परदादा ने एक शिलालेख में अपने नाम में **आर्यराम्न** जोड़ा है। ग्रीक लोगों ने इसको **आर्यरम्निस** रूप में लिखा है (हेरोडोटस ७, ९०)। **अर्योबर्जनेस,**[3] **अर्योमनेस अर्योमर्दोस** भी पारसी नामों में आर्य शब्द जुड़ने का प्रमाण देते हैं।

१. Joseph Muller, Journal Asiatique, 1839. p. 298. Lassen, Loc, Cit, I. 6. From this the Elam of Genesis. Melanges Asiatiques, I. p. 623.

२. **कोणाकृति शिलालेखों में, जिनमें अखेमानियन बादशाहों के समय की ईरान की भाषा का उच्चारण दिया गया है, उनमें ल अक्षर एकदम नदारद है। बैबिलन और आरबेले नामक शब्दों में जो ल अक्षर आया है, इसके स्थान पर ईरानी उच्चारण र पाया जाता है। यह ल ससानियन शासन में फिर दिखाई देता है, जहाँ ईरान के स्थान पर ऐलान और ऐरान दोनों रूप पाये जाते हैं और अनीलान अनीरान ये दोनों रूप भी मिलते हैं। (मेलाँज आशियाटिक)**

३. **एक मीडियन जाति का नाम मिलता है** arisantoi **(अरिज़ंतोइ)**

इन शिलालेखों के समय में जीवित, अरस्तू के एक शिष्य **एउडेमौस** (=संस्कृत सुदमस=अच्छे घरवाला, अनु०) ने मागी (पारसियों के पुरोहित, मिलाओ मग–ध और माग–ध) (यह बात डमसकिउस ने अपने ग्रंथ में उद्वृत की है) तथा सारी आर्य जाति के विषय में लिखा है। उसने इन शब्दों का उसी अर्थ में प्रयोग किया था जिस अर्थ में इनका प्रयोग अवेस्ता में है। अवेस्ता में भी सब आर्यों की आदि भूमि का ज़िक्र आया है और फिर जब विदेशियों के आक्रमण और राज्य के बाद ईरान ससानियन राजदंड के नीचे फिर स्वतंत्र हुआ, तो फिर सारे देश में स्वराज्य की नयी चेतना पैदा हो गयी। उस समय के जो शिलालेख मिले हैं और जिन्हें फ्रेंच विद्वान् दसासी ने बड़े परिश्रम के बाद पढ़ पाया है उनमें पहलवी में लिखे गये शिलालेखों में ईरान और अनइरान जातियों के **राजा** अर्थात् **आर्य** और **अनार्य** शब्द मिले हैं।

स्वयं फारस के लिए जो ईरान शब्द काम में लाया जाता है, उसके भीतर भी आर्य शब्द का रूप वर्तमान है, जो **आर्य** शब्द की महत्ता का आज भी हमें स्मरण कराता है। आर्मीनिया देश के नाम के भीतर भी आर्य शब्द वर्तमान है, ऐसा माना जाता है। अवश्य ही यह आर्मीनिया शब्द अवेस्ता की भाषा में कहीं नहीं मिलता। आर्मीनिया के लिए ईरान के प्राचीन शिलालेखों में **आर्मिन** रूप आया है और इसके विषय में विद्वान् लोगों में मतभेद है कि इस शब्द का **अरि** आर्य नाम[1] का सूचक है या नहीं। आर्मीनिया की भाषा में अरि शब्द का अर्थ मोटे तौर पर आर्य या ईरानी है। इसका अर्थ वीर भी किया जाता है और यह विशेष कर मीडियन[2] लोगों के

जो वास्तव में Aryajantu (आर्य जन्तु) हो सकता है। Herod. I, 101.

१. बुखार्ट ने बताया है कि जिरेमिया पुस्तक में जो शब्द मिनि आया है उसे खल्दी भाषा में हू-मिनि कहते थे। जैसे कि दमस्क का पादरी निकोलास इसे मिनियास कहता है। इससे यह निदान निकलता है कि इसमें जो हर है वह सेमिटिक भाषा का है और उसका अर्थ पहाड़ है। देखिए–Rawlinson's Glossary, s. v.

२. Lassen, Ind. Alt. I. 8, Note. आर्मीनियन भाषा में अरिख़ शब्द मीडियन जाति के नाम के लिए काम में आता है और इसे जोजफ मूलर ने अरियक का प्रतिरूप बताया है। Journ. As. 1839, p. 298.

जैसा कि कैत्रमेयर कहता है कि आर्मीनियन भाषा में अरि और अनरि क्रमशः

लिए व्यवहार में आता है। यह तो प्रमाणित नहीं किया जा सकता कि आर्मीनिया देश के नाम में जो पहला शब्द **आर** आया है, उसका अर्थ **आर्य** है। किन्तु यह तो स्पष्ट ही है कि आर्मीनियन भाषा में अरि शब्द **आर्य** या **ईरानियन** के लिए व्यवहार में आता है।

कैश्पियन सागर के तट पर और आर्मीनिया के पश्चिम में हम एक देश का नाम पाते हैं—अलबानिआ। इस देश का नाम आर्मीनियां की भाषा में **अघोवन** है। अब एक नयी बात सुनिए कि आर्मीनियन भाषा में **र** और **ल** के स्थान पर घ् हो जाता है। बोरे साहब ने यह अनुमान लगाया है कि **अघोवन** शब्द के भीतर भी **आर्य** शब्द आता है। यह तथ्य कुछ संदेहास्पद लगता है। पर काकेशश पर्वत की घाटियों में हम एक भाषा **औसेटियन** पाते हैं जो **आर्य-भाषा** है और वे लोग अपने को **अर्यअन**[१] कहते हैं।

कैस्पियन सागर के तट और आक्सस तथा यक्सार्टीज नदियों के शस्य-श्यामल प्रदेश में आर्य और अनार्य जातियों का सदियों से संगम होता रहा है। यद्यपि ये **आर्य** और **अनार्य** परस्पर विरोधी थे। इनमें बीच-बीच में युद्ध भी होता था, जैसा कि फिरदौसी ने फारसी काव्य ग्रंथ **शाहनामा** में इन युद्धों का वर्णन किया है, तो भी इससे यह सिद्ध नहीं होता कि इन स्थानों में बिना घर की और इधर-उधर भटकने वाली नाना जातियों ने सदा आर्यों पर हमला किया और वे **तातार** जाति की ही थीं। मेरे विचार में तूरानियन लोग, ऋग्वेद में वर्णित तुर्वश के वंशज थे और उनका रामायण और महाभारत में वर्णन है जिसमें लिखा गया है कि उन्हें शाप दिया गया था तथा वे भारत में अपनी बपौती से वंचित कर दिये गये। किन्तु ऋग्वेद में यह भी बताया गया है कि तुर्वश आर्य देवताओं का पूजक था। **शाहनामा** में भी यह लिखा

मीडियन और पारसी लोगों के लिए काम में लाये जाते हैं। इसका कारण इन शब्दों का अर्थ ठीक-ठीक न समझना है और ये शब्द बहुत बाद को इस अर्थ में काम में आये होंगे।

१. **श्योग्रेन,** Ossetic Grammar p. 396.

साइलैक्स और पोलोडोरस उल्लेख करते हैं कि Arioi **(अरिओइ) और** Ariania **(अरियानिय) काकेशस के दक्षिण में हैं। पिक्टेट कृत** Origines, 67; Seylax, Perip p. 213. ed. Klausen; Apollodori Biblioth p. 433. ed. Heyne.

गया कि बड़े-बड़े ईरानी वीर और नेता तूरान पहुँचे और तूरान की तरफ़ से उन्होंने ईरान पर आक्रमण किया। यह उसी प्रकार की घटना है कि रोम के एक वीर और नेता कोरीओलानुस ने एक बार रोम के बैरी सेमीनिटेस की सहायता से ोम पर आक्रमण किया। इस तथ्य से हमें यह भी समझ लेना चाहिए कि ग्रीक लोगों ने अपने ग्रंथों में तूरानियनों और शिथियनों (शक) के कुछ ऐसे नाम दिये हैं, जो सर्वथा आर्य हैं, क्योंकि ये उनसे मिल गये थे। ईरानी भाषा में **अश्व** को **अस्प** कहते हैं और तूरानी नाम **अस्प-वोत, अस्प-कर** और **अस्प-रथ**[1] को आर्य नाम मानने में हमें नाममात्र हिचक न होनी चाहिए। टोलेमी ने सीथिया के जिस **अस्पिअन** नामक पर्वत का उल्लेख किया है, उससे भी स्पष्ट होता है कि इस नाम की उत्पत्ति आर्य भाषा से है। **औक्सस** नदी के उस पार **आर्य** नाम अज्ञात नहीं है। वहाँ एक जाति का नाम **आर्यकए** है[2], एक और जाति है जिसका नाम है—**अन्तरियन**[3]। दार्यवश के समसामयिक सीथिया के एक राजा का नाम था **अर्यअंतेस**। जरकसीज के समय में वहाँ एक राजा का नाम था **अर्यनतेस** (=संस्कृत आर्य-पति=अवेस्ता की भाषा में अर्यपैतेस) और एक नाम मिलता है स्पर्गपिथेस, इसका अवश्य ही संस्कृत रूप स्वर्ग-पति से कुछ संबंध होना चाहिए।

हमने अब यहाँ आप लोगों के सामने आर्य शब्द का इतिहास भारत से पश्चिम तक का सुना दिया है। इस कार्य में हम आपको आर्यावर्त ले गये, फिर अर्याना, ईरान, मीडिया और थोड़े संदेहास्पद रूप में हम आपको आर्मीनिया और अल-बानियाँ ले गये और आपको यह बताया कि आर्य जाति काकेशश पहाड़ों में अपने को **ईरौन** कहती है। अंत में हमने आपको औक्सस नदी के तट पर और भीतर के कुछ देशों का भी वर्णन दिखाया जहाँ आर्य और अनार्य का संगम रहा। जब हम यूरोप पहुँचते हैं, इस नाम के चिह्न कुछ हलके पड़ जाते हैं किन्तु ये वहाँ भी किसी तरह से मिटते नहीं हैं। एशिया में रहने वाले आदि आर्यों के लिए पश्चिम की

१. Burnouf, Notes, p. 105.

२. Ptol. VI. 2, and VI. 14. Anariakai **यह स्थान हरकानियाँ की सीमा पर है।** Strabo, XI 7; Pliny, Hist. Nat VI 19.

३. On Arimaspi and Aramaei, **देखिए** Burnouf, Notes, p. 105; Plin. VI 9.

ओर जाने के वास्ते दो मार्ग खुले थे। एक तो खुरासान से दक्षिणी रूस होते हुए काला सागर के तट से थ्रेस को और दूसरा आर्मीनिया के रास्ते काकेशश पहाड़ होते हुए या काले सागर के तट से होते हुए ग्रीस को गया है तथा एक और रास्ता डेन्यूब नदी के तट से होता हुआ जर्मनी को भी गया है। अब देखिए कि पहले रास्ते से जाकर स्वयं थ्रेस में आर्यों ने अपना स्मारक छोड़ा। थ्रेस का पुराना नाम **अरिअ**[1] था। अब डेन्यूब के तट से होते हुए जो आर्य जर्मनी में आये, उन्होंने पूर्वी जर्मनी में विश्चुला नदी के तट पर अपनी बस्ती बसायी और अपने को वे **अरिइ** कहने लगे। जिस प्रकार हमने ईरानी भाषा के कई प्रमुख राजाओं के नामों के आरंभ में आर्य शब्द जुड़ा हुआ पाया उसी प्रकार हम इस **अरिइ** जाति के भीतर भी आर्य शब्दों से आरंभ होने वाले नामों की बहुतायत पाते हैं, जैसे—**अरिओ-बिस्तुस**।[2]

ग्रीक और रोम में इस नाम के चिह्न प्रायः नहीं पाये जाते, तो भी नयी खोज से यह पता चला है कि आर्य जाति पश्चिम में बढ़ते-बढ़ते आयरलैण्ड नामक द्वीप में भी बसी होगी, क्योंकि कई विद्वान् आयरलैण्ड के आयर्-में भी आर्य शब्द छिपा हुआ देखते हैं (आयरलैण्ड का पुराना नाम एरिन था जो आज कल फिर से चलने लगा है, अनु०।) तथा इसकी व्युत्पत्ति देखते हुए इसका अर्थ लगता है—"पश्चिम का द्वीप" किन्तु यह सर्वथा अशुद्ध है।[3] इसका अति प्राचीन नाम **अएरिन** है जो कर्त्ता कारक में है, फिर इसके नाम का विकार **एरिक** हो गया। अन्य कारकों में इसका रूप **अएरिन** हो जाता है। इसमें—**न** जुड़ जाता है। इसलिए अब बहुत से विद्वान् **अएरिन** का अर्थ बताते हैं कि यह **एरि** जाति का देश है और **एरि** लोग प्राचीन आर्य वंश के ट्यूटानिक थे, वे अपने को **एरि** कहते थे। यह शब्द इस अर्थ में ऐंग्लोसेक्शन में अभी तक सुरक्षित है। आयरलैण्ड का एक पुराना नाम

१. Stephanus Byzantinus.

२. **अपनी पुस्तक** Recktsalterthumer p. 292, **में ग्रिम ने अरिइ और अरिओबिस्तुस को गौथिक मूल रूप हरियी तक ढूंढ़ निकाला है। इस हरियी का अर्थ सेना है। यदि उसकी यह बात ठीक है, तो इस भाग में हमने जो दलीलें दी हैं वे अशुद्ध ठहरती हैं इस कारण उन्हें त्यागना पड़ेगा।**

३ Pictet Les origines Indo-Europeennes, p. 31.

इरालांड[1] भी था। ओरेली ने बताया है कि er (एर) शब्द का अर्थ आयरिश भाषा में "उच्च कुल का" है। यह ठीक वैसा ही है जैसा संस्कृत में आर्य शब्द का अर्थ है—"उच्च कुल का"। इस कथन का कई प्राच्यविद् पंडित खंडन भी करते हैं।

अभी, मैं आर्य शब्द की शोध करते करते जो नाना प्रमाण उपस्थित कर चुका हूँ, उनमें से कुछ आपको संदेहास्पद भी लगेंगे। और मैंने इनमें ऐतिहासिक परंपरा की कुछ कड़ियाँ भी जोड़ी हैं तथा भारत के प्राचीन नाम आर्यावर्त का संबंध आयरलैण्ड नाम से भी जोड़ा है, किन्तु इस नाम का वहुत पुष्ट प्रमाण नहीं है; तो भी इस श्रृंखला की मुख्य कड़ियाँ मज़बूत हैं और विश्वास योग्य हैं। देशों, जातियों और लोगों, नदियों और पर्वतों के नाम असाधारण जीवनी-शक्ति से संपन्न होते हैं; जब कि एक ओर बहुत-से बड़े-बड़े साम्राज्यों, जातियों और नगरों के नामों का पता भी नहीं रहता। ढाई हज़ार वर्ष हो चुके हैं, किन्तु रोम का नाम आज भी रोम बना है और संभवतः यह नाम सदा के लिए भी रह सके। यह नाम यहाँ के सबसे पुराने बसने वालों ने रखा था। जहाँ कहीं भी हम रोम नाम पाते हैं हमें समझना चाहिए कि इसका इटली की राजधानी ोम से संबंध है। चाहे भले ही यह वल्लाकिया हो जहाँ लैटिन से निकली बोली बोली जाती हो, स्वयं इस देश का नाम यहाँ के निवासियों ने रूमानियाँ रख दिया है, भले ही ग्रीज़ों हो (स्विटज़रलैंड का एक प्रदेश) जहाँ की भाषा का नाम रोमांस है, और स्वयं रोमांस कही जाने वाली कई भाषाएँ हों, भले ही यह तुर्की में हो जहाँ कभी रोमन साम्राज्य का विस्तार था और स्वयं अरब लोगों ने सका नाम रूम रख दिया था, चाहे यह रोमेलिया नाम में हो; हम भली-भाँति जानते हैं कि ये सब नाम हमें उस रोम नगर तक पहुँचाते हैं जिसे रोमुस और रेमुलुस नामक दो गड़रियों ने बसाया था। लाटचूम प्रदेश का यह नगर कभी उनका गढ़ था और वीरों का देश था। आजकल निम्रूद कही जाने वाली ज़ाब नदी के ऊपरी तट पर बसा हुआ नगर **असुर** (अरबी उच्चारण अथुर, क्योंकि अरबी ص का उच्चारण थ्वाद होता है) हमें तुरत ही स्मरण दिलाता है कि कभी यहाँ असीरिया अथवा **असुरिया** राज्य बसा होगा, जिसे डीओकासीउस अपने ग्रंथ में **अतुरिया** नाम से संबोधित करता है। यहाँ यह

१. यह शब्द नारवे की प्राचीन भाषा में ईरार है; ऐंग्लोसेक्सन में इसका रूप ईरा है और इसका अर्थ है "आयरलैण्ड के रहने वाले।"

ध्यान रखना चाहिए कि असभ्य लोगों ने **स** का उच्चारण **त** में परिणत कर दिया है। दार्यवश[1] ने इस असीरिया नामक देश को अथुर कहा है। हम इतिहास में पढ़ते हैं कि कभी सिकंदर ने सतलज नदी के किनारे राजा पुरु से युद्ध किया और यह विचित्र तमाशा देखिए कि इसी स्थान पर अंग्रेज़ों का सिक्खों से युद्ध हुआ था (ये भाषण १८६१ ई० में दिये गये थे। इससे कुछ वर्ष पहले अंग्रेज़ों की लड़ाई भी सिक्खों से इसी स्थान पर हुई—अनु०)। सतलज का यह नाम सिकंदर के समय की ग्रीक भाषा में हेसूदुरुस था और यही नाम वैदिक भाषा में शतद्रु अर्थात् स्वयं सिकंदर से डेढ़ हज़ार वर्ष पहले ऋग्वेद में मिलता है। वेद में एक सूक्त है जिसे रणसंगीत भी कहा जा सकता है, उसमें गाया गया है कि इसी शतद्रु अर्थात् सतलज के दोनों किनारों पर दो दलों में किस प्रकार भयानक युद्ध हुआ।

इसमें भी कोई नाममात्र संदेह नहीं है कि नामों की समता के कारण, सभी नामों की एकता पर विश्वास नहीं किया जा सकता। विख्यात भाषा-तत्त्व-विद् जर्मन पंडित ग्रिम ने एक स्थान पर लिखा है और उसका कथन सत्य भी हो सकता है कि जिस स्थान पर जर्मनों पर एक उत्तम ग्रंथ लिखने वाले टेसीटुस ने अरिइ जाति का वर्णन किया है वे आर्य लोग नहीं थे बल्कि वे **हरि** जाति के लोग थे। किन्तु दोनों पक्षों में जो प्रमाण दिये गये हैं वे अटकल-पच्चू हैं, इसलिए यह कहना चाहिए कि इस शब्द के अर्थ की समस्या का समाधान भावी विद्वान् करेंगे। अधिकांश स्थलों पर ध्वनि-परिवर्तन के नियमों का सूक्ष्म निरीक्षण कि अमुक भाषाओं में ध्वनियाँ किन नियमों के अनुसार घिसती और बदलती हैं, इसका पक्का ज्ञान, इन विषयों पर जो संदेह रह जाता है, उसका निवारण करेगा। ग्रिम ने जर्मन-भाषा के अपने इतिहास में कल्पना की (पृ० २२८) थी कि प्राचीन ईरानी शिलालेखों में **हेरात** नामक स्थान के लिए जो **हरिव** शब्द दिया गया है, उसका संबंध **अरिइ** शब्द से है। अब स्मरण कीजिए कि यह नाम हेरोडोटस ने ईरानियों की एक जाति **मीड** का बताया था, यह संभव नहीं हो सकता, क्योंकि **हरिव** के आदि में जो **ह** अक्षर है वह बताता है कि इसके संस्कृत रूप में आदि में इस **ह** के स्थान पर **स** रखा जाना चाहिए। इसके स्थान पर आरंभ में कोई स्वर नहीं आ सकता, जैसा कि आर्य शब्द में **अ** है। आगे लिखी बातें इस तथ्य को

१. **देखिए** Rawlinson's Glossary, S. V.

और भी स्पष्ट कर देंगी—हेरात के दो नाम हैं। एक तो हेरात दूसरा हेरि[1] और जिस नदी पर **हेरात** बसा हुआ है उसका नाम है **हेरी-रूद**। टौलेमी ने अपने ग्रंथ में इस नदी का नाम **अरेइउ**[2] दिया है। दूसरे लेखकों ने इसका नाम **अरिउस** दिया है और पश्चिम में पार्थिया, उत्तर में मर्गिन, पूर्व में बक्त्रिया और अराकोजिया तथा दक्षिण में दूरंगियाना नामक देशों के बीच में जो भूमि है उसका नाम अन्य ग्रंथकारों ने **अरिअ** दिया है। अब देखिए कि यह देश, भले ही इसमें कोई **ह** नहीं है, स्ट्राबो के अनुसार बताया हुआ **अरियाना** प्रदेश नहीं है। किन्तु यह एक स्वतंत्र देश है, जो अवश्य ही **अरियाना** का एक भाग था। प्राचीन ईरानी कोणाकृति शिलालेखों में खुदा हुआ अरिव प्रदेश यही है। यद्यपि इसके विषय में भी असंदिग्ध रूप में कुछ नहीं कहा जा सकता, किन्तु इतना तो निश्चय है कि इसका नाम अवेस्ता में हरोयु[3] रूप से आया है जो कि अहुरमज़्द का रचा छठा देश है। यह नाम हमें प्रारंभ के **ह**-के साथ जरथुष्ट्र से भी प्राचीन काल में मिलता है। जरथुष्ट्र के धर्मावलंबी उत्तर

१. W. Ouseley, Orient, Geog. of Ebn Haukal. Burnouf, Yasna Notes, p. 102.

२. Ptol. VI. c. 17.

३. यह माना जाता है कि हरोयूम शब्द जेंद-अवेस्ता में है, यह हरएबिन के स्थान पर रखा गया है। यह भी कहा जाता है कि इसका कर्त्ताकारक का रूप हरोयू नहीं था वरन् वह रूप हरएवो था (Oppert, Journal Asiatique, 1851, p. 280)। उक्त मत के शुद्ध होने की संभावना का खंडन बिना किये इस मत का समर्थन आंशिक रूप में कर्मकारक के रूप विदोयूम से भी हो जाता है (यह बिदएवो का रूप है, जिसका अर्थ है देवों का शत्रु। इसी लिए कोई कारण नहीं देख पड़ता, जिससे हम हरोयूम को हरोयुस शब्द का कर्मकारक का रूप न मान लें। यह दीर्घ यू जो शब्द के अन्त में आया है अनुनासिक म् के प्रभाव का फल है। ब्रूनुस कृत Yasna, notes, p. 103)। यह हरोयु संस्कृत शब्द सरयू के समान ही कर्ताकारक रूप है, बल्कि यह रूप सरयू से भी अधिक शुद्ध है, क्योंकि इसका मूल संस्कृत सरयू या सरस्यू और भी ठीक बैठता है। अप्पट साहब ने ठीक ही कहा है कि हरेवा देश के निवासी वही हैं जिन्हें ग्रीक भाषा में (Areioi) अरीवोइ कहा गया है। ग्रिम के समान उसने Arioi के साथ इसे नहीं मिलाया है।

भारत से आये थे और एक उपनिवेश बसाकर ईरान में रहने लग गये थे (इन बिचारों का अब भली-भाँति खंडन हो गया है—अनु०)। ये जरथुष्ट्री पारसी किसी समय उन लोगों के साथ साथ रहे थे, जिनके पवित्र सूक्तों के संग्रह का नाम वेद है। इनमें आपस में फूट हो गयी और दो परस्पर विरोधी दल बन गये। पारसी लोग हिन्दुओं से अलग होकर अराकोज़िया और ईरान में जा बसे (यह मत अब खंडित हो गया है—अनु०)। परदेश में बसने के समय उन्होंने वही काम किया जो ग्रीक लोगों ने नये उपनिवेश बसाते समय किया था और जो अमेरिकन लोगों ने भी इंग्लैण्ड से अमेरिका में जाकर बसते समय किया। उन्होंने अपने नये नगरों और नदियों के नाम वही रखे, जिन्हें वे अपने पुराने देश में छोड़ आये थे। और चूंकि ईरानी **ह** सूचित करता है कि इसका संस्कृत मूल रूप **स** होगा, इस नियम के अनुसार **हरोयु** संस्कृत में **सरोयु** (सरयू–अनु०) हो जायगा। यह सरयू भारत की एक पवित्र नदी है, इसका उल्लेख ऋग्वेद में आया है और स्वयं रामायण में इसका वर्णन अयोध्या की पवित्र नदी के रूप में है। अयोध्या भारत का एक बहुत पुराना नगर और कोसल की राजधानी है। आजकल ठेठ हिन्दी में इसे अजुध्या और पुराने कोसल राज्य को अवध कहते हैं। सरयू का नाम भी हिन्दी में सरजू[1] हो गया है।

तुलनामूलक भाषा-विज्ञान का महत्त्व देखिए कि उसने प्राचीन समय के आर्य शब्द के नाना रूप भारत से आयरलैण्ड तक हमारे सामने रख दिये और यह भी बता दिया कि ध्वनि-विकार और ध्वनि-परिवर्तन के नियम के अनुसार इसके क्या रूप हो गये। इस कारण यह स्वाभाविक और उचित ही है कि यह नाम भाषा के उस परिवार के लिए जिसे हम पहले भारोजर्मन, भारोपा, काकेशियन या जाकेटिक कहते थे, एक पारिभाषिक शब्द के रूप में चुन लिया गया है।

१. यह संस्कृत शब्द संस्कृत धातु सर या सृ धातु से निकला है—'जाना', 'दौड़ना', 'सरकना'—जिससे सरस् 'पानी', सरित् 'नदी' और सरयू 'अवध के निकट की एक नदी' निकले हैं। हम, इससे ठीक ही यह निदान निकाल सकते हैं कि इस सरयू और सरस्यू से Ariys (अरयुस) या हेरी नदी का नाम निकला है और इस नदी के कारण ही ग्रीक भाषा के अरिअ अथवा हेरात का नामकरण हुआ है। चाहे जो हो, हेरात देश के नाम आरिअ का ग्रीक के उस अरिअ शब्द से कोई संबंध नहीं है, जिसका अर्थ आर्यों का देश है।

सातवाँ भाषण

भाषा रचनेवाले तत्त्व

हमने आर्य या भारोपा भाषा-परिवार के नाना रूपों का जो विश्लेषण किया है, उससे हमें यह ज्ञान हुआ है कि इनके व्याकरण के नाना रूप प्रारंभ में, हमें भले ही कितने ही रहस्यमय और पेचीदा मालूम क्यों न हुए हों, वास्तव में वे केवल एक सीधी-सादी प्रक्रिया के परिणाम हैं। आरंभ में यह प्रश्न था कि d (डी) लगने से love का रूप जो वर्तमान काल में है, loved होकर किस प्रकार और किस प्रक्रिया से अचानक भूतकाल का रूप बन जाता है? और यदि हम फ्रेंच क्रिया aimer 'प्यार करना' में ai जोड़ें तो उसका रूप हमें सूचित करेगा कि प्यार करने का यह काम भविष्यकाल में होगा। अब यदि हम इन्हें उस खुर्दबीन के नीचे रखकर देखें जिसे तुलनामूलक भाषाशास्त्र कहा जाता है तो यह रूप तथा व्याकरण के और सभी रूप स्पष्टता से दिखाई देते हैं और वे पहलू और वे आकार ग्रहण कर लेते हैं जो अच्छी तरह और आसानी से समझ में आने लगते हैं। हम देख चुके हैं कि जिन, समझ में न आने वाले अक्षरों या अक्षरसमूहों को व्याकरण में प्रत्यय कहते हैं, वे कभी किसी प्राचीन समय में स्वतंत्र और सार्थक शब्द रहे होंगे। आरंभ में वे शब्दों के अंत में, दूसरे स्वतंत्र सार्थक शब्दों के अंत में जोड़ दिये जाते रहे होंगे। किन्तु ध्वनि-परिवर्तन के नियम की प्रक्रिया ने इनको घिस दिया और ये अक्षर एक या दो अक्षरों के रूप में रहकर प्रत्यय कहे जाने लगे, अब इनका कोई अर्थ नहीं रह गया। लेकिन इनसे, स्वतंत्र सार्थक शब्द के रूप में रहते समय जो अर्थ निकलता था, उसे न छोड़ते हुए, और उसको सुरक्षित रखते हुए प्रत्यय रूप में, घिस जाने पर भी, शब्दों के पीछे जुड़ने पर वही अर्थ और भाव व्यक्त होता है। व्याकरण के इन प्रत्ययों की वास्तविक प्रकृति एक दार्शनिक ने बतायी है, भले ही उसकी कुछ कल्पनाएं बहुत ही बहकने वाली हों तो भी उसने भाषा के असली जीवन और उसकी प्रगति की बहुत-सी सत्य

घटनाओं के दर्शन कर लिये थे। यह ज्ञानी हौर्नटूक था। प्रत्ययों[1] के बारे में वह लिखता है—

"यद्यपि मैं यह विचार रखता हूँ और मेरे पास यह विश्वास करने के युक्ति-संगत कारण हैं कि व्याकरण के सभी प्रत्यय, इसी प्रकार अपनी क्रमिक मूल व्युत्पत्ति के रूप तक पहुँचाये जा सकते हैं और वे इस समय हमें कितने ही कृत्रिम लगें, वास्तव में वे मूल रूप में इस प्रकार से विद्वानों द्वारा मिल-जुलकर नहीं बनाये गये थे कि अर्थ न होने पर भी किसी विशेष अर्थ या भाव को सूचित करें। वे मूल में स्वतंत्र और सार्थक शब्द थे जो दीर्घ समय के प्रभाव से विकृत होते, घिसते-मँजते, एक या दो अक्षरों में रह गये और अब भी उसी अर्थ में शब्दों के पीछे जुड़-कर, उनमें वही अर्थ या भाव लाते हैं, जो वे मूल रूप में सूचित करते थे। सत्य होने पर भी इस बात को अन्य विद्वान् ताड़ नहीं सके। यदि अन्य विद्वान् इसे ताड़ भी लेते तो उन्हें प्रत्ययों के अर्थों की शोध-यात्रा में बहुत अधिक भटकना पड़ता और यह यात्रा उन्हें बहुत कष्टकर प्रतीत होती, क्योंकि कई भाषाओं में, जिनकी शोध वे कर रहे थे, ये प्रत्यय हमारी भाषा से अधिक पुराने और अर्थहीन थे तथा उनमें बहुत-सी उलझनें उपस्थित हो गयी थीं।"

हौर्नटूक के सामने स्पष्ट रूप से यह विचार आया कि व्याकरण के प्रत्ययों के रहस्य उद्घाटन करने के विषय में उसने जो मार्ग देखा है, उसके द्वारा इनकी व्युत्पत्ति के मूल रूप अर्थात् स्वतंत्र शब्द बताये जा सकते हैं—किन्तु वह स्वयं साधन-हीन था और इस चिन्ता में था कि प्रत्ययों के इस रहस्य को मैं कैसे प्रकाश में लाऊँ—और उसने उनका जो अर्थ समझाया और जो रहस्य बतलाया, उनमें से अधिकांश प्रत्ययों की व्याख्या अशुद्ध है। उसकी पुस्तक "Diversion of Purley" पढ़ते समय यह आश्चर्य होता है कि हौर्नटूक के समान स्पष्ट, तीक्ष्ण और शक्तिशाली बुद्धि रखने वाले एक विद्वान् ने, जिसे बहुत अधिक 'नीर-क्षीर-विवेक' था और जिसके सिद्धान्त बड़े गंभीर और सत्य थे, तथ्यों का पूरा-पूरा ज्ञान न होने के कारण सत्य के विरुद्ध निदान निकाले।

जब हमने एक बार देख लिया कि व्याकरण के प्रत्यय किस प्रकार अपने मूल रूप में अर्थात् स्वतंत्र शब्द के रूप ढूंढ़े जा सकते हैं, तो इस एक शोध के साथ

1. Diversions of Purley, p. 190.

हमने इसका भी पता लगा लिया कि भाषा की रचना करने वाले तत्त्व, जो व्याकरण का सूक्ष्म निरीक्षण और पूरी जांच-परख के बाद शेष रह जाते हैं, वे दो प्रकार के होते हैं—उद्देश्य (नाम) और विधेय (धातु)।

किसी भी भाषा या भाषा-परिवार में **धातु** उसे कहते हैं जिसका न तो अधिक सीधा-सादा रूप दे सकते हैं और न जिसके ज्यादा पुराने मूल रूप हमें प्राप्त हैं। एक वास्तविक उदाहरण से इस बात पर प्रकाश डालना उचित होगा। यदि हम संस्कृत, ग्रीक और लैटिन से बहुत से शब्द लें और उनको उनके आदि आर्य-भाषा के मूल रूप तक खोजें तो यह उतना सहायक नहीं होगा, जितना कि नाना भाषाओं की तुलना के साथ एक नयी आविष्कृत धातु की शोध का कार्य। यहाँ पर मैं **अर्** धातु लूँगा। मैं पिछले भाषण में इसका उल्लेख कर चुका हूँ कि यह **अर्** धातु **आर्य** शब्द का मूल स्रोत है। मैं इस विषय पर प्रकाश डालते हुए यह भी बताऊँगा कि इसका किस प्रकार नाना देशों में विस्तार हुआ है और किस प्रकार यह शब्द आर्य जाति के कृषि-कार्य करने वाले चरवाहों (इनको वेद में कर्षणि और चर्षणि कहा गया है—अनु०) ने अपने लिए चुना।

इस **अर्**[1] धातु का अर्थ 'हल् चलाना' या 'खोदना' या 'मिट्टी फाड़ना' है। इसका रूप लैटिन में ar-are (अर-आरे) है, ग्रीक में यह रूप ar-oun (अर-ओउन), आयरिश भाषा में ar (अर) है, लिथवानियन में ar-ti (अर-टी), रूसी में ora-ti (अर-टी), गौथिक में इसका रूप मिलता है ar-yan (अर-यन), ऐंग्लोसेक्शन में यह er-jan (एर्-यन) है। वर्तमान अंग्रेज़ी में यह to ear (टु इअर) है। (शेक्सपियर ने अपने एक ग्रंथ रिचार्ड दो, तीन में कहा है—"to-ear the land that has some hope to grow" एक अन्य ग्रंथ में [Deut XXI, 4] Arough valley which is neither eared nor sown").

इस धातु से **हल** का नाम निकला अर्थात् 'हल चलाने का यंत्र' लैटिन में इसका रूप ara-tum (अरतुम) और aratrum (अरात्रुम), ग्रीक भाषा में aro-tron (अरात्रोन) पाया जाता है। चेक भाषा में इसका रूप oradlo

१. अर् की उत्पत्ति संस्कृत धातु सृ तक पहुँचायी जा सकती है। (पौट की पुस्तक Etymologische Forschungen, i, 218), **किन्तु हमारे वर्तमान अभिप्राय के लिए अर् धातु से काम चल जाता है।**

(ओरदलो) है। इस शब्द में **त** का **द** और **र** का **ल** रूप आ गया है। लिथवानियन भाषा में हल को arkla-s (अरक्ल्-स्) कहते हैं। ब्रिटेन की कार्निश-भाषा में aradar (अरदर) हल का नाम है। वेल्स की भाषा में arad (अरद्[1]) हल का नाम है। प्राचीन Norse 'नारवे की भाषा' में इसे ardhr (अरध्र्) कहते हैं। इस भाषा में अरध्र का अर्थ 'हल' किया जाता था और चूँकि हल द्वारा उत्पन्न सस्य ही उस समय सब से बड़ा धन माना जाता था, इसलिए इसका एक अर्थ 'धन-संपत्ति' भी हो गया। उस समय खेती और अनाज ही संपत्ति के मुख्य साधन थे, इसी कारण स्वयं लैटिन में धन के लिए जो pecunia (पिक्यूनिआ) शब्द काम में आता था, वह भी pecus (पिक्युस=संस्कृत रूप पशुस्) से निकला है। Fee जो डाक्टरों तथा वकीलों को दी जाती है (और जो भारत के स्कूलों में **फीस** "शुल्क" नाम से प्रति मास चुकायी जाती है वह शब्द भी **पिक्यूनिया** से निकला है—अनु०) यह शब्द प्राचीन अंग्रेजी में **फे** (Feh) रूप में वर्तमान था और ऐंग्लोसेक्शन भाषा में इसे फेओह् (Feoh) कहते हैं। इसका अर्थ भी "पशु" और "संपत्ति" है। गौथिक में यह रूप Faihu (फइहु) है। ये सब रूप लैटिन शब्द पेकुस से निकले हैं। आधुनिक जर्मन भाषा में यह रूप vieh (फी) है।

हल चलाने के कार्य को लैटिन-भाषा में aratio (अर-तिओ) कहते हैं। ग्रीक में यह शब्द aro-sis (अरो-सिस्) है और मेरा यह भी विश्वास है कि अंग्रेजी में हम लोग सुगंधि सूचित करने के लिए जिस aroma (अरोमा) शब्द का व्यवहार करते हैं, वह भी इसी अर्-धातु से निकला है, क्योंकि एक हल चलाये हुए खेत से अधिक प्रिय अथवा सुगंधिमय पदार्थ और क्या हो सकता है? बाइबिल की **जिनीसिस** नामक पुस्तक के भाग २७ में जेकब (याकूब) यह कहता है—"मेरे पुत्र से ऐसी सुगंध निकल रही है कि उसकी तुलना केवल उस खेत से की जा सकती है जिसे प्रभु ने आशीर्वाद दे रखा हो।" ('सीरोत्कषण-सुरभि क्षेत्रम्'–मेघ०।)

अर् धातु का एक अति प्राचीन रूप ग्रीक भाषा का era (एरा) शब्द मालूम होता है, जिसका अर्थ 'भूमि' है। संस्कृत में इसका प्रतिरूप **इरा** है। पुरानी उच्च

१. जैसा माना गया है, यदि कार्निश और वेल्स शब्द, लैटिन शब्द अरात्रुम के विकृत रूप होते, तो उनके रूप areuder **(अरेउडर)** arawd **(अराउद) के प्रकार के होते।**

जर्मन में इसका रूप ero (एरो) है। गैलिक में यह ire (आयर या इरे), erionn (एरीऔन्) है। इसका अर्थ मूल में 'हल से जोती हुई भूमि' था और बाद को इसका अर्थ 'भूमि' हो गया। स्वयं अंग्रेज़ी का अर्थ शब्द, गौथिक का airtha[1] (ऐर्थ) और ऐंग्लोसेक्शन शब्द eorthe (एऔर्थ) भी इसी अर् धातु के रूप हैं। और मूल में इन सब शब्दों का अर्थ रहा होगा—"हल से जोती हुई अर्थात् कृषि कार्य के लिए तैयार की हुई भूमि।" अर् से बने हुए लैटिन-भाषा के एक शब्द armentum (अरमेन्तुम) का अर्थ है "वह जानवर जो हल जोतता है" अर्थात् "घोड़ा" या "बैल" और अरमेन्तुम का एक अर्थ "खेत में काम करने वाले सभी मज़दूर" भी हैं।

इस अति प्राचीन काल में जब कि आदि आर्य-भाषा के शब्दों का निर्माण हुआ था, आर्यों के समाज में कृषि-कार्य ही सबसे प्रमुख काम-धंधा था, जिससे सभी का पेट भरता था। उस काल में कृषि संबंधी ये मूल शब्द समाज की आवश्यकता के अनुसार बन चुके थे और इनके निश्चित अर्थ भी नियत हो चुके थे। हमको यह बात भी भली-भाँति समझ लेनी चाहिए कि एक शब्द, जिसका उस प्राचीन काल में और उस आदि आर्यों के समाज में यह "कृषि-कार्य से संबंधित" अर्थ था, वह बाद को "सब प्रकार के श्रम" के लिए काम में लाया जाने लगा। शब्दों की प्रगति और उनके अर्थ के विस्तार के क्षेत्र में जो साधारण नियम काम करता है, वह यह है कि पहले शब्दों का व्यवहार विशेष क्षेत्र में और विशेष अर्थ लेकर किया जाता है। धीरे-धीरे इन शब्दों का व्यवहार जनता दूसरे क्षेत्रों और अर्थों में भी करने लगती है। एक उदाहरण देखिए—Gubernare (गुबरनारे) एक धातु है, जिसका

१. ग्रिम का ठीक ही कहना है, airtha (ऐर्थ) शब्द गौथिक धातु अरिआन से नहीं निकाला जा सकता, क्योंकि इनके स्वरों में बहुत भेद है। किन्तु ऐर्थ, अरिआन धातु से भी बहुत पुराना रूप है और अर् धातु से निकला है जो मूल ऋ या इर थी। (Benfey, Kurge Gr. p. 27)। इस प्रारंभिक धातु ऋ या इर् से हमें संस्कृत इडा, इरा मिलते हैं। गौथिक में इसका रूप ऐर्थ है। इसका प्रतिरूप संस्कृत में ऋत माना जायगा। अभी तक इसका ठीक-ठीक पता नहीं चल सका कि संस्कृत इडा का अर्थ क्या है। ब्राह्मण लोग इसका अर्थ "प्रार्थना" बताते हैं, किन्तु यह इसका मौलिक अर्थ नहीं है।

अर्थ प्रारंभ काल में "जहाज की पतवार चलाना" था। बाद को धीरे-धीरे जनता ने इसका व्यवहार अन्य क्षेत्रों में भी आरंभ कर दिया और इसका अर्थ हो गया "शासन चलाना।" अंग्रेज़ी शब्द **एक्विप** का अर्थ प्रारंभ काल में था "जहाज को उसके आवश्यक सामान से सजाना।" और इस समय उसका अर्थ है "घर, महल, होटल, रेस्टोराँ आदि किसी को भी सामान से सुसज्जित करना।" अब इसका अर्थ केवल जहाजों तक ही सीमित नहीं रह गया, इसके अर्थ का विस्तार हो गया है। यह शब्द फ्रेंच में मूल रूप में equiper (एक्वीपे) और esquif (एस्क्वीफ़) है और इसकी व्युत्पत्ति schifo (स्कीफ़ो) अर्थात् अंग्रेज़ी शब्द शिप से है। पर अब इसके अर्थ का साधारणीकरण हो गया है। अब और देखिए, आधुनिक जर्मन-भाषा में Arbeit (ऑरबाइट) का अर्थ "मज़दूरी, काम" और Arbeit-sam (ऑरबाइट-ज़ाम) का अर्थ "मेहनती, परिश्रमी" है; गौथिक भाषा में भी arbaiths (आरबाइथ्स्) का व्यवहार साधारण रूप से "परिश्रम और कष्ट" के अर्थ में काम में लाया जाता है। किन्तु प्राचीन नौर्स-भाषा में इसका रूप erfidhi (एरफीदी) मिलता है और इसका अर्थ 'हल' है। पर बाद को इसका अर्थ "हल चलाना" हो गया। इसका रूप ऐंग्लोसेक्शन में earfodh (एआरफोध) और earfedhe (एआरफीदी) हो गया। इस शब्द के अर्थ के विषय में यह भी संभव है कि पहले इसका अर्थ "साधारण रूप से काम करने वाला" रहा हो और फिर आदि आर्यों ने अर्थ संकुचित कर दिया हो और "हल चलाने वाले" के लिए ही इस शब्द का अर्थ सीमित कर दिया हो। इस प्रकार जर्मन आरबाइट शब्द का अर्थ पहले केवल 'परिश्रम' रहा हो, फिर बाद को उत्तरी यूरोप अर्थात् स्कैन्डीनेविया में जाकर इसका अर्थ "विशेष परिश्रम" अर्थात् "हल चलाने के काम" में ही सीमित कर दिया गया हो। अब यह भी विचार कीजिए कि नौर्स-भाषा के शब्द erfidhi (एरफी दी) का निर्माण अर् धातु से हुआ है, इस कारण हमने जो इस शब्द की व्युत्पत्ति और अर्थ की पहली व्याख्या की, वही ठीक लगती है। इसके अतिरिक्त हमें यह भी मालूम है कि प्राचीन नौर्स-भाषा में एक अर् धातु भी विद्यमान थी, जिसका अर्थ "हल चलाना" था। इसी प्रकार प्राचीन उच्च जर्मन-भाषा में एक शब्द art (अर्ट) था जिसका अर्थ भी "हल चलाना"[१] ही था।

१. ग्रिम Arbit (आरबाइट्) शब्द को गौथिक शब्द Arbaiths (आरबा-

ग्रीक शब्द Aroura (अरोउर या अरूर) और लैटिन-भाषा का शब्द arvum (अरवुम) जिसका अर्थ "खेत" है, इनकी व्युत्पत्ति भी उसी अर् ('हल चलाने') से है। अब थोड़ा ध्यान दीजिए कि हल चलाना सबसे प्राचीन युग का प्रमुख कार्य ही नहीं था, बल्कि उस प्रारंभिक समय में यह एक बड़ा हुनर या कला भी समझा जाता रहा होगा। इस कारण मुझे इस विषय पर नाम-मात्र सन्देह नहीं है कि लैटिन-भाषा के ars (अर्स या आर्स), artis (अरटिस या आरटिस) और अंग्रेज़ी art (आर्ट) का मूल में अर्थ रहा होगा--"सब कलाओं की मूल कला", जो सर्वज्ञान-संपन्न देवी ने पहले-पहल हल चलाने के रूप में सिखायी। प्राचीन उच्च जर्मन में arunti (आरुन्टी) और ऐंग्लोसेक्शन में aerend (आएराण्ड) शब्दों का अर्थ है "साधारण परिश्रम", किन्तु इनका अर्थ भी प्रारंभिक अवस्था में "खेत में कृषि के लिए किया गया कार्य" रहा होगा। अंग्रेज़ी में आज भी इस शब्द के रूप errand (एरंड) और errand-boy (एरंड ब्वाय) इसी काम करने के अर्थ में व्यवहार में आते हैं। अर् का अर्थ उस प्रारंभिक युग में केवल "हल चलाना" ही नहीं था, इसका एक अर्थ "ज़मीन को चीरना या फाड़ना" भी था। यह अर्थ समुद्र पर भी लागू किया गया और इस अर् शब्द का दूसरा अर्थ "समुद्र को चीरना या फाड़ना" लगा दिया गया। इस प्रकार शेक्सपियर ने निम्न वाक्य लिखा है--

Make the see serve them; which they ear and wound with keels.

यहाँ ear शब्द का अर्थ समुद्र को चीरना लगता है। इसी प्रकार हम देखते

इथ्स्), प्राचीन उच्च-जर्मन शब्द Arapeit (अरापाइट), वर्तमान उच्च-जर्मन Arbeit (आरबाइट) तथा गौथिक शब्द Arbya (आरब्य) "उत्तराधिकारी" से निकालता है। किन्तु वह यह भी मानता है कि Arbya तथा गौथिक धातु अरिआन (हल चलाना) में घनिष्ठ संबंध है। वह आरब्य शब्द को रूसी जाति के Rab (रब) "सेवक" से मिलाता है और आरबाइट शब्द को Rabota (रबोता) से मिलाता है और कहता है कि प्राचीन काल में मनुष्य के पुत्र और उसके उत्तराधिकारी पहले उसके सेवक थे। उसने यह भी माना है कि लैटिन शब्द रबोता और labor (लबोर) में घनिष्ठ संबंध है (German Dictionary, S. V. Arbeit)।

हैं कि संस्कृत भाषा में **अर्** धातु से **अरि-त्र** शब्द निकला है। इसका अर्थ 'हल' नहीं है बल्कि इसका अर्थ है "पतवार"। ऐंग्लोसेक्शन भाषा में इस **अरित्र** का रूप केवल **अर** रह गया है और आधुनिक अंग्रेज़ी में पतवार को oar (ओर्) कहते हैं। इसका अर्थ यही हुआ कि **अरित्र** मानो समुद्र या नदी के जल को हल की तरह चीरता हुआ चला जाता है। ग्रीक लोगों ने भी **अर्** धातु का 'जहाज या नाव चलाने' के अर्थ में व्यवहार किया है; क्योंकि ग्रीक-भाषा में eretes (एरेत्स) शब्द का अर्थ "जहाज या नाव चलाने वाला" है और ग्रीक भाषा के एक दूसरे शब्द tri-er-es (त्री-ए-आर्स) का अर्थ है, वह जहाज जिसमें तीन पतवारें लगी रहती थीं या जिसमें पतवार की तीन क़तारें चलती थीं।

प्राचीन आर्य-भाषाओं में बार-बार अर्-धातु का प्रयोग मिलता है और उनमें कहीं तो इसका अर्थ "हल चलाना" है और कहीं "पतवार चलाना" है। अंग्रेज़ी शब्द plough और रूसी जाति की भाषाओं के शब्द Ploug (प्लोउग) की समता संस्कृत **प्लव्**[1] से है जिसका अर्थ है, 'नाव या जहाज' और ग्रीक भाषा में यह शब्द ploion (प्लोइऔन) रूप में पाया जाता है। ऐसा लगता है कि आर्य लोग जिस प्रकार समुद्र को चीरने को "समुद्र पर हल चलाना" कहते थे, उसी भाँति खेत की मिट्टी फाड़ने को "खेत में हल जोतना" भी कहते थे और इस प्रकार एक ही मुहावरा दो कामों के लिए व्यवहार में लाया गया। अंग्रेजी में plough या plow शब्द साधारण रूप से "गाड़ी के डब्बा" या किसी "साधारण वाहन"[2] के लिए काम में लाया जाता है।

हम इस **अर्** शब्द की शोध को और भी अधिक आगे बढ़ा सकते हैं, किन्तु हमने इस धातु से निकले जो नाना आर्य-भाषाओं के बहुत-से शब्दों की अब तक तुलना की है, उससे इतना तो स्पष्ट ही हो जायगा कि क्रिया-सूचक धातु का अर्थ क्या है? पाठकों ने यह देख लिया होगा कि **अर्** धातु से निकले ऊपर के सब शब्दों में **अर्** क्रिया-सूचक मूल धातु है और शेष भाग शब्दों के निर्माण में सहायक, प्रत्यय आदि

१. संस्कृत प्लु धातु से अंग्रेजी में fleet, float शब्द भी निकले हैं।

२. ब्लेक मूर की घाटी में गाड़ी को हल या plow कहते हैं और यह अरात्रुम के लिए Zull (A. S. Syl) के स्थान पर काम में आता है। (बर्नी द्वारा लिखित Dorset Dialect, p. 369).

हैं। शब्द रूप में **अर्** मूल क्रियात्मक धातु मानी जाती है, क्योंकि किसी भी शब्द के गठन में यह धातु शामिल हो, यह एक ही कार्य का प्रतिनिधित्व करेगी; भले ही वह हल हो, अरित्र हो, घोड़ा हो, बैल हो या खेत हो। हम Artistic (कलापूर्ण) शब्द ही व्यवहार में क्यों न लायें; इसमें भी **अर्** धातु की एक क्रियासूचक अर्थ की शक्ति अक्षुण्ण रहती है। इस शक्ति या विशेष अर्थ को भले ही साधारण जनता अपने ज्ञान की दुर्बल आँख के कारण न देख पाये, किन्तु भाषा के पंडित अपनी दूरबीन से धातु का यह कार्य भली-भाँति देख सकेंगे। भारत में जिन ब्राह्मणों ने अपने को आर्य जाति अथवा श्रेष्ठ जाति का बतलाया है, उन्हें कभी स्वप्न में भी इस बात का ज्ञान नहीं था कि वास्तव में आर्य शब्द **अर्** धातु अर्थात् "हल चलाने" या "समुद्र को पार करने" से कोई संबंध रखता है। यह वही बात हो गयी, जो एक Artist (कलाकार) अपने विषय में कहता है कि उसकी कला महान् है, क्योंकि वह ईश्वर की प्रेरणा से उसकी आत्मा में प्रवेश कर सकी है। उसे इस बात का नाममात्र पता नहीं है कि जिसे वह 'ईश्वर की देन', 'महान् कला' आदि बता रहा है वह शब्द कभी **अर् धातु** अर्थात् हल चलाने और समुद्र चीरने की क्रिया से संबंधित था।

यहाँ पर हम भाषा के एक दूसरे परिवार के शब्दों की जांच-परख करेंगे, जिससे हमें पता चलेगा कि किस प्रक्रिया से शब्दों के मूल अर्थ के द्योतक धातु-तत्त्वों का आविष्कार किया गया है।

अब हम respectable शब्द को लेते हैं। यह लैटिन भाषा का शब्द है। यह सेक्शन भाषा से नहीं निकला, जैसा कि इस शब्द में able शब्द घुस जाने से साफ मालूम पड़ता है। जैसा हम इसके एक रूप respectabilis में बड़ी आसानी से शब्द की रचना करने वाली क्रिया respectare को पहचान लेते हैं और यह भी देख लेते हैं कि इसमें bilis (बिलिस्) प्रत्यय जुड़ा हुआ है। अब और लीजिए, इसके आरंभ में एक उपसर्ग re (रे) आया है। अब spectare (स्पेक्टारे) धातु शेष रही और हम पाते हैं कि यह स्पेक्टारे, भाषा की क्रिया spicere (स्पीकेरे) या specere (स्पेकिरे) धातु का कृदंत रूप है। उक्त धातुओं का अर्थ "देखना" या "साफ देखना" है। स्वयं specere धातु में हम देखते हैं कि ere (एरे) भी एक प्रत्यय है क्योंकि यह नाना रूपों में बदलता जाता है। अब क्रिया के मूल भाग spec (स्पेक्=संस्कृत पश्) को लेते हैं, जिसको हम क्रिया की धातु कहते हैं। हमको यह आशा होती है कि इस धातु को संस्कृत तथा अन्य आर्य-भाषाओं में पायेंगे और वास्तव में यह पायी भी जाती है। संस्कृत में इसका जो

साधारण रूप चलता है वह **पश्** है, जिसका अर्थ देखना है। इसमें **स्** छूट गया है, किन्तु **स्पश्** धातु भी वैदिक संस्कृत रूप **स्पश** (=गुप्तचर) में मिलती है; जो स्पेक में साफ ही दिखाई देती है। ट्यूटानिक भाषा-परिवार में हम देखते हैं कि spehon (स्पेहोन) शब्द प्राचीन उच्च जर्मन में "गुप्तचर" अर्थ में व्यवहार में लाया जाता था और अंग्रेजी में हम इसी का एक रूप spy[१] (स्पाई) आज भी काम में लाते हैं। ग्रीक में इस धातु का रूप कभी spek (स्पेक्) रहा होगा। वर्ण-व्यत्यय का प्रताप देखिए कि इसके अक्षर उलटकर इस धातु का रूप बाद को *Skep* (स्केप्) हो गया, जो skeptomai (स्केप्तोमई) "मैं देखता हूँ," "मैं परीक्षण करता हूँ" बन गया। इसी धातु से skeptikos (स्केप्टीकौस) "परीक्षक", "पूछ-ताछ करने वाला" रूप भी बन गया। हमारी धार्मिक भाषा में sceptic (सेप्टिक) 'नास्तिक' और episkopos शब्द हैं जिनका अर्थ देख-रेख करने वाला या विशप है। अब हम इस धातु की जो शाखाएँ अन्य आर्य-भाषाओं में मिलती हैं, उनका निरीक्षण करेंगे। हम फिर वापस लौटकर respectable शब्द से आरंभ करते हैं। हमने इस शब्द में यह पाया कि respectable वह आदमी है, जो आदर के योग्य है और respect का वास्तविक अर्थ re -(रे) "पीछे" और spect "देखना" है। साधारण पदार्थों या व्यक्तियों के पास से हम सामान्यतः बिना उनको देखे आगे बढ़ जाते हैं, किन्तु हम जिन लोगों की प्रशंसा या आदर करते हैं, उन्हें फिर-फिर देखते हैं और उन्हें देखने के लिए मुड़-मुड़कर पीछे भी देखते हैं। आदर, आदरणीय का पुराना भाव यही था। जब हम अंग्रेजी noble और लैटिन-भाषा के nobilis शब्द की ओर देखते हैं, तो इससे भी हमारी पुष्टि होती है। इसका अर्थ है "वह मनुष्य, पदार्थ या दृश्य, जिसे हमें जानना चाहिए", क्योंकि nobilis का मूल रूप gnobilis था। (पाठक इस शब्द में **ज्ञा** "जानना" धातु को लैटिन में gno रूप से पहचान लेंगे। तुलसी ने इस शब्द को **ग्यान** रूप में लिखा है, अनु०।) यह ध्वनि-परिवर्तन के उस नियम से हुआ है जिससे gnomen से nomen और gnatus शब्द से natus (नातुस) रूप निकले हैं।

क्रमशः इसका अंग्रेजी में एक रूप with respect to "इस विषय में" हो

१. Pott, Etymologische Forschungen, p. 267; Benfey, Griechisches Wurzelworterbuch, P. 236.

गया और यह रूप एक विभक्ति के रूप में काम में आता है, क्योंकि यदि हम कहें—"with respect to this point, I have no more to say", इसे यही कहना होगा "I have no more to say on this point."

Specere (स्पेकेरे) धातु के एक रूप के पहले re (रे) जोड़ देने स जैसे आदर का भाव सूचित होने लगा, वैसे ही लैटिन में इस क्रिया के रूप के पहले de (डे) जोड़ देने से despicere (डेस्पिकेरे) धातु बन गयी है और इसका अर्थ है "किसी का अनादर करना या किसी को घृणा की दृष्टि से देखना।" अंग्रेज़ी में despise इसी का रूप है। फ्रेंच में एक शब्द है depit (डेपि), इसका अर्थ 'अनादर' या घृणा नहीं है, यद्यपि इसका मूल लैटिन रूप despectus (डिस्पेक्टुस) है, किन्तु इसका अर्थ फ्रेंच में है "क्रोध या क्लेश"। Se depiter का अर्थ है "हैरान होना, क्लेश में पड़ना।" En depit de lui (आँ डेपि द लुई) का अर्थ प्राचीन फ्रेंच में 'उससे क्रुद्ध' था। पर नयी फ्रेंच में Inspite of him अर्थात् "उसके बावजूद" हो गया है। अंग्रेज़ी में spite, in spite of, spiteful ये शब्द despite, in despite of, despiteful शब्दों के संक्षिप्त रूप हैं और इनका संबंध बिल्लियों के spitting (बिल्लियों के लड़ते समय के चीत्कार) के सिवा और कुछ भी नहीं है।

जैसा कि de शब्द का अर्थ "ऊपर से नीचे को" है उसी प्रकार sub का अर्थ "नीचे से ऊपर को" है और यदि हम उक्त उपसर्गों के साथ specere "देखना" धातु जोड़ें तो हमें suspicere (सुस्पिकेरे), suspecari (सुस्पेकारि) रूप मिलेंगे। इनका अर्थ है "ऊपर को देखना" अर्थात् "कुछ संदेह करना"। इससे suspicious, supicion और इसी प्रकार फ्रेंच भाषा के soupcon (सूपशों) शब्द को समझिए। यहाँ sub उपसर्ग का फ्रेंच रूप sou है, किन्तु अर्थ एक ही है।

Circum (सिरकुम) शब्द का अर्थ "चारों तरफ या सारा चक्कर" है, यदि हम इस शब्द के बाद =spect जोड़ दें तो पूरे शब्द का अर्थ हो जायगा "चारों तरफ देखने वाला अर्थात् सावधान।"

In के साथ यदि हम spect जोड़ दें तो इस शब्द का अर्थ हो जायगा "भीतर देखना या जांच करना।" In से बने शब्द to inspect, Inspector और Inspection हैं। ये शब्द लैटिन भाषा के In और specere से बने रूप हैं। उक्त लैटिन शब्दों का अर्थ भी "भीतर देखना" है।

इस लैटिन धातु स्पेकेरे से पहले प्रो (=संस्कृत प्र) जोड़ें तो एक धातु

prospicere (प्रौसपिकेरे) बन जायगी जिसका अर्थ है "आगे देखना"। इसी धातु से prospectus, prospective आदि शब्द बने हैं। इसी प्रकार con (=संस्कृत सम्-संयुक्त, संकेत, संघर्षण—अनु०) के साथ spicere धातु जुड़ने से conspicere शब्द बन जायगा, इस लैटिन धातु का अर्थ "एक साथ देखना" होता है। इसके conspicuous, conspectus आदि रूप बनते हैं। हम respectable शब्द में देख चुके हैं कि spicere धातु के कृदंत रूप से spectare धातु बन गयी। इससे पहले लैटिन उपसर्ग ex- "बाहर" जोड़कर लैटिन में expectare (एस्पेक्टारे) धातु बन जाती है, जिसका अर्थ है "बाहर को देखना।" इसका हम अंग्रेज़ी में to expect रूप पाते हैं।

Auspicious शब्द में भी हमें लैटिन धातु spicere मिलती है। लैटिन में auspicium (आउसपिकुम) शब्द है जिसका मूल रूप avispicum (अविस्पिकुम) था। इसका अर्थ, "उन विशेष प्रकार के पक्षियों के लिए बाहर को देखना" है, जिनको देखने से **शकुन** माना जाता है या जिनको देखने से या न देखने से कभी कभी असगुन भी माना जाता है। इस कारण से auspicious का अर्थ "भाग्यशाली" भी है। रोमन साम्राज्य के समय एक ज्योतिषी का नाम Haru-spex (हरु-स्पेक्स) था जो जानवरों की अंतड़ियों की जाँच-पड़ताल करके मनुष्यों का भावी भाग्यफल बता देता था।

अब और आगे बढ़िए, लैटिन-भाषा की **स्पिकेरे** धातु से एक नाम बना है—speculum (स्पेकुलुम), इसका अर्थ है—'दर्पण', मुँह देखने का आइना। इससे एक और नयी धातु बन गयी है speculari (स्पेकुलारि) 'भविष्य में होने वाला लाभ देखना, सट्टा-फाटका करना।' इसी से अंग्रेजी में एक और शब्द बना speculative (स्पेकुलेटिव) जिसका अर्थ 'भविष्य का विचार करने वाला—सट्टा-फाटका संबंधी' बन गया है।

इस एक धातु की और कई शाखाएँ मिलती हैं जो दूर-दूर तक फैली हुई हैं। लैटिन शब्द speculum (स्पेकुलुम) 'दर्पण' इटालियन भाषा में specchio (स्पेक्किओ) 'दर्पण' बन गया। यह शब्द फिर घूम-फिरकर चक्कर लगाते हुए फ्रेंच भाषा में Espiegle (एस्पीएग्ल) रूप में आया। इसका अर्थ है, 'मसखरा', वह 'जो आदमियों को विकृत रूप में देखता है।' इस फ्रेंच शब्द की उत्पत्ति कौतूहलजनक है। जर्मनी में कहानियों का एक संग्रह बहुत दिनों से चला आता है। इस कहानियों के संग्रह में Euleuspiegel (अयलेस्पीगल) नाम के एक आधे

पौराणिक और आधे ऐतिहासिक लेखक द्वारा लिखी गयी, जाल-फरेब संबंधी हास्यजनक कहानियाँ हैं। इन कहानियों का प्राचीन समय में फ्रेंच भाषा में भी अनुवाद किया गया। उस अनुवाद का नाम पड़ा Ulespiegle (अलेस्पिएग्ल)। यह नाम लोगों की जबान पर ज्यादा दिनों तक नहीं रह सका, घिस-मँजकर छोटा हो गया और रह गया—**स्पिएग्ल**। कहानियाँ खूब चलीं और हर मसखरे के लिए फ्रेंच में यही शब्द काम में आने लगा।

फ्रेंच लोगों ने केवल लैटिन से ही अपने शब्द नहीं लिये, वरन् उन्होंने ट्यूटानिक भाषाओं से भी बहुत-से शब्द अपनाये। इस कारण हम देखते हैं कि फ्रेंच भाषा में अगल-बगल में ही ऐसे शब्द मिलते हैं, जो लैटिन और ट्यूटानिक भाषाओं से लिये गये हैं। लैटिन धातु **स्पेकेरे** के साथ-साथ प्राचीन उच्च-जर्मन के spehon (स्पेहोन या स्पेख़ोन) से निकली हुई apier (एपिए) 'गुप्तचर का काम करना' धातु मिलती है। इटालियन में इस धातु का रूप spiare (स्पिआरे) है। जर्मन-भाषा में गुप्तचर के लिए speha (स्पेहा या स्पेखा) काम में आता था। उससे फ्रेंच में समानार्थक एक नया शब्द espie बन गया। इसका वर्तमान रूप फ्रेंच में espion (एस्पीऑं) बन गया है।

कृदंत रूपों से भी धातु बनती है, जैसा हमने लैटिन में species से cpectare (स्पेक्टारे) धातु को बनते देखा; परन्तु एक या दो अक्षरों की मूल धातुएँ बहुत कम मिलती हैं, जैसी **अर्** या **स्पश्** धातु हैं।

मूल धातु वास्तव में एक अक्षर की होती है। एक से अधिक अक्षरों की धातु जब कहीं मिलती है, तो यह पाया जाता है कि वह एकाक्षरी धातु से कुछ जुड़कर बनी है और स्वयं एकाक्षरी धातुओं में हमें यह भेद करना पड़ता है कि एक विशेष धातु मूल रूप में है या वह धातु गौण है, अर्थात् मूल-धातु का दूसरी बार बना विकार है या उसमें तीसरी बार कुछ जोड़ दिया गया है। देखिए—

(अ) प्रारम्भिक या मूल धातु वे हैं जो—

१—एक स्वर की होती हैं। उदाहरणार्थ, इ धातु जिसका अर्थ 'जाना' है।

२—एक स्वर और उसमें एक व्यंजन जुड़ी हुई धातु। उदाहरणार्थ **अद्** 'खाना, भोजन करना'।

३—एक व्यंजन और एक स्वर से बनी धातु। उदाहरणार्थ **दा** 'देना'।

(आ) गौण या दुबारा बनी धातु में निम्न अक्षर होते हैं—

१—एक व्यंजन, स्वर और व्यंजन। उदाहरणार्थ **तुद्** 'मारना, कुचलना'।

इस प्रकार की धातुओं में या तो पहला व्यंजन या अंतिम व्यंजन, धातु का अर्थ कुछ बदल देता है।

(इ) तीसरी बार परिवर्तित की गयी धातु वे हैं जिनमें निम्न बातें होती हैं—

१—व्यंजन, व्यंजन और स्वर। उदाहरणार्थ, **प्लु** 'बहना'।

२—स्वर, व्यंजन और व्यंजन। उदाहरणार्थ, अर्द् 'हानि पहुंचाना'।

३—व्यंजन, व्यंजन, स्वर और व्यंजन। उदाहरणार्थ, **स्पश्** 'देखना, जासूसी करना'।

४—व्यंजन, व्यंजन, स्वर, व्यंजन और व्यंजन। उदाहरणार्थ, **स्पन्द्** 'फड़कना, काँपना, हिलना'।

भाषा के प्रारंभिक इतिहास में मूल धातु अति महत्त्वपूर्ण तत्त्व हैं, किन्तु उनकी क्रियावाचक शक्ति साधारणतया बहुत अनिश्चित प्रकार की रहती है, इस कारण जब विचार-धारा आगे बढ़ती जाती है, तो उसे व्यक्त करने के लिए जनता मूल धातुओं को अपूर्ण पाती है, अर्थात् इन मूल-धातुओं से वे विचार प्रकट किये नहीं जा सकते, जो विचार-धारा की प्रगति के साथ समाज के प्रगतिशील भाग में प्रवेश कर गये हों। इन नये विचा ों को व्यक्त करने के लिए मूल धातुओं में हेर-फेर करना पड़ता है या कुछ जोड़ दिया जाता है, इस प्रक्रिया के फलस्वरूप धातुओं को दूसरी या तीसरी बार बदलना या सुधारना पड़ता है।

गौण या दूसरी बार सुधारी हुई आर्य-भाषा की धातुओं में हम बहुधा यह देखते हैं कि एक व्यंजन, वह भी साधारणतया अंतिम व्यंजन के रूप में परिवर्तित किया जाता है। इस कारण इस धातु में इसका मोटा अर्थ तो रह जाता है, किन्तु कुछ विशेषता आ जाती है, जिसे अंतिम व्यंजन निश्चित रूप दे देता है। इस प्रकार जब हम **तुद्** (तुदति) धातु का विचार करते हैं तो संस्कृत में एक धातु **तुप्** मिलती है और जो यही विचार प्रकट करती है तथा जिसके **तोपति, तुपति** और **तुंपति** रूप होते हैं। इसका अर्थ भी 'मारना' ही है। ग्रीक में इस धातु का रूप typ-to (तुप्-तो) 'मारना' पाया जाता है। संस्कृत में हम एक धातु **तुभ्** (तुभ्नाति, तुभ्यति, तोभते) भी पाते हैं। इसका अर्थ भी 'मारना' है। संस्कृत में इसी का एक प्रकार **तुफ्** धातु है, जिसके **तोफति, तुफति** और **तुंफति** रूप मिलते हैं। इसका भी अर्थ 'मारना' है। संस्कृत में एक और धातु **तुज्** (तुञ्जति, तोजति) है इसका भी अर्थ 'मारना, उत्तेजित करना' है और एक संस्कृत धातु **तुर्** (तुतोर्ति) है। इसका भी अर्थ संस्कृत में 'मारना' ही बताया गया है। इसका दूसरा अर्थ 'तेज चलना'

या 'दौड़ना' भी है। इससे और धातुएँ भी बनती हैं; जैसे **तुर्व्** 'मारना, जीतना', इसका रूप **तुर्वति** होता है। एक धातु **तुह्** (तोहति) है। इसका भी अर्थ 'तकलीफ देना, हैरान करना' है।

यद्यपि हम इनको बुनियादी धातु कहते हैं तो भी इनका वास्तविक संबंध मूल धातुओं से वही है, जो सेमेटिक भाषाओं की तीन अक्षरों वाली धातुओं का, उनसे भी प्राचीन दो अक्षरों[1] वाली धातुओं से है।

तीसरे वर्ग की धातुओं को देखने से हमें मालूम होगा कि उनके दो व्यंजनों में से एक अर्धस्वर (य-र-ल-व), अनुनासिक अथवा **ष, श, स** होता है; क्योंकि और व्यंजनों से इनमें परस्पर एक दूसरे के स्थान पर बैठ जाने की प्रवृत्ति अधिक होती है। हम इन धातुओं का थोड़ा विचार करने पर यह पाते हैं कि एक व्यंजन बाद को जोड़ा गया है और इनके अर्थ को विशेषता देने के लिए, इनमें दो-दो व्यंजन जोड़ दिये जाते हैं। उदाहरण लीजिए; हम **पश्** धातु को जानते हैं, उसका अर्थ विशेष रूप से पूर्ण करने के लिए उसका रूप **स्पश्** बनाया गया। प्रसिद्ध विद्वान् पौट साहब का यह भी कहना है कि इन धातुओं का मूल रूप **अश्** रहा होगा। इसी प्रकार का रूप **वन्द्** है जो **वद्** में **न्** जोड़कर बनाया गया है और **वद्** धातु के अर्थ को अधिक विशेषतायुक्त कर देता है। यही हाल **मन्द्** का है जो **मद्** धातु से निकली है और यही हाल **युञ्ज्** और **युनज्** धातुओं का है जो दोनों रूप **युज्** से निकले हैं। **युज्** का अर्थ है 'जोड़ना'। **यु** से आरंभ होने वाली दूसरी धातु **युध्** है जिसका अर्थ है 'परस्पर भिड़ना'। ये दोनों धातुएँ **यु** धातु की ओर संकेत करती हैं कि हम इस **यु** 'मिलना' से बनी हैं। यह मूल धातु **यु** भी संस्कृत में अभी तक सुरक्षित है। इस **यु** 'मिलना' धातु से बने शब्दों को देखकर हम यह भली-भांति समझ सकते हैं कि एक धातु दूसरी बार सुधारी जाने पर यद्यपि 'मिलना' अर्थ अवश्य रखती है, पर **यु-ध्** रूप होने पर 'लड़ाई में मिलना या भिड़ना' व्यक्त करती है तथा **यु-ज्** रूप धारण करने पर उसका अर्थ 'प्रेम से मिलना' भी हो जाता है। इस स्थान पर हमें एक और बात भी समझ लेनी चाहिए और वह यह कि भाषा जब आगे बढ़ती है तो वह शब्दों के अर्थ को सुस्पष्ट करने और उनका अर्थ निश्चित करने की ओर बढ़ती है। इस कारण **यु** 'मिलना या मिलाना' के परस्पर विरोधी दो अर्थों को

१. Benloew, Apercu general, p. 28 seq.

स्पष्ट और निश्चित करने के लिए संस्कृत में दूसरी बार फिर **यु-ज्** और **यु-ध्** दो धातुओं में उसे अलग-अलग कर दिया गया है।

संस्कृत व्याकरणकारों ने अपनी भाषा के विस्तार और प्रगति को १७०६ धातुओं[१] में बंद कर दिया है। इसका अर्थ यह है कि उन्होंने इतनी धातुओं को इस लिए स्वीकार किया है कि उन्होंने अपने व्याकरण के नियमों के अनुसार इन धातुओं में नाना प्रत्यय या उपसर्ग जोड़कर इनसे संस्कृत में सब संज्ञाएँ, क्रियाएँ, विशेषण, सर्वनाम, परसर्ग, क्रियाविशेषण और दो वाक्यों या शब्दों को जोड़नेवाले शब्द (conjunction) बनाये हैं। हमने अभी धातुओं के विषय में जो रहस्य खोला है, उसके अनुसार इन १७०६ धातुओं की संख्या बहुत अधिक संख्या में घटा देनी पड़ेगी और यद्यपि हमें इनमें कुछ नयी ऐसी धातु भी जोड़नी पड़ेंगी, जो संस्कृत के व्याकरणकारों ने दृष्टि से अगोचर कर दी हैं, तो भी प्रारंभिक ध्वनियों या धातुओं की संख्या, जिनके विशेष और निश्चित अर्थ हैं और जो संस्कृत भाषा के कोश के सभी शब्दों की व्युत्पत्ति बता सकती हैं, उनकी संख्या, जितनी धातु गणपाठ में दी गयी हैं, इन १७०६ धातुओं की एक-तिहाई भी न होगी। इबरानी (यहूदियों की भाषा) भाषा के व्याकरणकारों ने अपनी धातुओं की संख्या कुल ५००[२] बना दी है और मुझे कुछ ऐसा भान होता है कि संस्कृत भाषा के लिए भी इनसे अधिक धातुओं की आवश्यकता न पड़ेगी। भाषा के प्रारंभिक काल में कम धातुओं का होना बताता है कि उस समय थोड़े से शब्दों से परस्पर बातें हो जाती थीं। यह तो स्पष्ट ही है कि नये भावों और कर्मों को व्यक्त करने के लिए नयी धातु बनाने की संभावना

१. Benfey, Grammatik § 147—
Roots of the 2,3,5,7,8,9 Classes. 226.
Roots of the 1,4,6,10 Classes. 1480.
1706
Including 143 of the 10th class.

२. **रेन का ग्रंथ,** Histoire des Langues Senitiques, p. 138. **बेन्को ने अनुमान लगाया है कि गौथिक भाषा में ६०० आवश्यक धातुएँ हैं और वर्तमान जर्मन भाषा में ऐसी धातुएँ केवल अढ़ाई सौ हैं (P. 22)। पौट का विचार है कि प्रत्येक भाषा में अति आवश्यक धातुएँ प्रायः एक हजार होती हैं।**

का कोई अंत नहीं है। अंग्रेज़ी में केवल २४ अक्षर हैं, यदि हम इन अक्षरों के फेर-फार से दो-दो या तीन-तीन अक्षरों की धातु बनाने लगें तो इन धातुओं की संख्या १४,४०० हो जायगी। अब देखिए कि चीनी भाषा में न तो संध्यक्षर हैं, न धातुओं के कृदंत या तिङन्त रूप हैं। इसलिए उन्हें अन्य सभी भाषाओं से अधिक धातुओं की आवश्यकता होनी चाहिए थी, किन्तु वहां के व्याकरणकारों ने केवल ४५० धातुओं से अपना काम चला लिया। इन ४५० धातुओं से चीनियों के नाना ध्वनिबलों और सुरों के कारण १२६३ भेद बन जाते हैं। चीनी भाषा के शब्दकोश में ४०००० से ५००००[1] तक शब्द पाये जाते हैं।

भाषा की पूरी प्रगति समझाने के लिए हमें स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए कि इन क्रियावाचक धातुओं के अस्तित्व के अतिरिक्त हमें दूसरे वर्ग या तरह की धातुओं की भी आवश्यकता पड़ती है। जिस भाषा के पास चार या पांच सौ क्रियावाचक धातुएँ रहेंगी, उस भाषा में जो-जो पदार्थ हमारी दृष्टि में आयेंगे, उन सबका नाम रखने में भाषा को कोई कष्ट या असुविधा न होगी। भाषा उस गृहिणी की भाँति है जो बहुत मितव्ययिता के साथ घर का खर्च चलाती है, यदि

१. खंगी की Imperial dictionary में शब्दों की ठीक ठीक संख्या ४२,७१८ है। इन शब्दों में से चौथाई हिस्सा इस समय पुराना और निकम्मा हो गया है और जो शब्द शेष रहते हैं, उनमें से आधे ऐसे हैं कि बहुत ही कम काम में आते हैं। जो शब्द इस समय चीनी भाषा में चल रहे हैं उनकी संख्या इस कोश में इस प्रकार प्रायः १५००० रह जाती है। प्राचीन भाषा के शब्दों की संख्या इस कोश में ४२,७१८ है। इनमें से बहुत से शब्द काम में नहीं आ रहे हैं, पर ये प्राचीन धार्मिक और साहित्यिक ग्रंथों में काम में आये हैं। कभी कभी इनका प्रयोग सरकारी कामों में भी हुआ है वह भी केवल उसी समय जब यह कोशिश की जाती है कि सरकारी कागज-पत्रों में पुराना ढंग अपनाया जाय। इनमें से शब्दों का ढेर का ढेर तो व्यक्तिवाचक नामों, स्थानों, नदियों, पहाड़ों आदि से भरा है। चीन के राजा के ऐतिहासिक पद के लिए एक आदमी की नियुक्ति करते समय यह आवश्यक माना गया है कि वह कम से कम ९००० चीनी शब्दों से परिचित हो। इन ९००० शब्दों का चीनी में एक छोटा सा कोश अलग बनाया गया। (Stanislas Julien)

आप संस्कृत **स्पश्** या लैटिन **स्पेक्** धातु के नाना रूपों पर नज़र फेरेंगे, तो आपको मालूम पड़ेगा कि उनके द्वारा नाना प्रकार की क्रियाएँ और संज्ञा शब्द बनाये गये और नाना विचार प्रकट हुए। अब आपने भली-भाँति समझ लिया होगा कि भाषा में यदि ५०० धातु रहें, तो उस भाषा में सभी आवश्यक शब्दों का एक बड़ा कोश तैयार हो जायगा। यह उस हालत में तैयार होगा, जब कि उस भाषा के बोलने वाले समाज के लोगों का मन कल्पना की उड़ानें भरता रहे। ५०० धातुओं वाली भाषा में यदि एक-एक धातु से ५०-५० शब्द भी बनाये जायँ तो उसके शब्दकोश में २५००० शब्द अवश्य ही रहेंगे। एक पादरी महाशय ने मुझे बताया है कि उनके गिरजे के इलाके के भीतर रहने वाले कुछ मजदूरों की पूरी शब्दसंपत्ति[१] केवल ३०० है अर्थात् वे केवल ३०० शब्दों से अपना सारा काम चलाते हैं। प्राचीन फारस के कोणाकृति अक्षरों में लिखे गये शिलालेखों में कुल ३७९ शब्द आये हैं जिनमें १३१ व्यक्तिवाचक नाम हैं। और देखिए कि मिस्र के प्राचीन महात्माओं और पुरोहितों की शब्दसंख्या, जो हमें वहाँ की पुरोहिती लिपि से प्राप्त होती है, वह ६५८[२] है। इटालियन ओपेरा की पुस्तक में शब्दों की संख्या बहुत कम रहती है, उसमें शब्दों के नाना रूप[३] कम रहते हैं। इंग्लैंड का एक उच्च-शिक्षित मनुष्य

१. The Study of the English Language by A. D'Orsey, p. 15.

२. विद्वान् बुन्सेन ने मिस्र पर जो ग्रंथ लिखा है उसके प्रथम खंड में (P.453-491) में शब्दों की उक्त संख्या दी है। इनमें से बहुत-से शब्दों की, जिनकी ध्वनि एक-सी ही है, व्युत्पत्तियाँ भिन्न भिन्न हैं। बाद की शोधों ने इन शब्दों की संख्या और भी बढ़ा दी है। शार्प ने अपने ग्रंथ Egyption Hieroglyphics, 1861 में पुरोहिती लिपि के शब्दों की जो संख्या दी है, वह २३० है।

३. Marsh Lectures, p. 182. टाम्रेस ने राबर्ट और वेबिस्टर के कोश में (अंग्रेजी से अंग्रेजी) अंग्रेजी शब्दों की संख्या ४३, ५६६ दी है। टाट ने जान्सन के कोश का जो संस्करण प्रकाशित किया है, उसमें ५८,००० शब्द हैं। वेबिस्टर का जो संस्करण अभी निकला है उसमें अंग्रेजी शब्दों की संख्या ७०,००० है, इनमें वर्तमान और भूतकाल की क्रियाओं के कृदंत रूप भी शामिल हैं। फ्लूगल ने अपने कोश के शब्दों की संख्या ९४, ४६४ बतायी है, इनमें से ६५, ०८५ शब्द सीधे-सादे और बोलचाल में काम में आने वाले हैं और २९, ३७९ शब्द संयुक्त हैं। यह कोश

जिसने पाठशाला तथा विश्वविद्यालय में शिक्षा पायी हो और जो नित्य वाइबिल पढ़ता हो और शेक्सपियर के नाटकों में आनन्द लेता हो और टाइम्स अखवार पढ़ता हो और मूडी की लाइब्रेरी की सभी पुस्तकें पढ़ डालता हो, वह अपने वार्तालाप में, शायद ही, तीन या चार हज़ार से अधिक शब्द काम में लाता होगा। वे विद्वान् जो अपने विचारों को सुव्यवस्थित रीति से रखने के अभ्यासी हैं या जो बड़े सूक्ष्म विचारशील और तर्कशास्त्री हैं और जो अस्पष्ट और सामान्य शब्दों एवं मुहावरों से बचते रहते हैं तथा बहुत ही सोच-विचार कर ऐसे ही शब्दों का प्रयोग करते हैं जो सच्चे रूप में उनका उपयुक्त प्रयोग सुस्पष्ट करें, ऐसे मनीषी बहुत अधिक शब्दों का प्रयोग करते हैं। और अति कुशल वक्ता अधिक से अधिक १०००० शब्दों का व्यवहार कर पाते हैं। शेक्सपियर, जिसके कथन के ढंग में बहुत ही प्रकार के रूप पाये जाते हैं और जिसके नाटकों में संसार के सब लेखकों से अधिक शब्द पाये जाते हैं, वह १५००० से अधिक शब्दों का प्रयोग न कर सका। महाकवि मिल्टन ने अपने नाना काव्यों और ग्रंथों में ८००० से अधिक शब्दों का व्यवहार नहीं किया। और देखिए, प्राचीन इंजील में अनगिनत बातें कही गयी हैं। इन सबके लिए ५६४२ शब्द[१] ही काम में लाये गये हैं।

इस कारण यह कहना अत्युक्ति नहीं है कि किसी भाषा में यदि ५०० धातु हों, और आप लोग यह जानते ही हैं कि धातु बड़ी उपजाऊ होती हैं और उनमें भाषा के क्षेत्र में अपने को घटाने-बढ़ाने या विस्तृत करने का बहुत बड़ा गुण रहता है, तो वे हमारे आदिकाल के पूर्वजों के काम के लिए पर्याप्त से अधिक मानी जानी चाहिए। इस पर भी उन्हें अधिक धातुओं की आवश्यकता पड़ी। मान लीजिए कि उनके पास एक क्रियावाचक धातु थी, जिससे प्रकाश और ज्योति का बोध होता था। वह एक धातु सूर्य, चन्द्र, तारे, स्वर्ग, दिन, प्रभात, उषा, वसंत, हर्ष, आनंद, सौन्दर्य, महानता, प्रेम, मित्र, स्वर्ण, धन-संपत्ति आदि की वाचक भी बन सकती थी। पर जब

१८४३ में प्रकाशित हुआ, उस संस्करण में उसने यह आशा प्रकट की है कि जब मेरे कोश का दूसरा संस्करण निकलेगा तो उसकी संख्या एक लाख से भी ऊपर चली जायगी। अंग्रेजी शब्दों की यही संख्या विद्वान् मार्स ने भी निश्चित की है। देखो Saturday Review, Nov. 2, 1861.

१. Renan, Histore, p. 138.

उन्होंने चाहा कि वे यहाँ, वहाँ, कौन, क्या, यह, जो, तू, वह आदि को व्यक्त कर सकें, तो उन्हें यह पता लगा कि किसी क्रियावाचक धातु से ये शब्द निकाले नहीं जा सकते। विद्वानों ने यह भी प्रयत्न किया कि इन सर्वनामों को क्रियावाचक धातुओं से निकालें, किन्तु तर्क के लिए मान लीजिए कि हमने वे आदि दिशावाचक सर्वनाम 'तन्' (फैलना) से निकाले, तो हमें तुरन्त ही यह पता चल जाता है कि इस प्रकार के सर्वनाम और शब्दों के खंडों की प्रकृति ऐसी है कि ये प्रारंभ काल से चले आ रहे होंगे और इनकी स्वतंत्र सृष्टि हुई होगी। इनका क्रियावाचक धातु से निकालना बिलकुल कृत्रिम सा लगता है, क्योंकि 'फैलना' और 'वह' का कोई सम्बन्ध नहीं बैठता। यहां और वहां के लिए सर्वनाम के मूल रूप **त** और **स** किसी ने सोच-विचार कर नहीं बनाये। ये कभी किसी के मुँह से स्वतंत्र रूप से निकले होंगे और ये एक प्रकार के स्वतंत्र शब्द हैं, जैसे कि कोई भी क्रियावाचक धातु स्वतंत्र मानी जाती है।

यहाँ पर हम सर्वनाम-धातु का एक उदाहरण देंगे, जिससे यह पता लगेगा कि शब्द की रचना या निर्माण में इसका क्या स्थान है। कुछ भाषाओं में और विशेषतः चीनी भाषा में एक क्रियावाचक धातु कभी-कभी संज्ञा, क्रिया, विशेषण या क्रियाविशेषण के स्थान पर काम में लायी जाती है। अब देखिए कि चीनी ध्वनि **त** बिना किसी परिवर्तन के अपने मूल रूप में कई अर्थ व्यक्त करती है, जैसे-महान्, महत्ता और महान् होना।[१] यदि यह **त** किसी पदार्थ के नाम के पहले जोड़ा गया हो, तो यह 'विशेष' के स्थान पर काम में आयेगा, जैसे **त जिन्** का अर्थ हो जायगा "महान् पुरुष।" और यदि **त** किसी पदार्थ के नाम के बाद जोड़ दिया जायगा तो यह क्रियावाचक हो जायगा और यह भी कहा जा सकता है कि यह क्रिया हो जायगी, जैसे **जिन्-ट** (जिन-ता-यु) का अर्थ होगा "यह पुरुष महान्[२] है"। और दूसरा उदाहरण लीजिए,-

१. Endicher, Chinesische Grammatik, § 128.

२. **यदि दो शब्द इस प्रकार रखे जायँ जैसा कि** Jin-ta (**जिन-ता**), **तो पहला शब्द क्रियावाचक धातु का अर्थ रखता है और दूसरा पदार्थवाचक है। इस प्रकार जिन ता का अर्थ होता है "मनुष्य का बड़प्पन।" किन्तु ऐसी स्थिति में यह कहना और भी अच्छा माना जाता है जैसा कि** Jin tchi ta।

दूसरा उदाहरण Chen (**चेन**) **"पुण्य" का है।** Jin tchi chen=**मनुष्य के अच्छे गुण या पुण्य,** Chen **'पुण्यात्मा'**, Chen Jin **पुण्यात्मा आदमी।** Chen **किसी**

जिन-न्गो, लि-पु-नि्गों का अर्थ हो जायगा "पुरुष बुरा, कानून नहीं बुरा।" यहाँ हम साफ-साफ देखते हैं कि क्रियावाचक धातु और नाम (संज्ञा) के रूपों में कहीं कोई भेद नहीं दिखाई देता। एक ही शब्द दोनों रूपों का द्योतक है। एक वाक्य में उचित स्थान पर शब्द को रखने से या उसका स्थान परिवर्तन करने से वही ध्वनि कभी क्रिया सूचित करती है, कभी नाम (संज्ञा)।

अन्य भाषाओं में और विशेष कर आर्य-भाषा परिवार में कोई क्रियावाचक धातु स्वयं अपने बल पर और अपने ही में कोई शब्द नहीं बना सकती। अब देखिए कि लैटिन में एक धातु luc (लुक) है, जिसका अर्थ 'चमकना' है। इसका प्रतिरूप संस्कृत भाषा में **रुच्** (चमकना) है। इस धातु से कोई पदार्थ या संज्ञा का रूप, जैसे कि प्रकाश, बनाने के लिए हमें इस धातु में कोई सर्वनाम या स्थान-निर्देशक-प्रत्यय जोड़ना पड़ेगा। इस प्रकार के प्रत्यय जोड़ने से धातु जिस क्रिया को सूचित करती है, जैसे इस स्थान पर luc से प्रकाश करना या चमकना सूचित है, तो हम इसमें सर्वनाम का प्रत्यय या अन्य प्रत्यय जोड़ेंगे तो कई नाम बन जायँगे, जिनसे प्रकाश की नाना दशाएँ व्यक्त की जा सकती हैं। अब एक उदाहरण लीजिए, ऊपर दी हुई लैटिन क्रिया में यदि सर्वनाम को व्यक्त करने वाला तत्त्व **स्** जोड़ दिया जाय तो luc-s बन जायगा, इसका अर्थ होगा "ज्योति या प्रकाश" और यदि आप इसका शाब्दिक अर्थ करेंगे तो वह होगा "चमक वहाँ"। अब इस लैटिन क्रियावाचक धातु में हम एक व्यक्तिवाचक सर्वनाम जोड़ेंगे, तो इसका रूप हो जायगा luc -e-s और इसका अर्थ होगा "चमकता हुआ तू या तू चमकता है"। इस सर्वनाम धातु से निकले और प्रत्ययों को यदि हम इस लैटिन-क्रियावाचक धातु में जोड़ेंगे तो विशेषण भी बन जायँगे, जैसे lucidus, luculentus, lucerna आदि आदि।

यदि हम यह मान लेते कि किसी क्रियावाचक धातु में शब्द बनाने के लिए जो जो नाना प्रत्यय या शब्द जोड़े जाते हैं, वे सब सर्वनाम से बनी धातु हैं, या क्रियावाचक धातु को अलग करके जो अक्षर शेष रह गये हों वे सभी सर्वनाम धातु के रूप हैं, तो यह सर्वथा भ्रम होगा। यदि हम यह विचार करेंगे कि कुछ प्रचलित भाषाओं में अनेक शब्द नाना प्रत्यय जोड़कर बनाये गये हैं, तो हमें मालूम होगा कि उनमें से बहुत से शब्द अपने मूल रूप में क्रियावाचक धातु से बनाये गये हैं, अर्थात्

काम को अच्छा बताना या पसन्द करना। Chen tchi=**किसी पदार्थ को अच्छा समझना,** Chen = **अच्छा,** Chen ko = **सुन्दर गाना**"—Stanislas Julien.

वे नाना प्रत्ययों को क्रियावाचक धातुओं के साथ जोड़कर बनाये गये हैं, और फिर घिसते-घिसते वर्तमान रूप में आ गये हैं। अब देखिए कि landscape में जो scape प्रत्यय है या hardship में जो ship प्रत्यय है, वह एक ही मूल रूप से निकला है और गौथिक[1] में यह मूल रूप skape (स्कापे), skope (स्कोपे) और skopum (स्कोपुम्) है जिसका अर्थ है "रचना, सृष्टि करना।" ऐंग्लोसेक्शन में उक्त अंग्रेज़ी प्रत्ययों के रूप scape (स्केप), scope (स्कोप) और scopon (स्कोपोन) हैं, ये वही प्रत्यय हैं, जो जर्मन भाषा में schaft (शाफ्ट) से सूचित होते हैं, जैसे Gesellschaft (गेज़ेलशाफ्ट) "संगति"। इसी प्रकार wis-dom या christendom में जो dom प्रत्यय जुड़ा हुआ है, यह उसी क्रिया-वाचक धातु का एक रूप है, जिसे हम अंग्रेज़ी में to do कहते हैं। इसका जर्मन रूप thun (टुन्) है, इससे टुम प्रत्यय बना, जैसे christenthum (क्रिस्टनटुम्)। ऐंग्लोसेक्शन भाषा में यह रूप dom (डोम्) था, जैसे cyningdom या konig-thaum (कुनिगडोम और कोनिंगडोम) अर्थात् "राज्य"। इस बात का निश्चय करना कभी-कभी बहुत कठिन हो जाता है कि शब्द निर्माण करने वाला तत्त्व निर्देशक सर्वनाम से बना है, या क्रियावाचक धातु से? अब और देखिए, संस्कृत में तुलना-वाचक प्रत्यय **तर** है। यही प्रत्यय ग्रीक में teros (तेरोस) रूप में मिलता है। पहली दृष्टि में हम इस तुलनात्मक प्रत्यय को दिशा-सूचक या निर्देशक सर्वनाम से बना समझ सकते हैं, लेकिन जब हम इसके भीतर पैठकर सूक्ष्म विश्लेषण द्वारा निदान निकालते हैं, तो यह संस्कृत भाषा के **तर्**, "पार करना", "आगे बढ़ना" से निकला है। इस **तर्** शब्द से निकला लैटिन रूप trans (ट्रांस) है। इसका अर्थ भी "पार करना", "आगे बढ़ना" है। यह रूप फ्रेंच में tres हो गया और यह विशेषण-शब्दों में जोड़ा जाता है, जिससे ऊंचेपन का बोध होता है। यही धातु प्राचीन आर्य-भाषाओं में "तुलना" का बोध कराने के लिए बहुत सोच-विचार कर अपनायी गयी। संस्कृत-भाषा के अधिकरण कारक में भी इसी धातु का प्रभाव देखा जा सकता है। क्योंकि उसका एक प्रत्यय **त्र** भी है। अब देखिए कि **त** में **त्र** प्रत्यय लगाकर एक शब्द बनता है **त-त्र**, इसका अर्थ होता है "वहाँ पर, वहाँ, उस ओर"। इसी प्रकार हम संस्कृत-भाषा का एक और शब्द **अन्यत्र** पाते

१. Grimm, Deutsche Grammatik, b. II s. 521.

हैं, जिसका अर्थ होता है "अन्य स्थान पर, अन्य ओर, दूसरी जगह में।" यह वही बात हो गयी, जैसा हम लैटिन-भाषा में aliud (अलिउद्=अन्यत्) से ali-ter (अलि-तेर् या तेर्) बनाते हैं, इनकी क्रिया वही है, जो संस्कृत शब्द **अन्यत्** बनाने की। (यह वही स्वर-भक्ति की क्रिया है, जिससे हिन्दी भाषा में धर्म का धरम और कर्म का करम तथा क्रम रूप हो जाते हैं—अनु०)। ये रूप फ्रेंच में autrement (ओत्रम) और अंग्रेजी में otherwise रूप में प्रकट होते हैं।

धातु तथा शब्द-रूपावलियों के कारक तथा नाना पुरुषों और कालों में लगने वाले प्रत्यय निर्देशक-सर्वनाम-धातुओं से निकले हैं, जैसे he-loves वाक्य के भीतर loves में जो s (स्) लगा है वह अन्यपुरुष एकवचन के लिए आया है और यह भली-भाँति प्रमाणित किया जा सकता है कि मूल रूप में यह अन्यपुरुष बताने के लिए निर्देशक सर्वनाम (demonstrative pronoun) था। यह मूल रूप में **स्** नहीं था, यह **त्** था। इस बात को समझाने की आवश्यकता यहाँ मालूम पड़ती है कि संस्कृत धातुरूपावली में अन्यपुरुष एकवचन के लिए **ति** काम में लाया जाता है। इस नियम से **दा** "देना" का अन्यपुरुष एकवचन में **ददाति** हो जाता है, जिसका अर्थ है वह देता है। **धा** धातु का अर्थ है "रखना या धारण करना" और दधाति का अर्थ हो जाता है "वह धारण करता है।"

ग्रीक भाषा में यह **ति** प्रत्यय si (-सि) रूप में परिणत हो गया है। यह ठीक उसी नियम से हुआ है जिससे संस्कृत **त्वं** लैटिन में tu (तु) हो गया है। यह ग्रीक भाषा में सि रूप में पाया जाता है। अब देखिए कि ग्रीक में **द** धातु का अन्य पुरुष एकवचन में जो didosi (दिदोसि) रूप पाया जाता है, उसमें संस्कृत **ति** के स्थान पर **सि** आया है। मिलाइए कि ग्रीक में दधासि का रूप तिथेसि (tithesi) बन जाता है। इसके बाद इतिहास में एक ऐसा समय आया जब कि ग्रीक भाषा के शब्दों में जहाँ दो स्वरों के बीच में s (**स्**) आया उसके उच्चारण का लोप हो गया। इस प्रकार genos (गेनोस) का संबंध-कारक का रूप genesos बनना बंद हो गया, क्योंकि पहले **स्** का उच्चारण करना बन्द हो गया। लैटिन में भी ऐसा होता रहा, कारण यह है कि उसमें genus के संबंध-कारक के रूपों genesis या generis के सब अक्षरों का उच्चारण होता था। किन्तु ग्रीक में geneos का उच्चारण genous होने लगा। परिणाम यह हुआ कि अन्यपुरुष एकवचन में ग्रीक-भाषा में सब धातुओं के अन्त से **सि** प्रत्यय उड़ गया और उसके स्थान ei प्रत्यय रह गया। ध्यान में रखने की बात है कि यह

ei, esi के स्थान पर आ गया है। इस प्रकार tyrtei, tyrthtesi के स्थान पर चलने लगा।

लैटिन में क्रिया के रूपों में से अंतिम i (इ) उड़ गया। इस प्रकार जहाँ क्रियाओं में ti (-ति) प्रत्यय लगता था, वहाँ **त** ही रह गया। इस प्रकार हमें लैटिन धातु amare (आमारे) का रूप amat मिलता है। अब देखिए कि शब्दशास्त्र में एक नियम है, जिसका जिक्र मैं अपने पहले भाषणों में कर आया हूँ और इसका नाम भाषा-विज्ञान में **ग्रिम का नियम** है। इस नियम के अनुसार देवनागरी वर्णमाला का प्रथम अक्षर यदि लैटिन शब्द के आरम्भ में आये तो गौथिक-भाषा में यह वर्णमाला के द्वितीय अक्षर अर्थात् महाप्राण अक्षरों में परिवर्तित हो जाता है। इस कारण लैटिन भाषा के **त** अक्षर के स्थान पर हमें यह आशा करनी चाहिए कि गौथिक में इसका रूप **थ** मिलेगा और ऐसा ही गौथिक में मिलता भी है। लैटिन रूप habet के स्थान में habaith रूप मिलता है। यही महाप्राण अक्षर ऐंग्लोसेक्शन में भी आता है, जहाँ he loves के loves का रूप lufath पाया जाता है। हमारे बाइबिल की पुरानी अंग्रेज़ी के अनुवाद में भी इस **थ** की रक्षा की गयी है, वहां he loves के स्थान पर he loveth आता है। वर्तमान अंग्रेज़ी में यह नियम बदल गया है और फिर **थ** के स्थान पर **स** का प्रचलन हो गया है। इस तरह हमारे वाक्य he loves में हम देखते हैं कि प्रत्यय **स्** वही निर्देशक-सर्वनाम का रूप है जो love के पीछे जोड़ दिया गया है और यह संस्कृत-भाषा के **-ति** का प्रतिनिधित्व कर रहा है। और जैसा हम ऊपर कह चुके हैं कि यह **-ति** निर्देशक सर्वनाम-धातु **त** के रूप में अति प्राचीन काल में वर्तमान रहा होगा तथा इसका अर्थ 'यह' और 'वह' दोनों था। यह **त** संस्कृत में आज भी **तद्** शब्द के आरंभ में मिलता है, ग्रीक में यह **तो** रूप में वर्तमान है। गौथिक में यह **थत्** रूप में है। अंग्रेज़ी में अब यह that (दैट) कहा जाने लगा है और लैटिन भाषा में यह ta-lis, tantus, tunc, tam और एक अति प्राचीन अधिकरणकारक के रूप में देखने में आता है और स्वयं Tamen में भी जिसमें men अधिकरणकारक की विभक्ति है (मिलाइए संस्कृत **तस्मिन्** में प्रत्यय **मिन्**—अनु०)। अब आप लोगों ने अच्छी तरह यह बात समझ ली होगी कि वर्तमान काल के अन्यपुरुष एक-वचन के अन्त में जो प्रत्यय **-ति** लगता है वह केवल मात्र निर्देशक सर्वनाम है, जो क्रिया-वाचक धातु के अन्त में जोड़ा जाता है। यह एक सीधा-सादा संधि-शब्द है, जिसमें पहला शब्द क्रियावाचक है और दूसरा सर्वनाम है। इसका दूसरा भाग, किसी

क्रिया का सूचक नहीं है, वह तो एक सर्वनाम है, जो अन्यपुरुष का वाचक है। जिस प्रकार अंग्रेज़ी में एक शब्द pay-master है। इसका अर्थ है "वेतन देने वाला प्रमुख", उसी प्रकार संस्कृत शब्द **ददाति** का अर्थ है "देता है वह।" इस शब्द में प्राचीन समय के भाषा की रचना करने वालों ने यही बताने का प्रयत्न किया कि "कोई अन्य पुरुष दान कर रहा है।" और यह दो शब्दों से बना हुआ शब्द "देता है वह", बता रहा है कि कोई तीसरा पुरुष देता है। इसे आजकल हम वर्तमान काल का अन्यपुरुष एकवचन कहते हैं, जो कर्तृवाच्य[1] में है।

हमने जान-बूझकर उन्हीं भाषाओं का विश्लेषण किया है जिनके परिवार में हमारी अंग्रेज़ी-भाषा शामिल है और वे भाषाएँ भी इसी आर्य परिवार में हैं जिनका हमने इस भाषण में उल्लेख किया है। किन्तु यह बात समझने की है कि जो बातें हमने ऊपर कहीं हैं वे सब संस्कृत पर भी लागू होती हैं और जो भाषा के उक्त तत्त्व संस्कृत पर लागू होते हैं, वे दुनिया भर की अन्य भाषाओं के लिए भी एक तरह से लागू होते हैं। बिना अपवाद के संसार भर की वे सब भाषाएँ, जिनके विशुद्ध रूप का तुलनामूलक भाषाविज्ञान की घरिया में गला और तपाकर अन्वेषण कर लिया गया है और तत्त्वों का पता लगा लिया गया है, उन सबके मूल में यह भी पाया गया है कि उनके शब्दों में ये दो तत्त्व अवश्य ही वर्तमान रहते हैं, अर्थात् उनमें क्रियावाचक धातु और निर्देशक सर्वनामों की सहायता से शब्द बनते हैं। अरबी, इबरानी आदि सेमेटिक परिवार की भाषाओं में शब्दों के भीतर ये दो तत्त्व संस्कृत और ग्रीक से भी अधिक स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं। संस्कृत भाषा का आविष्कार होने से पहले और तुलनामूलक भाषा-विज्ञान के जन्म लेने से पहले, सेमेटिक भाषाओं के विद्वानों ने इस तथ्य का सफलता के साथ पता लगा लिया था कि इबरानी और अरबी भाषाओं की सारी शब्द-संपत्ति बहुत थोड़ी धातुओं से निर्मित हुई है। इन भाषाओं में इनकी धातु सदा तीन अक्षर से बनी होती हैं, इसलिए सेमेटिक भाषाएँ, इनके कुछ विद्वानों द्वारा तीन दिशा बताने वाली अथवा त्र्यक्षरी (तीन अक्षर वाली) भी कही गयी हैं। मंगोलियन भाषा में भी यह तथ्य और अधिक मात्रा में स्पष्ट होता है। इसमें

१. ग्रीक की प्रत्येक क्रिया के, यदि उसके सब वाच्यों, कालों और पुरुषों की रूपावलियाँ बनायी जायँ और कृदंत धातुएँ भी जोड़ दी जायँ तो प्रायः एक हज़ार तीन सौ रूप बनते हैं।

आप इस भाषा का रूप देखते ही यह ताड़ जाते हैं कि यह तथ्य इस भाषा में और भी ज़ोर से काम कर रहा है। इस भाषा का विशेष गुण, जो इसे देखते ही सामने आता है, वह यह है कि इस भाषा के किसी भी शब्द में उपसर्ग और प्रत्यय तो रहते ही हैं किन्तु उस शब्द में सदा एक धातु भी रहनी चाहिए जो स्पष्ट रूप से उसमें दिखाई दे तथा वह शब्द कितने ही तत्त्वों से बना हो पर उसकी धातु को किसी प्रकार हानि नहीं पहुँचनी चाहिए, अर्थात् धातु को सामने आना चाहिए।

एक भाषा ऐसी है, जिसमें जो-जो तत्त्व एक शब्द को बनाते हैं, उनके विश्ले-षण की कोई आवश्यकता नहीं पड़ती। वे स्वयं आइने की तरह शब्द के भीतर से ही अपना-अपना परिचय देते हैं। यह चीनी-भाषा है। इस भाषा में प्रत्येक शब्द और धातु इस तरह से जुड़ते हैं कि वे पूरे रूप में रहते हैं तथा उसमें प्रत्येक शब्द एक धातु है और प्रत्येक धातु एक शब्द है। उसे देखकर ऐसा लगता है कि यह अभी तक अपनी प्रारम्भिक अवस्था में ही रह गयी है। यह भाषा वास्तव में अति प्रारम्भिक अवस्था में ही है। इससे पुरानी अवस्था की हम कल्पना भी नहीं कर सकते। यह वह भाषा है, जो ऐसी है कि जैसा सभी भाषाओं को होना चाहिए था।

इसमें कोई संदेह नहीं कि एशिया, अमेरिका, अफ्रीका और पोलीनेशिया में ऐसी असंख्य भाषाएँ हैं जिनका व्याकरणकाररूपी सर्जन ने चीर-फाड़कर अभी तक विश्लेषण नहीं किया। पर हमें यह जानकर संतोष करना चाहिए कि हमारे पास एक नकारात्मक प्रमाण है, जो बताता है कि अब तक व्याकरणकार ने जिन-जिन भाषाओं की चीर-फाड़ की है, उनमें एक भी भाषा ऐसी नहीं प्रमाणित हुई जिसमें क्रियावाचक धातु और निर्देशक सर्वनामों को छोड़कर, शब्द के निर्माण करने में किसी अन्य तथ्य का भी समावेश हो।

अब विद्वानों की खोज और नाना भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन से हमारी समझ में भाषा की वह समस्या हल हो गयी है, जो प्राचीन दार्शनिकों के लिए रहस्य-मय तथा दिमाग़ को चक्कर में डालने वाली बनी हुई थी। हम लोग यह समझ गये हैं कि भाषा किन-किन तत्त्वों से बनती है। हम अब यह भी जान गये हैं कि धातु को छोड़कर, भाषा में कोई तत्त्व ऐसा नहीं है जिसे हम न समझ सकें तथा जिसका मूल कारण हम न बता सकें। चीनी-भाषा से लेकर अंग्रेज़ी तक संसार की सभी ज्ञात भाषाओं में अब चकित करने वाली कोई बात नहीं रह गयी है, क्योंकि हम जानते हैं कि सब भाषाओं के शब्द क्रियावाचक धातु और निर्देशक सर्वनामों द्वारा बनाये गये हैं। जैसा कि प्रो० पौट ने एक स्थान पर लिखा है; "अब हम उस दशा की भी कल्पना

कर सकते हैं, जब संस्कृत भाषा की बनावट, जिस रूप में यह भाषा हमारे पास आयी है, उस रूप में न रही होगी, बल्कि इसकी बनावट की अति प्राचीन काल में एक ऐसी स्थिति रही होगी कि जब वह बिलकुल सीधी-सादी बोली के रूप में चलती होगी और उसमें व्याकरण के नाना रूपों का अस्तित्व ही न रहा होगा। यह भी चीनी-भाषा की तरह अति स्पष्ट और सरलता से समझने योग्य दशा में रही होगी तथा इसके शब्द एक-एक अक्षर के रहे होंगे।" यह सर्वथा असंभव है कि इसकी दशा कुछ अन्य भाँति की रही हो। हमने अब यह अच्छी तरह जान लिया है कि भाषाओं का प्रारंभ चीनी-भाषा की तरह एक अक्षर के शब्दों द्वारा हुआ होगा। अब भाषा की उत्पत्ति के विषय में केवल एक जटिल समस्या रह गयी है, वह यह है कि हम उन क्रियावाचक धातुओं और निर्देशक सर्वनामों की किस प्रकार से व्याख्या कर सकते हैं और उनकी उत्पत्ति समझ सकते हैं? क्योंकि इनके द्वारा ही सब शब्द संगठित हुए हैं और ये भाषा का प्रश्न हल करने में महान् बाधा उपस्थित कर रहे हैं, कारण यह है कि इनकी चीर-फाड़ करना असंभव दिखाई पड़ रहा है। हमारे दो आगामी भाषण इसी समस्या का समाधान करेंगे।

आठवाँ भाषण

भाषा का विकास और रूपान्तर का क्रम

हमने अपने सातवें भाषण में भाषा के विश्लेषण का काम समाप्त कर दिया है और हम इस सिद्धान्त पर पहुँचे हैं कि मनुष्य की वाणी के भीतर दो ही तत्त्व मुख्य काम करते हैं—(१) क्रियावाचक धातु एवं (२) निर्देशक सर्वनाम।

इस भाषण में हम भाषा के उस पहलू पर कुछ कहेंगे कि उक्त क्रियावाचक धातु और निर्देशक सर्वनामों के द्वारा हम भाषा के कितने संभावित रूपों की सृष्टि कर सकते हैं? यह कर चुकने पर हम यह देखने का प्रयास करेंगे कि इन सभी संभावित रूपों के भाषा या बोली में प्रतिरूप देखे जाते हैं या नहीं। वास्तव में इस तुलना द्वारा हम शब्दों के रूपों में जो परिवर्तन होता है, उसके कारणों का अध्ययन करेंगे। भाषा के विकास का यह विज्ञान धातुओं के नाना रूपों के परिवर्तनों पर आधारित है और इस कारण यह विज्ञान नाना भाषाओं के वंश-वृक्षों के वर्गीकरण से भिन्न है। क्योंकि यह स्वभाव से ही भाषा की उस रचना-शैली पर आधारित है जो अति प्राचीन काल से पीढ़ी दर पीढ़ी गुज़रती हुई हमारे पास तक पहुँची है। किन्तु हम यहाँ मुख्य विषय को आरंभ करने से पहले एक दूसरे भाषा-परिवार की जाँच-पड़ताल आरंभ करेंगे जो आर्य-भाषा परिवार की भाँति ही वंश-वृक्षों के वर्गीकरण की बुनियाद पर बहुत सावधानी के साथ खड़ी की गयी है। इस भाषा-परिवार का नाम सेमेटिक है।

सेमेटिक भाषा-परिवार की तीन शाखाएँ पायी जाती हैं—(१) अरामाइक, (२) इबरानी, (३) अरबी।

अरामाइक भाषा उस उत्तरी भाग में बोली जाती थी, जिसमें सीरिया, मेसोपोटामिया, बेबीलोनिया और असीरिया के पुराने राज्यों के भाग भी शामिल हैं। अरामाइक भाषा हमें दो बोलियों के रूप में प्राप्त है—(१) सीरिया की प्राचीन भाषा जिसे सीरिअक भी कहते हैं, (२) खलदी-भाषा जो अति प्राचीन समय में खलदिया राज्य में बोली जाती थी। सीरिअक भाषा उस भाषा का नाम

है, जिसमें ईसा की दूसरी सदी में बाइबिल का अनुवाद सीरिया की जनता द्वारा बोली जाने वाली सीधी-सादी[1] भाषा में किया गया तथा इसमें ईसा की चौथी सदी से ईसाई-साहित्य के बहुत से ग्रंथ प्राप्त हैं। इस भाषा को अब भी कुर्दिस्तान के नेस्टोरियन सम्प्रदाय के ईसाई, वान और उर्मी झीलों के किनारे विकृत रूप में बोलते हैं और इस भाषा को मेसोपोटामियाँ की कुछ ईसाई जातियाँ आज भी काम में लाती हैं। उर्मिया में जो अमेरिकन ईसाई पादरियों की धर्म-प्रचारिणी सभा है, वह प्रयत्न कर रही है कि इस नव्य-सीरियन भाषा का पुनरुद्धार किया जाय। इस सभा ने इस भाषा को व्याकरण-सम्मत बनाने के लिए इसका एक व्याकरण भी प्रकाशित किया है और साथ-साथ इस भाषा में बाइबिल के कई खंडों का अनुवाद भी किया है।

खल्दी-भाषा वह है जिसे यहूदियों ने, जब कि वे प्राचीन बेबीलोनिया राज्य में बंदी रूप से रखे गये थे, अपनाया था। यद्यपि यहूदियों ने उस समय अपनी प्राचीन पवित्र भाषा को भी सुरक्षित रूप में संभाल रखा था किन्तु उन्होंने यथाशीघ्र अपने विजेताओं की भाषा भी अपनायी। यहूदी लोग उस प्राचीन काल में, इस खल्दी भाषा में आपस में बातचीत ही नहीं करते थे, बल्कि इस भाषा में उन्होंने अपना बहुत कुछ साहित्य भी रचा है।[2] **एज़रा की पुस्तक** प्राचीन बाइबिल का एक श्रेष्ठ ग्रंथ है। एज़रा की पुस्तक के कई अंश खल्दी भाषा में मिले हैं, जो दार्यवश और जरकसीज़ के कोणाकृति अक्षरों में लिखे गये शिलालेखों के समसामयिक

१. पेस्तो का अर्थ "सीधा-सादा" है। प्राचीन सुसमाचार इबरानी भाषा से अनूदित हुआ और नये सुसमाचार का अनुवाद ग्रीक भाषा से हुआ है। एफ़्राइम् साइरस चौथी सदी के मध्य भाग में जीवित था। आठवीं और नवीं सदी में सीरिया के नेस्तोरियन ईसाइयों ने अरब लोगों के शिक्षकों का काम किया। उनका साहित्यिक और बौद्धिक आधिपत्य दसवीं सदी से शक्तिहीन होने लगा। तेरहवीं सदी में फिर एक समय ऐसा आया कि विद्वान् ग्रीगोरिअस ने बड़ी ख्याति प्राप्त की और ऐसा मालूम होने लगा कि नेस्तोरियन लोग फिर उठेंगे, पर ऐसा न हो पाया। देखो Renan, p. 257.

२. Renan, p. 214 seq., 'Le chaldeen biblique serait un dialecte arameen legerement hebraise.'

हैं और बाइबिल के कई ऐसे अंश, जिन पर यह संदेह किया जाता है कि वे असली हैं या नकली[1] और जिनका इस समय केवल ग्रीक भाषा में ही अनुवाद मिलता है, उनकी बहुत संभावना है कि वे खलदी-भाषा में ही रचे गये थे। ये अंश इबरानी-भाषा में नहीं रचे गये थे। तथाकथित तर्गुम्स[1] (प्राचीन बाइबिल का अनुवाद और उस पर टीका-टिप्पणी—अनु०) जो ईसा से पूर्व[2] पहली सदी से ईसा की दूसरी सदी तक रचे गये थे, वे बेबीलोनियाँ की भाषा या अरामाइक-भाषा के उस रूप में हैं जो यहूदियों ने अपनायी थी और तब फिलस्तीन में भी बोली जाती थी। यह अरामाइक, वह भाषा है जिसमें स्वयं ईसा मसीह और उनके चेले आपस में बातचीत करते थे। नयी बाइबिल अथवा सुसमाचार में नये कुछ शब्द, जैसे **तलिथ, कुमि, एफ्फत, अब्ब** आदि इबरानी भाषा के नहीं हैं बल्कि ये उस समय यहूदियों[3] द्वारा बोली जाने वाली खलदी या अरामाइक भाषा के हैं।

जेरूसलम के नष्ट-भ्रष्ट होने के बाद यहूदियों ने अपना साहित्य इसी भाषा में लिखा। जेरूसलम में ईसा की चौथी सदी में लिखा गया और बेबीलोनियाँ में पांचवीं सदी में लिखा गया तालमुद[2] (यहूदियों का धर्मग्रंथ) इसी अरामाइक भाषा में लिखा मिलता है। यह भाषा उस समय जेरूसलम और बेबीलोनियाँ में रहने वाले यहूदी बोलते थे। अवश्य, यह भाषा उस समय बहुत भ्रष्ट हो चुकी थी और इसका रूप बहुत बिगड़ चुका था, क्योंकि इसमें विचित्र ढंग के तत्त्व और शब्द आ गये थे। यह ईसा की दसवीं सदी तक यहूदी जाति की साहित्यिक भाषा रही है। **मसोरा**[4] नामक ग्रंथ

१. अरबी तर्जमन 'व्याख्या करना'; दर्जोमन, अरबी तर्जुमन।

२. तालमुद के भीतर मिश्न (Mishna) और गेमर (Gemara) ये दो भाग सम्मिलित हैं, मिश्न का अर्थ है बार-बार दोहराना अर्थात् यहूदियों के नियमों का बार-बार दोहराना। इसे यहूदा ने संगृहीत और अनूदित किया। बेमर में मिश्न का ही सिलसिला है और इसमे मिश्न पर टीकाटिप्पणी भी है। बेबीलोनियाँ में इनका लिखना ईसापूर्व पांचवीं सदी में समाप्त हो चुका था। जेरूसलम में इनका जो भाग लिखा गया था वह ईसापूर्व चौथी सदी के अन्त तक समाप्त हो चुका था।

३. Renan, pp. 220-222.

४. First Printed in the Rabbinic Bible, Venice, 1525.

जिसमें यहूदी धर्म के ग्रंथों की टीका-टिप्पणी की गयी है तथा इसी प्रकार के कई अन्य ग्रंथ उसी समय लिखे गये थे, इसके बाद यहूदियों ने साहित्य की रचनाओं के लिए अरबी भाषा अपनायी और ईसा की तेरहवीं सदी तक वे अपने ग्रंथ अरबी में ही लिखते रहे। फिर उन्होंने इबरानी भाषा को नया रूप दिया और अपना काम उससे चलाने लगे। आज भी उनके धर्म के शास्त्रार्थ इसी भाषा में होते हैं।

यह बात बहुत आश्चर्यजनक है कि सेमेटिक भाषा-परिवार की यह अरामाइक शाखा यद्यपि बेबीलोनियाँ और निनेवे ((Ninevch)) जैसे महान् शक्तिशाली राष्ट्रों की भाषा थी, तो भी यह भाषा हमें केवल यहूदियों के साहित्य तथा सीरिया के ईसाइयों की पुस्तकों में मिलती है। इसमें नाममात्र का संदेह नहीं हो सकता कि खलदी लोगों की ज्ञान की पिपासा मिटाने के लिए अरामाइक भाषा में पुराना बेबीलोनियन साहित्य रचा गया होगा, क्योंकि खलदी लोगों के विषय में यह प्रसिद्धि परम्परा से चली आयी है कि वे ज्ञान के बड़े प्यासे थे, फिर बिना अच्छे और सुन्दर साहित्य के उनकी यह प्यास कैसे मिट सकती थी? जब अब्राहम, कनान वापस आया, उससे पहले ही वह अरामाइक भाषा से परिचित हो गया होगा और बाइबिल में वर्णित लाबान भी यही भाषा बोलता होगा; क्योंकि उसने जब याकूब से बातें कीं और पत्थ रों के एक ढेर को अपने और याकूब के बीच गवाह बनाया तो उसका नाम प्राचीन सीरिया की भाषा में Jegar-sahaedutha (जेगर-सहदुथ) लिखा गया है, जब कि इसी पत्थर के ढेर को याकूब ने जिस नाम से संबोधित किया है, वह Galeed (गलीद) शब्द इबरानी भाषा[1] का है। यदि हम कभी बेबीलोनियन साहित्य का पुनरुद्धार कर सकेंगे तो उसे जानने का एकमात्र साधन वे कोणाकृति अक्षरों में लिखे शिलालेख हैं, जो हाल ही में बेबीलोनियाँ (=पाली बाभेरु) और निनेवे से इंग्लैंड लाये गये हैं। वे सेमेटिक भाषा में बहुत साफ-साफ अक्षरों में लिखे गये हैं। इस विषय पर संदेह करने की कोई गुंजाइश नहीं है, यद्यपि इस लिपि का रहस्य उद्घाटन करने में बहुत समय लग रहा है, बल्कि पहले हम इसमें जितने समय का अनुमान करते थे, उससे अधिक लग रहा है, तो भी निराश होने का कोई कारण नहीं है।[2] सर हेन्री रौलिंसन ने १८५३ ई० के अप्रैल महीने के अपने

१. क्वाटरमेयर कृत, मेम्वार स्यूर ले नबतीन्स, पृ० १३९।

२. असीरिया, बेबीलोनियां, नेनेवे आदि के शिलालेख अब पढ़े जा चुके हैं

एक पत्र में लिखा है—"चिकनी मिट्टी की जो पट्टियाँ (tablets) हमने निनेवे में खोजकर निकाली हैं और जिनकी संख्या इस समय कई हजार है, उनमें संसार के कई विषयों पर नाना ग्रंथ और टीका-टिप्पणियां हैं। इनके विषय लिपि-कला, व्याकरण, कोश, अंकगणित आदि, तोल और माप, समय विभाजन, काल-निर्णय-विद्या, ज्योतिषशास्त्र, भूगोल, इतिहास, पुराण, भूगर्भ विद्या, उद्-भिद् विद्या हैं। सच बात तो यह है कि इन असंख्य ग्रंथों में असीरियन विज्ञान का एक पूरा विश्वकोश हमारे हाथ लग गया है।"

जब हम इस बात पर विचार करते हैं कि कोणाकृति अक्षरों में लिखे गये दार्यवश के समय के कठिन शिलालेखों को हमने किस आसानी से पढ़ लिया? तो इस कारण अब हमें पूरा-पूरा विश्वास होता है कि हम उसी आसानी से पट्टियों में खुदे हुए इस विश्वकोश को यथाशीघ्र पढ़ लेंगे।

इसी प्रकार खलदियन अथवा बेबीलोनियन साहित्य के भी कुछ ग्रंथ मिलते हैं, जो बहुत ही दुर्दशाग्रस्त हैं। इनकी रक्षा **मनदैतेस** अथवा **नसरानी** लोगों ने कर रखी है। ये नसरानी एक विचित्र ईसाई सम्प्रदाय के हैं और बसरा के आस-पास रहते हैं। इनके पास **आदम की पुस्तक** आदि, खलदी भाषा के ग्रंथ सुरक्षित हैं। विद्वानों का कहना है कि ये ग्रंथ ईसा की दसवीं सदी तक भी लिखे जाते रहे, किन्तु यद्यपि ये भावावेश, मिथ्या कल्पना आदि के प्रबल प्रभाव में लिखे गये, तो भी इनकी भाषा कैसी ही उजड्ड और विकृत क्यों न हो, उसके भीतर प्राचीन बेबीलोनियन विचार-धारा के भी कुछ अणु पाये जाते हैं। ये **मनदैतेस** वे ही हैं जिन्हें कभी **नवाती** कहते थे। इनका उल्लेख ईसा की दसवीं सदी तक पाया जाता है। यह एक ऐसी जाति है जो मूर्तिपूजक है। इसका यहूदियों, ईसाइयों और मुसलमानों के साथ कोई संबंध नहीं है। अरबी में नवातीयन[१] शब्द बेबीलोनियन लोगों के लिए काम में आता है। अरामाइक जाति के सभी लोग जो अति प्राचीन समय में फरात और दजला नदियों के बीच की भूमि में बसे थे, उन्हें नवातीय[२] कहा

और उनका कथासाहित्य तथा इतिहास भी प्रायः सभी सभ्य देशों में प्रकाशित हो चुका है। —अनु०।

१. Renan, p. 241.

२. Ibid. p. 237.

जाता है। यह माना जाता है कि ये नवातीयन जिनका उल्लेख कई स्थानों पर ईसा की पहली शताब्दी में मिलता है और यह बताया गया है कि इनका ज्योतिष-शास्त्र का और साधारणतः सभी विज्ञानों का ज्ञान बहुत ऊँचा था, वे प्राचीन खल-दियों और बेबीलोनियनों के वंशज और मध्ययुग के नवातियनों के पूर्वज थे। आप लोगों ने, इधर कुछ साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं में एक ग्रंथ की चर्चा पढ़ी होगी, जिसका नाम है **नवातियों का कृषि-ज्ञान**। यह ग्रंथ एक प्राचीन ग्रंथ का नया अरबी अनुवाद है जिसे आइवान वहशिया नामक एक विद्वान् ने किया है। यह खलदियन विद्वान्[1] ईसा की नवीं सदी में हुआ। इसका मूल एक दूसरे विद्वान् कुथमई ने अरा-माइक भाषा में लिखा था और वह भी ईसा से पूर्व तेरहवीं सदी में। इस विषय पर हमारे पास पूरे-पूरे प्रमाण प्राप्त नहीं हैं, किन्तु जो कुछ बातें इस विषय पर हमें मालूम हुई हैं, उनसे यह बहुत संभव जान पड़ता है कि यह ग्रंथ किसी नवातियन द्वारा ईसा की चौथी सदी में लिखा गया होगा। इस ग्रंथ में बेबीलोनियनों के महान् राजाओं के समय की विचार-धारा और परम्परा की बातें लिखी गयी हैं, तो भी यह कहना कठिन है कि इसमें लिखी इतिहास और परम्परा की बातें, अरामाइक जाति के इतिहास अथवा विचारों का शुद्ध निदर्शन हैं।

सेमेटिक भाषा परिवार की दूसरी शाखा इबरानी है। इस भाषा की

१. ईवान वहशिया मुसलमानी धर्म मानता था किन्तु उसका परिवार केवल तीन पीढ़ियों से मुसलमानी धर्म में दीक्षित किया गया था। उसने नवातियन ग्रंथों का एक संग्रह अरबी में अनूदित किया। इनमें से तीन अभी तक सुरक्षित हैं—(१) नवातियनों की कृषिविद्या, (२) विषों पर पुस्तक और (३) बेबीलोनियाँ का तंकलुश नामक ग्रंथ। इसके अतिरिक्त इसका सूर्य और चन्द्र के रहस्यों पर एक ग्रंथ सुरक्षित पाया जाता है। कैत्रमेएर ने अपने एक लेख में इसके कृषिविद्या पर लिखे गये ग्रंथ का उल्लेख किया है (Journal Asiatique, 1835) **। इस लेखक का यह भी कहना है कि इस ग्रंथ का समय उस काल तक भी था, जब ब्लेशिश ने बेबीलोनियन लोगों को मीडियन राजाओं की गुलामी से छुड़ाया था और फिर ईरान के कुरु राजा** (Cyrus) **ने पुनः बेबीलोनियां पर अधिकार किया था। पीटर्सबुर्ग विश्वविद्यालय के प्रो०** Chwolson **का, जिसने उसके सब**

प्रतिनिधि फिलस्तीन की प्राचीन बोली है। इस देश में इबरानी-भाषा हज़रत मूसा के समय से निहिमियाँ तथा मकाबेस के समय तक बोली जाती रही। इस बीच में इस भाषा में कई परिवर्तन होते रहे। इसमें अरामाइक भाषा के रूप बहुत ही घुल-मिल गये थे और ख़ास कर जब से यहूदी लोग बेबीलोनियाँ में क़ैद कर लिये गये तब से ये रूप अधिक आ गये। प्राचीन समय में जब सीरिया में एक बहुत शक्ति-शाली सभ्यता का उदय हुआ तो उस समय उस भाषा में उस समय की सीरिया की भाषा के बहुत से रूप प्रविष्ट हो गये। फोनीशीयन लोगों की प्राचीन भाषा, जैसा कि उनके शिलालेखों से पता चलता है, इबरानी भाषा से बहुत ही मिलती-जुलती है और कार्थेज की भाषा भी इसी शाखा से घनिष्ठ संबंध रखती है।

बेबीलोनियाँ और उसी प्रकार असीरिया का साम्राज्य, पास-पड़ोस के सब देशों में में जोरों से फैल जाने के कारण इबरानी भाषा में अरामाइक भाषा के शब्दों का मिश्रण हो गया। अरब लोगों द्वारा ६३६ ई० में फिलस्तीन और सीरिया के परा-जित होने के बाद यह इबरानी भाषा एकदम उड़ गयी और जहाँ-जहाँ पहले अरामाइक और इबरानी भाषाएँ थीं वहाँ सर्वत्र अरबी का एकच्छत्र साम्राज्य हो गया।

इस भाषा-परिवार की तीसरी शाखा अरबी भाषा है जो स्वयं अरब के अंतरीप में पैदा हुई। यह अरब में आज भी वहाँ के सब निवासियों द्वारा बोली जाती है। इसके सबसे पुराने लेख हिमीरेटिक नामक शिलालेख में हैं। इनमें वह पुरानी अरबी भाषा खुदी हुई है, जो अरब के सामने वाले अफ्रीका के पूर्वी तट के प्रवासी अरब लोग अपने साथ ले गये और वह भाषा अफ्रीका के इस तट पर प्राचीन समय में गये हुए उन अरबों द्वारा सुरक्षित रखी गयी। यह बोली मिस्र और न्यूबिया के दक्षिण में और यमन के सामने के अफ्रीका के तट पर उक्त प्राचीन अरबों के वंशजों द्वारा आज भी बोली जाती है। यह भाषा अबीसिनियाँ (हबश देश) में भी बोली जाती है। यद्यपि यह भाषा बहुत कुछ विकृत होकर हबश देश में बोली जाती है, किन्तु इसमें प्राचीन काल के कई ग्रंथ वर्तमान हैं, जो इस प्राचीन अरबी बोली का हमें बहुत कुछ पता देते हैं। इन हबश लोगों ने तीसरी और चौथी सदी में इस प्राचीन अरबी में बाइबिल

हस्तलिखित ग्रंथों की शोध की है, कहना है कि कुथमई ईसापूर्व तेरहवीं सदी में जीवित था।

का अनुवाद किया और ईसाई धर्म के बहुत से अन्य ग्रंथ भी इस भाषा में अनुवाद रूप में उस समय से विद्यमान हैं। अबीसीनियाँ या हबश देश की वर्तमान समय की जनता द्वारा बोली जाने वाली भाषा का नाम **अमहारिक** (Amharic) है।

अरबी भाषा में जो प्राचीन लेख, ग्रंथ आदि मिलते हैं, वे हज़रत मुहम्मद से भी बहुत पुराने पाये जाते हैं। अरबी में कविता के सबसे पुराने ग्रंथ **मोअल्लक़ात** नाम से प्रसिद्ध हैं। इस शब्द का अर्थ है 'लटकायी हुई या टाँगी हुई कविताएँ,' क्योंकि प्राचीन समय में अरब में कवि लोग अपनी कविताएँ लिखकर अपने प्रधान नगर मक्का की दीवारों में टाँगकर जनता के सामने उनका प्रदर्शन करते थे। ये कविताएँ प्राचीन हैं और इनमें, अरब के बयाबान में किस तरह से जीवन बिताया जाता था, इसका चित्र खींचा गाया है। मुहम्मद ने जब बड़े वेग से इस्लाम धर्म का प्रचार किया और यह मज़हब एशिया, अफ्रीका और यूरोप में भी जा पहुँचा तो यह भाषा इस्लाम धर्म की विजय-वैजयंती के साथ, उक्त देशों में भी पहुँच गयी।

ये तीन भाषाएँ—अरामाइक, इबरानी और अरबी परस्पर इतनी अधिक समान हैं कि एक सरसरी दृष्टि में यह पहचान हो जाती है कि ये तीनों भाषाएँ एक परिवार की हैं। इन तीनों भाषाओं में प्राचीनतम काल से एक नियम ऐसा चला आया है कि इनकी सभी धातु तीन व्यंजनों की होती हैं और उनमें स्वरों के फेरफार से ही एक धातु के नाना रूप हो जाते हैं और नाना शब्द बन जाते हैं। इन धातुओं में व्यंजनों का जो ढांचा रहता है, उसमें शब्द बनाते समय नाममात्र का ही परिवर्तन दिखाई पड़ता है। यह बात असंभव है कि सेमेटिक भाषा हमारे सामने आये और हम उसे न पहचान सकें और इससे भी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि हम उन दोनों भाषाओं का स्वरूप देखकर यह कल्पना भी नहीं कर सकते कि कोई आर्य-भाषा सेमेटिक भाषा से निकली हुई हो सकती है या कोई सेमेटिक भाषा किसी आर्य-भाषा से निकल सकती है। भाषा-परिवार के इन दो वर्गों में व्याकरण के नियम तथा व्याकरण का पूरे का पूरा ढाँचा बिलकुल अलग-अलग हैं।

अन्य भाषाएँ जो इस सेमेटिक परिवार की ही मानी जाती हैं, वे उत्तरी अफ्रीका की बरबर बोलियाँ हैं। अरब लोगों के आक्रमण से पहले ये मिस्र के उत्तरी तट से लेकर अटलांटिक महासागर के तट तक बोली जाती थीं। अरब आक्रमणों के बाद ये धीरे-धीरे अपने बोलने वालों के साथ-साथ, अफ्रीका के भीतरी भागों में चली गयीं। अफ्रीका की कुछ और बोलियाँ भी, जैसे हउसा (Haussa) तथा गल्ल (Galla) सेमेटिक भाषा-परिवार में शामिल की जाती हैं। मिस्र देश की

प्राचीनतम पुरोहिती चित्र-लिपि (Hieroglyphic) में लिखे गये धर्मवाक्यों से लेकर कौप्टिक भाषा तक, जो मिस्र में सातवीं सदी तक बोली जाती रही, सभी भाषाएं इसी सेमेटिक भाषा-परिवार के भीतर मानी जाती हैं। परन्तु उक्त भाषाओं का सेमेटिक स्वरूप अभी तक स्पष्ट नहीं हो पाया है और इस बात का निर्णय करना अभी बाकी रह गया है कि सेमेटिक भाषा-परिवार से मिस्र देश की इन पुरानी भाषाओं का ठीक-ठीक कितनी मात्रा में संबंध है।[१]

इस समय तक जो पता चला है, उसके आधार पर हम इतना ही कह सकते हैं कि आर्य-भाषा-परिवार और सेमेटिक भाषा-परिवार को ही भाषा-परिवार का नाम दिया जा सकता है। इन भाषाओं में यह बात पायी जाती है कि जब इन भाषा-परिवारों की प्राचीनतम बोली बोलने वाले इधर-उधर बिखरने लगे तो इनके व्याकरण का मूल ढाँचा इस बिखरने के समय से पहले स्थिर हो गया था। इन भाषा-परिवारों से निकली भाषाओं का इतिहास भाषा की प्रगति का नहीं बल्कि इनके शब्दों के घिसने, अस्पष्ट होने और विकृत बनने का है। इस कारण ही हम देखते हैं कि इन परिवारों की सब भाषाओं और बोलियों में सर्वत्र समानता पायी जाती है तथा इनकी जो नवीनतम बोलियाँ हैं, उनमें भी यह समानता स्पष्ट ही दिखाई पड़ती है। अगर हम पूर्ण सत्य कथन करना चाहें तो, यह बात कहने में नाममात्र की अशुद्धि नहीं होगी यदि हम कहें कि एक हिन्दुस्तानी सिपाही और एक अंग्रेज सैनिक केवल एक ही भाषा बोलते हैं। ये हिन्दुस्तानी और अंग्रेज़ी, दोनों भाषाएँ उस एक भाषा से निकली हैं, जो ट्यूटानिक और भारतीय भाषाओं के भिन्न-भिन्न होने से पहले कभी एक ही रूप में थी। जब आर्य जाति के पहले यात्री अपना देश छोड़कर बाहर निकले, उससे पहले जो एक आदि-आर्यभाषा थी, उसमें जितनी मूल धातुएं थीं, उनमें आज तक एक भी नयी धातु नहीं जोड़ी गयी। इस समय हिन्दी

१. डॉ० लौर्टनर ने Transactions of the Philological Society 1861, p. 20. में कई बहुत ही बढ़िया लेख सेमेटिक भाषा की उन बोलियों पर छपाये हैं जो इस भाषा-भाषी क्षेत्र की सीमाओं पर बोली जाती हैं। भाषाओं से संबंधित इन परिवारों में, विशेष कर सेमेटिक भाषाओं में इन भाषाओं का अरबी, इबरानी और सीरियन भाषाओं से इतना निकट का सम्बन्ध नहीं है जितना कि हमें इन्हें उक्त भाषाओं की बहिनें बताने से मालूम होता है।

और अंग्रेज़ी भाषा में व्याकरण के रूपों की जो भिन्नता दिखाई पड़ती है, उनकी यदि सूक्ष्म काट-छाँट की जाय तो पता चलेगा कि इनके व्याकरण के रूपों में जो भिन्नता या नयापन दिखाई देता है, वह इस कारण से उत्पन्न हुआ कि आदि-आर्य-भाषा की मूल धातुएं अंग्रेज़ जाति में उसके अपने जातीय रूप में विकृत या विकसित हुईं तथा भारतीय आर्यों में इस घिसने-मंजने और विकृत होने का ढंग अपना निराला हो गया। अब यह निरालापन या विकृति समझने के लिए एक उदाहरण लीजिए—अंग्रेज़ी में He is वाक्य है, इसी वाक्य को हम यदि फ्रेंच भाषा में कहना चाहेंगे तो वह Il est (इल ए) हो जायगा, जिसमें हम देखते हैं कि **एस्ट** धातु का उच्चारण **एस्त्** होना चाहिए पर फ्रेंच इसे केवल **ए** कहते हैं और **स्त** का उच्चारण लुप्त हो जाता है। किन्तु इससे यह मालूम पड़ता है कि इसका उच्चारण कभी लैटिन **एस्त** के समान ही होगा। इससे हम इस वाक्य को देखकर तुरन्त पहचान जाते हैं कि इन दोनों भाषाओं की धातुएँ कभी एक रही होंगी। अर्थात् आदि-आर्य-भाषा में इसका रूप **अस्-ति** (अब यह माना जाता है कि आदि-आर्य-भाषा में **अस्ति** नहीं बल्कि **एस्ति** रूप रहा होगा, क्योंकि अधिकांश आर्य-भाषाओं में **अ** के स्थान पर **ए** मिलता है—अनु०) था, जिसमें **अस्** क्रियावाचक धातु है और **ति** निर्देशक सर्वनाम। किन्तु यहाँ यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि इन दोनों की मूल आर्य-धातु **अस्** या **एस्** उस समय वर्तमान थी, जब मूल आर्य-जाति का कोई भी दल या टुकड़ी अपने देश से बाहर नहीं निकली थी। उस समय **अस्** या **एस्** मूल धातु सदा के लिए स्थिर हो गयी थी। नबूखद-नज़र ने यह नियम बना रखा था कि उसके गगन-चुंबी महलों के बनाने में जितनी ईंटें लगें, उन सबमें उसका नाम खुदा रहना चाहिए। जब ये प्रासाद खंडहर बन गये तो इन खंडहरों की ये ईंटें नये नगरों को बसाने के लिए दूर-दूर तक ले जायी गयीं। और टाइग्रिस नदी के किनारे पर बसे हुए बग़दाद शहर के नये मकानों की दीवारों पर सर हेनरी रोलिंसन ने क्या देखा कि उनमें लगी हुई ईंटों पर, हर एक में शक्तिशाली राजा नबूखद-नज़र का नाम खुदा है। यदि हम, आधुनिक भाषाओं का निर्माण कैसे हुआ है, इसका भली भाँति अध्ययन करें तो हमें साफ दिखाई देगा कि यही तथ्य इन भाषाओं पर भी लागू है। ये भाषाएँ उन भाषाओं के खंडहर की ईंटों अर्थात् शब्दों से बनी हुई हैं, जो अति प्राचीन हैं और अब विकृत हो गयी हैं तथा यदि हम इनके एक-एक शब्द की जांच-पड़ताल करें तो मालूम पड़ेगा कि आदि-आर्य-भाषा के निर्माताओं ने अपनी भाषा के शब्दों में अपनी जो मोहर लगायी थी, वह आज भी अपने दर्शन दे रही है।

भाषाओं का संबंध सदा-सर्वदा इतना निकट का नहीं रहता। कभी ऐसा भी होता है कि किसी भाषा का व्याकरण स्थिर न होने से पहले उस भाषा की एक नयी शाखा फूट निकलती है। इस दशा में ये दोनों शाखाएँ, या इनसे निकली हुई भाषाओं की वंशज भाषाएँ उतना निकट संबंध नहीं दिखा पातीं, जैसा कि लैटिन, नव्य लैटिन और उनसे निकली हुई भाषाएँ फ्रेंच, इटालियन और स्पेनिश आदि। इसमें संदेह नहीं कि ऐसी भाषाओं और उनसे निकली भाषाओं में बहुत समानता होगी, किन्तु उनमें बाद को जुड़े हुए कुछ ऐसे शब्द भी मिलेंगे, जिनकी समान-उत्पत्ति नहीं दिखायी जा सकेगी और व्याकरण के कुछ रूप ऐसे भी मिलेंगे, जो किसी अन्य भाषा या भाषा-परिवार से आये हुए होंगे। शब्दों के विषय में हम लोग देखते हैं कि ऐसी निकट संबंधी भाषाएँ भी, जैसी कि लैटिन या नव्य लैटिन से निकली हुई छः समान भाषाएँ हैं, साधारण से साधारण वाक्यों में एक दूसरी से बहुत भिन्न रूप धारण करती हैं। अब देखिए, लैटिन-भाषा में भाई के लिए Frater (फ्रातेर) शब्द काम में आता है, इसका फ्रेंच रूप Frere (फ्रेयर) हो गया है। अब और भी तमाशा देखिए, स्पेनिश में भाई को Harmano (हरमानो) कहते हैं। यह रूप लैटिन, फ्रेंच आदि से बहुत कम समानता रखता है। पर इस रूप-परिवर्तन का उचित कारण है। लैटिन भाषा का शब्द **फ्रातेर** बिगड़ते बिगड़ते **फ्रे** और **फ्रेले** बन गया और इसका अर्थ भाई या भाई के लिए; यही ईसाई पादरियों में चला हुआ शब्द Friar (फ्राएर) हो गया। बाद को यह उचित नहीं लगा कि **फ्रे** और **फ्रेले** दोनों ही शब्द भाई अर्थ में काम में लाये जायँ। स्पेन वालों ने इन शब्दों में भेद कर दिया और भाई के लिए इनका व्यवहार बंद हो गया। उन्होंने लैटिन में भाई के लिए प्रचलित एक नया शब्द Germanus ढूंढ़ निकाला। **हरमानो** इसका विकृत रूप है। इसी प्रकार लैटिन में Pastor (पास्तोर) शब्द गड़रिये के लिए व्यवहार में आता था। धीरे-धीरे ईसाई लोगों ने अपने को मेमने और अपने गुरुओं को गड़रिये की उपाधि दे दी। फल यह हुआ कि फ्रेंच में le pasteur 'गड़रिया' शब्द पादरियों के लिए प्रचलित हो गया। अब जनता गड़रिये के लिए नया शब्द ढूंढ़ने लगी। लैटिन Berlex से एक नया शब्द बनाया गया और आजकल गड़रिये को फ्रेंच में Berger (बरजेर) कहते हैं। स्पेनिश में रोगी को enfermo (इनफेरमो) कहते हैं और फ्रेंच में malade (मालाद) और इटालियन में malato (मालातो) कहा जाता है। और भी देखिए कि बहुत ही निकट संबंधी ग्रीक और लैटिन के समान दो भाषाएँ भी बहुत विभिन्नता रखती हैं, इनमें **सूनु**, दुहिता, भ्राता, स्त्री, पुरुष, आकाश, भूमि, चन्द्रमा, हाथ

मुँह, वृक्ष, पक्षी आदि[१] के लिए भिन्न-भिन्न शब्द हैं। इसका कारण भी स्पष्ट है कि आर्य-भाषा परिवार की नाना बोलियों ने आदि भाषा के एक ही अर्थ के बोधक नाना पर्याय अपने लिए अपना लिये। इसमें ग्रीक लोगों ने एक पर्याय लिया और लैटिन लोगों ने उसी शब्द का दूसरा पर्याय अपना लिया। इससे यह बात साफ हो जाती है कि इस प्रकार यदि एक ही परिवार की नाना भाषाएँ भिन्न पर्यायों को अपनाने लगें तो कभी ऐसा भी समय आ सकता है कि यह पर्याय कालान्तर में अपनी सगी बहन के शब्दों से इन विभिन्न पर्यायों द्वारा सूचित शब्दों के ध्वनि-परिवर्तन के नियम के अनुसार ऐसा रूप बना ले कि उक्त दोनों भाषाएँ एक दूसरी के समान नहीं बल्कि बिलकुल भिन्न लगें। इनमें, ऐसी स्थिति में साधारण पदार्थों के नाम भी भिन्न लगने लगेंगे। ये पर्यायवाची शब्द कभी-कभी बेहद बढ़ा दिये जाते हैं। कहा जाता है कि आइसलैंड की भाषा में द्वीप के अर्थ में १२० पर्यायवाची शब्द हैं और अरब वाले शेर[२] के अर्थ में ५०० पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग करते हैं और तलवार[३] के लिए उनके पास एक हज़ार नाम हैं। इन पर्यायों में बहुत से शब्द कवियों ने अपनी कविता में उनका उपयोग करने के लिए गढ़ लिये हैं। अब यह मान लीजिए कि किसी भाषा में एक अर्थ के द्योतक चार या पांच शब्द हों, तो इतना तो स्पष्ट ही है कि कालान्तर में इनका उपयोग चार भिन्न-भिन्न भाषाएँ कर सकती हैं। इनमें इन अलग-अलग पर्यायों के व्यवहार के कारण कभी समानता का कुछ आभास भी नहीं रह सकता।

व्याकरण पर भी यह तथ्य लागू हो सकता है। एक उदाहरण देखिए—एक समय ऐसा आया जब रोमांस भाषाओं में से किसी एक ने अपनी क्रियाओं का भविष्यकाल लैटिन सहायक क्रिया Habere जोड़कर सूचित करने का प्रयास किया, तो अन्य क्रियाएँ भविष्यकाल सूचित करने का अपना-अपना ढंग बनाने के लिए स्वतंत्र हो गयीं। इस दशा में ये सब भाषाएँ अपना अलग-अलग रूप बनाकर भविष्यकाल व्यक्त कर सकती थीं। यदि इतने प्राचीन काल से बोलियां और लिखी

१. **देखिए** Letter on Turanian Languages, p. 62.

२. Renan, Histore des Langues Semitiques, p. 137.

३. Pococke, Notes to Abulfaragius, p. 153; Glossology, p. 352.

जाने वाली भाषाएँ, कालान्तर में इतना परिवर्तन और विभिन्नता दिखा सकती हैं तो उन भाषाओं में, जो न तो अपनी शब्दसम्पत्ति ही स्थिर कर चुकी हों न ही अपने व्याकरण के रूपों का बनाना समाप्त कर चुकी हों, कितना अधिक परिवर्तन दिखाई पड़ेगा, इसका अनुमान थोड़े विचार से ही हो जायगा। ऐसी भाषाओं में यदि हम उत्पत्ति की समानता ढूंढ़ेंगे तो हमें अपने इस प्रयत्न में अवश्य असफलता मिलेगी। भाषाओं की समानता का कोई प्रमाण ऐसी भाषाओं में नहीं पाया जाता, किन्तु ऐसे साधन हैं जिनसे इनके ऐसे प्रमाण भी पाये जा सकते हैं। इनसे बहुत दूर से संबंधित भाषाओं का प्रमाण मिलता है। जब हम शब्दों के रूप परिवर्तनों का वर्गीकरण करेंगे, तब यह सिद्धांत आप लोगों के सामने और भी स्पष्ट हो जायगा।

जैसा कि हम भाषा-विज्ञान की वर्तमान अवस्था में जो कुछ हमें मालूम है, उसके आधार पर निर्णय कर सकते हैं, वह यह है कि हम सब भाषाओं को क्रियावाचक धातुओं और निर्देशक सर्वनामों के रूपों में परिणत कर सकते हैं। यह बात भी हमको स्पष्ट हो गयी है कि जिस प्रकार से ये धातुएँ एक साथ रखी जाती हैं, उसका हिसाब लगाकर हम तीन तरह की भाषाओं की आशा कर सकते हैं और यह भी जान सकते हैं कि भाषाओं की रचना की तीन भिन्न-भिन्न अवस्थाएँ होती हैं। यथा—

१—धातु शब्दों के रूपों में काम में आ सकती हैं किन्तु प्रत्येक धातु सदा अपनी स्वतंत्रता रखती है अर्थात् वह क्रियावाचक धातु के रूप में भी सदा रहती है।

२—शब्दों को बनाने के लिए दो धातु एक साथ जुड़ सकती हैं और इस संधियुक्त शब्द में एक धातु अपनी स्वतंत्रता खो सकती है।

३—एक शब्द बनाने में दो धातु एक साथ जोड़ी जा सकती हैं और इस संधियुक्त शब्द में दोनों धातुएँ अपनी स्वतंत्रता खो सकती हैं अर्थात् उनका शब्दार्थ विकृत हो सकता है।

शब्द बनाने के लिए दो धातुओं के जोड़े जाने का जो प्रसंग ऊपर आया है वहाँ पर कभी-कभी तीन, चार, पाँच धातु भी जोड़ी जा सकती हैं। सिद्धान्त सर्वत्र एक है, भले ही इसके विभाग, उपविभाग भी बनाये जा सकते हों।

पहली अवस्था, जिसमें एक शब्द की धातुओं में से प्रत्येक अपनी स्वतंत्रता की रक्षा करती है और जिसमें धातु या शब्द के बीच में कोई विभिन्नता नहीं है, उसका नाम मैंने रखा है—मूल अवस्था। इस दशा में प्राचीन चीनी भाषा है। इस प्रारंभिक या **मूल अवस्था** में जो भाषाएँ हैं, उनको कभी-कभी **एकाक्षरी** भाषाएँ भी कहा जाता है। दूसरी अवस्था, जिसमें एक शब्द बनाने में दो धातु एक दूसरी के साथ

मिल जाती हैं और जिनमें से एक धातु स्वतंत्र अथवा प्रधान रहती है और अपना मूल रूप सुरक्षित रखती है तथा दूसरी धातु घिस-मँजकर लोगों की जबान में प्रत्यय का रूप धारण कर लेती है, तो इस अवस्था को मैं प्रत्यययुक्त अवस्था कहता हूँ। यह अवस्था शक भाषाओं में मिलती है, जिन्हें मैं तूरानियन कहता हूँ। जो भाषाएँ इसके भीतर शामिल हैं उन्हें शब्द पर शब्द जोड़कर बोली जाने वाली भाषा कहा जाता है। अंग्रेज़ी में इन्हें Agglutinative (एग्लूटीनेटिव) अर्थात् शब्द पर शब्द चिपकाने वाली भाषा कहते हैं। ये चिपकाने वाली भाषा इसलिए कही जाती हैं कि इनमें एक के साथ दूसरा शब्द चिपक जाता है और दूसरे के साथ तीसरा आदि। तीसरी अवस्था वह है जिसमें एक शब्द की मुख्य धातु और प्रत्ययों में ध्वनि-परिवर्तन हो जाता है और न तो मुख्य धातु और न ही प्रत्यय अपने मूल रूप की स्वतंत्रता की रक्षा कर सकते हैं। इस अवस्था को मैं शब्दों और धातुओं की रूपावली बनने की अवस्था कहता हूँ। इस अवस्था में इस समय आर्य-भाषा परिवार और सेमेटिक भाषाएँ हैं। कोई कोई विद्वान् इन भाषाओं की वर्त्तमान अवस्था को अंग-युक्त या 'सांगोपांग' अवस्था तथा कोई इसे 'शब्दों के परस्पर में घुल-मिलकर एकाकार होने की अवस्था कहते हैं।

पहली अवस्था में शब्दों के ध्वनि-परिवर्त्तन होने का कोई अवसर नहीं आता।

दूसरी अवस्था में आरम्भ में आने वाली धातु में कोई परिवर्त्तन नहीं होता, किन्तु पहली धातु के साथ जुड़ने वाली दूसरी धातु का रूप बदल जाता है, जो गौण तथा शब्द के अर्थ का निश्चित रूप बताने वाला तत्त्व है।

तीसरी अवस्था में मुख्य धातु और साथ ही प्रत्यय में भी ध्वनि-परिवर्तन हो जाता है अर्थात् इन दोनों में विकार आ जाता है। इस वर्गीकरण को आप किसी उदाहरण से भली भांति समझ लेंगे। पहली अवस्था का प्रतिनिधित्व चीनी भाषा करती है। इसमें प्रत्येक शब्द धातु है और वह अपना स्वतंत्र अर्थ रखती है। हम जब लैटिन भाषा में बकुलो (Baculo) अर्थात् 'लाठी के साथ' कहते हैं, इसका प्रतिरूप चीनी में y eang[१] होता है। इस शब्द में y एक शब्द है, जो यहाँ उपसर्ग के स्थान पर लगने पर भी परसर्ग माना जा सकता है। अब तमाशा देखिए। चीनी में y धातु गिनी जाती है; क्योंकि यदि यह क्रियावाचक धातु के रूप में काम

१. Endlicher, Chinesische Grammatik, p. 223.

में लायी जायगी तो इसका अर्थ हो जायगा 'काम में लगाना'। इसलिए ऊपर दिये गये चीनी वाक्य का शाब्दिक अर्थ हुआ–'काम में लगाना लाठी।' और सुनिए, अंग्रेजी में जब कहते हैं At home (घर पर), तो लैटिन में उक्त शब्दों का रूप हो जाता है Domi (=संस्कृत दमे)। इसके लिए चीनी भाषा का शब्द Uo-li, Uo है, जिसका अर्थ होगा 'घर'। Li (ली) का अर्थ चीनी में होता है 'भीतर में'। वर्त्तमान चीनी भाषा में दिन का नाम Gi-tse (गिट्से) है जिसका अर्थ होता है 'सूर्य का पुत्र'।[1]

जैसा कि हम पहले भाषणों में देख चुके हैं, चीनी भाषा में संज्ञा (नाम), क्रिया, विशेषण, क्रियाविशेषण तथा परसर्ग में कोई नाम मात्र की विभिन्नता नहीं है। एक ही धातु एक वाक्य में अपना स्थान बदल-बदलकर महान्, महत्त्व, महत्ता से और महान् होने के अर्थ में काम में लायी जाती है। चीनी भाषा की विशेषता यह है कि आप एक वाक्य में शब्दों को अपने-अपने उचित स्थान पर बैठा देते हैं, ताकि वे आप का अभिप्राय दूसरे को बता दें। इस भाँति ngo ta ni, ni ta ngo, ngo gin, Gin ngo का अर्थ क्रमशः इस प्रकार होता है–'मैं मारता हूँ तुझे, तू मुझे मारता है, एक बुरा आदमी, आदमी है बुरा, जब तक किसी भाषा के एक वाक्य का प्रत्येक शब्द और शब्दांश अपना अपना स्वतंत्र अर्थ रखता है, जैसे कि चीनी भाषा में, तो ऐसी भाषा प्रारम्भिक या मूल अवस्था की भाषा कही जाती है। किन्तु जैसे ही इस प्रकार के शब्द, जैसे Gi-tse में tse 'दिन', Uo-li में li 'घर में' तथा y-eang में y 'लाठी के साथ' अपना व्युत्पत्तिमूलक अर्थ खोने लगते हैं और केवल शब्दरचना में सहायक शब्दांश बन जाते हैं या प्रत्यय का रूप धारण कर लेते हैं, तब भाषा दूसरी अवस्था में प्रवेश करने लगती है।

अभी तक इस विषय पर जो ज्ञान प्राप्त हुआ है, उसके आधार पर कहा जा सकता है कि संसार की भाषाओं की सबसे बड़ी संख्या इस अवस्था तक पहुँच पायी है। ईरान के उत्तर में और यूरोप में हंगरी तथा फिनलैंड में बोली जानेवाली भाषाओं को भी शामिल करके, आर्य तथा सेमेटिक भाषाओं को छोड़कर, अन्य भाषाएँ **शब्द पर शब्द** चिपकाने वाली भाषाओं के परिवार में आती हैं।

आर्य परिवार की भाषाओं में भी आजकल जो धातु-शब्द-रूपावलियाँ पायी जाती हैं, कभी उनके प्रत्यय भी शब्दों के रूप में, 'शब्द के पीछे शब्द जोड़कर काम

१. Ibid. p. 339. Endlicher, Chinesische Grammatik, p. 239.

चलाने वाली' भाषाओं की भांति जोड़े जाते रहे होंगे; पर इनके **भिन्न भिन्न रूपों** में विकार आ जाने से ये जुड़ने वाले शब्द इस प्रकार घुल-मिल गये कि दूसरा शब्द घिसते-घिसते प्रत्यय के रूप में परिवर्तित और विकृत हो गया। इनकी ध्वनियां इतनी अधिक परिवर्तित और विकृत हो गयीं कि कालान्तर में यह पहचानना ही असंभव हो गया कि एक शब्द में मूल धातु क्या है और शब्द का रूप निर्धारित करने वाला तत्त्व क्या है?

अब फ्रेंच भाषा के प्रत्यय Age (आज्ञ) को लीजिए जिसका रूप बहुत ही विकृत हो गया है। इसके भीतर के कई अक्षर घिस गये हैं। यह ठूंठ जैसा केवल मात्र प्रत्यय रह गया है। यह Age प्राचीन फ्रेंच में Eage और Edage रूप में था। Edage लैटिन शब्द Aetaticum (एतातीकुम) का विकृत रूप है। यह **एतातीकुम** लैटिन शब्द Aetas (एतस) से निकला है। और देखिए, यह **'एतस'** Aevitas (एवितस) का विकृत रूप है और यह **एवितस** 'Aetum' से निकला है और यह **'अएतुम' अए** धातु तथा **तुम** प्रत्यय से बना शब्द है। इसमें यह **अए** धातु संस्कृत **अय्** धातु का एक रूप है, जिससे संस्कृत का **आयु** अर्थात् **आय्-उस्** शब्द बना है जिसका अर्थ जीवन है। अब देखिए कि कहाँ फ्रेंच का Age और कहाँ इसका सार्थक मूल रूप मिला। शब्दों के मूल का ढंग ऐसा ही है। इस **अय्** धातु से ऊपर के सब शब्दों में जीवन आया और उनका अर्थ लगने लगा। इस **अयेतुम** शब्द से लैटिन में एक शब्द निकाला गया Aeviternus (अवेटर्नुस); स्वयं लैटिन भाषा में उक्त शब्द का संक्षिप्त रूप Aeternus हो गया है। (अयेटर्नुस=अनन्त काल) अब आप समझ गये होंगे कि आज eternity और आयु प्रायः एक अर्थ रखते हैं।

आर्य-भाषा-परिवार की क्रिया के अनेक रूपों में हमें व्यक्तिवाचक सर्वनाम के रूप स्पष्ट दिखाई नहीं पड़ते, तो भी इन प्राचीन रूपों में परम्परा, अभ्यास और व्याकरण के नियमों के कारण इनके स्वरूप सुरक्षित रह गये हैं और इनका अर्थ आज भी वही चला आ रहा है। इन रूपों से अब हमें कुछ ऐसा प्रेम हो गया है कि इन्हें हम छोड़ भी नहीं सकते।

ऊपर जो मैंने उदाहरण दिये हैं वे इस हेतु से कि एक जाति अपने प्रारंभिक काल में अपनी भाषा के व्याकरण के जो रूप स्थिर कर देती है, वे भले ही कितने विकृत रूप में क्यों न हों; परन्तु अपनी छाप भाषा की परम्परा के अन्त तक जीवित रखते हैं। जब एक परिवार या एक उपजाति या जाति व्याकरण के एक प्रकार के रूप स्थिर करके उन पर चलती है और आगे बढ़ती है तो व्याकरण का जो पहला

ढाँचा प्रारंभ में बनाया गया था उसी के ढर्रे पर इसकी बोली आगे बढ़ती है और इसके रूपों में कितने ही परिवर्तन हों, किन्तु ढाँचा सदा पहचान लिया जाता है। भले ही चीनी-भाषा के व्याकरण के रूप प्रारंभिक अवस्था में ही एक स्थान पर स्थिर हो गये थे और इस भाषा की प्रगति में रोक आ गयी थी, किन्तु अन्य धातुओं के बल पर बनने वाली अन्य भाषाएँ चीनी-भाषा की इस रुकावट की स्थिति से आगे बढ़ गयीं और उनके व्याकरण में काफी लचीलापन आ गया। हमने यह तथ्य बताया था कि भाषा की तीन अवस्थाएँ होती हैं और जो भाषाएँ इस वक्त शब्द और धातुओं के नाना रूपों से भरी हुई हैं उनके विषय में यह बताना कोई अनुचित बात नहीं है कि कभी वे एक अक्षर के शब्दों की बनी हुई हो सकती थीं और उसके बाद इन अक्षरों को एक दूसरे से जोड़कर उनके शब्द और वाक्य बनाये जा सकते थे। इसी सिद्धांत के आधार पर हम संस्कृत भाषा के रूपों का विश्लेषण कर सकते हैं। जहाँ तक किसी भाषा के व्याकरण के रूपों का प्रश्न उठता है, उसके उत्तर में हम केवल एक निदान पर आते हैं और वह यह कि धातु के नाना रूपों तथा शब्द की नाना विभक्तियों से भरी भाषाएँ कभी **शब्द के बाद शब्द चिपकाकर बननेवाली** या **एकाक्षरी** अवस्था से गुज़रकर इस अंतिम रूप में परिणत हो सकती हैं। भाषा का विशाल महानद असंख्य बोलियों के रूप में आगे को प्रवाहित होता रहा और जब इसे अपने पक्ष में विचार की नयी खानें मिलती गयीं, तो इसके व्याकरण के रूप भी नया-नया रंग-ढंग पकड़ने लगे। इस महानद से नाना भाषाओं के जो नदी-नाले फूट निकले तथा जो समुद्र तक न पहुँच सके और तालाबों तथा झीलों के रूप में जिनका पानी जुड़ने लगा, उनमें सदा के लिए वह रंग-ढंग स्थिर रूप से रह गया जो महानद से अलग होते समय वे अपने साथ लाये थे।

तूरानी भाषा-वर्ग

हमारी प्राचीन दुनियाँ के महान् विस्तृत क्षेत्र में सेमेटिक और आर्य-भाषाएँ चार **अंतरीपों** में ही बोली जाती हैं। ये अंतरीप हैं—ईरान के साथ भारत, अरब, एशिया माइनर और यूरोप। हमारे पास अनेक ऐसे प्रमाण हैं जिनसे हम इस निदान पर पहुँचते हैं कि आर्य लोगों के आने से पहले उक्त सब देशों में तूरानी अनार्य जातियाँ बसती थीं।

यह तूरानी परिवार वास्तव में बड़े महत्त्व का है। यदि भाषा-परिवार उन्हीं बोलियों को कहेंगे जो परस्पर बहुत अधिक संबंधित हैं, जैसे कि आर्य या सेमेटिक

भाषा-परिवार, तो इसमें कोई संदेह नहीं कि हम इनको तूरानी भाषाओं का परिवार नहीं, बल्कि वर्ग या समूह कहेंगे। पर इनको तूरानी भाषाओं का वर्ग कहने से इसका यह अर्थ नहीं निकलता कि इस वर्ग या समूह में जो बोलियाँ हैं, वे परस्पर असंबद्ध हैं। ये बोलियाँ वंश-वृक्ष के आधार पर संबंधित नहीं हैं। ये केवल शब्दों के रूप-भेदों पर आधारित हैं।

इन **तूरानी** बोलियों में ऐसे तत्त्व वर्तमान हैं, जो अवश्य ही समान मूल स्रोत से ग्रहण किये गये हैं। इनके रूपों की समानता आर्य अथवा सेमेटिक परिवार से कुछ भिन्न हो; किन्तु वह इस प्रकार की है कि हम उसे अकारण और अचानक आयी हुई समानता नहीं बता सकते।

तूरानी नाम उन लोगों का समझा जाता है जो एशिया में चर्षणि या घुमक्कड़ जातियाँ हैं।

इस तूरानी वर्ग के दो विभाग हैं—(१) उत्तरी विभाग, (२) दक्षिणी विभाग।

उत्तरी भाषा-भेद को यूराल-अल्ताई कहते हैं। इसी को अब उग्रो-फिन, 'हंगरी में बोली जानेवाली भाषाएँ' भी कहते हैं। अल्ताई, एशिया कोचक के पास बहुत ऊँचा पर्वत है। इन भेदों के भी पाँच विभाग माने जाते हैं—पहला विभाग तुंगुसिक, दूसरा मंगोलिक, तीसरा विभाग तुर्की भाषा का, चौथा हंगरी और फिनलैंड की भाषाओं का और पांचवाँ विभाग रूस की समोय्यद बोली का है।

दक्षिणी वर्ग, जो एशिया के दक्षिण में बोला जाता है, तीन भागों में विभक्त है। पहला वर्ग भोटिया भाषाओं का है। इसमें तिब्बत और भूटान की बोलियाँ शामिल की जाती हैं। दूसरे वर्ग में **तईक** बोलियाँ हैं जो सुदूर-पूर्व स्याम की ओर बोली जाती हैं। तीसरा वर्ग मलइक भाषाओं का है, इन भाषाओं में मैं मलाया और पोलिनेशिया की बोलियों को रखता हूँ।

इसमें कोई संदेह नहीं कि यदि हम असंख्य बोलियों में वही समानता ढूंढ़ना चाहते हैं, जो आर्य और सेमेटिक भाषा-परिवारों में मिलती है तो हमें हताश होना पड़ेगा, किन्तु इन तूरानियन या मंगोलियन भाषाओं की विशेष पहचान यही है कि इनमें समानता का अभाव है। आर्य और सेमेटिक परिवार की भाषाएँ उनकी हैं जो हजारों वर्षों से अपनी मातृ-भूमियों में बसे हुए हैं; किन्तु तूरानी बोलियाँ उन घुमक्कड़ों की भाषाएँ हैं जो अपने पशुओं को लेकर बराबर एक स्थान से दूसरे स्थान का चक्कर लगाते रहते हैं। इनका जमा-जमाया घर-बार कहीं नहीं है। इन घुमक्कड़ जातियों में न धर्म-ग्रंथ हैं, न साहित्य और न कविता, जिससे इनमें

स्थिरता आ जाती । इन घुमक्कड़ों में न तो समाज की स्थिरता रही और न राज-नीतिक एकता ही। चंगेज खाँ और तैमूर लंग जैसे महान् विजयी वीरों ने साम्राज्य स्थापित करने का प्रयत्न किया, किन्तु उनकी मृत्यु होते ही साम्राज्य चूर-चूर होकर धूल में मिल गये। एक बार कभी कानून बनाये गये होंगे। वे न मालूम कहाँ छिन्न-भिन्न हो गये। न उनके कोई गीत साहित्य में आये और न कहानियाँ ही। जब साहित्य का कोई माप-दंड ही नहीं रहा तो भाषा पीढ़ी-दर-पीढ़ी आगे कैसे बढ़ती। हमने एक पहले दिये गये भाषण में, जब हम बोलियों के विकास की चर्चा कर रहे थे, बताया था कि तूरानियन बोलियों में बहुत साधारण नाम; **माता, पिता, दुहिता, सूनु** बार-बार अपना रूप बदलते गये और इन बोलियों में इन्हीं अर्थों के भिन्न-भिन्न शब्दों द्वारा उनका स्थान घेर लिया गया। इसी प्रकार की स्वतन्त्रता से व्याकरण के रूपों में भी परिवर्तन होता रहा। इस पर भी इतना तो देखा ही जाता है कि इन बोलियों के बहुत-से संख्या-शब्द, सर्वनाम और बहुत-सी तूरानी धातुएँ एक ही मूल स्रोत से निकली हैं। दूर-दूर बोली जानेवाली तूरानी बोलियों में जो अनेक संज्ञाओं और धातुओं का पता चला है वह भी उक्त मान्यता को पुष्ट करता है। उक्त प्रमाणों से पता चलता है कि किसी प्राचीन समय में इनका वंश-वृक्ष एक ही मूल से पैदा हुआ होगा। इन तूरानी बोलियों की विशेष पहचान कराने वाला गुण शब्दों पर शब्द चिपकाया जाना है। इसका अर्थ यह है कि 'इन बोलियों में धातुओं के साथ सर्वनाम ही जोड़े या चिपकाये नहीं जाते जिनसे इनकी धातु-रूपावली बनायी जाती है; बल्कि संज्ञाओं के साथ परसर्ग भी जोड़े जाते हैं जिनसे इनकी धातु-रूपावली बनायी जाती है।' यह तूरानी या घुमक्कड़ जातियों की बोलियों में कोई विशेष बात नहीं है, क्योंकि स्वयं संस्कृत तथा इबरानी भाषा में भी शब्द और धातु-रूपावलियाँ इन्हीं सिद्धान्तों पर बनायी जाती हैं। तूरानी भाषाओं के मुख्य लक्षणों की पहचान यह है कि इन बोलियों में धातुरूपों और शब्दरूपों के टकड़े-टुकड़े कर दिये जाते हैं। यद्यपि इन रूपावलियों में जोड़े जानेवाले प्रत्ययों में इनके अर्थों को स्पष्ट करनेवाली शक्ति स्वतन्त्र शब्दों के रूप में नहीं रहती; किन्तु ये प्रत्यय उस शब्द या धातु के अर्थ में फेर-फार करने वाले समझे जाते हैं जिसके साथ ये चिपकाये जाते हैं।[१]

१. Survey of Languages, p. 90.

आर्य-भाषा परिवार में भी जो प्रत्यय धातु और शब्द-रूपावलियों के अंत में लगते हैं वे भी कभी स्वतन्त्र शब्दों के रूप में थे। आरम्भ में ये प्रत्यय भी संज्ञाओं और धातुओं के साथ चिपकाये जाते रहे होंगे, किन्तु बाद में ये प्रत्यय शब्दों या धातुओं के साथ घुलने-मिलने लगे होंगे। इन प्रत्ययों के शब्दों या धातुओं के साथ मिल जाने से ऐसा मालूम होने लगा कि शब्द या धातु मूल में ही सप्रत्यय, एक ही होगी। फिर इस सारे शब्द का ध्वनि-विकार भी एक साथ होने लगा। इस ध्वनि-विकार का सर्वनाशी प्रभाव ऐसा पड़ा कि कुछ समय बीतने पर यह पता चलाना ही असम्भव हो गया कि कौन संज्ञा या धातु है और कौन इस शब्द के भीतर प्रत्यय लगा हुआ है। आर्य-भाषाओं और तूरानी बोलियों में भेद केवल उतना ही है जितना अच्छी और बुरी पच्चीकारी में; आर्य-भाषाओं के शब्द ऐसे मालूम पड़ते हैं कि गोया ये एक ही पत्थर के टुकड़े से सुन्दर गढ़े गये हैं और तूरानी बोलियों के शब्द ऐसे हैं कि मालूम पड़ता है कि ये छोटे-छोटे और टूटे-फूटे पत्थरों से गढ़े गये हैं।

तूरानी बोलियाँ शब्द पर शब्द चिपकाने वाली बोलियों की स्थितियों में क्यों रह गयीं, इसका पक्का कारण है। यह अति आवश्यक समझा गया कि शब्द के भीतर जो धातु छिपी है वह अति स्पष्टता के साथ शब्द का अर्थ स्पष्ट करने के लिए, सब की आँखों के सामने आ जाय और यह शब्द का अर्थ स्पष्ट करने वाली धातु किसी स्थिति में भी आँखों से ओझल न रहे। जब धातुओं की रूपावलियाँ भाषा में बनायी जाने लगती हैं तो बोलनेवाले और सुननेवाले कभी-कभी भ्रम में पड़ जाते हैं कि कौन आख्यान शब्द के भीतर छिपा है जिससे इसका अर्थ समझ में ठीक नहीं आ रहा है।

चर्षणियों या नित्य-विचरनेवाली जातियों के लिए यह अपरिहार्य हो जाता है कि उनकी भाषा के शब्द ऐसे हों जिन्हें सुननेवाला तुरंत हृदयंगम कर ले, वह सभी श्रोताओं की समझ में आ जानी चाहिए; उन्हें बातचीत का बहुत कम अवसर मिलता है। जो शब्द तुरत विश्लेषण करने के योग्य होते हैं उनकी रक्षा करने के लिए भाषाओं की परम्परा, समाज का स्थिर रूप और प्राचीन साहित्य अति आवश्यक हो जाता है। जीवन भर के घुमक्कड़ों की भाषा में फ्रेंच आज जैसे शब्दों की उत्पत्ति होना असंभव हो जाता है। अथवा यदि संयोगवश ऐसे विकृत शब्द कभी बोलियों में आ भी जायँ तो वे एक पीढ़ी के भीतर ही (प्रायः २० वर्ष—अनु०) समाप्त हो जाते हैं। आर्य-भाषा की धातुओं के अंत में कई व्यक्तिवाचक

सर्वनाम जोड़कर उनकी रूपावली बनायी जाती है। इस पर भी उनकी परंपरा, रीति-रिवाज और उनके विधि-विधान इन रूपों को सदा जीवित रखते हैं। प्राचीन समय से इन रूपों की रक्षा की जाने के कारण जनता भी उन्हें जल्दी बदलना नहीं चाहती। किंतु सदा विचरणशील जातियों के समाज में कोई ऐसा शब्द सहन नहीं किया जाता जो टकसाली न हो, किसी भी अस्पष्ट या भ्रमपूर्ण बात पर श्रद्धा नहीं की जाती। उनके शब्दों की धातु (metal) विशुद्ध और मिश्रणहीन होनी चाहिए और कोई भी पौराणिक कथा क्यों न हो वह स्पष्ट होनी चाहिए, नहीं तो इसे सुनने को कोई तैयार न रहेगा। इनमें से एक-एक शब्द तोल लिया जाता है कि उसका वजन कम तो नहीं है और अन्य शब्दों को देखा जाता है कि वे यदि भली भाँति न समझे जा सकें तो भी उनकी स्पष्टता में नाम मात्र का धब्बा न रहना चाहिए। इस कारण **शब्द पर शब्द चिपकाने वाली**[1] भाषाओं में सभी अनियमित रूपों में स्पष्टता रहनी ही चाहिए।

तूरानियन भाषा-भाषी एक प्रकार से संस्कृत रूपों से सर्वथा अपरिचित नहीं हैं। ये कुछ शब्द हैं, जैसे—

अस् – मि,	**अ – सि,**	**अस् – ति,**	**स् – था,**	**स् – अंति**
'मैं हूँ',	'तू है',	'वह है',	'तुम हो',	'वे हैं',

इस कारण तूरानियन या शक-भाषा लैटिन से भी कुछ मिलती है। जैसे—
'S-um (सु-म्), e-s (ए-स्), es-t (एस्-त),
'Su-mus (सु-मुस्), es-tis (एस्-तिस्),
'Sunt (स्उन्त)।

इन थोड़े-से उदाहरणों में, जिनके अपवाद नाम मात्र ही हैं, मूल धातु और उसमें जुड़े हुए प्रत्यय वैसे ही स्पष्ट हैं जैसे तुर्की भाषा में मिलते हैं—
bakar-im (बकर्-इम्), bakar-sin (बकर्-सिन), bakar (बकर्)

इनके अर्थ क्रमशः ये हैं—'मैं देखता हूँ, तू देखता है, वह देखता है।'
bakar-iz (बकर-इज़्), bakar-siniz (बकर-सिनिज), bakar-lar (बकर-लर्)

इनके अर्थ क्रमशः ये हैं—'हम देखते हैं, तुम देखते हो, वे देखते हैं।'

१. अब्बे मोलिना ने बताया है कि चिली की भाषा में अनियमित रूपों का अस्तित्व मिलता ही नहीं (Du Ponceau, Memoire, p. 90)।

इतने पर भी तूरानी भाषा-भाषियों की धातु-रूपावली हिन्दुस्तानी भाषा की धातुओं के रूपों, जैसे—hun (हूँ), hai (है) [तू जाता है, वह जाता है—अनु०]। ho (हो), hain (हैं) से समता नहीं रखती। इसका कारण यह है कि हिन्दुस्तानी भाषा विचरणशील जाति की नहीं है। तूरानियन बोलियाँ या तो अंतिम प्रत्ययों में कोई भेद नहीं दिखातीं, जैसे Mandshu (मंचु ?) जो तुंगुसिक बोली का शब्द है, या कहीं कहीं प्रत्यय पूर्ण रूप में और भली-भाँति समझ में आने योग्य पाये जाते हैं, जैसे नियारात्सिनस्क (Nyertchinsk) बोली में। उक्त बोली भी तुंगुसिक परिवार या वंश की है, किन्तु इसमें ध्वनि-विकार के कारण प्रथम पुरुष के एक और बहुवचन और अन्य पुरुष के बहुवचन प्रत्यय एक ही हैं। इस स्थल पर मध्यम और अन्य पुरुष के एकवचन में प्रत्ययों में भेद मिट गया है। इसी प्रकार प्रथम और अन्य पुरुषों के बहुवचनों के प्रत्यय भी एकाकार हो गये हैं। सर्वनाम के पुरुषों को बताने के लिए इन धातुओं में उचित प्रत्यय लगा दिये जाते हैं, अन्यथा इस अर्थ के लिए कुछ और उपाय काम में लाये जाते हैं जिससे प्रथम, मध्यम और उत्तम पुरुष द्वारा धातु की पहचान की जाय।

इस बात से और भी स्पष्ट हो जाता है कि अपने वाक्यों में स्पष्टता लाने के लिए शब्द पर शब्द चिपकानेवाली तूरानियन बोलियाँ किस रीति से वाक्यों के अर्थों में किस प्रकार वाक्यों को तुरत समझाने की शक्ति भर देती हैं। सच तो यह है कि जो भाषाएँ शब्दों पर शब्द चिपकानेवाली होती हैं अथवा जिन भाषाओं को हम भाषाओं के विकास की दूसरी स्थिति पर पाते हैं उन सब में बोलियों का अर्थ तुरत समझ में आ जाय, इस कारण ऊपर बताये गये दो उपाय काम में लाये जाते हैं। ये भाषाएँ आर्य और सेमेटिक भाषाओं से भी अधिक ध्वनि-विकार से सुरक्षित हैं; किन्तु इनमें बोलियों का फिर-फिर नया जागरण होने के कारण इनमें बड़े-बड़े बदलाव स्वभावतः आ जाते हैं। तूरानियन लोगों में उनकी शब्द-संपत्ति कम होने के कारण अपनी भाषा और उसके व्याकरण की चेतना सदा ही जागृत रहती है; उदाहरणार्थ, उन्हें इस बात का सदा ध्यान रहता है कि हमारी बोली के शब्द सदा एकवचन में होते हैं और उनके साथ अनेक-संख्यकों का बोध कराने के लिए हमें वह शब्द जोड़ देना चाहिए जिससे अनेकता का बोध होता है। कर्मवाच्य वाक्य उनके लिए वह है जिसमें दूसरे के द्वारा कर्म किया जाता है।[१]

१. Letter on the Turanian Languages, p. 206.

तूरानियन बोलियों को बोलने वाले लोग बातचीत के समय निश्चयबोधक वाक्यों में नाना उपायों से ऐसे शब्द रखते हैं जिनसे उनमें बहुत अधिक स्पष्टता आ जाय। भले ही वे एक ही कुल के क्यों न हों, कभी-कभी उनमें कुछ प्रत्यय कुछ समय के लिए स्थिर-से हो जाते हैं। ये व्याकरण के कुछ रूपों में काम में लाये जाते हैं। जब इस कुल के लोग कुछ समय के लिए इधर-उधर तितर-बितर हो जाते हैं तो वे अपने साथ इन शब्द-रूपी प्रत्ययों को भी ले जाते हैं और इनको व्याकरण के रूपों की भाँति शब्दों के साथ चिपकाते जाते हैं और ये शब्द-रूपी प्रत्यय स्वभावतः सुनने या बोलने के दोषों के कारण ऐसे घिस-मँज जाते हैं कि तुलनात्मक व्याकरण के पंडित इनका मूल स्वरूप पहचान ही नहीं सकते। उदाहरण के लिए, ऐसी निकट-संबंधी भाषाओं में, जैसी कि फिनिश और हंगरी की मगियार भाषा हैं, इनके शब्द-रूपी प्रत्ययों के मूल स्रोत का पता लगाना कठिन होता है।

यह न समझना चाहिए कि तूरानियन या शब्द पर शब्द चिपकानेवाली बोलियाँ सदा ही उक्त स्थिति के भीतर से गुजरती हैं। जब कभी किसी जाति में राजनीतिक संगठन हो जाता है तो उनकी भाषा में भी अन्य राजनीतिक सुसंगठित राष्ट्रों की भाँति ही भाषा का संगठन भी स्थिर होने लगता है। उनमें संस्कृत और इबरानी की भाँति ही व्याकरण के रूप स्थिर होने लग जाते हैं। तूरानियन परिवार की हंगरी और फिनिश आदि जातियों में सुव्यवस्थित राष्ट्रीय शासन के कारण उनकी भाषाओं में भी व्याकरण के रूप स्थिर हो गये हैं, भले ही उनके शब्द-रूपी बहुत-से प्रत्यय ध्वनिविकार के कारण इतने बदल गये हैं कि अब उनका रूप नया सा लगता है, किन्तु इनमें नाम मात्र परिवर्तन नहीं हो रहा है तथा इनके स्थान पर नये सार्थक और स्पष्टता-बोधक प्रत्यय नहीं रखे जा रहे हैं।

यह वर्णन सर्वथा पूर्ण करने के लिए, मैं अपने १८८५ में छपे Survey of Languages ग्रंथ से कुछ बातें दे रहा हूँ —

तुंगुसिक वर्ग

तुंगुसिक वर्ग की भाषाएँ रूस के साइबेरिया से लेकर चीन तक फैली हुई हैं। ११३ रेखांश तक पश्चिम में तथा उत्तर में साइबेरिया तक इसी वर्ग का राज है।

मंगोलिक वर्ग

मंगोलियन बोलियों को बोलनेवाली जातियों का आदि-स्थान बैकाल झील के आस-पास है। ये बोलियाँ पूर्वी साइबेरिया के पूर्वी भागों में भी बोली जाती हैं।

साइबेरिया में १९वीं सदी में भी ये बोलियाँ बोली जाती हैं। इनके तीन वर्ग पाये जाते हैं—**मंगोल** बोलियाँ, **बुरियात** बोलियाँ तथा **ओलोत्स** बोलियाँ। चंगेज खाँ ने सब मंगोलों को आपस में मिला दिया और मंगोल साम्राज्य की स्थापना की। इस साम्राज्य के भीतर केवल मंगोलिक जातियाँ ही नहीं थीं वरन् तुर्कों की जातियाँ भी थीं। इन पिछली दो जातियों को तातार जातियाँ भी कहते हैं।

शीघ्र ही तातार नाम से एशिया और यूरोप के लोग थरथराने लगे। यह तातार शब्द अन्धाधुन्ध रूप में एशिया से जो आक्रमणकारी यूरोप पहुँचे उनके लिए काम में आने लगा। मूल में मंगोलिक या मंगोलियन जातियों का नाम तातार ही था; किन्तु जब चंगेज खाँ ने मंगोल साम्राज्य की स्थापना की तो उनकी राजनीतिक शक्ति ने अपना दबदबा दिखाया और सभी मंगोल जातियाँ तातार नाम से पुकारी जाने लगीं। भाषा के हिसाब से तातारी भाषा अब दो भिन्न-भिन्न रूपों में काम में आती है। मध्य युग के लेखकों का अनुसरण करने से इस समय सभी मंगोलियन जातियों के लिए तातार शब्द का प्रयोग साधारण-सा हो गया है। जितनी भी घुमक्कड़ जातियाँ नाना मंगोल बोलियाँ बोलती हैं उनका नाम **तातारी** ही पड़ गया है, इस कारण इसका प्रयोग उस अर्थ में भी होता है जिस अर्थ में , मैं तूरानी शब्द का प्रयोग कर रहा हूँ। दूसरी बात यह है कि तूरानी भाषाओं में तातारी बोलियाँ वे कहलाती हैं जिनकी मुख्य भाषा तुर्की है। जब कि मंगोलियन भाषाओं को, जो सचमुच में तातारी कहलाने की अधिकारिणी हैं कोई तातारी नहीं कहता। साधारण नियम तो यह हो गया है कि तीसरी तूरानी भाषा तुर्की ही **तातारी** कही जाती है और यह तुर्की मुख्यतया यूराल-अलताई पर्वत श्रेणियों में बोली जाती है। बात यह है कि उक्त पर्वतों के निवासियों ने स्वयं ही इस नाम को अपनाया है। ये तुर्क अथवा तुर्की, जिन्हें आजकल तुर्की की नाना जातियाँ भी कहते हैं, काश्पियन सागर में बसी हुई हैं, और काले-सागर के आस-पास में भी इनकी बस्तियाँ हैं। इनका नाम कोमानेस भी था। जब पेचेनेव और बुलगार जातियों को चंगेज खाँ के वंशज इन मंगोलों ने जीता, तो यूरोप में मंगोल साम्राज्य नीस्टर नदी तक फैल गया और रूस भी २०० वर्षों तक इन मंगोलों के अधीन रहा। १५वीं सदी के अन्त में यह मंगोल साम्राज्य नष्ट-भ्रष्ट हो गया। इसके भग्नावशेषों से कई राज्यों की स्थापना हुई। इन राज्यों में क्रिम, कज़ान, और अस्त्राखान राज्य महाशक्तिशाली रहे। इन राज्यों के अधिपति सदा गर्व करते रहे कि वे चंगेज खाँ के वंशज हैं, और उन्होंने अपने को तातार या मंगोल कहना अपनी

बपौती समझा। उनके सैनिकों और प्रजा ने भी अपना स्वाभाविक अधिकार समझा कि वे चंगेज खाँ के वंशज तातार कहलाने योग्य हैं। उनकी भाषा भी तातारी नाम से सम्बोधित होने लगी। जब ये मंगोल जातियां रूसी साम्राज्य के भीतर आ गयीं और मंगोल या तातारी खानों की प्रजा न रहीं तो भी ये अपने को तातार कहने लगीं। इन तातारी बोलियों की तीसरी शाखा में बड़ी गड़बड़ी मची और उनके अर्थ कहीं के कहीं चले गये। अब यह तमाशा हो गया है कि यदि आप इन तातारों से पूछें कि क्या आप तातार हैं ? तो वे तुरन्त उत्तर देते हैं कि हम तातार नहीं हैं। यह दशा कज़ान और अस्त्राखान के तातारों में अधिक दिखाई देती है। अब वे अपनी भाषा को तुर्की या तुर्क कहने लगे हैं और तातार शब्द से घृणा करते हैं। इतना ही नहीं, वे तातार शब्द को गाली समझते हैं। उनके लिए तातार शब्द का अर्थ 'डाकू' हो गया है। अब उनको कुछ ऐसा ख्याल हो गया है कि तातारों ने उनके पूर्वजों को लूटा और जीता है। जर्मन विद्वान् क्लापरोट ने बहुत वर्षों तक इनके बीच में रहकर इनकी नाना भाषाओं का अध्ययन किया है।

इन मंगोलों ने रूस को जीतकर उसकी सम्पत्ति लूटी और अच्छे-अच्छे भवनों को ध्वंस कर दिया। १२४० ई० में इन्होंने पोलैण्ड को भी जीता। १२४१ ई० में इन्होंने जर्मनी के सिलेशिया प्रदेश को अपने अधीन कर लिया। यहां से वे आगे न बढ़ सके, क्योंकि जर्मनी के सब राजाओं ने अपनी सेना एकत्र करके इनका सामना किया। ये मंगोल मुराभिया लौट पड़े और वहाँ लूट-पाट करके हंगरी को अपने अधीन कर लिया। इस समय उन्हें एक सम्राट् (खान) के निर्वाचन करने की आवश्यकता पड़ी और नियम यह था कि वे खान को केवल काराकोरम स्थान में ही निर्वाचित कर सकते थे; चूंकि काराकोरम उनके साम्राज्य की राजधानी रह चुका था। वे लोग फिर काराकोरम गये कि साम्राज्य का एक सम्राट् निर्वाचित कर दिया जाय जो सारे साम्राज्य पर शासन करे। इस समय उनका साम्राज्य पोलैण्ड से चीन और भारत से साइबेरिया तक फैला हुआ था। किन्तु इतना महान् और विस्तृत साम्राज्य बहुत दिनों तक एक सम्राट् के अधीन नहीं रस सकता था। १३वीं सदी के अन्त में यह छिन्न-भिन्न हो गया और अनेक छोटे-छोटे राज्यों में बँट गया। इनके राजा लोग मंगोल थे, किन्तु खान का अधिकार चला गया। इस प्रकार चीन, तुर्किस्तान, साइबेरिया, दक्षिणी रूस और ईरान में मंगोल राज्य स्थापित हो गये। १३६० ई० में चीनियों ने मंगोल खानदान को समाप्त कर दिया।

१५वीं सदी में उनका रूस का राज्य भी जाता रहा। मध्य एशिया में ये मंगोल फिर तैमूरलंग के झंडे के नीचे एकत्र हो गये। तैमूर का शासन भी काराकोरम से ईरान और अनातोलिया तक था। १४६८ में यह साम्राज्य भी अपने ही भार से दबकर बैठ गया। इसके बाद तैमूर के एक वंशज बाबर ने भारत पर राज जमाया और भारत में मंगोल वंश का राजघराना राज करने लगा। अभी हाल तक ये मुगल राजा दिल्ली में राज करते रहे। इस समय, अधिकांश मंगोल जातियाँ उन जातियों के अधीन हैं जिन पर उन्होंने कभी राज किया था। मंगोलिक भाषा चीन से बोल्गा नदी तक बोली जाती है, उसकी बोलियों की संख्या बहुत कम है।

तूरानी शाखा की बोलियों में तुंगुसिक के बाद मंगोलियन भाषा आती है, जिसकी शब्द-सम्पत्ति बहुत ही कम है। इसमें व्याकरण के रूप नाम मात्र के ही हैं, इस कारण इस बोली में बहुत कम परिवर्तन हुआ है। स्वीडिश यात्री कास्ट्रेन ने इन भाषाओं को विद्वानों के सामने रखा। यह स्वीडिश यात्री तूरानी भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए बुरियात लोगों की बोली का विशेषज्ञ हो गया है।

कुछ मंगोलों ने बोल्गा नदी के तटों पर अपनी बस्तियां बसायी हैं तथा वे कास्पियन के तटों पर भी बस गये हैं। इनका दूसरा उपनिवेश सेमत्रिस्क के दक्षिण-पश्चिम में बसा हुआ है। ये पश्चिमी शाखा के हैं और ओलोन्स कहे जाते हैं। रूस में इन्हें कालमुक भी कहा जाता है (प्रसिद्ध जर्मन विद्वान् बेन्फ़े महोदय ने इन कालमुकों के बीच रहकर यह पता चलाया है कि इन लोगों में पंचतंत्र की १८ कहानियों का बहुत प्रचार है।—अनु०) ये लोग १६६२ में यूरोप की ओर बसने के लिए आये। इनमें से कुछ लोग १७७० में एशिया वापस आ गये।

तुर्की वर्ग

तूरानियन भाषा-परिवार की तीसरी शाखा में बहुत-सी बोलियाँ हैं। इनमें सबसे अधिक महत्त्व की तुर्की भाषा है जिसे ओस्मानली कहा जाता है। तुर्कों की जनसंख्या बहुत कम है। इनकी संख्या इस समय (१८६८ ई०) बीस लाख कही जाती है और सफ़रीक के अनुसार विशुद्ध तुर्कों की संख्या सात लाख है, जो डेढ़ करोड़ जनसंख्या पर राज करते हैं।

इन तुर्क लोगों का पुराना नाम चीनियों के अनुसार **हिउँग-नु** था। चीनी लोग इन्हें **लो तु-किउ** भी कहते थे। इस नाम से तुर्क शब्द निकला, ऐसा माना जाता है।

तुर्की जाति की टर्कोमान कही जाने वाली शाखा विचरणशील और लुटेरी है। इस शाखा को काजीलवाश भी कहते हैं। ये घुमक्कड़ डाकू हैं और यूरोप में ११वीं–१२वीं शताब्दी से बस गये हैं।

कास्पियन सागर के पूर्व के टर्कोमान लोग उजवेक या खीवा-खानों की प्रजा हैं। ये अपने को इन खानों की प्रजा नहीं कहते बल्कि इनका अतिथि बतलाते हैं। ये चीन और खुरासान तक फैले हुए हैं। उजवेक **लो ही-हे** और **ग्रीगुर** जातियों के वंशज हैं। ये काशगर, तुर्फान आदि स्थानों में १६वीं सदी से बस गये हैं। तुर्फान और बलख में ये किसानी का काम करते हैं। ये लोग साधारणतया विचरण-शील और भयंकर लड़ाकू हैं। इन्हें पशुपालक नहीं कहा जा सकता है।

कुछ तुर्की जातियां 'नोगाइ' कहलाती हैं, ये कास्पियन सागर के पश्चिम की ओर बसती हैं। १७वीं सदी के आरम्भ तक ये कास्पियन सागर के उत्तर-पूर्व में रहीं। इरतिस के बायें तट के कई स्थान उनके नाम पर बसे हैं। कालमुक जाति ने इन्हें पश्चिम की ओर खदेड़ा। प्रथम रूस के जार ने इन्हें काकेशस पर्वत की ओर भेज दिया। वहाँ वे आज भी अपने पशुओं के झुंडों को चराते हैं।

तीसरी तुर्की जाति कालमुक कहलाती है। यह रूस के जार की प्रजा है और अपनी ही जाति के जमींदारों के अधीन है।

अल्ताई पर्वत का दक्षिणी भाग बास्किर जाति के लोगों से बसा हुआ है। अराल झील के आस-पास जो जाति बसी हुई है उसे 'कारा कल्पक' कहते हैं। इनका अधिकांश भू-भाग रूस के अधीन है।

साइबेरिया के तातार वहां के पुराने निवासी हैं। इन साइबेरियन तुर्कों की बोली में बहुत मिश्रण हो गया है। इनकी बोली में मंगोलियन, समोयिदी और रूसी शब्दों की खिचड़ी है। इनकी मूल भाषा के शब्द जाति भर में एक समान हैं।

तुर्किक भाषाओं की श्रृंखला उत्तर-पूर्व की याकूत जाति की बोली की अंतिम कड़ी है। ये अपने को सख (=सक) कहते हैं और यह जाति मूर्तिपूजक है। अब नमें भी बहुतेरे ईसाई हो रहे हैं। इनकी भाषा की विशेषता यह है कि उसमें तुर्की भाषा की छाप बहुत अधिक है। अन्य तुर्की जातियों की भाषा दूसरे लोगों के साथ मिलने-जुलने के कारण बदल गयी है, पर बहुत प्राचीन समय से अलग रहने के कारण इन याकूतों की भाषा में बहुत कम परिवर्तन आया है। ये जिस अवस्था में रहे हों इनकी भाषा के व्याकरण में अति प्राचीनता पायी जाती है। इस कारण तुर्की भाषा के मूल व्याकरण का रूप जानने के लिए इसका बहुत अधिक महत्त्व है। दक्षिणी

साइबेरिया किरगिज़ मंगोलों की मातृभूमि है। ये तुर्क तातार वंश के हैं। ये दक्षिणी साइबेरिया से भगाये गये और इस समय बुर्त में बस गये हैं, जो चीनी तुर्किस्तान में है। काशगर में भी इन लोगों की बस्तियां हैं। इनमें से अधिक लोग रूस की प्रजा हैं। असल तुर्क उस्मानली हैं और तुर्क साम्राज्य में इनका ही शासन चलता है। ये इस समय यूरोप के तुर्की साम्राज्य में सर्वत्र फैले हुए हैं। ये जमींदार हैं और शिक्षित तथा कुलीन लोग इनकी भाषा उस्मानली बोलते हैं। सीरिया, मिस्र और ट्यूनिस के सभी अफसर इसी भाषा का प्रयोग करते हैं। एशियाई रूस के दक्षिणी प्रदेशों में, काश्पियन सागर के तटों पर और सारे तुर्किस्तान में यही बोली बोली जाती है। तेहरान की अदालतों में भी यही बोली सुनी जाती है और पर्सिया के सभी सरकारी कर्मचारी इससे परिचित हैं। १२२४ ई० में सुलेमान शाह और उसकी जाति के बहुत-से लोग खुरासान से सीरिया को चले आये। ये लोग आरमीनियां और एशिया कोचक में भी फैल गये। सुलेमान का लड़का इकोनियम के सालजुक सुल्तान की सेना में भर्ती हो गया और धीरे-धीरे वह फ्रीजिया नामक प्रदेश का जमींदार बन गया। १३वीं सदी के अन्त में इकोनियम के सुल्तान समाप्त हो गये और जमींदार सुल्तान बन गये। ये उस्मानली लोग बहुत सारा भू-भाग हज़म कर बैठे तथा ओलमपिया के दर्रों को पार करके यूरोप में बिथिनिया तक आगे बढ़ गये और बिजन्तीय के सम्राट् को भी इन्होंने हरा दिया, तब सारी प्रजा का नाम भी सुल्तान उस्मान के नाम पर ओस्मान हो गया। ओस्मान का बेटा उरफान विजय पर विजय पाते हुए यूरोप में हेलेस्पोन्ट तक आगे बढ़ गया। वह अपने को बादशाह कहने लगा। उसका बेटा सुलेमान गेलीपोली तक आगे बढ़ गया। इस प्रकार वह दर्रे दानियाल का भी मालिक बन गया। मुराद प्रथम ने एड्रियानोपल को जीता और उसे अपनी राजधानी बनाया। इसने मैसीडोनिया को भी जीत लिया और एक विकट संग्राम के बाद सब स्लेवोनिक जातियों की इकट्ठी सेना को परास्त कर दिया। जर्मनी का राजा जिगिसमुण्ड तब रूसी, जर्मन और फ्रेंच सेनाओं का सेनापति बना और उसने तुर्कों के विरुद्ध लड़ाई की। वह हार गया और बायाजेथ ने बौसनियां को भी अपने साम्राज्य के अधीन कर लिया। वह कुस्तुन्तुनिया को भी जीता लेता, किन्तु जिन मंगोलों ने इन तुर्कों को खुरासान से खदेड़ा था, वे फिर तुर्कों पर आक्रमण करने के लिए तैयार हो गये। उनके भय ने इसकी हिम्मत तोड़ दी और वह फिर आगे न बढ़ सका। उस समय चंगेज खाँ के राज्य की बागडोर तैमूर लंग ने संभाली, बायाजेथ

ने तैमूर से लोहा लेने की ठानी, पर तैमूर ने उसे हरा दिया। तैमूर कुछ दिनों में मर गया और उसका साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया। यह सुअवसर देख मुराद द्वितीय ने डेन्यूब की ओर अपनी सेनाएं भेजीं। उनका सामना स्लैवों और हंगरी के निवासियों ने किया। कुस्तुन्तुनियां इसका ज्यादा सामना न कर सका और यह इसके हाथ आ गया एवं तुर्क साम्राज्य की राजधानी बन गया।

भले ही आप उस्मानली भाषा का व्याकरण न पढ़ना चाहें, किन्तु उसे हाथ में लेते ही महान् आनन्द मिलने लगता है। व्याकरण के रूपों को सिखाने का मौलिक तरीका, धातु और रूपावलियों की अति नियमितता का ढंग, सारे व्याकरण की बनावट में स्पष्टता और तुरन्त समझ में आने वाली सरल भाषा; यह सब देख कर सभी पाठक आश्चर्य करेंगे कि मनुष्य के मस्तिष्क ने जो भाषा बनायी है उसे उस्मानली भाषा के व्याकरणकारों ने किस प्रकार सरलतम कर दिया है। अन्य व्याकरणों में तो हम नियमित-अनियमित रूपों को देखते हैं और कई विशेष कालों में क्रिया के रूप विचित्र-विचित्र पाते हैं, किन्तु तुर्की भाषा के व्याकरण में हर रूप बहुत स्पष्ट है। सारे व्याकरण की बनावट हम इस प्रकार देख लेते हैं मानो मधुमक्खियाँ हमारे सामने अपना छत्ता बना रही हों। एक तुलनात्मक भाषा-विज्ञान के पंडित ने लिखा है कि हम यह कल्पना कर सकते हैं कि तुर्की भाषा का निर्माण करने के लिए कभी समाज के प्रमुख विद्वान् मिले होंगे और उन्होंने बहुत सोच-विचार कर यह भाषा बनायी होगी किन्तु कोई समाज ऐसी बातें बना नहीं सकता। मनुष्य के मस्तिष्क ने वे आविष्कार किये हैं जो हमें चकित कर रहे हैं। तातार के चरागाहों में अलग अलग बसे हुए इन तुर्कों ने अपने भीतर भरे हुए स्वाभाविक ज्ञान द्वारा प्रेरित होकर अथवा प्रकृति के भीतर अपनी परिस्थिति और प्रेरणा की शक्ति से परिचालित होकर यह आश्चर्यमय भाषा तैयार कर दी।

अब हम कुछ रूपों की परख करेंगे। तुर्की भाषा में Sev (सेव्) क्रिया है जिसका अर्थ 'प्यार करना' है। इसका अर्थ 'प्यार करना' पूर्णरूपेण 'प्यार करना' नहीं है। 'भली-भाँति प्यार करने' के लिए दूसरी क्रिया **सेवमेक्** है। इस धातु से जो संज्ञा बनी है वह **सेव-गु** है, किंतु यह प्यार करने के भाव को सूचित करती है तथा भाववाचक है यह **सेव** धातु सदा एक-सी रहेगी। इसे हम छू भी नहीं सकते। इसके अर्थ को बदलने के लिए हम चाहे जो शब्द या प्रत्यय इसमें चिपकायें और इसका अर्थ स्पष्ट करने के लिए इस धातु में शब्दरूपी जो नग या हीरा जड़ें, किंतु यह धातु अपने मूल रूप में ही रहेगी। इसे हम नाम मात्र भी परिवर्तित नहीं कर

सकते और न इसमें से एक अक्षर भी निकाल सकते हैं। अंग्रेज़ी में क्रियाओं के रूप I fall, I fell, I take, I took, I think, I thought तथा इस प्रकार के अन्य बहुत रूप हैं। (हिन्दी में इस विषय पर और भी अनर्थ है। किस नियम से हम यह सिद्ध कर सकते हैं कि **गया** का **गई** रूप होता है? अगर आप किसी नियम का अनुसरण करेंगे तो **गया** का **गयी** रूप होना चाहिए। **यदि वह गिरता** और **वह गिरता** है, इन दोनों वाक्यों में **गिरता** रूप में कोई भेद नहीं है जो हिंदी न जानने वालों में बड़ी अड़चन पैदा करता है। **गिरना** धातु से **गिरता, गिरा, गिरेगा, गिर सकता है** आदि अनेक रूप दिखाई देते हैं। हिंदी के व्याकरण में स्पष्टता कम है। प्रयत्न होना चाहिए कि व्याकरण के रूप जनता के सामने स्पष्ट और निश्चयात्मक रूप से आयें, वे भ्रम पैदा न करें और दिमाग में उलझन न उत्पन्न करें।—अनु०)

थोड़ी देर के लिए मान लीजिए कि हमारी भाषा में शब्द-रूपावली नहीं है और हमें ऐसा विचार व्यक्त करना पड़े, जैसे **मैं प्यार करता हूँ** (I love), **तू प्यार करता है** (thou lovest) और इसके अन्य रूप अपनी भाषा में पहले पहल व्यक्त करने हों। इस काम के लिए हमें स्वाभाविक यही लगता कि love शब्द को हम विशेषण या अर्ध विशेषण (Participle) का रूप देकर इसे व्यक्त करते। इसका रूप loving, thou loving इत्यादि बना देते। तुर्क लोगों ने अपनी भाषा के लिए ठीक यही रीति अपनायी है। इस समय हमें यह बात जानने की कोई आवश्यकता नहीं कि उन्होंने किस प्रकार अपना participle (अंश-विशेषण) बनाया। तो भी इतना तो हमको अवश्य जान लेना चाहिए कि यह काम उतना सरल नहीं है जितना यह हमारी समझ में आता है। तुर्की भाषा में एक अंश-विशेषण er जोड़ने से बनता है। sev+er का अर्थ इस प्रकार होगा lov+er या lov+ing। 'तू' को तुर्की में sen कहते हैं और चूँकि मूल शब्द में परिवर्तन करने वाले अन्य शब्द या प्रत्यय, तुर्की भाषा में मूल शब्द के अन्त में लगाये जाते हैं, तो 'तू प्यार करता है' (thou lovest) के लिए तुर्की भाषा में sev-er-sen रूप हो जायेगा। तुर्की भाषा में 'तुम' के स्थान पर siz (सिज़) काम में आता है, इस कारण इस भाषा में 'तुम प्यार करते हो' के लिए sev-er-siz रूप बन जाता है। इन सब रूपों में सर्वनाम क्रिया के प्रत्यय से बन जाते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि उक्त तुर्की रूप का अंग्रेज़ी प्रतिरूप Lover-'I, lover-thou, lover हो जाता है जो अंग्रेज़ी में चलते ही नहीं।

अब और तमाशा देखिए, ये प्रत्यय अपूर्णभूत में बदल जाते हैं।

वर्तमान	**अपूर्ण भूत**
Sever-im, I love	Sever-di-m, I loved
sever-sen	sever-di-n
sever	sever-di
Sever-iz	Sever-di-k (miz)
Sever-siz	Sever-di-niz
Sever-ler	Sever-di-ler.

तुर्की भाषा का सबसे अद्भुत अंश उसकी क्रिया है। संस्कृत और ग्रीक के समान इसमें सभी Mood और काल हैं। इसके द्वारा संदेह, अनुमान, आशा आदि के सूक्ष्म भेद भी व्यक्त किये जा सकते हैं। इन सब रूपों में क्रिया का रूप नहीं बदलता। वह ज्यों-का-त्यों रहता है। भिन्न-भिन्न अर्थ व्यक्त करने पर भी क्रिया के रूप में नाम मात्र का परिवर्तन नहीं होता, भले ही पुरुष, वचन और काल में कोई भेद क्यों न हो। किंतु तुर्की क्रिया की एक पहचान बहुत जबर्दस्त है। आर्य-भाषाओं में इस विशेषता की कोई समानता कहीं नहीं पायी जाती। प्रत्येक क्रिया में विशेष-विशेष शब्द चिपकाने पर एक ऐसी शक्ति आ जाती है जिससे Negative (नकार), Causative (कारण), Reflexive (परस्पर संबंध) और कर्त्ता की कर्मसूचक क्रिया का स्पष्ट बोध हो जाता है।

उदाहरणार्थ साधारण धातु Sev-mek का अर्थ प्यार करना है। इसमें इन (in) चिपका दीजिए तो यह क्रिया कर्त्ता का कर्म (Reflexive) सूचित करेगी। अब इसका अर्थ हो जायगा 'अपने को प्यार करना', फलतः इसका अर्थ होगा 'आनंद करना', 'प्रसन्न रहना'। अब इसकी आप सभी Moods और कालों में रूपावली बना सकते हैं। इस दशा में Sevin सब प्रकार से स्वतन्त्र क्रिया की भाँति काम में लाया जायगा। यदि इस Sev-mek में ish (इश्) जोड़ दिया जाय तो परस्पर संबंधसूचक क्रिया बन जायगी और रूप हो जायगा Sev-ish-mek', 'एक दूसरे को प्यार करना।'

क्रियाओं के भिन्न-भिन्न रूप निर्माण करने का उक्त ढंग ही नहीं है। यदि हम किसी धातु के अंत में प्रत्यय जोड़ दें तो वह धातु नकारात्मक हो जायगी। इस प्रकार Sev-mek के बदले Sev-me-mek रूप का अर्थ होगा प्यार नहीं करना। यदि कभी यह आवश्यकता पड़े कि हम प्रेम करने की असंभवता व्यक्त

करना चाहें तो तुर्कों के पास एक नयी धातु वर्तमान है जो उक्त विचार प्रकट करेगी। इस प्रकार Sev-me-mek का अर्थ 'प्यार न करना' हो जाता है तो Sev-me-mek का अर्थ होता है प्यार करने के योग्य न होना। इस ढंग से धातु में अर्थ परिवर्तन लानेवाले शब्द जोड़ते जाने से उसमें ३६ प्रकार के भिन्न-भिन्न अर्थ आ जाते हैं। जैसे—

१. Sev-mek 'प्यार करना।' Sev-me-mek 'प्यार न करना।'

२. Sev-in-mek 'आनंद करना।' Sev-in-me-mek 'आनंद न करना।'

३. Sev-ish-mek 'परस्पर प्यार करना।' Sev-ish-me-mek 'एक दूसरे को प्यार न करना।'

४. Sev-dir-mek 'प्यार करवाना'। Sev-der-me-mek 'किसी से प्यार न करवाना।'

५. Sev-in-der-mek 'आनंद दिलवाना' 'Sev-in-dir-me-mek 'आनंद न दिलवाना'।

६. Sev-ish-dir-mek 'उनका आपस में प्रेम कराना।' Sev-ish-dir-me-mek 'उनका आपस में प्रेम न कराना।'

७. Sev-il-mek 'प्यार किया जाना।' Sev-il-me-mek 'प्यार न किया जाना।'

८. Sev-in-il-mek 'किसी बात पर आनंद का पाना।' Sev-ish-il-me-mek 'किसी बात पर आनंद का न पाना।'

९. Sev-ish-il-mek 'यदि यह काम में लाया जाता।' Sev-ish-il-me-mek 'यदि यह काम में न लाया जाता।'

१०. Sev-dir-il-mek—'प्रेम करने की प्रेरणा देना।'
Sev-dir-me-mek 'प्रेम न करने की प्रेरणा देना।'

११. Sev-in-dir-il-mek 'किसी को आनन्द लेने योग्य बनाना।'
Sev-in-dir-il-me-mek' किसी को आनन्द न लेने योग्य बनाना।'

१२. Sev-ish-dir-il-mek 'परस्पर प्रेम करवाना।'
Sev-ish-dir-il-me-mek 'परस्पर प्रेम न करवाना।'

इस प्रकार उक्त छत्तीस रूप बन जाते हैं। ये सब रूप जो व्याकरणकारों द्वारा स्थिर किये गये, सर्वदा सभी स्थानों में काम में नहीं आते; फिर भी तुर्की भाषा की क्रियाओं की यह विचित्रता देखने योग्य है।

फिनिश वर्ग

साधारणतया यह माना जाता है कि फिन जाति का मूल स्थान यूराल पर्वत-श्रेणी में था। इसलिए इनकी भाषा को यूराली भी कहते हैं। इस स्थान से वे पश्चिम और पूर्व की ओर गये। दक्षिण की ओर भी थोड़े से फिन फैले। इन लोगों के विशेष ऐतिहासिक प्रमाण न होने के कारण निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता। जब जहाँ जो स्थान इनको अच्छा लगा और अपने पशुओं को चराने के लिए इन्हें सुविधा दिखाई दी वहीं ये अपने तम्बू गाड़ देते थे और दो चार पीढ़ी वहाँ रहकर कूच कर देते थे। यदि कोई स्थान उपजाऊ हुआ तो इनका कोई शक्तिशाली दल लड़-भिड़कर अपना कब्जा कर लेता था, और जब उस स्थान पर बसी हुई जाति देखती थी कि हम इस सबल जाति से लड़ नहीं सकते तो बोरिया-बिस्तरा उठाकर अपना रास्ता नापती थी। जहाँ-जहाँ ये जातियाँ बसती थीं वहाँ-वहाँ का नाम अपनी जाति के नाम पर रख देती थीं।

इन निरन्तर युद्धों में इनकी भाषा भी बदलती जाती थी। कुछ लोग कैदी हो जाते थे, इनके शब्द नयी बसी हुई जाति में फैल जाते थे। कुछ लोग जो अपने पुराने ही चरागाहों में रहते थे उनके शब्द भी विजेता जाति की भाषा में मिल जाते थे। इस प्रकार भाषाएँ भी बदल जाती थीं।

फिनिश भाषा को देखने से यह ज्ञात होता है कि इसकी चार शाखाएँ हैं—

चूड़ी, बुलगारी, परमी और उग्री।

चूड़ी भाषा बाल्टिक के तट पर बोली जाती है। ये फिन अपने को Suomalainen कहते हैं जिसका अर्थ है 'झाड़-झंखाड़ के निवासी।' फिन और हंगरी की मग्यार जातियाँ सब तातारों में अति सुसंस्कृत हैं। इनके वीररस के गाने भले ही वंशपरंपरा से दंतकथाओं के रूप में चले आ रहे हैं, पुरानी भाषा में हैं। इनके छंद मात्रा आदि सब प्रकार के सुललित अलंकारों से पूर्ण हैं। फिन लोगों में हाल में कास्ट्रेन, केलग्रेन, स्योगर्न आदि नेताओं के महान् प्रयत्नों से राष्ट्रीय भावना पैदा हो गयी है। इस समय ये रूस के अधीन हैं। (फिन जाति ने महान् त्याग करके अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली है।—अनु०) इनके प्राचीन वीररस के गीत एकत्र कर लिये गये हैं और फिन जाति में राष्ट्रीय भावना लाने के लिए इनका संग्रह प्रकाशित भी हो चुका है, जिसका आकार होमर के इलियट के बराबर है। भले ही फिन ग्रीक न हों और न होमर जैसा वीररस के संगीत का कवि वाइनामोईनेन हो सकता है, तो भी यदि कवि का काम चारों ओर बिखरी हुई प्रकृति और अपने देश की विशेष

प्रकृतिवाली जनता और उसके उद्गारों को प्रदर्शित करना हो तो इन फिन कवियों को होमर के समकक्ष ही रखा जा सकता है। कालेवाला काव्य में होमर के इलियट के समान ही महाकाव्य के गुण हैं। इसके शब्दों ने फिनिश भाषा का रूप निश्चित कर दिया है। इसे पढ़कर यह संदेह होता है कि फिन भाषा ने शब्द पर शब्द चिपकाने वाली भाषाओं की स्थिति छोड़ दी होगी; किन्तु फिन भाषा अभी भी शब्दों पर शब्द चिपकाने वाली ही है। तुर्की भाषा की भाँति ही इसके व्याकरण के रूप हैं और इसमें स्वरों के समन्वय की खूबी भी उसी तरह की है। जैसा हम पहले बता चुके हैं, फिन भाषा में मंगोलियन भाषाओं की विशेषताएँ पायी जाती हैं।

फिन भाषा की कारेलियन और तवाती दो शाखाएँ हैं। एस्थोनियन जाति फिन जाति की पड़ोसी है। इनकी भाषा भी फिन भाषा की निकट संबंधी है। इस भाषा की दो शाखाएँ हैं—**डौरेपात** और **रेवाल**। एस्थोनियन भाषा में कुछ लोकप्रिय गान हैं। इसमें कोई साहित्य नहीं मिलता।

बुलगारिक भाषा डेन्यूब के तटों पर भी बोली जाती है क्योंकि बहुत-से फिन सैनिक जो वहाँ आक्रमण करने गये थे वहीं बस गये। इस **बुलगारी** शब्द का **बुलगारिया** से कोई संबंध नहीं है।

परमी भाषा वोतियाकेस (Votiakes) में बोली जाती है। परमी भाषा का नाम पर्म प्रदेश से पड़ा। यह प्रदेश व्यत्का और काम नदियों के बीच में है। यह नया आविष्कार नहीं है कि बोल्गा के पूर्व के निवासी फिनों और हंगरी के मग्यारों की भाषा में समानता पायी जाती है। उग्रो-फिनिश भाषाएँ जो हंगरी और फिनलैण्ड में बोली जाती हैं समान हैं, यह बात १७९९ में विद्वान् ग्यारमाथी ने सिद्ध कर दी है। यह समानता कुछ उदाहरणों से सिद्ध हो जाती है—

हंगेरियन	**चर्मीसियन**	**अंग्रेजी**
Atya-m	Alya-m	my father
Atya-d	Atya-t	thy father
Atya	Atya-se	His father
Atya-nk	Atya-ne	our father
Atya-tok	Aty-da	your father
Aty-ok	Atya-st	their father

शब्द-रूपावली

हंगेरियन	एस्थोनियन	अंग्रेजी
Nom-ver	Werri	blood
Gen-vere	Werre	of blood
Dat-vernek	Werrele	to blood
Abl-verestol	Werrist	from blood

धातु-रूपावली

हंगेरियन	एस्थोनियन	अंग्रेजी
Lelew	leiau	I find
Leled	leiad	thou findest
Leli	Leiab	he finds
Leljuek	leiaate	you find
Lelik	leaward	they find

फिनिश भाषा की चार शाखाओं की संख्याओं की तुलना

	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
Chudic, Finish :	Yksi	Kaksi	Kolme	Nelja	Viisi	Kuusi	Seitseman	Kahdeksan	Yhdeksan	Kymmenen
Chudic, Esthonian :	Uts	Kats	Kolm	Nelli	Wiis	Kuus	Seitze	Kattesa	Uttesa	Kumme
Bulgaric, Tchere-missian :	Lk	Kok	Kum	Nil	Vis	Kut	Sim	Kandaxe	Endexe	Lu
Bulgaric, Mord-vinian :	Vaike	Kavto	Kolmo	Nile	Vate	Koto	Sisem	Kavsko	Vaikse	Kamen
Permic, Sirianian :	Otik	Kyk	Kujim	Njolj	Vit	Kvait	Sizim	Kokjamys	Okmys	Das
Ugric, Ostiakian :	It	Kat	Chudem	Vjeda	Vet	Chut	Labet	Nida	Arjong	Jong
Ugric, Hungarian :	Egy	Ket	Darom	Negy	Ot	Hat	Het	Njolcz	Kilencz	Iiz

हमने अब तूरानी भाषा-परिवार की चार मुख्य शाखाओं की जाँच कर ली है। ये चार शाखाएं तुंगुसिक, मंगोलियन, तुर्की, फिन या फिनिश भाषाएँ हैं। तुंगुसिक शाखा इन सबमें अवनत दशा में है। इसका व्याकरण चीनी भाषा के व्याकरण से अधिक विकसित नहीं है। इसकी बनावट में कोई ऐसे नियम नहीं हैं जिनसे इस भाषा का भवन किसी शिल्पी के हाथ से बना मालूम हो। चीनी भाषा का व्याकरण सीधा-सादा होने पर भी उसमें वाक्यों की बनावट, शब्दों का उचित स्थान पर रखना, वाक्य की भली-भाँति रचना करना, जिससे पाठक या सुननेवाले उसके शब्दों की एकता का अनुभव करें; ये सब गुण सुन्दर रूप में वर्तमान हैं, तुंगुसिक में नहीं। ये बातें विशेष कर मंचू बोली पर लागू होती हैं। अन्य तुंगुसिक बोलियाँ जो चीन में नहीं बल्कि मंचू जाति की आदि भूमि में बोली जाती हैं, उनका व्याकरण वर्तमान काल में व्याकरण के रूप विकसित करने में लगा हुआ है।

मंगोलियन बोलियाँ तुंगुसिक से उन्नत हैं, किन्तु अपने व्याकरण के रूपों में में वे कोई भेद नहीं देखतीं। मंगोलियन और तुंगुसिक जातियों के मुहावरे सर्वांगीण जीवन प्राप्त करने के लिए जूझ रहे हैं और कास्ट्रेन ने यह भी प्रमाणित किया है कि बुरियात जाति की बोली में क्रिया भी विकसित हो रही है। बुरियात लोगों की क्रियाएँ उन शाखाओं की भाँति हैं जो अपने ही फलों और फूलों के भार से टूट जाती हैं। फिनिश भाषाओं की श्रेष्ठता इस बात में है कि उसमें क्रियाओं के रूप घट रहे हैं, न कि बढ़ रहे हैं, किन्तु शब्द-रूपावली में फिनिश भाषा तुर्की से भी समृद्ध है।

ये भाषाओं के चार वर्ग और समोय्यद भाषा तूरानी भाषा-परिवार की उत्तरी या यूराल-अल्ताई भाषाएँ कही जाती हैं।

चीनी एकाक्षरी भाषा है तथा यह इन सब से अलग है। चीनी के अतिरिक्त जापानी भाषा, कोरिया की भाषा जिसे कोरियाल भी कहते हैं और काकेसश की बहुत-सी भाषाओं का अभी तक ठीक वर्गीकरण नहीं हुआ है। कुछ विद्वानों का मत है कि इनमें मंगोल-परिवार से कुछ समता मिलती है। ये भाषाएँ अभी जीवित रहेंगी और तुलनात्मक भाषा-विज्ञानी इनकी शोध करके इनका वर्गीकरण कर लेंगे।

भाषा का एक वर्ग संसार में और है। वह अमेरिका के आदि-निवासियों की भाषा का है। इनकी भाषा में भी जो धातु शब्दों का अर्थ खोलती है वह स्पष्टतया दिखाई देती है। ये अमेरिका की भाषाएँ भी शब्द-पर-शब्द चिपकानेवाली हैं।

ये तूरानी भाषाएँ परस्पर में उस प्रकार सम्बद्ध नहीं हैं, जिस प्रकार इबरानी (हिब्रू) और अरबी या संस्कृत और ग्रीक परस्पर सम्बद्ध हैं; ये ऐसी भाषाएँ हैं जो एक ही केन्द्र से उत्पन्न हुई हैं। तूरानी भाषाओं में ध्वनि-विकार भी नहीं के बराबर है और इन भाषाओं का विकास भी बहुत कम हुआ है।

नवाँ भाषण

भाषा की उत्पत्ति

"मनुष्य के इतिहास तथा इसके साथ-साथ, इस भौतिक संसार के स्वरूप की जाँच-परख करते समय जब हम उस प्रक्रिया का पता नहीं लगा पाते, जिसके कारण कोई विशेष घटना पैदा हुई हो, तो ऐसी अवस्था में यह आवश्यक और महत्त्व-पूर्ण हो जाता है कि हम यह बात बता सकें कि उक्त घटना किस प्रकार प्राकृतिक कारणों से पैदा हुई होगी। इस प्रकार, यद्यपि इस तथ्य को निश्चित रूप से बताना दुःसाध्य है कि किन उपायों और कारणों से कोई भाषा बनी होगी, तो भी हम यह प्रमाणित कर सकें कि मनुष्य-स्वभाव के अब तक ज्ञात सिद्धांतों से किस प्रकार भाषा के भिन्न-भिन्न अंग धीरे-धीरे पैदा हुए होंगे, तो इससे केवल हमारा मन ही किसी मात्रा तक संतुष्ट न होगा, बल्कि हम, किसी बात को समझने के लिए दिमाग़ को न हिला सकने वाले आलसी दार्शनिकों के उन विचारों से भी थोड़ा स्वतंत्र हो जायँगे जो प्रकृति और आचार के क्षेत्र में जिस बात को समझने में अपने को असमर्थ पाते हैं, उसे भगवान् का चमत्कार बताकर जनता की जिज्ञासा को स्थायी संतोष प्रदान कर देते हैं।"[1]

यह उद्धरण एक स्काच दार्शनिक का है और इस स्थान पर बहुत उपयुक्त है जहाँ कि हम एक शोधक की तरह इस बात का पता चलाने का प्रयत्न कर रहे हैं कि भाषा की उत्पत्ति किस प्रकार हुई? यद्यपि हमने इससमस्या को अपने पहले भाषणों में उस गहन जटिलता और रहस्यमय आवरण से मुक्त कर दिया है, जिसके कारण भाषा प्राचीन युगों में दार्शनिकों के लिए हौवा बनी खड़ी थी, परन्तु इस समय इसका जो अत्यन्त सीधा-साधा रूप हमारे सामने है, वह भी ऐसा लगता है कि मानो मनुष्य की सूझ-बूझ की पहुँच वहाँ तक है ही नहीं। यदि हमसे कोई

१. Dugald Stewart, Vol. iii, p. 35.

इस पहेली का उत्तर पूछे कि किस प्रकार संसार के नाना पदार्थों के चित्र जो हमारी आँखों के भीतर खिचते हैं, और भिन्न-भिन्न इन्द्रियों द्वारा ज्ञात होनेवाले विषय ध्वनि द्वारा किस प्रकार प्रकट किये जाते होंगे, और हमारे विचारों के भीतर किस प्रकार बांधे जाते होंगे? बल्कि इतना ही नहीं कि ये इन्द्रियों के गोचर होनेवाले विषय ध्वनि के भीतर किस रीति से बाँधे जा सकते होंगे, बल्कि हमारे बहुत से विचारों को उत्तेजित भी करते होंगे? यदि हम इन बातों का उत्तर देने का प्रयत्न करें तो बहुत से लोग इसे एक प्रकार का पागलपन समझेंगे। अब देखिए कि इस पहेली में कहाँ तो भिन्न-भिन्न पदार्थों का आँखों के भीतर चित्र बना, यह चित्र भिन्न-भिन्न रंगों का खेल है, और हम इन रंगों को कैसे ध्वनि में परिवर्तित करते हैं और इस ध्वनि से जो शब्द बनते हैं वे किस तरह विचारों में परिणत होते हैं?[१] यहाँ पर हमें इसी पहेली को बूझना और बुझाना है।

हमारे पास इस समय इतिहास के कोई प्रमाण नहीं हैं, जिनसे हम सिद्ध कर सकें कि भाषा की उत्पत्ति इन कारणों से तथा इन आधारों पर हुई; या हम इसकी व्याख्या कर सकें कि यह एक घटना के रूप में, अमुक विशेष स्थान पर और अमुक निश्चित समय में हुई। इतिहास तभी आरंभ होता है, जब मनुष्य ने भाषा का आविष्कार कर लिया था, बल्कि भाषा बन चुकने के असंख्य वर्षों बाद। परंपरागत प्राचीन इतिहास और कथाएँ, यह बात बताने में चुप हो जाती हैं कि मनुष्य को उसके प्रारंभिक शब्द और विचार कब और कैसे प्राप्त हुए होंगे? इसमें नाम मात्र संशय नहीं हो सकता कि यदि हम वे ऐतिहासिक प्रक्रियाएँ जान जायँ कि किसी मनुष्य के मुँह में पहले-पहल कुछ तोतले शब्द कैसे आये होंगे? या यह कहिए कि कोई मनुष्य पहले-पहल कब और कैसे तुतलाया होगा, तो इससे अधिक रस-भरी बात शायद ही कोई दूसरी हो। ऐसे ज्ञान का एक परिणाम यह भी होता कि हम इस विषय पर नाना मुनियों के जो नाना मत हैं, उनके गोरखधंधे से भी छूट जाते। लेकिन यह हमारा परम दुर्भाग्य है कि यह ज्ञान अभी तक हमारे भाग्य में बदा नहीं है। यदि यह बात अन्य प्रकार की हो, तो हम मानवीय[२] मन का जो

१. Herder; as quoted by steinthal urspring der sprache, s. 39.

२. शोध के इन सब पथों में जब हम सदूर अतीत तक पहुँच जाते हैं तब प्राचीन

प्रारंभिक इतिहास है, उसके विषय में कुछ भी न समझ सकते। हमको बताया जाता है कि प्रथम मानव परमात्मा का पुत्र था और हमको यह भी बताया जाता है कि भगवान् ने उसे अपना जैसा ही रूप दिया। उसने पृथ्वी की धूल अर्थात् मिट्टी से उसका रूप रचा और उसके नथनों के भीतर जान फूंक दी। ये सीधे-सादे तथ्य हैं और ईसाई लोग इन्हें स्वीकार करते हैं। यदि हम ऊपर के तथ्यों पर विचार-विमर्श करें तो मनुष्य की बुद्धि की धार कुंद हो जाती है और हम इधर-उधर बगलें झाकने लगते हैं। हमारे मन की बनावट या उसका संगठन ही ऐसा है कि वह किसी पदार्थ के सम्पूर्ण आदि-काल या सम्पूर्ण समाप्ति के काल को अपने भीतर ग्रहण कर सकता है, अथवा यों कहिए कि पूर्णतया समझ सकता है। यदि हम यह कल्पना करने का प्रयत्न करें कि सृष्टि के आरंभ में एक मनुष्य पैदा हुआ और वह भी छोटे बच्चे के रूप में, वह धीमे-धीमे अपनी शारीरिक और मानसिक शक्तियाँ बढ़ाने लगा, तो यह हमारी बुद्धि के बाहर की बात है कि हम यह सोचें कि वह बिना किसी प्रकृति के शक्तिमान् सहायक की मदद के एक दिन भी जीता रह सका होगा? यदि हम इसके विरुद्ध यह कल्पना करें कि जिस पहले आदमी की इस सृष्टि में रचना की गयी होगी वह शारीरिक तथा मानसिक शक्तियों से परिपूर्ण था, तो हमारी विचार-शक्ति इस कल्पना में असमर्थ रहेगी, क्योंकि इसमें यह बाधा उपस्थित होती है कि हमें इसमें कार्य-कारण की संगति नहीं दिखाई देती, जो बात हमारी विचारशक्ति से परे है।.भाषा की आरंभिक उत्पत्ति के विषय में यही बात लागू होती है, धर्म के धुरंधर लोग यह बताते हैं कि भाषा परमात्मा ने बनायी है। वे एक विचित्र भूल-

समय के पहलू दूसरा ही रूप पकड़ लेते हैं। हम इस समय इस विषय पर जो आगे बढ़ चुके हैं उसका रूप उससे बहुत ही भिन्न है। यदि हम इस रास्ते पर अपनी खोज में पीछे को चलते रहें तो यह पथ अंधकार के गर्भ में लीन हो जाता है। यह इस स्थल पर पहुँचकर अदृश्य ही नहीं हो जाता वरन् हम उस स्थान पर पहुँच जाते हैं जहाँ हम इसकी कल्पना भी नहीं कर सकते। यहाँ पर हमारा रास्ता ही नहीं कट जाता बल्कि हमारे सामने बहुत बड़ी खंदक दिखाई पड़ने लगती है। यह गहरी खंदक हमारे ज्ञान और किसी पदार्थ के समझने योग्य प्रारम्भ के विज्ञान के बीच आकर आगे बढ़ने का रास्ता ही रोक देती है। Whewell, Indications p. 166.

भुलैया में पड़ जाते हैं क्योंकि उक्त कथन करते समय वे भगवान् को मनुष्य के आकार का ही समझते हैं, क्योंकि जब वे अपने ऊपर कहे गये कथन की विस्तृत व्याख्या करने लगते हैं कि भगवान् ने किस प्रकार मनुष्यों को सिखाने के लिए कोश और व्याकरण रचे होंगे और उसने किस प्रकार बहरों और गूंगों के स्कूल के अध्यापक की तरह सृष्टि के आरंभ में आदमी को भाषा सिखायी होगी। इन धर्माचार्यों को इसका नाम मात्र भी पता नहीं है कि यदि हम उनका यह उत्तर-पक्ष मान भी लें तो उनकी बात से इतना ही खुलासा होता है कि आदि मानव ने किस प्रकार भाषा सीखी होगी। यदि उस समय किसी बनी बनायी तैयार भाषा का अस्तित्व रहा होगा तो इस दशा में भी यह रहस्य सदा की भाँति बिना सुलझाये ही रह जायगा कि परमात्मा की वह भाषा किस प्रकार बनी या बनायी गयी? इसके विपरीत वे दार्शनिक जो यह कल्पना करते हैं कि आदि मनुष्य अपने ही सहारे आगे बढ़ा और किसी समय गूंगेपन से ऊपर उठा तथा उसने बाद को प्रत्येक नये पदार्थ या विचार के प्रतिनिधि के रूप में नये-नये शब्द गढ़े; यह भूल जाते हैं कि मनुष्य ने अपनी ही शक्ति के बलबूते पर वाणी बोलने की शक्ति प्राप्त की होगी और यही शक्ति मनुष्य का विशेष गुण या पहचान है, जिसे गूंगे या बोल न सकने वाले जीव-जन्तु कभी प्राप्त न कर सके। इससे यह मालूम पड़ता है कि वे लोग हमारे सामने जो समस्या है, उसका वास्तविक रूप ही नहीं पहचानते, क्योंकि वे दार्शनिक इस बात का महत्त्व ही नहीं समझते कि शिशु वाणी-हीन पैदा होते हैं और वे क्रम से भाषा का ज्ञान प्राप्त करते हैं। ये वाणी-हीन बच्चे गूंगे पैदा होते हैं और बाद को इनको वह वाणी मिलती है कि इनकी वाग्-मिता पर जनता लट्टू हो जाती है। हम जानते हैं कि पक्षियों के पर और डैने होते हैं और यद्यपि वे बचपन में उड़ने में असमर्थ रहते हैं, तो भी सब विश्वास करते हैं कि समय पर ये बच्चे उड़ेंगे, क्योंकि उनके पास ये उड़ने के साधन तैयार और मजबूत हो रहे हैं। यहाँ हम बच्चों की अन्य शारीरिक और आध्यात्मिक शक्तियों के विषय में कुछ न कहेंगे, जो उनमें पैदा होने के समय से ही वर्तमान रहती हैं। हम यहाँ पर, यथासंभव, भाषा की प्रारंभिक शक्ति और उसके विकास पर कुछ बताना चाहते हैं। मुझे भय है कि इसके लिए हमें बच्चों के तुतलाने के समय का अध्ययन न करना होगा, क्योंकि यह वैसा ही हो जायगा कि जैसा मिस्र के एक राजा ने नये पैदा हुए दो बच्चे एक गड़रिये को सौंप दिये और उसको यह आज्ञा दी कि इन नये जनमे बच्चों को बकरियों का दूध पिलाओ तथा इनके सामने भूलकर भी एक 'शब्द न बोलो; किन्तु यह ध्यान से देखते रहो कि ये बच्चे

पहले-पहल क्या शब्द[१] बोलते हैं और उसका उच्चारण कैसे करते हैं? कहा जाता है कि स्वाबिया के सम्राट् फ्रीड्रिख द्वितीय, स्काटलैंड के राजा जेम्स चतुर्थ और भारत के एक मुग़ल सम्राट् ने भी यही प्रयोग किया था। इस प्रयोग से हमारी समस्या पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता, न हम इससे यही जान सकते हैं कि मानव-जाति की प्रारंभिक भाषा कौन सी थी और न ही इससे यह मालूम होता है कि क्या भाषा मनुष्य की प्रकृति में ही वर्तमान है? बच्चे जब भाषा सीखते हैं तो वे भाषा का आविष्कार नहीं करते। उनके लिए भाषा बनी बनायी तैयार रहती है। हज़ारों वर्षों से बनी यह भाषा उनको बपौती के रूप में मिलती है। वे धीरे-धीरे एक भाषा सीखते हैं और आयु बढ़ने के साथ-साथ वे कभी-कभी दूसरी और तीसरी भाषाएँ भी सीख लेते हैं। इस तथ्य की पूछ-ताछ करना व्यर्थ है कि बच्चे, यदि किसी स्थान पर अकेले रख दिये जाते तो भाषा का आविष्कार कर सकते थे या नहीं? ऐसा प्रयोग करना असंभव, प्रकृति-विरुद्ध और कानून के भी खिलाफ होगा और बिना बार-बार इस प्रकार का प्रयोग किये कोई यह नहीं बता सकता कि जो यह विश्वास करते हैं कि उक्त दशा में नन्हे नन्हे बच्चे किसी बोली का आविष्कार कर लेते या जो मानते हैं कि ये बच्चे ऐसा न कर पाते तो; इन दोनों की पुष्टि या खंडन का प्रयास करना व्यर्थ है। हम केवल इतना जानते हैं कि एक अंग्रेज़ बच्चा यदि वह उक्त दशा में रह पाता तो वह किसी प्रकार अंग्रेज़ी न सीख पाता और संसार के सारे इतिहास में एक घटना भी ऐसी नहीं मिलती है कि ऐसी दशा में कभी किसी भाषा का आविष्कार हुआ हो।

१. Farrar, **ओरिजन आफ लैंगवेज** p. 10, Grimm, Urspring der Sprache, s. 32. **कहा जाता है कि इन बच्चों ने** Bekos (**बेकौस**) **ध्वनि की और इस बेकौस का अर्थ** Phrygian (**फ्रीजियन**) **भाषा में "रोटी" था। उस समय यह भी माना जाता था कि मनुष्य की प्रारम्भिक भाषा** Phrygian (**फ्रीजियन**) **ही थी। उक्त शब्द उसी मूल धातु से बना है जिससे अंग्रेज़ी में** to Bake **"पकाना, सेकना" बना है। ये अभागे बच्चे पकाने या सेकने की कल्पना किस प्रकार कर गये; जिस शब्द के भीतर अनाज की भी कल्पना है, चक्की की भी कल्पना है, भट्टी के विचार भी मन में उठते हैं और मन में आग का भी चित्र आ जाता है? यह बात मिस्र के पुराने विद्वानों को सूझी हो, ऐसा नहीं मालूम पड़ता।**

यदि हम पक्षियों के उड़ने की शक्ति के विषय में ज्ञान प्राप्त करना चाहते हों और यह उड़ने की शक्ति पक्षियों की एक विशेष पहचान है तो हम केवल इस प्रकार यह ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। हमारा पहला काम यह है कि हम पक्षियों की बनावट की तुलना अन्य जीवों से करें जिनके पंख नहीं होते और दूसरी बात जो हमको करनी पड़ेगी वह यह है कि हम उस दशा का अध्ययन करें जिसके वर्तमान होने से ही उड़ने का कार्य संभव हो सकता है। भाषा के विषय में भी इसी प्रकार के नियमों से सफलता प्राप्त हो सकती है। वाणी मनुष्य को अन्य सब जीवों से पृथक् करती है, इसके द्वारा ही सृष्टि के सब जीवों से मनुष्य पहचाना जाता है। यदि हमारी इच्छा यह हो कि हम मनुष्य की भाषा की वास्तविक प्रकृति के विषय में अधिक निश्चित निदानों पर पहुँचें तो हम केवल मात्र इतना कर सकते हैं कि मनुष्य की तुलना उन जानवरों से करें जो जहाँ तक वाणी का संबंध है उसके बहुत ही निकट जान पड़ते हों और इस प्रकार यह आविष्कार करने का प्रयत्न करें कि मनुष्य की उनसे किन थोड़ी सी बातों में समानता है तथा किन किन बातों में वह मनुष्य इनसे अपनी विशेषता रखता है। इस तथ्य का आविष्कार करने के बाद ही हम इस बात की जिज्ञासा कर सकते हैं कि किस अवस्था में किसी भाषा का उत्पन्न होना संभव है। इस विषय पर हम इतना ही कर सकते हैं, इससे अधिक और कुछ नहीं। हमें इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि ज्ञान प्राप्त करने के हमारे साधन या यंत्र कितने ही सूक्ष्म और विस्मय में डालने वाले क्यों न हों, किन्तु वे अभी तक इतने दुर्बल हैं कि हम उनके सहारे अपनी कल्पना की उड़ान में सभी चोटियों पर उड़कर नहीं जा सकते।

अन्य जीवों के साथ मनुष्य की तुलना करते समय हमें शरीर की बनावट का प्रश्न नहीं उठाना चाहिए और न यही विचार करना चाहिए कि क्या मनुष्य और बंदर के शरीर में जो भेद है वह कम या अधिक मात्रा का है या उनकी बनावट के प्रकार में भेद है। इस बात से हमें नाममात्र घबड़ाने की आवश्यकता नहीं है, यदि छोटे कीड़े-मकोड़ों की बनावट भी ऐसी है कि जिसे देखकर हम अवाक् रह जाते हैं या यदि छोटे से छोटे जन्तु के शरीर की बनावट इतनी पूरी-पूरी और सूक्ष्म है कि जो हमें उसके बनाने वाले के अनंत ज्ञान की एक झाँकी देती है और यह झाँकी ऐसी होती है कि जिससे उस सृष्टि करने वाली दैवी शक्ति की हमें सूचना मिल जाती है, जिससे हम इतना तो अवश्य जान लेते हैं कि यह ऐसी कोई शक्ति है जो हमारे बल-बूते की और कल्पना की शक्ति के बाहर की है, तो हम उसकी सृष्टि के सबसे अधिक सुसंगठित अंगयुक्त देही की आलोचना कर सकते हैं। किस ज्ञान से ऐसे उच्च जीव की

अवहेलना कर सकते हैं जो कि हमारे ही समान आश्चर्यजनक-सुसंगठित रीति से बना हुआ है? क्या इस सृष्टि में ऐसे बहुत-से जीव-जन्तु नहीं हैं जो मनुष्य से भी अधिक सूक्ष्म और सुसंगठित रीति से बने हुए हैं? क्या हम शेर की शक्ति, उक़ाब की दृष्टि और प्रत्येक पक्षी के डैनों की उच्च उड़ान बड़े चाव से नहीं देखते हैं? यदि ऐसे पशुओं का अस्तित्व रहता जो अपने अंगों और शरीरों की बनावट में सब प्रकार से वैसे ही पूर्ण होते जैसा कि मनुष्य, बल्कि इतना ही नहीं, मनुष्य से भी और सूक्ष्म रीति से बने होते, तो कोई विचारशील आदमी इस बात को देखकर बेचैन न होता। उसकी वास्तविक उच्चता अन्य कारणों पर आधारित है। सिडनी स्मिथ कहता है—"मनुष्य की श्रेष्ठता के विषय में मुझे पक्का विश्वास है और इस विश्वास से मैं कभी डिगता भी नहीं हूँ। साथ ही मुझे बैबून की बुद्धि पर बहुत तरस आता है और मैं निश्चित रूप से यह समझ बैठा हूँ कि बिना पूंछ का नीला बंदर कविता बनाकर हमारे कवियों, चित्रकारों और संगीतज्ञों से टक्कर न ले सकेगा।" सिडनी स्मिथ की गंभीर विषयों को हंसी मज़ाक के ढंग में कहने की आदत की इधर विद्वानों ने कड़ी आलोचना की है, परन्तु हास्य तथा व्यंग्य कभी-कभी किसी विषय पर पूर्ण विश्वास होने के कारण भी किया जाता है। केवल गंभीरता से ही उस विश्वास का पूरा पता नहीं चलता।

अब हमारी वर्तमान समस्या के संबंध में, इस विषय पर संदेह करने की कोई गुंजाइश नहीं है कि कुछ विशेष प्रकार के पशुओं में शरीर के वे सभी अंग वर्तमान हैं, जिनके द्वारा मुँह से वाणी निकलती है। अंग्रेज़ी वर्णमाला का एक भी अक्षर ऐसा नहीं है जिसका उच्चारण तोता न कर सकता हो। इस पर भी तोतों के समाज ने किसी प्रकार की भाषा को जन्म नहीं दिया, यदि हम इसके कारण को समझने लगें तो स्पष्ट ही मालूम हो जायगा कि तोते के शरीर के भीतर ध्वनि उत्पन्न करने वाले अंगों की कोई कमी नहीं है; किन्तु मन की शक्ति में कुछ त्रुटि होने के कारण ही तोते भाषा उत्पन्न न कर सके। इन दोनों जीवों की केवल मानसिक शक्तियों की तुलना करके ही, हम ऐसी आशा कर सकते हैं कि हम ये बातें जानें कि भाषा की उत्पत्ति किन-किन मानसिक शक्तियों द्वारा होती है? सृष्टि के निरीक्षण से हमें यही ज्ञात होता है कि मनुष्य के मन की ही शक्तियाँ ऐसी हैं, जो भाषा को जन्म दे सकती हैं और किसी जीव का मन और बुद्धि इतनी उन्नत अवस्था में नहीं है कि उसके समाज में बोली का आविर्भाव हो सके।

मैंने यहाँ मानसिक शक्ति का उल्लेख किया है और मेरा प्रयोजन यह दावा

करने का भी है कि उच्च स्तर के जीवों में यह मानसिक या बौद्धिक शक्ति कम नहीं है। इन जीवों की सब इन्द्रियाँ अपना-अपना काम ठीक से करती हैं। इनमें वह शक्ति भी है जिसे अनुभव-का-ज्ञान कहते हैं, इनमें स्मृति भी है, इच्छाशक्ति और बुद्धि का भी इनमें अभाव नहीं है। इस विषय पर हमें केवल यह ध्यान रखना पड़ेगा कि मनुष्य की बुद्धि में तुलना करने और नाना अंग युक्त किसी पदार्थ को उसके अलग-अलग अंगों के रूप में नहीं बल्कि उसकी एकता को समझ सकने या ग्रहण करने की शक्ति है। इस विषय पर विद्वान् एम० पी० फ्लोरेंस ने अपने श्रेष्ठ ग्रंथ ('De la Raison, du Genie, et de la Folie,' प्रतिभा तथा पागलपन के कारण) में बहुत उत्तम वर्णन दिया है। अनेक मनुष्य ऐसे भी हैं कि जिनको यह बात सुनकर ही अत्यन्त घबराहट हो जाती है कि नीले बन्दरों के समान कुछ पशुओं में भी आत्मा का आभास मिलता है और वे विचार करने की योग्यता भी रखते हैं। उनकी इस घबराहट का कोई कारण नहीं है। यह घबराहट उन्होंने स्वयं अपने मन में अकारण पैदा कर रखी है, क्योंकि यदि कुछ लोग आत्म-विचार आदि शब्दों का प्रयोग करें और उनका स्पष्ट अर्थ बिना समझे-बूझे उनको काम में लायें, और कुछ अन्य ऐसे शब्द वे बोलने लगें जिनका अर्थ वे स्वयं नहीं समझ पाते, तो ये शब्द उनके लिए हौवा हो जायेंगे और इनसे उनको कष्ट मात्र ही मिल सकता है और कुछ नहीं। यदि हम अपने मन में यह प्रश्न करें कि क्या पशुओं की भी आत्मा होती है? तो हम कदापि किसी निदान पर न पहुँच सकेंगे; क्योंकि ग्रीक दार्शनिक अरस्तू से लेकर जर्मन विद्वान् हेगल तक अनगिनत विद्वानों ने आत्मा की जो परिभाषाएँ की हैं, उनसे यह मालूम होता है कि इस आत्मा शब्द का अर्थ सब कुछ है और कुछ भी नहीं है। मनोविज्ञान में इस आत्मा शब्द के अंधाधुंध प्रयोग ने इसकी **ऐसी** अनर्थक और उलझन में फंसाने वाली परिभाषा की है कि दार्शनिक डेकार्टीज़ ने बताया है कि पशुओं को **जीवित मशीन** कहना चाहिए तथा लाइबनित्स का कहना है कि पशु आध्यात्मिक जीव हैं और उनकी आत्माएँ अमर हैं। डेकार्टीज़ कहता है—"सबसे बड़ा भ्रम वह है जिसके कारण हम लोग ईश्वर पर विश्वास नहीं करते, उसके बाद बड़ी भूल यह है कि पुण्य के पवित्र पथ से दुर्बल बुद्धिवालों को कोई बात नहीं बहका सकती, एवं जितना यह विश्वास करना कि पशुओं की आत्मा उसी प्रकार की है जैसी हम लोगों की और इसके परिणामस्वरूप हमें इस जीवन के बाद न तो किसी बात का डर होना चाहिए न ही किसी बात की आशा करनी चाहिए, जैसा कि मक्खियाँ और चीटियाँ करती हैं, क्योंकि वे भविष्य को सोचतीं ही नहीं।

यदि हम इस विषय पर यह जानते होते कि हमारी और पशुओं की आत्मा में कितना बड़ा भेद है, तो हम भली-भाँति यह समझ सकते कि हमारी आत्मा हमारे शरीर से विलकुल भिन्न पदार्थ है और इसलिए वह शरीर के साथ मरती नहीं।"

उक्त कथन के भाव बहुत उत्तम हैं किन्तु इसके भीतर जो दलीलें दी गयी हैं, वे बहुत ही लचर हैं। उक्त कथन से यह प्रमाणित नहीं होता कि पशुओं में आत्मा नहीं है, भले ही उनके भीतर मानवीय आत्मा न हो। हमारे इस कथन से यह निदान नहीं निकलता कि मनुष्यों की आत्माएँ अमर नहीं हैं, क्योंकि पशुओं की आत्माएँ अमर नहीं, और न ही हमारे मुख्य सिद्धान्त का अभी तक कोई दार्शनिक खंडन ही कर सका है। इस प्रकार का दावा सिद्ध करने का कोई प्रमाण अभी तक नहीं मिल सका है कि पशुओं के मरने के साथ ही उनकी आत्मा भी नष्ट हो जाती है और सदा के लिए उसका अंत हो जाता है। लाइबनित्स ने डेकार्टीज से भी अधिक प्रबल युक्तियों के साथ मनुष्य की आत्मा की अमरता का पक्ष लिया है और वह कहता है—"बहुत शोध के बाद मुझे यह ज्ञान प्राप्त हुआ है कि पशुओं की आत्मा और उनकी चेतनता, मनुष्य की आत्मा की अमरता में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करती, बल्कि तथ्य इसके विपरीत है और यदि हम यह विश्वास करें कि सभी आत्माएँ अविनश्वर हैं, तो इससे अधिक आत्मा की अमरता की पुष्टि और क्या हो सकती है?"

इन झंझटों में पड़ने के स्थान पर अब हम स्पष्टतया तथ्यों को देखें, क्योंकि ये उलझनें शब्दों की ठीक-ठीक परिभाषा या उनके ठीक-ठीक अर्थ न होने के कारण उठ खड़ी होती हैं। प्रत्येक पक्षपातरहित मनुष्य, जो आत्मा के विषय में शोध करता है, वह यह अवश्य ही स्वीकार करेगा कि—

१. पशु आँखों से देखते हैं, कानों से सुनते हैं, जिह्वा से स्वाद लेते हैं, नाक से सूंघते हैं और चमड़े से ठंड, गरमी सुख-दुःख आदि का अनुभव करते हैं। हमारे इस कथन का अर्थ यह है कि मनुष्य के समान उनकी भी पाँचों इन्द्रियाँ हैं, और न तो एक भी इन्द्रिय कम है, न ज्यादा। उनमें चेतनता है और पदार्थ-ज्ञान भी है। इस तथ्य को फ्लोरेंस महोदय ने एक बहुत ही दिलचस्प प्रयोग द्वारा हमारे सामने रखा है। यदि एक पक्षी की आँखों की मांस-पेशी का वह मूल निकाल दिया जाय जिससे वह देखता है तो वह कुछ भी नहीं देख पाता है और अंधा हो जाता है। फल यह होता है कि पक्षी की आँख के भीतर जो एक चित्रपट होता है जिसमें सब पदार्थों के चित्र ग्रहण करके वह उन्हें देख पाता है, उसमें पदार्थों के चित्र

प्रतिबिम्बित होने बंद हो जाते हैं। पक्षी अंधा हो जाता है क्योंकि ज्ञानतंतुओं की गड़बड़ी से उसकी आँखों ने चेतनता खो दी है। यदि इसके विपरीत मस्तिष्क में आँख से जो ज्ञानतंतु जुड़े हुए रहते हैं, उनको किसी प्रकार से क्षति पहुँचा दी जाय तो आँख के पट पर चित्र तो प्रतिबिम्बित होगा और पुतली भी हिलने लगेगी किंतु पक्षी कुछ देख न पायेगा। कारण यह है कि जिस ज्ञानतंतु की सहायता से आँख देख पाती थी उस तंतु का संबंध अब मस्तिष्क से न रहा।

२. पशुओं को सुख-दुःख का अनुभव भी होता है। आप एक कुत्ते को पीटिए तो उस पर भी इस पीटने का वही प्रभाव पड़ता है, जो एक बच्चे पर, अर्थात् वह इस दंड से कुछ शिक्षा ग्रहण करता है और जब आप एक कुत्ते को अच्छी तरह खिलाएँगे और उससे लाड़-प्यार करेंगे तो उसकी आदतें भी वैसी पड़ जाएँगी, जैसी इस हालत में किसी बच्चे की आदतें बदल जाती हैं। हम इस विषय पर कुत्ते के आचरण से ही उसके हृदय का परिवर्तन समझ पाते हैं। छोटे बच्चों की तरह हमें इस बात पर विश्वास करना पड़ेगा कि हमारे व्यवहार के कारण कुत्ते ने अपना आचरण बदल दिया है और बच्चे ने भी अपने को सुधार या बिगाड़ लिया है। इन्हीं संकेतों से हम उन्हें समझ पाते हैं; और प्रमाण हमारे पास कोई नहीं है।

३. पशु भूलते नहीं अथवा जैसा कि दार्शनिक कहते हैं पशुओं में स्मरणशक्ति वर्तमान है। वे अपने स्वामी को पहचानते हैं, वे अपना घर भी अच्छी तरह जानते हैं, वे अपने मित्रों और उपकारकों को देखकर किसी न किसी रूप में अपना आनंद प्रकट करते हैं और वे उस पशु या मनुष्य के लिए अपने हृदय में द्वेष-भाव वर्षों तक छिपाये रहते हैं, जिसने उन्हें कभी कोई हानि पहुँचायी हो। जिन्होंने होमर का काव्य ग्रंथ 'ओडेसी' पढ़ा होगा वे आसानी से स्मरण करेंगे कि 'आर्गोस' नामक एक कुत्ता वर्षों तक युलीसिस से बिछुड़ा रहा और वर्षों बाद उससे मिलने पर उसने उसे तुरंत पहचान लिया।

४. पशु पदार्थों की तुलना कर सकते हैं और उनकी विभिन्नता को भी पहचान लेते हैं। तोता अखरोट या इसी प्रकार के किसी फल को अपनी चोंच से पकड़ कर बहुत ऊंचा ले जाता है, फिर उसे वहाँ से नीचे फेंकता है ताकि वह टूट जाय। इससे पता चलता है कि उसने अखरोट को तोड़ने का यह उपाय अनेक उपायों की तुलना करने के बाद निकाला होगा। अन्य फल जो नरम होते हैं, उनको भी वह उनकी नरमी से पहचान लेता है कि इनको मैं ऐसे ही खा लूँगा, इनके छिलके उतारने की कोई आवश्यकता नहीं है। यह बात भी वह नाना फलों का

मिलान करके सीख जाता है। वह जानता है कि अखरोट का छिलका कड़ा है, उसे तोड़ना चाहिए और उसके भीतर जो गूदा है उसे खा जाना चाहिए। साधारण फलों को वह बिना छिलका उतारे ही खा जाता है।

५, पशुओं में अपनी स्वतंत्र इच्छा-शक्ति भी होती है, इस विषय पर वे घुड़सवार प्रमाण दे सकते हैं, जिन्हें अड़ियल घोड़ों पर सवार होने का अवसर मिला हो।

६. पशुओं में लज्जा और अभिमान भी पाया जाता है। इस विषय पर कोई भी शिकारी मेरा ही साथ देगा, क्योंकि जब एक 'रिट्रीवर' जाति का कुत्ता अपने मालिक द्वारा मारे गये तीतर को घनी झाड़ियों से ढूँढ लाता है और बड़े आदर और संकोच के साथ अपने शिकारी मालिक के पाँव पर रख देता है, तो उसके शरीर की चेष्टाओं से ये भाव स्पष्ट व्यक्त होते हैं। इस विषय पर कठिनाई वहाँ आ पड़ती है, जहाँ हम दार्शनिक-भाषा का प्रयोग करने लगते हैं, अर्थात् जहाँ हम इस विषय पर विचार करने लगते हैं कि पशुओं में सदाचार और दुराचार का विचार है कि नहीं, उनमें सद्-असद् विवेक वर्तमान है या नहीं और उनमें भलाई तथा बुराई में अंतर करने और पहचानने की शक्ति है या नहीं ? इन विचारों से ऐसी समस्याओं के समाधान में गड़बड़ी आ जाती है। इस कारण जब हम देखते हैं कि इन विषयों का विचार करने से हमें कोई लाभ नहीं होता, तो हमें ये विषय छोड़ देने चाहिए।

७. पशु राग और द्वेष के भाव प्रकट करते हैं, कुत्तों की कई प्रामाणिक घटनाएँ पायी जाती हैं, जिनमें ऐसा देखा गया है कि वे अपने स्वामी के मरने पर भूखे और प्यासे रहकर उसकी समाधि पर ही मर गये हैं। यह भी देखा जाता है कि पशु जिनसे घृणा करते हैं, कई दिनों तक उनकी घात में बैठकर उनसे बदला लेते हैं।

यह सब तथ्य हमारे पास होते हुए भी हम यह कैसे अस्वीकार करें कि पशुओं में बुद्धि से समझने की शक्ति, स्मृति, इच्छाशक्ति और ज्ञान तथा विचार-शक्ति नहीं होती है।

कुछ वैज्ञानिक जब ऐसी कल्पना करते हैं कि मनुष्यों में विचार और ज्ञान शक्ति है तथा जानवरों में केवल सहज प्रवृत्ति है, तो वे समझते हैं कि उन्होंने इस विषय पर सब बातें बतला दीं। अब यदि हम उक्त दो शब्दों को उनके स्वीकृत अर्थों में लें तो दोनों[१] में विशेष अन्तर नहीं मालूम पड़ता। सहज प्रवृ-

१. 'बुद्धि के स्पष्ट चिह्न जो अन्य पशुओं में देखे जाते हैं वे उस बुद्धि के हैं;

त्तियाँ मनुष्यों और पशु दोनों में पायी जाती हैं। बच्चा जब दूध पीने के लिए अपनी माता के स्तन को चूसता है तो वह यह काम सहज प्रवृत्ति के कारण ही कर पाता है। मकड़ी इसी सहज प्रवृत्ति के कारण अपना जाला तानती है; मधुमक्खी इसी सहज प्रवृत्ति से प्रेरित होकर अपने षट्कोण कमरे बनाती है। कोई विद्वान यह नहीं कहेगा कि बच्चों को स्तन का दूध पीने के लिए सहज प्रवृत्ति प्रेरित नहीं करती। यह काम करने के कारण कोई यह नहीं कहेगा कि बच्चे को शरीर-शास्त्र का ज्ञान रहा होगा, क्योंकि बच्चे ने स्तन की उन्हीं मांस-पेशियों को दबाया जिनसे स्तन से दूध निकलता है, और न कोई यह कह सकता है कि मकड़ी ने जाला ताना है, इस कारण उसने जुलाहे का काम सीख रखा होगा, और न ही कोई यह कहेगा कि मधुमक्खी ने छः कोने वाली कोठरियाँ बिलकुल माप कर बनायी हैं, इसलिए उसे रेखा-गणित का ज्ञान है; क्योंकि हम उक्त विज्ञानों की सहायता के विना यह काम नहीं कर सकते। यदि हम मकड़ी का जाला नोचें तो मकड़ी या तो फिर से जाले को ठीक करने लगती है या अधिक दिक होने पर छोड़ देती है। ऐसी दशा में मकड़ी जाला बुनने के बारे में अपने निरीक्षण, तुलना या विचारशक्ति के अनुसार और उससे निर्णय निकाल कर काम करती है। अवश्य ही पशुओं में सहज प्रवृत्ति द्वारा जो यान्त्रिक और आचार का ज्ञान प्राप्त होता है, मनुष्य में उतने प्रबल रूप में नहीं देखा जाता, किन्तु सहज प्रवृत्ति मनुष्य और पशु दोनों में रहती और ज्ञान तथा विचार की शक्ति भी कम या अधिक मात्रा में दोनों में पायी जाती है।

इस स्थिति में मनुष्य और पशु में क्या अंतर है?[1] अब हमें देखना चाहिए कि

जिसे मैं इस बुद्धि से मिली हुई प्रवृत्ति से मिश्रित समझता हूँ, और इस पर मुझ कोई सन्देह नहीं।' —Brown, Works, Vol. I. p. 446.

१. भारत में मनुष्य और पशु में ज्ञानियों ने भेद नहीं किया है, सब में एक ही आत्मा देखी है। इसी कारण वेद में देवताओं का कुत्ता शुनासीर उनके हित में काम करता है तथा गीता में लिखा गया है—विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि। शुनि चैव श्वपाके च पंडिताः समदर्शिनः।। भारत की संस्कृति में पशुओं में भी वही सब गुण मान लिये गये हैं जो मनुष्य में हैं। जातकों की कहानियाँ, पंचतंत्र, हितोपदेश आदि इसके प्रमाण हैं। —अनु०

कौन सी बात ऐसी है जो केवल मात्र मनुष्य कर सकता है और जिसका पशु-जगत् में हमें कोई चिह्न नहीं मिलता और जिसका कुछ पता नहीं चलता है। मैं बिना किसी संकोच के इसका यह उत्तर दूँगा कि केवल भाषा का अस्तित्व मनुष्य को पशु से अलग कर देता है। मनुष्य वाणी द्वारा बोलता है किन्तु अभी तक किसी पशु के मुँह से एक शब्द भी न निकल पाया। भाषा की दौड़ में हम उसके शिखर पर पहुँच गये हैं और किसी पशु की हिम्मत नहीं है कि हमसे बाजी मार ले जाय। जो लोग संसार में विकास या प्रगति की बातें करते हैं, जो यह विचार रखते हैं कि हमने बन्दरों के भीतर मनुष्यों की सारी शक्तियों का बीज खोज निकाला है, और जो विद्वान् यह विचार प्रकट करते हैं तथा इसका वर्णन करते समय फूले नहीं समाते कि मनुष्य भी जानवर ही है, भले ही जीवन की दौड़ में उसे कुछ विशेष शक्तियाँ मिली हैं जिनके कारण उसने प्रारंभिक युग में पशुओं पर विजय प्राप्त की थी; उन्हें यह सोचना चाहिए कि मस्तिष्क की एक तह से अधिक ठोस पदार्थ भाषा है, यह खोपड़ी की किसी भी हड्डी से अधिक मूल्यवान् है। भाषा के विषय में उसकी कटु आलोचना नहीं की जा सकती और आप लाख जतन कीजिए कि पक्षियों की चहचहाहट और पशुओं के चीत्कार को छान-फटककर कभी उनके भीतर से शब्द नहीं निकाले जा सकते हैं। किन्तु यह बात याद रखनी चाहिए कि भाषा बाह्य संकेत मात्र है। हम अपनी दलीलों में भले ही भाषा की ओर संकेत करें तथा हम अपने विरोधी विद्वानों को भले ही इस बात के लिए ललकारें कि सारे पशु-जगत् की ध्वनियों के भीतर कोई ऐसी शक्ति है जो भाषा का मुकाबला कर सकती हो? यदि हमारी मांग इतनी ही हो अर्थात् हमारी विशेषता केवल यही हो कि हम अपने भावों और विचारों को दूसरों पर व्यक्त करने के लिए स्पष्ट उच्चारण युक्त ध्वनि काम में लायें तथा केवल इस एक गुण के कारण ही हम यह दावा करने लगें कि इस सारी सृष्टि में हम सबसे ऊँचे हैं, तो हम प्रायः सभी गुणों से युक्त गोरिल्ला बन्दर को देखकर सकपकाने लगेंगे।

यह बात अस्वीकार नहीं की जा सकती है कि भले ही पशुओं में स्पष्ट उच्चारण वाली ध्वनियाँ न मिलें किन्तु उनके पास भी ऐसे साधन हैं जिनके द्वारा वे अपना मतलब अपने समाज के अन्य पशुओं पर व्यक्त कर देते हैं। जब शिकारी लोग ह्वेल नामक बड़ी मछली पर अस्त्र फेंकते हैं तो ह्वेलों का गिरोह कितना ही तितर-बितर क्यों न हो तुरन्त ही इस शिकार की खबर पा जाता है और उन्हें यह भी मालूम हो जाता है कि उनके कुछ शत्रु यहाँ आये हैं और उन्हें मारना चाहते

हैं। जब जमीन के नीचे गड़े हुए कीड़ों की लाशों पर जीवित रहने वाला गुबरैला कीड़ा किसी कृमि की लाश पाता है या उस पर आक्रमण करता है तो वह जल्दी से अपनी जाति के और कीड़ों के पास जाता है तथा भोजन प्राप्ति की यह खबर उन्हें देकर अपने चार-पाँच[१] जाति-भाइयों के साथ भोजन करके लौट आता है। हम प्रतिदिन देखते हैं कि यद्यपि कुत्तों के पास कोई भाषा नहीं है, तो भी हम उनसे जो कुछ कहते हैं, वे शत-प्रतिशत समझ लेते हैं; उनका नाम लो, फौरन पास आ जाते हैं क्योंकि वे अपने स्वामी की बुलाहट को समझ जाते हैं। और कुछ पक्षी जैसे कि तोते, सिखलाये जाने पर, प्रत्येक ध्वनि का स्पष्ट उच्चारण करते हैं। इस कारण, यद्यपि हम विज्ञान के क्षेत्र में स्पष्ट उच्चारण वाली ध्वनि के विषय पर किसी प्रकार का प्रहार नहीं कर सकते हैं तो भी यह सर्वथा स्वाभाविक है कि हम स्वयं अपने पूर्ण संतोष के लिए यह शोध करने का प्रयत्न करते हैं कि हमारी वर्तमान स्थिति में, अर्थात् भाषा के विषय में, शक्ति किस स्थान पर है, या यह भी कहा जा सकता है कि अब हम उस भीतरी शक्ति के आविष्कार करने का प्रयत्न करें, जिसका बाहरी चिह्न और अभिव्यक्ति भाषा के रूप में प्रकट होती है।

इस प्रयोजन के लिए सबसे अच्छा तो यह है कि हम उन विद्वानों की सम्मति की जांच करें जो हमारी इस समस्या को हमसे भिन्न दृष्टि से देखते हैं। ये विद्वान् भाषा के बाह्य तथा ठोस संकेतों पर अपनी दृष्टि नहीं डालते वरन् पशु और मनुष्य के बीच उस भीतरी मानसिक शक्ति का अध्ययन करते हैं जिससे भाषा का आविर्भाव होता है और जो पशु की बुद्धि से बहुत आगे की बात है। यदि इस समस्या का वास्तविक समाधान या निर्णय हो जाय और यदि यह भाषा की उत्पत्ति के संबंध में स्थिर निदान कर सके तो यह निदान उस समस्या का समाधान कर देगा, जिसकी शोध में हम इस समय लगे हुए हैं।

यहाँ पर मैं प्रसिद्ध विद्वान् लॉक के ग्रंथ **मनुष्य की समझ-बूझ पर एक निबंध** का एक उद्धरण आपके सामने रखता हूँ :—

"यह समझाने के बाद कि सामूहिक विचार किस प्रकार बनते हैं, किस प्रकार हमारा मन यह देखता है कि खड़िया, हिम तथा दूध में एक ही रंग

१. Conscience, Boek der Natrue, VI, quoted by Marsh, p. 32.

भासित हो रहा है तो इन अलग-अलग पदार्थों के रंग के विचार को वह एक सामान्य विचार में अर्थात् सफेदी के भीतर समाविष्ट कर देता है।" लाक और भी[1] कहता है—"यदि इसमें संदेह किया जाय कि पशु अपने विचारों को मिलाते और उनको विस्तृत करते हैं, चाहे ये कितने ही अधिक या अल्प मात्रा में हों। इतनी बात तो मेरे विचार से प्रायः निश्चित है कि पशुओं में विचारों को पृथक् करने की शक्ति विद्यमान नहीं है और पृथक्-पृथक् विचारों का साधारणीकरण करने की शक्ति भी पशुओं में नहीं है, वह केवल मनुष्यों में है; पशु और मनुष्य में यही भेद है। मनुष्य की यह बहुत बड़ी विशेषता है, वहाँ तक पशुओं की मानसिक शक्ति नहीं पहुँच पाती।"

यदि लाक का यह निदान ठीक है कि मनुष्य और पशु में, मनुष्य की विशेष पहचान करा देने वाला गुण पदार्थों के नाना गुणों का साधारणीकरण है और यदि मैंने यह ठीक बात बतायी है कि पशु और मनुष्य को अलग करने वाली तथा उनकी अलग-अलग पहचान कराने वाली विशेष बात मनुष्य के द्वारा भाषा का आविर्भाव है, तो उक्त दोनों बातों से यह निदान निकल सकता है कि भाषा उस मानसिक शक्ति का प्रत्यक्षीकरण तथा बाहरी संकेत है जिसे पदार्थों के विशेष गुणों का पृथक् या घरेलू भाषा में सद्-असद् विवेक (Reasoning) कहा जाता है। अब यहाँ पर हम अपने पिछले भाषण के परिणाम पर एक दृष्टि डालेंगे। वह निदान यह था—भाषा के विकास में उपस्थित होनेवाली प्रत्येक प्रक्रिया को भली-भाँति समझने पर हमें यह पता चला कि एक ही विषय ऐसा है, जिसकी हम स्पष्ट रूप से व्याख्या नहीं कर सकते और भाषा के इस विषय का नाम हमने धातु या मूल रूप दिया है। ये धातु या मूल रूप सब भाषाओं के निर्माण करने वाले तत्त्व हैं। भाषा की उत्पत्ति की समस्या को इस आविष्कार ने बहुत ही सरल कर दिया है। जो लोग भाषा की उत्पत्ति ईश्वर-कृत बताते थे और इस विषय पर महान् उल्लास में विभोर होकर उत्तम-उत्तम भाषण देते थे, उनके भाषणों में से इस आविष्कार ने सारी दिलचस्पी उड़ा दी अब हम भविष्य में, उस आश्चर्यजनक वाद के विषय में कुछ न सुनेंगे, जिसके विषय में कहा जाता था कि हम जो कुछ देखते-सुनते हैं, जो कुछ चखते हैं, जो कुछ छूते हैं और जो कुछ सूँघते हैं, जो इस सारे विषय की प्राणमय मूर्ति है, जो हमारी आत्मा और शरीर की हवाई

१. Book II, Chapter 10.

भावनाओं को सजीव मूर्ति देता है और जो इनको कल्पना की उड़ान में उच्च से उच्च शिखर तक पहुँचा देता है, जिसके कारण हम बहुत ही ठीक ढंग से भूत, वर्तमान और भविष्य का चित्र देख सकते थे और इस विश्व की सभी घटनाओं पर निश्चितता के नाना रंगों की छाप लगा देते थे, किसी पर संदेह का रंग चढ़ा देते थे तथा किसी को आकस्मिक घटना का रूप दे देते थे। यह सब ठीक होने पर भी अब इससे अलिफ-लैला के किस्से की जो मोहनी ये ईश्वर-कृत भाषा के पक्षपाती भाषा पर छा देते थे, वह अन्तर्धान हो गई है। डा० फरग्यूसन का कहना ठीक ही है—"भाषा की प्रगति की प्रथम और अंतिम सीढ़ी की तुलना करते समय मनुष्य को उस यात्री की भाँति आश्चर्य होता है, जो धीमे-धीमे बिना थकान के एक पहाड़ी की ढाल पर चढ़कर चोटी पर पहुँच जाता है और वहाँ उस चोटी से पहाड़ की खड़ी दीवार के नीचे देखता है और देखकर यह सोचता है कि मैं इस कगारे के ऊपर कैसे चढ़ गया? यह तो अवश्य ही भगवान् की बड़ी कृपा है जो मैं इस खड़े पहाड़ पर चढ़ बैठा।" और कई विद्वानों के लिए ऐसी उच्च चोटी से नीचे उतर आना भी बड़ी निराशा का कारण बन जाता है, क्योंकि भाषा की इस ढाल से हम इतिहास और परम्परा के माध्यम से उतरते हैं और इस प्रकार का ज्ञान इनके सीधे-सादे सिद्धान्त का प्रत्यक्ष ही खंडन कर देता है। ऐसे ईश्वर-दत्त वाणी के पक्षपाती उसी सिद्धान्त का पक्ष लेंगे और उसी की प्रशंसा करेंगे, जो उनकी समझ के बाहर होगा और जिसे समझ सकेंगे उसे मानने को वे तैयार न होंगे। किन्तु परिपक्व बुद्धि वाले एक विद्वान् के लिए कपोल-कल्पित कहानियों से वास्तविकता में विशेष आकर्षण रहेगा। उलझन या झंझट वाली बात से उसे सीधी-सादी बात अधिक पसंद आयेगी। आप साधारण दृष्टि से तुलना करें तो गोयटे की कविता के सामने भाषा के व्याकरण की धातु बहुत फीकी लगेगी। इस पर भी यह मानना पड़ेगा कि सारे संसार के गीति-काव्यों से एक धातु के भीतर अधिक आश्चर्यजनक रस मिलेगा।

अब प्रश्न यह उठता है कि ये धातुएँ या **शब्दों के मूल रूप** क्या हैं? हमारी आधुनिक भाषा में वैज्ञानिक विश्लेषण द्वारा ही इन धातुओं का आविष्कार किया जा सकता है और संस्कृत धातुओं का रूप देखकर हम इतना तो अवश्य कह सकते हैं कि कोई भी धातु न तो क्रिया-वाचक रही न नाम-वाचक। चीनी-भाषा में हमारे सौभाग्य से धातु की उस प्रारंभिक अवस्था के रूप वर्तमान हैं, जो, जिस प्रकार पृथ्वी के नीचे सर्वत्र ग्रेनाइट नामक पत्थर की तह पायी जाती है उसी प्रकार ये मूल-

रूप भाषा के नीचे सर्वत्र तह के रूप में वर्तमान हैं। आर्य-भाषा की धातु **दा** (देना) संस्कृत शब्द **दानम्** या इसी अर्थ में काम में आने वाले ग्रीक शब्द **दोन् म्** में वर्तमान है। इन दोनों का अर्थ संज्ञा शब्द "दान" है। ग्रीक में यह धातु **दो** है। संस्कृत में **ददामि** और ग्रीक **दिदोमि** "मैं देता हूँ" क्रिया-वाचक धातु है, किन्तु **दा** धातु कभी काम में नहीं लायी जाती, इसके विपरीत चीनी भाषा में **ते** धातु 'महानता' के अर्थ में भाव-वाचक संज्ञा है। जब यह क्रिया-वाचक बन जाती है, तो इसका अर्थ हो जाता है "महान् होना"। जब यह क्रिया-विशेषण का रूप ग्रहण करती है तो इसका अर्थ होता है "महानता से" या "बहुत-सा", जैसा कि साधारण लोग समझते हैं, ये धातुएँ केवल मूल रूप नहीं हैं किन्तु इनकी प्रारंभिक अवस्था में ये रूप वास्तविक शब्दों की भाँति प्रयोग में आते थे। अब हम वास्तव में यह पता चलाना चाहते हैं कि हमारे मन की वह कौन-सी अवस्था है जिसकी अभिव्यक्ति इन धातुओं द्वारा होती है और इनका वह स्वरूप क्या है जिसमें ये भाषा के जीवाणु रूप में वर्तमान रहती हैं। इस समस्या को हल करने के लिए दो सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया जायगा, जिनको संक्षिप्त रूप में बताने के लिए मैं इनका Bow Wow (**बौ-वौ**) और Pooh Pooh (**पूह-पूह**) सिद्धान्त नाम रखूँगा।[1]

पहले सिद्धान्त **बौ-वौ** (ध्वनि-अनुकरण) के अनुसार किसी भाषा की धातु ध्वनि के अनुकरण पर हैं और दूसरे सिद्धान्त **पूह्-पूह्** के अनुसार ये धातु अकस्मात् मुँह से निकली हुई विस्मयसूचक ध्वनियाँ हैं। पहला सिद्धान्त अठारहवीं सदी के भाषा-वैज्ञानिकों में बहुत प्रचलित था और चूँकि बड़े-बड़े विद्वान् और भाषा-वैज्ञानिक इस सिद्धान्त को मानते हैं इसलिए हम इसे अधिक सावधानी के साथ

१. मुझे यह देखकर बहुत दुःख हुआ कि मेरे कुछ आलोचकों को ये नाम पसन्द नहीं आये। मैंने इन नामों का केवल इस कारण प्रयोग किया है कि पशु-ध्वनि के अनुकरण पर ये ध्वनियाँ (Onomatopoetic) तथा विस्मय-वाचक शब्दों से उत्पन्न (Interjectional) शब्द मुझे बहुत भद्दे लगे और ये शब्द बहुत स्पष्ट भी नहीं हैं। जो भाषाशास्त्र के विद्वान् इनमें से पहला या दूसरा मत रखते हैं उनके प्रति मैं श्रद्धा रखता हूँ, क्योंकि उन्होंने तुलनात्मक भाषा-शास्त्र में बहुत बड़ा काम किया है और उसमें सफलता प्राप्त की है। मैं इनके सामने सदा श्रद्धा से अवनत रहता हूँ।

जाँचेंगे। इस सिद्धान्त के अनुसार यह समझा जाता है कि प्रारंभिक अवस्था में, जब तक मनुष्य वाणीरहित अवस्था में था, तो उसने पशुओं, कुत्तों, गायों, बादलों की गड़गड़ाहट, समुद्र की गर्जना, जंगल के पत्तों की खड़खड़ाहट, नदी-नालों की घर्घर-ध्वनि और हवा की सनसनाहट सुनी। उसने इन ध्वनियों की नकल करने का यत्न किया और इस दूसरों की नकल करने की ध्वनि से, उसने पाया कि इन ध्वनियों का उपयोग मैं संकेत के रूप में कर सकता हूँ। इन ध्वनियों की नकल करते-करते और उसका प्रयोग संकेतों के रूप में करते हुए, उसने भाषा को जन्म दे दिया। जर्मन विद्वान् हेर्डर[१] ने इस सिद्धान्त के पक्ष में बहुत लिखा। उसने लिखा है—"जब आत्मा इतनी स्वाधीनता और सजग विचारों के साथ काम करने लगती है कि उसमें उन पदार्थों और भावों को अलग-अलग करने की शक्ति आ जाती है, जो इन्द्रियों द्वारा इन्द्रियों के विषयों के महासागर में बरबस घुस जाते हैं और इस महासागर की केवल एक लहर आत्मा का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लेती है और यह आत्मा इसी एक लहर को कुछ समय तक देखती ही रहती है। मनुष्य अपनी चेतन विचार-धारा का प्रमाण तब देता है जब उसकी इन्द्रियों के भीतर से कल्पनाओं के समूह का सपना-सा गुजर जाता है और वह इनमें से एक घटना को देखकर अपनी कमर कसता है और एक क्षण के लिए वह मानो जाग उठता है और बहुत ही ध्यान से कल्पना की एक मूर्ति पर अपना सारा ध्यान लगा देता है, इसकी वह एक प्रभामय और चमकीली झलक भी देख लेता है तथा उस झलक के लिए वह ऐसे संकेत आविष्कृत करता है कि जिससे उसकी आंखों में नाचने वाली मूर्ति का ही बोध हो सकता है, और किसी का नहीं। जब मनुष्य एक पदार्थ के सभी पहलुओं को जीवित तथा स्पष्ट रूप में देखता है, तो यह सत्य-दर्शन उसको चेतन विचार के साथ देखने का प्रमाण ही नहीं देगा, बल्कि वह तब पूर्ण चेतनता के साथ देखनेवाला कहा जायगा जब वह उसके एक या दो विशेष गुणों को देखेगा, जो उस पदार्थ के ऐसे गुण होंगे, जिनसे उसकी पहचान अन्य पदार्थों से स्पष्ट की जा सकती है। उदाहरणार्थ—मनुष्य एक मेमने को अपने सामने

१. **भाषा की उत्पत्ति के संबंध में हेर्डर तथा अन्य वैज्ञानिकों के मतों का विस्तृत वर्णन स्टाइनस्टाल के छोटे से ग्रन्थ** Der Ursprung der Sprache, Berlin, 1858 **में मिलता है।**

देखता है, वह उसे नृशंस भेड़िए के रूप में नहीं देखता और न उसके हृदय में उसके प्रति राग या द्वेष के भाव ही उठते हैं और न ही वह उसे देखकर भय से घबराता है। वह मेमने को जानना चाहता है तथा उसकी इन्द्रियाँ उसे न तो मेमने की ओर आकर्षित करती हैं और न ही उसे उसके पास से दूर भगाती हैं। वह मेमना उसके सामने उसी रूप में खड़ा रहता है, जिस रूप में उसकी इन्द्रियों ने उसके भीतर उसका रूप खींच रखा है; इस मेमने को वह सफेद रंग का, मुलायम आवरण का और ऊन से ढका पाता है। मनुष्य की चेतना और विचार-युक्त आत्मा प्रत्येक पदार्थ में वह चिह्न ढूंढ़ती है, जिससे वह पदार्थ अन्य पदार्थों से भिन्न किया जा सकता है। मेमना मिमियाता है, यह उसका विशेष गुण है, इससे आत्मा जान जाती है कि यह उसकी विशेष पहचान है। यहाँ पर मिमियाने ने आत्मा पर सबसे अधिक प्रभाव डाला और यह अन्य सब प्रभावों से अधिक जीवित रह गया। वह मेमना फिर आत्मा के सामने आया; वह सफेद था, उसका आवरण नरम था और वह ऊन से ढका हुआ था, आत्मा उसे छूती है, उसके रूप-रंग पर विचार करती है और ऐसा चिह्न ढूंढ़ने लगती है, जिससे तुरत मेमने की पहचान हो जाय। मेमना मिमियाता है और आत्मा पहचान लेती है और मन ही मन विचार करके कहती है—"अरे, तुम तो मिमियाने वाले जानवर हो" तथा मिमियाने की ध्वनि मेमने को अन्य जानवरों से अलग कर देने वाली निशानी बन जाती है। अब विचार कीजिए कि हमारी भाषा क्या है? वह इसी प्रकार के शब्दों का संग्रह है।

इस प्रश्न का उत्तर हम यह देते हैं कि यद्यपि संसार की सब भाषाओं में पशु-पक्षियों की ध्वनि के नकल पर बने हुए संज्ञा शब्द या नाम भरे पड़े हैं, तो भी उन भाषाओं की सारी शब्दसंपत्ति में इनका अनुपात बहुत कम निकलेगा। ऐसे शब्द किसी भाषा के खिलौने कहे जा सकते हैं, उसके यंत्र या साधन नहीं। यदि यह प्रयत्न किया जाय कि किसी भाषा के अति साधारण प्रयोग में आने वाले और आवश्यक शब्दों की धातुएँ ध्वनि के अनुकरण से निकाली जायँ तो ऐसा प्रयत्न अवश्य ही असफल होगा। हेर्डर ने, ध्वनि के इस अनुकरण से हमारे शब्दों की मूल धातुएँ निकाले जाने का सिद्धांत बड़े परिश्रम और यत्न से स्थापित किया था। अंग्रेजी में इसे **ओनोमेटोपिआ** कहते हैं। बर्लिन की एकैडेमी ने भाषा की उत्पत्ति के विषय में एक निबंध लिखने की प्रतियोगिता करायी थी, जिसमें हेर्डर के निबंध को सर्वप्रथम पुरस्कार दिया गया था। किन्तु हेर्डर ने बाद को अपना यह ध्वनि-अनुकरण से भाषा की उत्पत्ति का सिद्धांत खुले-खजाने त्याग दिया था और वह यह मानने लग

गया कि भाषा किसी आश्चर्यजनक रीति से मनुष्य के पास तक पहुँची। हम एक दम अस्वीकार नहीं कर सकते कि भाषा संभवतः पशु-पक्षियों की ध्वनि की नकल के सिद्धांत पर बनायी न गयी हो। हम यहाँ पर केवल इतना ही कहना चाहते हैं कि अभी तक कोई भाषा ऐसी नहीं मिली है जो इस प्रकार बनायी गयी हो। एक अंग्रेज़ यात्री जब चीन पहुँचा और किसी भोजनालय में उसने भोजन माँगा तो उसके सामने एक प्लेट में कुछ खाना रखा गया, जिसे वह नहीं समझा कि क्या है। इस पर चीनी भाषा न आने के कारण उसने क्वैक! क्वैक! ध्वनि की, और उसे उस होटल के सेवक ने उत्तर दिया बौ—बौ! यह उत्तर उस अंग्रेज़ को बहुत सार्थक और स्पष्ट लगा। (यह बौ! बौ! कुत्ते के भूँकने की ध्वनि थी। बौ-वौ का हिन्दी अनुवाद भू-भू हो सकता है, जो कुत्ते की ध्वनि का अनुकरण है।)

इसमें संदेह नहीं कि यह वार्तालाप बड़ी ही स्पष्ट और सार्थक भाषा में किया गया। यदि इस विषय पर वार्ता एक अंग्रेज़ यात्री और किसी फ्रेंच भोजनालय के सेवक के साथ होती तो स्पष्टता और सार्थकता इससे आगे न बढ़ पाती। किन्तु सन्देह की बात यह है कि क्या हम इस वाक्पटु बातचीत को किसी भाषा में हुए वार्तालाप का नाम दे सकते हैं? बौ-बौ शब्द हम बातचीत में तो काम में नहीं लाते, हम तो बौ-बौ के स्थान पर **शिआन्** (Chien) 'कुत्ता' शब्द का व्यवहार करते। हम गाय कहते हैं और उसकी ध्वनि के अनुकरण पर उसे **मआँ-मआँ** नाम से नहीं पुकारते। हम एक भेड़ के बच्चे को मेमना कहते हैं, उसके **मिमियाने** के अनुसार उसका नाम **मैं मैं** नहीं रखते। ग्रीक, लैटिन और संस्कृत जैसी प्राचीन भाषाओं में भी यही नियम लागू होता है। ध्वनि के अनुकरण से नाम रखने का यह सिद्धांत यदि कहीं लागू हो सकता है, तो वह पशुओं के नामकरण करने के काम में आ सकता है। किन्तु इस पर भी, जब हम विचार करते हैं कि Goose (गूज़) 'हंस' की ध्वनि को cackling (कैकलिंग) कहते हैं, और मुर्गे की ध्वनि का नाम अंग्रेज़ी में clucking (क्लकिंग) है। बत्तख को Duck (डक) कहते हैं और उसकी ध्वनि को कहते हैं quacking (क्वैकिंग); पक्षी को हमने नाम दिया है गौरैया और उसकी ध्वनि को chirping (चर्पिंग) 'चहचहाट' कहते हैं। पक्षी का नाम है Dove (डव)=फाख्ता और उसकी ध्वनि को कहते हैं cooing (कूइंग) कूकू। जानवर का नाम तो रखा है हमने Hog (हॉग)=सूअर, और उसकी ध्वनि को grunting (ग्रंटिंग) कहते हैं। पशु का नाम है बिल्ली और उसकी ध्वनि का नाम हमने रखा है mewing (म्युइंग) 'म्याऊँ-म्याऊँ करना'। नाम रखा है कुत्ता और

२३

ध्वनि को नाम दिया है barking, yelping, snarling or growling. (बार्किंग, यल्पिंग, स्नार्लिंग, ग्राउलिंग)।

थोड़े से नाम ही ऐसे हैं जो पशु-पक्षियों की ध्वनि पर आधारित हैं, जैसे Cuckoo (कुक्कू=कोयल); किन्तु ऐसे शब्द नकली हैं, जैसे कि कागज के फूल। ऐसे शब्द बाँझ होते हैं, क्योंकि उनसे और कोई शब्द नहीं बन सकते और जिस एक नाम को वे बताते हैं, वहीं उसका अन्त भी हो जाता है। यदि आपको मेरे एक पिछले भाषण में बताये हुए **स्पश्** 'देखना' धातु से निकले शब्दों का परिचय कराया गया था, जिनकी संख्या २५, ३० थी, उनकी याद होगी, तो आप लोग तुरत यह ताड़ लेंगे कि एक धातु से बीसियों शब्द निकलते हैं। cuckoo (कुक्कू) शब्द केवल एक ही अर्थ में सीमित रह गया है।

हम यहाँ पर दो शब्दों की तुलना करेंगे—Cuckoo और Raven (रेवेन 'कौआ')। Cuckoo अंग्रेज़ी में एक ऐसा शब्द है, जो कोयल की ध्वनि के अनुसार, अर्थात् Cuckoo ध्वनि से, उक्त पक्षी का नाम भी बताता है। यह ऐसा शब्द है कि संस्कृत, ग्रीक और लैटिन में भी ऐसे नाम कम मिलते हैं। इन भाषाओं में ध्वनि की नक़ल पर जो शब्द गढ़े गये हैं, उनमें ऐसे प्रत्यय जोड़ दिये गये हैं जिनसे शब्द का निर्माण होता है। संस्कृत में इस पक्षी का नाम कोकिल है, ग्रीक में इसे Kokkykh (कोकुख) और लैटिन[१] में इसको Cuculus (कुकुलुस्) कहते हैं। Cuckoo नया बना हुआ शब्द है, जो वास्तव में ऐंग्लोसेक्शन शब्द geac (गेअक्) से अंग्रेज़ी में आया है; यह शब्द जर्मन में Gauch (गौख्) है। कोयल का यह नाम उसकी ध्वनि की विशुद्ध नक़ल पर बना है, इसलिए यह नाम व्याकरण के नियमों पर नहीं चलता; जर्मन विद्वान् ग्रिम का नियम भी इस पर लागू नहीं हो सकता। यह Cuckoo शब्द इस पक्षी की ध्वनि के सिवाय पक्षी के विषय में कुछ नहीं बताता, इससे किसी जीव का कोई ऐसा गुण प्रकट नहीं होता जो दूसरे पशु-पक्षियों में पाया जाता हो और इससे केवल ऐसे ही शब्द बनाये जा सकते हैं, जिनमें इस नाम के पक्षी से किसी प्रकार की लाक्षणिक समानता हो। यही नियम संस्कृत शब्द कुक्कुट के विषय में भी लागू हो सकता है; अंग्रेज़ी में इसे Cock (कौक) कहते हैं। इन शब्दों पर भी ग्रिम का नियम लागू नहीं हो सकता, क्योंकि यह दोनों शब्द मुर्गे के गले से जो ध्वनि निकलती है, उसके द्योतक हैं; और इन शब्दों

१. Pott, Etymologische Forschungen, i. 87; Zeitschrift, iii, 43.

के विषय में सदा यह बात ध्यान में रखी गयी कि इन नामों में पक्षी की ध्वनि का अनुकरण रहना ही चाहिए, इसलिए इस नाम में विशेष परिवर्तन भी नहीं हुआ। संस्कृत शब्द कुक्कुट किसी धातु से नहीं निकला, यह उस पक्षी की ध्वनि को केवल मात्र दोहराता है और इससे जो अन्य शब्द बनते हैं वे लाक्षणिक शब्द हैं; जैसे फ्रेंच शब्द Coquet (कौके) जिसका मूल अर्थ मुर्गे की तरह इतराना था; Coquetterie (कौकेट्री) शब्द इससे निकला है जिसका अर्थ है "नज़ाकत से कपड़े पहनना"। इसका एक रूप Cocarde (कौकार्द) है, जिसका अर्थ है 'नज़ाकत से सजा-धजा'। इसका एक और रूप है Coquelicot (कौकलीको) जिसका मूल अर्थ था 'मुर्गे की कलगी', इसके बाद इसका अर्थ हुआ 'अफीम का लाल फूल'। दोनों नाम उक्त पदार्थों में मुर्गे की कलंगी के समान होने से पड़े।

अब हम raven (रेवेन) शब्द की छानबीन करेंगे। बाहर से देखने में कुछ ऐसा मालूम पड़ता है कि इस शब्द का नामकरण भी ध्वनि के अनुसार हुआ हो। कुछ वि ान् रेवेन 'कौआ' और उसकी ध्वनि में बहुत कुछ समानता देखते हैं। यह बात और भी ठीक लगने लगती है, जब हम, इसके ऐंग्लोसेक्शन रूप hrafn (ख्राफ्न, ह्लाफ़न), जर्मन रूप rabe (राबे), प्राचीन उच्च-जर्मन hraban (खाबान, ह्लाबान) से इस शब्द का मिलान करते हैं। संस्कृत में यह शब्द **करव** है और लैटिन में इसका रूप corvus (कौरवुस) है, जब ग्रीक में इसके रूप Korone (कोरोने) से मिलान करते हैं तो यह मिलान और भी ज़ोर पकड़ लेता है। ये सब शब्द इस पक्षी की ध्वनि से बहुत कुछ मिलते हैं। फ्रेंच में इस पक्षी को Corbeau (कौर्बो) कहते हैं, किन्तु जैसे ही हम इस शब्द की सूक्ष्म काट-छांट करने लगते हैं तो हमें पता चलता है कि Cuckoo और Cock शब्दों से इसकी बनावट में बहुत भिन्नता है। यह वास्तव में एक धातु से निकला है, जिसमें क्रियावाचक शक्ति है। **रु** और **क्रु**, धातु का अर्थ कौवे की ध्वनि-मात्र का ही वाचक नहीं है। इनका अर्थ नाना प्रकार के **रुदन** या **क्रंदन** से है, जो अति उच्च ध्वनि से मधुर ध्वनि तक का वाचक है और यह शब्द बुलबुल से लेकर कौवे तक बहुत से पक्षियों के लिए काम में लाया जा सकता है। संस्कृत में इस धातु का **रूप रु है**। इस शब्द का अर्थ उसमें नदियों की "मर्मर ध्वनि" से लेकर कुत्तों के 'भूकने' और गायों के "रंभाने" तक हैं। संस्कृत में इस धातु से अनगिनत शब्द निकाले गये हैं। इसका एक रूप लैटिन में raucus (रउकुस) मिलता है, जिसका अर्थ है "कर्कश" शब्द। जर्मन भाषा में runen (रूनन) का अर्थ है "धीमी आवाज़

में बोलना" और runa (रूना) का अर्थ है "रहस्य, भेद"। लैटिन भाषा में lamentum (लामेन्तुम्) जिसका मूल रूप कभी ravimentum (राविमेन्तुम्) या cravimentum (क्राविमेन्तुम्) था, उसका अर्थ " ोना" है। इस रु धातु के कई गौण रूप भी मिलते हैं, जैसे संस्कृत में रुद् धातु (चिल्लाना, धाड़ मारना)। लैटिन में यह धातु (रुग) हो जाती है, और इसी धातु का रूप rugir (रुगिर) बनता है, जिसका अर्थ है "रोना"। ग्रीक-भाषा में Kru (क्रु) या Klu (क्लु) धातु हैं, जिनके रूप Klaio (क्लेओ) और Klausomai (क्लौसोमई) हैं, जिनका अर्थ है "मैं रोता हूँ"। संस्कृत में एक क्रुश् धातु है जिसका अर्थ है "ज़ोर से चिल्लाना"; गौथिक में hrukjan (क्रुक्हान या ह्रुक्यान) है, जिसका अर्थ है काँव-काँव करना। hrothjan (ख्रोथ्यान या ह्रोथ्यान) इसका अर्थ है 'रोना, चिल्लाना"। जर्मन में इस रु का एक रूप rufen (रूफन) "पुकारना" है। सुनने के लिए जो सब आर्य-भाषाओं में एक शब्द है वह भी इस शब्द से घनिष्ठ रूप में संबंधित है। संस्कृत में इस धातु का रूप श्रु है; ग्रीक भाषा में यह रूप Kluo (क्लुओ) "मैं सुनता हूँ" है; लैटिन में इसका रूप Cluo (क्लुओ) है। इसका सुनना अर्थ होने से पहले इसका अर्थ था "ध्वनि करना, बजाना।" जब बहुत दूर खड़ा हुआ आदमी किसी की पुकार या ध्वनि सुनता था तो उसने इस शब्द को प्रारंभिक अवस्था में कहा होगा "मेरे कान बजते हैं।" और यही क्रिया जब सकर्मक रूप से काम में लायी जायेगी तो इसका अर्थ होगा "मैं ध्वनि सुनता हूँ, मेरे कान बजते हैं"।

अब आपने भली भाँति समझ लिया होगा कि संस्कृत का शब्द **करव** (कौआ) अंग्रेजी **क्रौ**, संस्कृत कुक्कुट या अंग्रेजी के कुक्कू शब्द से बिलकुल भिन्न प्रकृति का है। करव[१] का अर्थ "चिल्लाने वाला", "हुँकारने वाला" और "पुकारने वाला" है। यह नाम बहुत से पक्षियों का रखा जा सकता था। किन्तु यह केवल एक नाम कौआ के लिए ही रूढ़ हो गया। अंग्रेजी "कोयल" या कुक्कू, 'संस्कृत कुक्कुट "मुर्गा" शब्द, एक ही अर्थ में काम में आये और आ रहे हैं, क्योंकि ये दो विशेष पक्षियों की

१. संस्कृत भाषा में करव की व्युत्पत्ति कु-रव "बुरे शब्द वाला" की गयी है। ऐसा भी माना जाता है कि यह शब्द क्रव या कर्व से निकला है। संस्कृत शब्द कारव वैदिक-संस्कृत शब्द कारु "गाने वाला" से भी निकाला जा सकता है किन्तु इस दशा में कारु क्रु धातु से नहीं निकाला जाना चाहिए।

ध्वनि से निकले हैं। जबकि रेवेन शब्द जो रु या क्रु धातु से निकला है, उससे नाना शब्दों के बीसियों अर्थ निकलते हैं। "काना-फूसी" से लेकर "झगड़ा-फसाद" तक इसके नाना अर्थ हैं। **कुक्कू** शब्द सूखे काठ[1] की तरह निष्फल बनकर अकेला बैठा है।

यह एक बड़ी कौतूहलजनक बात है कि यदि हम भाषा की धातुओं को पशु-पक्षियों की ध्वनियों पर आधारित करें तो किस आसानी से अपने को भ्रम में डाल सकते हैं। हममें से कुछ लोग आज भी बादलों की गड़गड़ाहट सुनकर यह कल्पना करते हैं कि Thundr **थंडर** शब्द में प्राचीन जर्मन देवता Thor (टोर=इन्द्र) के बाजा बजाने से पैदा हुई गर्जन-तर्जन से कड़कड़ाहट की ध्वनि आ रही है, तो भी अंग्रेज़ी **थंडर** शब्द ऐंग्लोसेक्शन thunor (थुनोर्) की वही व्युत्पत्ति है जो लैटिन शब्द tunitru (तुनित्र) की है। वह मूल धातु जिससे यह शब्द बने हैं, **तन्** है। इस धातु से ग्रीक भाषा के tonos (तोनोस) और अंग्रेज़ी के टोन शब्द बने हैं। इस **तन्** का अर्थ वेदों में ऊंची ध्वनि करना है और संस्कृत में **तन्** धातु का अर्थ तानना भी है। लैटिन में यह **तन्** धातु Tunare (तौनारे) रूप में है। **तन्** का "ध्वनि करना" अर्थ तंतुओं के हिलने से जो ध्वनि फैलती है, उसके कारण हुआ होगा। जैसा

१. यास्क ने अपने निरुक्त ग्रंथ में, जो पाणिनि के व्याकरण से भी पुराना है और प्रायः ईसा से ४०० वर्ष पूर्व का है, विस्मयवाचक शब्दों से भाषा के बनने के सिद्धांत के ऊपर ज़ो बातें लिखी हैं, वे भी भाषा-शास्त्रियों के लिए मनोरंजक हो सकती हैं।

पहले उसने यह बताया है कि कुछ शब्द, जैसे सिंह, व्याघ्र अथवा श्वान, काक आदि शब्द मनुष्यों के विषय में भी काम में लाये जा सकते हैं। यास्क फिर बताता है—कौआ, 'काक' ध्वनि का अनुकरण है (काकु-काकु), (यास्क पर दुर्ग की टीका) और यह बात पक्षियों के नाम के संबंध में बहुत साधारण है। इस विषय पर औपमन्यव यह मानते हैं कि ध्वनि का अनुकरण शब्द बनाने के लिए कभी नहीं किया जाता। ये लोग काक की व्युत्पत्ति को अपकालितव्य कहते हैं, अर्थात् ये कहते हैं कि काक इसीलिए कहा जाता है कि लोग उसे भगाने लायक समझते हैं। तित्तिर शब्द तर से निकला है जिसका अर्थ "तरना", "कूद फांद कर आगे बढ़ना" या यह शब्द तिल-मात्र-चित्र से बना है जिसका अर्थ वे चित्तियाँ हैं जो तित्तिर के पंखों पर दिखाई देती हैं।

ऊपर कहा गया है, संस्कृत में **तन्** का भी यही अर्थ है, किन्तु इस धातु से निकले शब्दों जैसे **तन्यु**, **तन्यतु** और **तनयित्नु** में इसका अर्थ "कड़कना" है। अब आप इससे देखेंगे कि टोर देवता की गड़गड़ाहट का जो भी अर्थ हो, आर्य-भाषाओं में **तन्**[1] धातु का एक अर्थ "गर्जन-तर्जन करना" भी है और उक्त सब शब्द इस धातु की महिमा गाते हैं।

इस धातु के "तानना, फैलाना" से कई शब्द निकले हैं जिनके अर्थों में गर्जन करने का नाम भी नहीं मिलता। अंग्रेज़ी शब्द tender, फ्रेंच शब्द tendre (ताँड), लैटिन शब्द tener (तेनेर्) इसी धातु से निकले हैं और इन शब्दों का अर्थ है "मुलायम"। लैटिन शब्द tenuis (तेनोइस्) के समान ही संस्कृत में **तन्** शब्द है, अंग्रेज़ी में इसका रूप tenir हो गया है। tener (तेनेर्) धातु का अर्थ पहले था "दूर तक तानना", फिर इसका अर्थ हो गया "पतला करना", इससे भी बाद को इसका अर्थ "नरम" हो गया। अब देखिए कि tender, thin और thunder में समान व्युत्पत्ति दिखाना असंभव हो जाता यदि **तन्** धातु हमारे पास न रहती।

अब और देखिए, फ्रेंच शब्द sucre (सूक्र) और sucré (सूक्रे) का उच्चारण करते ही हमारे मुँह में मिठास-सी आ जाती है किन्तु ये शब्द फ्रांस के नहीं हैं। इन दोनों शब्दों के अर्थ क्रमशः "शक्कर" और "शक्कर डाला हुआ" अर्थात् "मीठा" है। यह भारत से आये हैं। संस्कृत में चीनी को **शर्करा** कहते हैं और **शर्करा** मूल अर्थ में मिठास से कोई संबंध नहीं रखती। इसका अर्थ बालू था। बालू के समान बनी हुई दानेदार चीनी को **शर्करा** कहा जाता था। लैटिन में इस शर्करा का रूप saccarum (सक्खरुम, शक्कर) है और हम आज भी अंग्रेज़ी में saccharine juice शक्कर के रस को कहते हैं।

अंग्रेजी शब्द squirrel (स्क्विरल) "गिलहरी" में कई विद्वान् कल्पना से देखते हैं कि वे गिलहरी के फ़ुर्ती से दौड़ने और अन्य काम करने की ध्वनि सुनते

१. इसकी एक गौण धातु स्तन् "गर्जन-तर्जन करना" भी है। इस धातु से संस्कृत में स्तनितम् बना है, जिसका अर्थ "बिजली का कड़कना" है। और एक शब्द स्तनयित्नु बना है, जिसका अर्थ है "बिजली की कड़क", "बिजली" और "मेघ" (देखो Wilson's Dict.)**। ग्रीक में यह शब्द** otenw **रूप में पाया जाता है जिसका अर्थ मैं "गिड़गिड़ाता हूं" है। इसी धातु से ग्रीक में अन्य कई शब्द भी निकाले गये हैं। प्रो० कून** (Zeitschrift iv. 7) **का मत है कि स्तन मूल रूप है।**

हैं, किन्तु यदि हम इसके पुराने रूप देखेंगे तो तुरत पता चल जायगा कि इसकी शुद्ध व्युत्पत्ति क्या है। ग्रीक में गिलहरी के लिए skiouros (स्क्यूरोस्) शब्द है और यह संयुक्त शब्द दो भिन्न-भिन्न शब्द जोड़ने से बना है। इसमें पहले शब्द का अर्थ है छाया और दूसरे का पूंछ, इस कारण इसका अर्थ ग्रीक में हुआ "छाया-पुच्छ"।

जर्मन शब्द (कात्से) Katze "बिल्ली" को उसकी थूकने की ध्वनि के अनुकरण पर बना हुआ माना जाता है। यदि त्से अक्षर के कारण कोई यह समझे कि इससे किसी प्रकार की थू-थू-कार की ध्वनि व्यक्त हो रही है तो उसे जान लेना चाहिए कि लैटिन में यह शब्द Catu-s है जिससे बिल्ली के थूकने की ध्वनि का कोई सम्बन्ध नहीं मालूम पड़ता, न ही यह ध्वनि अंग्रेज़ी नाम cat में है और न जर्मन शब्द kater (काटर)[१] में इसका पता चलता है। संस्कृत में बिल्ली के लिए एक शब्द **मार्जार** है। इस शब्द से जो ध्वनि निकलती है उससे आभास मिलता है कि संभवतः यह शब्द बिल्ली के गुरगुराने की ध्वनि से निकला हो, किन्तु **मार्जार** शब्द संस्कृत धातु **मृज्** "साफ करना, माँजना" से निकला है। मार्जार का अर्थ है, वह जीव जो अपने को साफ करता रहता है।

ऐसे और बहुत से उदाहरण यहाँ पर दिये जा सकते हैं, जिससे मालूम हो जायगा कि हम स्वयं अपनी भाषा के शब्दों की ध्वनि और कुछ निश्चित अर्थों के कारण किस प्रकार उनकी व्युत्पत्ति के संबंध में धोखे में पड़ जाते हैं और यह समझने लगते हैं कि अमुक शब्द से कुछ ऐसी ध्वनि निकलती है, जिससे हम इस शब्द का अर्थ भी समझ लेते हैं। "इन्द्रियों को शब्द की ध्वनि उसकी प्रतिध्वनि सी लगती है।"

ध्वनि-मूलक अंग्रेज़ी शब्दों को जब हम उसके ऐंग्लोसेक्शन तथा गौथिक रूपों में मिलने वाले पुराने रूपों से मिलाते हैं, तो उनकी ध्वनि-मूलकता कपूर की तरह उड़ जाती है और जब हम उनके प्रतिरूप संस्कृत, ग्रीक तथा लैटिन भाषाओं में ढूंढ़ते हैं तो भी उनकी ध्वनि-मूलकता का पर्दाफाश हो जाता है। जब तुलना-मूलक भाषा-शास्त्र के विद्वानों ने इन ध्वनि-मूलक शब्दों की छान-फटक की तो उनकी शोध से पता चला कि किसी भाषा में इनकी संख्या बहुत ही कम होती है। ऐसे शब्दों

१. **देखिए** Pictet, Aryas Primitifs, p. 381.

की जांच पड़ताल करने के बाद हम इस विश्वास पर आते हैं कि यद्यपि बहुत से शब्द **गर्जन-तर्जन, फुसफुस, फुफकार, सनसन, सरसर, बड़बड़, टरटर** जैसे सृष्टि में मिलने वाले शब्दों से भी बन सकते हैं, किन्तु ध्वनिमूलक शब्दों की पूरी खोज करने पर इनकी व्युत्पत्ति बिलकुल भिन्न प्रकार[1] की मिलती है।

इस कारण हम देखते हैं कि बहुत से विद्वान्, और उनमें कान्डिलियाक जैसा फ्रेंच विद्वान् भी शामिल है, शब्दों की ध्वनि-मूलक उत्पत्ति के विषय में घोर विरोध करते हैं, क्योंकि यदि यह मान लिया जाय तो मनुष्य पशु-पक्षियों से भी नीचे गिर जायगा। ये विद्वान् कहते हैं कि यह कल्पना ही क्यों की जाती है कि मनुष्य ने पशु-पक्षियों से भाषा के सबक़ सीखे? क्या मनुष्य चिल्ला या चीख नहीं सकता? क्या वह रोने में नहीं सिसकता? और जब उसे अकस्मात् डर लगता है या जोर की पीड़ा होती

१. चीनी भाषा में ध्वनि के अनुकरण पर जो शब्द बने हैं उनकी संख्या बहुत अधिक है। वे साधारणतया उनकी ध्वनि के अनुसार लिखे जाते हैं, और उसके बाद उसमें उच्चारण करने के लिए मुँह के स्वरूप का सा भी चिह्न रहता है। हम यहाँ पर ऐसे कुछ शब्द देते हैं और उनके साथ-साथ उनकी अनुरूप ध्वनि भी देते हैं। इन दो शब्दों के बीच में जो भेद है वह बताता है कि एक ही ध्वनि भिन्न-भिन्न कानों को किस प्रकार की सुनाई देती है और वे किस भिन्न प्रकार से सुव्यक्त वाणी में परिणत किये जा सकते हैं—

The cock crows; Kiao Kiao in Chinese; dchor dchor in Mandshu
The wild goose cries; K ao Kao in Chinese Kor Kor in Mandshu
The wind and rain sound; Siao Siao in Chinese; Chor Chor in Mandshu
Wagons sound; Lin Lin in Chinese; Koungour Koungour in Mandshu
Dogs coupled together; Ling Ling in Chinese; Kalang Kalang in Mandshu
Chains; Tsiang Tsiang in Chinese; Kiling Kiling in Mandshu
Bells; Tsiang tsiang in Chinese; Tang tang in Mandshu
Drums; Kan Kan in Chinese; Tung Tung in Mandshu

है या वह खुशी से नाच उठता है तो क्या वह अपने मुँह से अपनी स्थिति को नाना उच्च ध्वनियों से व्यक्त नहीं करता ? ये ध्वनियाँ या विस्मयवाचक शब्द इन विद्वानों की सम्मति में मनुष्य की भाषा के वास्तविक आरंभ के रूप में प्रकट हुए। इन शब्दों के बाद भाषा में जो और शब्द-संपत्ति है, वह धीमे-धीमे उसके ढाँचे के भीतर सजायी गयी। इस सिद्धांत को मैं **विस्मयबोधक शब्दमूलक या पूह्-पूह्** सिद्धांत कहता हूँ।

इस सिद्धांत के विषय में हमारा कहना वही है, जो हम बौ-वौ अर्थात् ध्वनि-मूलक सिद्धांत के विषय में कह आये हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि प्रत्येक भाषा में विस्मयवाचक शब्द वर्तमान हैं और इनमें से कुछ परंपरागत भाषा में आने के कारण उसमें रूढ होकर हिल-मिल भी सकते हैं, किन्तु ये विस्मयवाचक शब्द वास्तविक भाषा के बाहर की सीमा मात्र हैं। भाषा वहाँ आरंभ होती है, जहाँ ये विस्मयवाचक शब्द समाप्त हो जाते हैं। एक विस्मयवाचक शब्द **हा ! हा !** और एक वास्तविक शब्द **हँसना** में धरती-आसमान का अन्तर है, यहीं अन्तर **ओह !** शब्द के उच्चारण और यह कहने में है कि मैं **कष्ट सह रहा हूँ**। यह उतना ही फर्क है, जितना नाक से अकस्मात् छींक निकलने और यह कहने में है कि **मैं छींकता हूँ**। हम उसी प्रकार छींकते, खांसते, चीखते और हँसते हैं, जिस प्रकार कि सभी जीव-जन्तु। किन्तु यदि ग्रीक दार्शनिक एपीक्यूरस हमें बताता है कि हम उसी प्रकार बोलते हैं, जिस प्रकार कुत्ता भूँकता है, क्योंकि प्रकृति हमें या कुत्ते को बोलने अथवा भूंकने के लिए प्रेरित करती है; तो हम लोगों का अपना अनुभव हमें बताता है कि उक्त कथन सत्य नहीं है।

अचानक मुँह से निकले हुए संबोधनों से भाषा के निर्माण होने के सिद्धांत का एक अति उत्तम और सटीक उत्तर हौर्नटूक ने दिया है।

वह कहता है; "भाषा का साम्राज्य तब स्थापित होता है जब संबोधनों के राज्य का पतन होता है। भाषा की कलापूर्ण योजना और व्यवस्था के बिना, मनुष्य जाति के पास भाषा के स्थान पर सिवा संबोधनों के कुछ और नहीं रहता, जिससे मानव जाति अपने भावों को अपने मुँह द्वारा दूसरों पर व्यक्त करती है। जिस प्रकार विस्मय-सूचक संबोधन भाषा के एक अंश हैं, उसी प्रकार घोड़े का हिनहिनाना, गाय का रँभाना, कुत्ते का भूँकना, बिल्ली का गुर्गुराना, किसी जीव का छींकना, खांसना, कराहना, चीखना और शरीर की प्रत्येक हलचल, जो हर्ष या कष्ट के कारण पैदा होती है, तथा जिस हर्ष तथा दुःख के कारण मुँह से शब्द निकलने लगते हैं; ये सब भी

विस्मयसूचक शब्दों के समान ही भाषा के अंश या भाग कहे जा सकते हैं। हम जिन विस्मयसूचक शब्दों का स्वेच्छा से प्रयोग करते हैं वे हमारे मुँह से उसी अवस्था में निकलते हैं जब प्रेम, स्नेह या किसी विषयवासना की प्रचंडता का हमें अकस्मात् अनुभव होता है। इस अवस्था में हम कुछ समय के लिए भाषारहित, मूक बन जाते हैं। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि हमें उत्तर देने का समय कम रहता है, इसलिए केवल विस्मयसूचक शब्द ही मुँह से निकल पड़ते हैं।

जैसा कि पशु-पक्षियों की ध्वनि की नक़ल पर बने शब्दों के विषय में कहा गया था, वही बात यहाँ भी लागू होती है। यह तथ्य अस्वीकार नहीं किया जा सकता है कि विस्मयसूचक शब्दों के द्वारा भी एक प्रकार की भाषा कभी बनी होगी; परन्तु यह भाषा उस प्रकार की नहीं रही होगी, जिस प्रकार की भाषा हम आजकल मनुष्य की भिन्न-भिन्न जातियों में वर्तमान पाते हैं। ऐसा भी होता है कि एक छोटा सा विस्मयसूचक शब्द भाषा के कई वाक्यों से अधिक शक्तिशाली अर्थ बताने में अधिक व्यंजक और भाव बताने में अधिक ज़ोरदार हो सकता है। सच बात तो यह है कि मानव जाति के अधिकांश लोग जितनी बातचीत करते हैं उसका प्रयोजन पूरा और संतोषजनक करने के लिए हाव-भाव, मुँह की मांस-पेशियों का चलना तथा हिलना-डुलना एवं आँखों का मटकाना आदि यथेष्ट हैं। लूशियन ने नाट्य-शास्त्र पर लिखे गये अपने ग्रंथ में एक ऐसे राजा का वर्णन किया है, जिसके राज्य की सीमा बहुत दूर तक चली गयी थी। यह राजा नीरो के शासनकाल में किसी कारण से रोम में आया था, और उसने एक ऐसा अभिनय देखा जिसमें मनुष्य चुप रहता है और केवल इशारों या संकेतों से अपने हृदय के सब भाव व्यक्त करता है। यह देखकर उसने सम्राट् नीरो से प्रार्थना की कि वह उसे इशारों की मूक भाषा में अपने हृदय के भावों को सुस्पष्ट व्यक्त करने वाला आदमी उपहार में दे, और वह ऐसे आदमी को अपने पास-पड़ोस में भेजे, जहाँ के निवासियों से वह किसी प्रकार का संबंध स्थापित नहीं कर पा रहा है, क्योंकि वे भिन्न-भिन्न ऐसी भाषाएँ बोलते हैं जिनको वह या उसकी प्रजा समझ ही नहीं सकती, अतः उससे कोई संबंध भी स्थापित नहीं कर सकती। संकेतों से बात करने वाले ऐसे आदमी का अर्थ उस समय यह होता था कि एक आदमी जो मन के सब भावों को तथा आदमी की पूरी बोली को इशारों से व्यक्त कर सके। हमारे पास अब भाषा है जो सभी बातों को व्यक्त करने में समर्थ है। इस कारण हमने वह कला खो दी है जिसके द्वारा कभी हम अपने सारे भावों को संकेतों द्वारा बता सकते थे; किन्तु दक्षिणी यूरोप में यह हुनर आज भी जीता

जागता है। यदि यह बात सत्य है कि एक अर्थभरी दृष्टि जो बातें बताती है, उनको यदि हम लिपिबद्ध करना चाहें तो उससे ग्रंथ के कई खंड भर जायें, ऐसी अवस्था में यह स्पष्ट है कि हम जब तर्क-वितर्क की भाषा या युक्ति-संगत बातें बोलने की चेष्टा करते हैं, तो उसमें बातों की जो लड़ी हम बाँध देते हैं उसे हम सीधी-सादी भाषा में कहें तो सारा कष्ट बच जाय। हमें यह न भूलना चाहिए कि हूँ ! **टुच ! छिः-छिः ! धिक् धिक् !** ये ऐसे ही शब्द हैं जिनमें शब्दों के साथ इशारे अनिच्छा से आकर उनकी उपयोगिता बढ़ा जाते हैं।

अब हम यह बतायेंगे कि जो विद्वान् हमारी भाषा के कुछ शब्दों की व्युत्पत्ति विस्मयसूचक शब्दों से निकालने की चेष्टा करते हैं, वे उसी भूल के कारण अपने इस प्रयास में असफल हो जाते हैं, जिससे हम यह कल्पना करने लगते हैं कि कुछ शब्दों में उनकी ध्वनि ही ऐसी है कि वह कोई विशेष बात को व्यक्त करती है। इस प्रकार कुछ लोग यह कहते हैं; मन में अरुचि का भाव गंध और रुचि के अनुकूल न होने के कारण पैदा होता है। आरंभ में इसका मुख्य कारण, संभवतः दुर्गन्ध तक ही सीमित रहता हो। हम जब कोई बुरी गंध सूँघते हैं तो नाक बन्द करके उस बुरी गंध से अपनी रक्षा करते हैं और फिर अपने होठों को सिकोड़ या मोड़ कर कुछ दीर्घ हवा बाहर को छोड़ते हैं और छिः-छिः ! अरे राम-राम ! आदि विस्मयसूचक शब्द मुँह से निकालते हैं। इन शब्दों के स्थान पर अंग्रेजी में faugh ! foh ! fie ! foi शब्द आते हैं। कई विद्वान् इन विस्मयसूचक शब्दों से foul, fitth की व्युत्पत्ति ही नहीं निकालते, इसके स्वाभाविक अर्थ को नैतिक क्षेत्र में ले जाकर इससे अंग्रेज़ी शब्द fiend और जर्मन feind (फीइंड=शत्रु) शब्द भी इन्हीं विस्मयसूचक शब्दों से निकालते हैं। यदि व्युत्पत्ति का यह ढंग ठीक माना जाय तो हमको यह भी मानना पड़ेगा कि घृणा के भाव अंग्रेज़ी F (फ्) सें व्यक्त किये जाते हैं। यह महाघोष वर्ण आधे खुले होठों द्वारा जोर की ध्वनि निकालने से उच्चारित होता है, किन्तु बात ऐसी नहीं है, fiend शब्द fian (फिअन) धातु से निकला हुआ कृदंत रूप है। यह धातु गौथिक में fijan (फिआन) है। ध्वनि-परिवर्तन का नियम यह है कि गौथिक महाघोष अथवा **ह्**-युक्त वर्ण, जैसे यह **फ्**, संस्कृत वर्णमाला के बिना **ह्** वाले प्रथम अक्षर बन जाते हैं (क, च, ट, त, प)। कुछ विद्वानों ने जो यह समझ रखा था कि **फ्** घृणासूचक वर्ण है, संस्कृत में जाकर यह वर्ण **प** हो जाता है और अपनी घृणासूचक शक्ति खो देता है। फिअन धातु का संस्कृत रूप **पिय्** मिलता है, जिसका अर्थ है "घृणा करना, उजाड़ना"। यह ठीक वैसा ही है जैसा

कि friend (फ्रेंड) शब्द है, जो संस्कृत के मूल रूप **प्री** "प्यार करना" से निकला है।[1]

इन दो सिद्धांतों के विषय में कि भाषा विस्मयसूचक शब्दों अथवा पशु-पक्षियों की ध्वनि के अनुकरण से निकली है, मुझे केवल एक बात और कहनी है। यदि मनुष्य की भाषा का निर्माण करने वाले तत्त्व आश्चर्यबोधक चीखें या प्रकृति के पशु-पक्षियों के मुंह से निकलने वाली ध्वनियाँ हैं, तो यह समझना बहुत कठिन हो जाता है कि स्वयं पशुओं में भाषा का आविर्भाव क्यों न हुआ ? हमारे सामने सुग्गे और "शब्दों की नकल करके हमको चिढ़ाने वाली" एक दूसरी चिड़िया के उदाहरण हैं, जो बहुत सफलता के साथ हमारी स्पष्ट और अस्पष्ट ध्वनियों का पूरा-पूरा अनुकरण कर सकते हैं। और शायद ही कोई जानवर हो जो **हुफ्, हिस, बा, मेंमें, म्याऊँ** आदि ध्वनियाँ अपने मुँह से नहीं निकालता। यह बात भी स्पष्ट है कि मनुष्य और पशुओं के बीच में जो तथ्य साफ-साफ भेद की पहचान बताता है वह यह है कि मनुष्य में विचार करने की शक्ति है, जो पशुओं में नहीं है। वह भाषा जो विस्मयवाचक शब्दों और पशुओं की ध्वनियों के अनुकरण से बने शब्दों से निकली

१. चीनी विस्मयवाचक शब्दों की सूची पाठकों को दिलचस्प लगेगी—

hu, to express surprise
fu, the same
tsai, to express admiration and approbation
i, to express distress
tsie, vocative particle
a'i, to express contempt
u-hu, to express pain
shin-i, ah indeed
pu sin, alas
ngo, stop !

बहुत से स्थानों में ये विस्मयवाचक शब्द अपने मूल रूप में शब्द थे। जैसा कि फ्रेंच भाषा का helas **(एलास) जो** lassus **(लासुस=थका हुआ, अभागा)।** Diez Lexicon Etymologicum, x. s. v. lasso.

होती, वह कभी यह दावा न कर सकती कि वह मनुष्य के इस विशेष गुण अर्थात् विचार करने की शक्ति का परिणाम है। सभी शब्द अन्ततः अपनी प्रारंभिक अवस्था में (और यह बात हमारे लिए महत्त्व की है) व्यक्तियों के मन पर पड़ी बाहर के पदार्थों की छाप और मनुष्यों के व्यक्तिगत अनुभव से प्राप्त ज्ञान के संकेत हैं और ये संकेत क्रम से सभी मनुष्यों के विचारों के व्यक्त करने के योग्य बनाये गये।

अब देखिए कि तुलनामूलक भाषा-विज्ञान के सिद्धांतों के अनुसार जाँच परख करने पर हम जिस सिद्धांत पर पहुँचते हैं वह ऊपर बताये गये सिद्धांतों के एक दम विपरीत है। यह निदान इस प्रकार है—हम भाषा की काट-छाँट करते-करते अंत में धातुओं पर पहुँचते हैं और इन धातुओं में प्रत्येक धातु कोई व्यक्तिगत विचार नहीं, किन्तु साधारण विचार प्रकट करती है। प्रत्येक नाम या संज्ञा, यदि हम उसका पूरा-पूरा विश्लेषण करेंगे, तो इसके भीतर हमें क्रियावाचक धातु मिलेगी, जो बताती है कि यह नाम या संज्ञा इस विशेष विचार के कारण अपने इस रूप में बनायी गयी।

भाषाशास्त्रियों में बहुत दिनों से इस विषय पर वादविवाद चला आ रहा है कि भाषा के प्रारंभिक काल में पहले व्यक्तिवाचक[1] नामों का उद्भव हुआ या जातिवाचकों का? भाषा के आदि काल में पदार्थों को पहचान कर उनके नाम रखने की आवश्यकता पड़ी और यदि इस विषय पर हम विचार करेंगे, तो हमें यह भी पता चल जायगा कि उस समय पदार्थों का नामकरण करने में किस कारण इन धातुओं की अति आवश्यकता पड़ीं।

कुछ विद्वान्, जैसे कि लॉक काडिल्याक, ऐडम स्मिथ, डा० ब्राउन और किसी सीमा तक डुगल स्टीवार्ट, यह भी मत रखते हैं कि सभी शब्द जिनका कि प्रयोग भाषा के आदिकाल में किया गया व्यक्तिगत पदार्थों का बोध कराते हैं। ऐडम स्मिथ ने कहा है—"विशेष-विशेष पदार्थों को विशेष-विशेष नाम देने का कार्य संभवतः भाषा-उत्पत्ति के इतिहास में सर्वप्रथम संभव हुआ होगा। दो ऐसे जंगली आदमियों को ले लीजिए, जिन्हें पहले कभी बोलना नहीं सिखाया गया। यह भी मान लीजिए कि ये दोनों असभ्य आदमी मनुष्य समाज से सुदूर जंगलों में रहे, तो एक दूसरे से मिलने पर ये मुँह से कुछ अस्पष्ट ध्वनि निकाल कर यह प्रयत्न करेंगे कि अपने विचार

१. Sir W. Hamilton's Lectures, ii. p. 319.

एक दूसरे को बता सकें। इस स्थिति में वे पहले उन्हीं पदार्थों के नामकरण का प्रयत्न करेंगे जो उनके बहुत काम के हैं और जिन्हें वे बहुत चाहते हैं, साथ ही साथ ये नाम ऐसे होंगे, जिनका व्यवहार उन्हें बार-बार करना पड़ता होगा। वह विशिष्ट गुफा जिसके नीचे रहकर वे वर्षा, धूप आदि से सुरक्षित रहते होंगे या जहाँ सोते बैठते, आराम करते होंगे तथा वह विशिष्ट वृक्ष जिसके फलों से वे अपनी भूख का निवारण करते होंगे और वह पानी का विशिष्ट झरना जिसके शीतल जल से वे अपनी प्यास बुझाते होंगे, इन तीनों पदार्थों का नामकरण उन लोगों ने सबसे पहले किया होगा, और उन्होंने क्रमशः इनके नाम गुफा, वृक्ष और झरना रखे होंगे या इन नामों के स्थान पर इनके पर्यायवाची कोई और शब्द रखे होंगे या अपनी विशेष परिस्थिति में उनका परिचय देने के लिए जो नाम उचित समझे होंगे वे रखे होंगे। इसके बाद जब इन असभ्य मनुष्यों का अनुभव बहुत बढ़ गया और नाना आवश्यक अवसरों पर इन्हें इन पदार्थों को बताने की आवश्यकता पड़ी या इनको दूसरी गुफा या दूसरा वृक्ष या दूसरा झरना बताना पड़ा तो स्वभावतः उन्होंने इनके लिए पहले काम में लाये हुए नामों को दोहराया। एक वक्त जब इन पदार्थों का नाम रख लिया तो फिर इस प्रकार के अन्य पदार्थों के लिए वही शब्द काम में आने लगा। जब ये नये पदार्थ उनके देखने में आये तो इनका कोई नाम तो था नहीं, ये उनकी देखी हुई पहली गुफा, वृक्ष या झरने से मिलते थे, इस कारण इनको भी वही पुराना नाम दे दिया। यह तो असंभव ही था कि ये असभ्य प्रायः एक ही प्रकार के नये-नये पदार्थ देखते और इन्हें एक ही प्रकार के पुराने पदार्थों का नाम याद न आता, क्योंकि ये नये पदार्थ पुरानों से बहुत ही अधिक मिलते जुलते थे और जब कभी ऐसा अवसर आता कि एक असभ्य मनुष्य दूसरे असभ्य आदमी से ऊपर कहे गये पदार्थों का जिक्र करता या उसे ये नये पदार्थ दिखाता तो वे स्वभावतः इसी प्रकार के पुराने पदार्थों का उन्होंने जो नामकरण किया था वही नाम बार-बार लेते रहे होंगे। इस नाम की याद उन्हें सदा ताज़ी और पक्की रहती होगी। इस प्रकार वे शब्द जो पहले विशेष-विशेष पदार्थों के वाचक थे, वैसे ही सभी अन्य पदार्थों के वाचक हो गये, अर्थात् वे जातिवाचक बन गये। एक बच्चे का उदाहरण लीजिए। जब वह बोलना सीखना आरंभ करता है तो जो पुरुष या स्त्री उसके घर में आती है, उसे वह बाबा या माँ नाम से पुकारने लगता है। भले ही उसे यह सिखाया गया था कि ये नाम वह घर के भीतर केवल दो ही व्यक्तियों के लिए काम में ला सकता है, किन्तु इन नामों को उसने जातिवाचक बना दिया। मैं एक मसखरे को जानता हूँ जिसे

उस नदी का नाम ही मालूम न था, जो उसके दरवाज़े के सामने से बहती थी। उसने बताया कि यह नदी है। वह इस नदी को केवल नदी नाम से संबोधित करता था। ऐसा ज्ञात होता है कि उसे अन्य नदियों का पता ही न था। उसके लिए एक ही नदी देखने के कारण नदी नाम ही व्यक्तिवाचक हो गया था। यदि उसे किसी अन्य नदी का पता होता, तो क्या यह संभव होता कि वह अपने दरवाज़े के पास बहती हुई जलधारा का नाम नदी रखता? क्या हम तर्क के लिए भी यह मान सकते हैं कि टेम्स नदी के किनारे पर रहने वाला कोई आदमी इतना मूर्ख हो सकता है कि सामान्य जातिवाचक नाम **नदी** को न जानता हो? तथा व्यक्तिवाचक नाम **टम्स** पहचानता हो। ऐसा आदमी यदि किसी दूसरी नदी के पास जाय तो क्या वह उस नदी को केवल टेम्स नाम से संबोधित नहीं करेगा? यही बात, वास्तव में उन पर भी लागू होती है जो जातिवाचक या साधारण शब्द से परिचित हैं। कोई अंग्रेज़ जो विदेश जाता है और एक महानदी को देखता है, उसका वर्णन करते समय बताता है कि वह विदेश की महानदी टेम्स के समान ही थी।....इसी रीति से, कभी-कभी व्यक्तिवाचक नाम साधारण नाम बन जाता है।[1] इसका कारण यह है कि ये पदार्थ किसी विशेष पदार्थ से बहुत ही मिलते-जुलते हैं और उनका नाम भी इस प्रकार व्यक्तिवाचक से साधारण नाम बन जाता है। ऐसा मालूम पड़ता है कि इसी कारण साधारण या व्यक्तिवाचक नाम बन गये हैं और हमारे छात्र इन्हें व्याकरण में जातिवाचक कहकर पढ़ते और सीखते हैं।"

ऐडम स्मिथ के ग्रंथ से यह उद्धरण, भाषाविज्ञानियों का एक मत, बहुत स्पष्ट रूप में, हमारे सामने रखता है। मैं यहाँ पर अब एक मत आपके सामने ऐसा प्रस्तुत करूँगा, जो इसके बिलकुल विपरीत है। यह मत मैं लाइबनित्स[2] के ग्रंथ से दे रहा हूँ। उसका विचार यह है कि भाषा के निर्माण करने वाले तत्त्वों में जातिवाचक शब्द

१. इसी प्रकार हिन्दी का गंगा शब्द हिन्दी की कुछ बोलियों में नदी के लिए भी काम में आने लगा है। कुबेर शब्द जो एक विशेष देवता का नाम है हिन्दी शब्द धन-कुबेर आदि में जातिवाचक बन गया है और किसी भी धनी का सूचक है। (—अनु०)

२. Nouveaux Essais, lib. iii c.i. p. 297 (Erdmann Sir W. Hamilton, Lectures, ii. 324.

आवश्यक हैं। वह भी बच्चों का उदाहरण देता है। वह लिखता है—"बच्चे जब बोलना आरंभ करते हैं तो उन्हें नाम-मात्र का ही भाषा-ज्ञान होता है, पर वे जिस विषय पर बात करते हैं, उनका उस विषय का ज्ञान भी सीमित रहता है। इस कारण अज्ञानवश वे व्यक्तिवाचक नाम तो काम में नहीं लाते किन्तु उनके स्थान पर साधारण जातिवाचक शब्दों का प्रयोग करते हैं, जैसे वस्तुएँ, पेड़-पौधे, पशु आदि तथा यह भी निश्चित है कि व्यक्तिवाचक या विशेष-विशेष वस्तुओं के नाम आदि काल में साधारण या जातिवाचक थे।" लाइबनित्स और भी कहता है—"इस प्रकार, मैं यह कहने का साहस करूँगा कि प्रारंभिक युग में सभी शब्द जातिवाचक थे; क्योंकि शायद ही बहुत थोड़े से अवसरों में यह संभव था कि मनुष्य किसी ऐसे नाम का आविष्कार करता, जो अकारण ही और स्पष्ट रूप में अमुक-अमुक व्यक्तियों की पहचान कराता या उनका नामकरण करता। इसलिए हम ज़ोर के साथ यह कथन कर सकते हैं कि व्यक्तिवाचक पदार्थों के नाम प्रारंभिक युग में जातिवाचक नाम थे जो प्रबल कारणों से व्यक्तिवाचक बन गये। जैसे Great Head नाम उसे दिया गया जो बड़े सिरवालों में भी सबसे बड़ा सिर रखता था या और बड़े सिर वालों ने आदर का भाव दिखाने के लिए उसे Great Head की उपाधि दे दी।"

लाइबनित्स और ऐडम स्मिथ जैसे विद्वानों के विवाद का निर्णय करना महान् साहस का काम गिना जायगा। विशेष कर उस अवस्था में जब कि ये दोनों पंडित अपने-अपने विषय में बहुत बड़े निश्चय और अधिकार के साथ लिख रहे हैं। इन विद्वानों के मतों पर निर्णय देने के दो ढंग हैं। एक ढंग तो यह है कि जहाँ ये मनीषी हमारे मत से भेद रखते हैं, उस स्थान पर हमें इनकी भ्रमपूर्ण बात बता देना चाहिए और इनकी राय को एक ओर रख देना चाहिए। किन्तु प्राचीन विद्वानों का अध्ययन करने का यह ढंग सबसे कम संतोषजनक है। दूसरा ढंग यह है कि जिन पंडितों से हमारा मतभेद होता है, उनकी बात को हम पूरी तौर से जान लें, कुछ समय के लिए हम उनके विचार अपना लें और उन्हें तब तक अपनाये रहें जब तक हम भली-भाँति यह न जान लें कि अपने विषय पर प्रत्येक विद्वान् ने उसके सामने जो तथ्य रहे होंगे उन पर किस दृष्टि से विचार किया होगा और हम वह प्रकाश देख लें जिसके द्वारा उसने इन तथ्यों को देखा। तब हम जान जायँगे कि ज्ञान के इतिहास में वैसी भद्दी-भद्दी भूलें नहीं की गयी हैं, जैसा कि हमें लगता है। इतना ही नहीं, वरन् हम देखेंगे कि यदि हम उनके भ्रम का ठीक-ठीक अध्ययन करेंगे तो उनके द्वारा आविष्कृत सचाई को ठीक-ठीक समझने में बहुत ही अधिक सहायता मिलेगी।

अब हमारे सामने जो भिन्न-भिन्न मत हैं उनके अनुसार ऐडम स्मिथ ठीक ही हमको बताता है कि पहली व्यक्ति-वाचक या विशेषता-वाचक **गुफा**, जिसका नामकरण गुफा किया गया, उसके कारण अन्य सब गुफाओं का नाम **गुफा** पड़ा। इसी प्रकार जो पहला नगर बना, उसके नामकरण के बल पर ही अन्य सब शहरों का नाम भी नगर पड़ा। पहला palece (पैलेस=महल) जो यूरोप में बना वह रोम के सम्राट् के वास्ते रोम नगर में **पालाटीन** नामक पहाड़ी पर बनाया गया। इस **पालाटीन** में बने महल के नाम से ही यूरोप भर में महलों के लिए **पैलेस** नाम चल गया। गुफाओं, नगरों और महलों में जो नाम-मात्र का भेद होता है वह नगण्य होता है और पहले पहल रखा हुआ नाम अधिकाधिक साधारण बनता जाता है, और उसी प्रकार के जितने व्यक्तिवाचक पदार्थ मिलेंगे, उनके साथ-साथ यह भी साधारण से साधारणतर होने लगता है। इस विषय पर ऐडम स्मिथ का मत ठीक ही है और उसके मत के पक्ष में प्रत्येक पदार्थवाचक शब्द या संज्ञा का इतिहास दिया जा सकता है। किन्तु जब लाइबनित्स कहता है कि जब पहले पहल गुफा, नगर और पैलेस (महल) जैसे शब्द काम में आने लगे तो ऐसे नाम किस प्रकार से निकले होंगे? उसकी यह शंका भी सर्वथा ठीक है। अब हम गुफा के लिए लैटिन भाषा में जो शब्द काम में आते हैं उनका उल्लेख करते हैं—लैटिन में गुफा को antrum (अन्तरुम्), cavea (कावेआ) और spelunca (स्पेलुंका) कहते हैं। antrum (अन्तरुम्) शब्द का अर्थ वही है जो internum (इंटरनुम) शब्द का है। यह शब्द संस्कृत अन्तर शब्द से निकला है, 'अन्तर='बीच में'[१], भीतर'। इस कारण अन्तरुम् का अर्थ हुआ "जो भीतर है", "जो भूमि के भीतर है" और उसी प्रकार का अन्य अर्थ। इसलिए यह बात स्पष्ट है कि इस प्रकार का नाम किसी विशेष गुफा को नहीं दिया जा सकता था, जब तक इन शब्दों को गढ़ने वालों के मन के भीतर यह विचार न रहता कि उनका आशय किसी पदार्थ से है "जो कहीं भीतर की तरफ या भीतर में है।" यह विचार उनके मन में गुफा के विषय में रहा होगा। एक बार यह साधारण विचार मन में बैठ गया और उन **अन्** या **अन्तर** शब्दों से, जो कि सर्वनाम धातु से बने हैं, हमने शब्द का निर्माण कर लिया तो हम इसके द्वारा यह स्पष्ट रूप से समझ गये कि नामकरण की प्रक्रिया किस प्रकार आगे बढ़ी होगी। वह स्थान जहाँ प्रारंभिक युग के असभ्य,

१. Pott, Etymologische Forschungen, p. 324, Seq.

वर्षा या जंगली जानवरों के अकस्मात् आक्रमणों से सुरक्षित रहते थे और जो चट्टानों में एक स्वाभाविक खोखला स्थान था, उसे वे नियमित रूप से अपना अन्त्रुम कहते थे, यानी यह उनका "भीतर" था। इसके बाद, जब उन्होंने ऐसा स्थान देखा जो भले ही पेड़ खोखला करके बनाया गया हो या भूमि खोदकर बनाया गया हो उसका नाम भी गुफा रख दिया गया। यही ऊपर वाला साधारण विचार गुफा के और नामों के मूल में भी है। और हम इस प्रकार यह भी देखते हैं कि संस्कृत में पेट के भीतर की अंतड़ियों को भी अन्त्र (नपुंसक लिंग) कहते हैं; ग्रीक भाषा में अंतड़ियों को enteron (इंत्रिओन) कहते हैं। इनका मूल अर्थ है 'भीतर के पदार्थ'।

अब हम गुफा के लिए जो दूसरा शब्द काम में आता है, cavea या caverna (कावेया या कावेरना), उस पर आते हैं। इस नाम के विषय में ऐडम स्मिथ की सम्मति ठीक-ठीक बैठती है। जब यह नाम गुफा को दिया गया होगा तो आदि में यह नाम किसी विशेष गुफा का रखा गया होगा और बाद को और गुफाओं के लिए भी काम में लाया गया होगा; किन्तु इस विषय पर लाइबनित्स का कहना भी ठीक ही है कि पहले खोखले स्थान या कावेया का नाम उसके खोखलेपन से रखा गया, उसके बाद जो भी खोखली जगह मिली उसका नाम गुफा रखा गया। इतना ही नहीं, हम एक कदम और भी आगे जा सकते हैं और कह सकते हैं कि cavus (कावउस) का अर्थ खोखला स्थान है। इस प्रकार यह शब्द मूल अर्थ नहीं बल्कि गौण अर्थ बताता है। जब कि एक खोखले स्थान को **कावेया** कहा गया उससे पहले मनुष्य ने बहुत-सी खोखली चीजें देख ली होंगी। अब प्रश्न उठता है कि क्या खोखली चीज या खोखला स्थान cav **काव** धातु से निकला? इसका कारण स्पष्ट है, जो स्थान खोदा या खोखला किया गया था वह आदि-काल में इस वास्ते खोखला किया गया था कि मनुष्य उसमें रहकर अपनी रक्षा कर सके या अपने को बचा सके और इस खोखले स्थान के भीतर अपने को ढककर रख सके। यह शब्द **कू** या **स्कू** धातु से बना है जिसका अर्थ है 'अपने को ढकना'।[१] इस कारण हम समझ जाते हैं कि गुफा शब्द बनने से पहले मनुष्य के मन में अपने को ढकने का विचार रहा होगा और तब ये नाम पेड़ों के या चट्टानों के भीतर के खोखले स्थानों के लिए

१. **Benfey**, Griech. Wurzel Lex. p. 611.

भी काम में लाये गये होंगे। तब तक ये नाम खोखले या सुरक्षित स्थानों के लिए व्यवहार में न आते होंगे। जब मनुष्यों को अपनी सुरक्षा के लिए ऐसे स्थानों की आवश्यकता पड़ी तो उसने ऐसे स्थानों का नाम गुफा रख लिया।

इस गुफा के लिए दूसरा शब्द Koilos (कोइलास्) था, जिसका अर्थ है खोखला। इस शब्द के भीतर जो विचार भरा है वह भी वही है जो **गुफा** के या **केव** के भीतर है। एक खोखले स्थान को **कोइलौन** कहा जाता था क्योंकि यह छतदार रहता था। **कोइलौन** शब्द इस अर्थ में काम में आया तो **कोइलौन** का नाम भी **गुफा** हो गया अर्थात् "छत-दार गुफा"। इस कारण स्वयं आकाश का नाम भी Coelum (कोइलुम्) पड़ गया, क्योंकि यह पृथ्वी की छत के रूप में समझा गया।

यह बात सब नामों या शब्दों के विषय में लागू होती है। सब नाम अपने जन्म के समय एक पदार्थ की अनेक विशेषताओं में से एक मुख्य विशेषता का आभास देते हैं, और यह विशेषता उस पदार्थ का कोई गुण हो या उसकी कोई क्रिया हो, इतना तो साफ है कि उस गुण या क्रिया से उस शब्द के भीतर से प्रकट होने वाला एक साधारण विचार व्यक्त होता है। इस साधारण विचार से बना हुआ एक एक शब्द मूल में एक ही पदार्थ के लिए काम में लाया जाता होगा। भले ही, वह बनने के बाद तुरन्त उसी प्रकार की अन्य सब चीजों के लिए व्यवहार में आने लग गया हो। जब एक शब्द, जैसा कि rivus (रिवुस्) नदी के लिए गढ़ा गया होगा तो इसमें संदेह नहीं कि यह पहले पहल एक विशेष नदी के लिए काम में आता होगा और यह नाम रिवुस् (rivus, संस्कृत-हिन्दी इरावती-रावी आदि) इसीलिए पड़ा कि नदी बहती है। **रु** या **स्रु**, बहना, धातु से नदी का यह नाम पड़ा। कई बार ऐसा भी हुआ कि रावी, इरावती अथवा बहनेवाली आदि एक ही नदी के नाम रह गये (जैसे भारत की नदी सरयू, गंगा आदि)। ऐसे नाम साधारण नाम न बन पाये। इसी नियम से Rheunes, लैटिन Rhenus (रेनुस) और उसके जर्मन रूप Rhine (राइन) का अर्थ ही 'बहने वाली, आगे बढ़ने वाली' है। यह नाम एक नदी का ही बोधक रह गया, यह नदी का साधारण नाम न बन सका। संस्कृत में जिस नदी को गंगा कहते हैं वह **गम्**-धातु का दो बार प्रयोग करने से बनी है। इसका अर्थ है 'तेज चलने वाली'। यह नाम किसी भी तेज बहने वाली नदी के लिए काम में लाया जा सकता है; किन्तु यह शब्द साधारण न हो पाया और एक ही नदी का नाम रह गया। (जैसा हम ऊपर एक नोट में कह आये हैं, हिन्दी की

कुछ बोलियों में इसका अर्थ नदी भी हो गया, जैसा कि राम-गंगा में।—अनु०) और देखिए, सिंधु नदी का नाम संस्कृत में स्यन्द 'बहना', 'सींचना' धातु से बना है। भले ही, इस समय यह नाम एक नदी का रह गया हो, किन्तु वैदिक काल में सिन्धु नदियों के लिए साधारण नाम के रूप में काम में आता था।

अब हमने यह भली-भाँति देख लिया है कि पदार्थों की पहली **पहचान** या उनके प्रथम नामकरण का क्या अर्थ है। पहले-पहल हम किसी पदार्थ के विषय में जो जानते हैं वे उसके साधारण गुण या साधारण कर्म हैं। पदार्थों को हम उक्त दो विशेषताओं से जानते हैं और इन विशेषताओं के आधार पर ही उनका नाम रखते हैं। बाद को यह नाम इस प्रकार का बन जाता है कि उससे भले ही एक विशेष पदार्थ का बोध क्यों न हो, उसके मूल में साधारण विचार अवश्य ही रहते हैं। तब क्या होता है कि ये व्यक्ति या एक ही पदार्थ के वाचक नाम क्रमशः सारी जाति के वाचक बन जाते हैं, और उनके नाम भले ही व्यक्तिवाचक हों वे धीरे-धीरे साधारण जाति-वाचक[1] बन जाते हैं।

भाषा के नामों में कई बातें बड़ी विचित्र रहती हैं जिनके आगे हमें अवाक् रह जाना पड़ जाता है। एक उदाहरण लीजिए, यदि हम नाम शब्द के लिए सबसे पुराने शब्द की शोध करेंगे तो हमें इसका संस्कृत रूप **नामन्** मिलेगा और लैटिन में नोमिन (nomen) कहते हैं, गौथिक में इसे नामो (namo) कहते हैं। संस्कृत का यह नामन् शब्द वास्तव में कभी gnaman (ग्नामन=ज्ञामन्) रहा होगा। और यह ज्ञ वाला रूप लैटिन के एक रूप में अब तक सुरक्षित है। यह लैटिन शब्द

१. **सर विलियम हैमिल्टन** (Lectures on Metaphysics, ii p. 37) **ऐडम स्मिथ और लाइबनित्स के बीच का मत रखते हैं। वे कहते हैं कि जिस प्रकार हमारा ज्ञान अस्पष्ट से स्पष्ट की ओर, अनिश्चित से निश्चित की ओर जाता है, ठीक उसी प्रकार बच्चों के मुँह में भाषा आरम्भ में न तो ठीक-ठीक जातिवाचक होती है, नही स्पष्ट व्यक्तिवाचक। उसके मुँह से तो अनिश्चित और भ्रमपूर्ण शब्द निकलते हैं और इससे साधारणीकरण की प्रक्रिया द्वारा शब्द आगे बढ़ते हैं। विशेष गुणों और पदार्थों के भिन्न करने वाले लक्षणों द्वारा विशेष पदार्थ तथा उनके एक वचन का परिचय मिलता है। इसके विषय में कुछ और बातें** Literary Gazette, 1861, p. 173 **में दी गयी हैं।**

Co-gnomen (कौग्नोमन) में सुरक्षित रह गया है। इस नामन् का ग लोगों की ज़बान से धीरे धीरे उड़ गया और यह वैसा ही रूप है जैसा लैटिन में gnatus (ग्नातुस) से ग घिसकर निकला हुआ natus (नातुस='पुत्र') रह गया है। इसी लिए अब हमें स्पष्ट हो गया है कि यह naman (नामन्) gnaman (ज्ञामन्='जानना') से निकला है। इसका अर्थ प्रारंभ काल में था—(वह लक्षण) 'जिससे किसी पदार्थ को जाना जाता है।'

और अब देखिए कि हम पदार्थों और चीजों को किस ढंग से पहचानते हैं? हम पदार्थों को अपने इन्द्रिय-ज्ञान द्वारा पहचानते हैं। किन्तु हमारी इन्द्रियाँ हमें एक बार में केवल एक ही बात का ज्ञान देती हैं, इस कारण किसी पदार्थ को जानना इन्द्रियों के द्वारा प्राप्त किये हुए अनुभव से भी कुछ अतिरिक्त बात है। हम अपनी बुद्धि द्वारा पदार्थ का जो कुछ ज्ञान प्राप्त करते हैं, यह उससे भी परे है। इसके बारे में हम जो कुछ याद करते हैं यह उससे भी अधिक है। इसके गुण स्मरण करने या इसके गुणों की तुलना करने से भी इसको पहचानना कुछ अधिक है। इसमें संदेह नहीं कि शब्दों या नामों का बहुत ही दुरुपयोग होता है। हम कहते हैं कि कुत्ता अपने मालिक को खूब पहचानता है और बच्चा अपनी माँ को भी अच्छी तरह जानता है। ऐसे वाक्यों में जानने का अर्थ अच्छी तरह पहचानना है। हम एक पदार्थ को तभी पहचान सकते हैं जब नाम लेते ही उसको सामने उपस्थित कर सकें या इसके किसी हिस्से को लाकर दिखा सकें और उसके साधारण गुणों का वर्णन कर सकें। ऐसी दशा में हम नहीं कहते कि हमें इस वस्तु का अनुभव है बल्कि हमें इसका संज्ञान अर्थात् इसका पूरा-पूरा ज्ञान है अर्थात् हम यह भी कह सकते हैं कि इस पदार्थ का हमें साधारण तौर पर ज्ञान है। ज्ञान में यह होता है कि हमारी इन्द्रियाँ प्रकृति के तथ्यों का निरीक्षण करती हैं या Oersted (ओर्स्टेड) के शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि प्रकृति के विचारों को हमारी बुद्धि[१]

१. "अपार जलराशि का, जो उसी एक ऊँचाई और एक प्रकार की कठिनता के साथ नीचे को उतरती है, हमारे मन पर चित्र पड़ता है। पानी की बूँदें जब टूट-टूटकर इधर-उधर बिखरती हैं, उनसे जो झाग बनता है, पानी के नीचे गिरने से जो गरज-तरज और गड़गड़ाहट सुनाई देती है, ये सब बातें निरंतर एक समान कारणों से उत्पन्न होती हैं और परिणामस्वरूप सदा एक सी रहती हैं। इन

ही ग्रहण कर सकती है। अब देखिए कि इस वास्तविक ज्ञान की पहली सीढ़ी भी, भले-ही यह सीढ़ी बहुत छोटी दिखाई पड़ती हो, मनुष्यों को अन्य सब जीवों से अलग कर देती है और यह है—पदार्थों का नामकरण, किसी पदार्थ को इस योग्य बना देना कि हम उसकी पहचान तुरत कर सकें। यह नामकरण करना, ज्ञात पदार्थों का वर्गीकरण करना है। इसमें भिन्न-भिन्न व्यक्तिवाचक पदार्थ साधारण जातिवाचक पदार्थों के भीतर रखे जाते हैं और हम जो कुछ जानते हैं, भले ही साधारण या वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा उसे जानें, हम यह ज्ञान अपने साधारण विचारों द्वारा ही प्राप्त कर सकते हैं। अन्य जीवों में इन्द्रिय-ज्ञान, अनुभव, स्मृति और किसी हद तक बुद्धि रहती है, किन्तु ये सब शक्तियाँ पशुओं को एक बार में केवल एक ही पदार्थ का ज्ञान दे सकती हैं। मनुष्य में इन्द्रिय-ज्ञान, अनुभव, स्मृति, बुद्धि और विवेक-बुद्धि है और यह विवेक-बुद्धि साधारण विचारों से ही परिचित रहती है।

इस विवेक-बुद्धि द्वारा हम पशु-जगत् से बहुत ऊँचे ही नहीं हो जाते बल्कि हम एक दूसरी ही दुनियाँ में पहुँच जाते हैं। हम अपने पशु-स्वभाव से प्राप्त अनुभव, इन्द्रियज्ञान, स्मृति और बुद्धि की उपेक्षा करते हैं, भले ही ये अपने भीतर वर्तमान हों, किन्तु हम यह समझते हैं कि हमारी जो सनातन आत्मा है, इनका उससे कोई संबंध नहीं है, हमारा इन्द्रियज्ञान, हमारी स्मृति तथा हमारी बुद्धि उसी प्रकार की है, जैसे टेलिस्कोप के लेंस, किन्तु इन सबको देखने के लिए हमें अच्छी आँख चाहिए, जो बाहरी दुनिया के वास्तविक तथ्यों को देख सके। वह अच्छी आँख है हमारी विवेक-पूर्ण बुद्धि वाली सदाचेतन आत्मा। यह शक्ति हमारे

सब बातों का जो पहला प्रभाव हम पर पड़ता है, वह प्रारंभ में नाना रूपों से भला दिखाई देता है। परन्तु शीघ्र ही इन भिन्न-भिन्न रूपों और ध्वनियों से हमारे मन में एक सम्पूर्ण चित्र आकर खड़ा हो जाता है। या यों कहिए कि तब हम एक-एक अलग घटनाओं का जो हमारे मन पर प्रभाव पड़ा है, उस नानात्व को प्रकृति की क्रियाशीलता के परिणाम रूप से एकत्व के रूप में देखते हैं और यह एकत्व जिस स्थान पर हम होते हैं उसकी प्रकृति के नाना रूपों से प्राप्त होता है। जब तक हमें और अच्छा ज्ञान प्राप्त नहीं होता, तब तक हमें प्राकृतिक दृश्यों में जो जो निश्चित बातें दिखाई दें उन्हें प्रकृति के विचार समझना चाहिए।" Oersted, Esprit, dans la Nature p. 152.

अनुभव की शक्ति से उतनी ही दूर है, जितना कि सूर्य पृथ्वी से दूर है, तो भी यह **पृथ्वी** को प्रकाश, गर्मी तथा जीवन दान करता है। ठीक उस स्थान पर, जहाँ मनुष्य पशुजगत् से अपने विशेष गुणों द्वारा अलग होने लगता है, उसके भीतर विवेक-बुद्धि की प्रथम ज्योति चमकने लगती है। ऐसी स्थिति और समय में उसमें भाषा की उत्पत्ति के अंकुर फूटने लगते हैं। आप किसी शब्द की चीर-फाड़ कीजिए तो आप देखेंगे कि इस शब्द के भीतर एक साधारण विचार भरा पड़ा है, जो उस व्यक्ति-वाचक पदार्थ का गुण है, जिसके लिए यह शब्द प्रयोग में लाया जाता है। अंग्रेजी शब्द moon (चन्द्रमस्) का क्या अर्थ है? उसका अर्थ है, "माप करने वाला"। सूर्य का अर्थ क्या है? इसका अर्थ है "सव या प्रसव करने वाला" अर्थात् "जनम देने वाला"। अंग्रेज़ी में Earth (भूमि) का मूल अर्थ "जोती हुई भूमि" है। गाय, भेड़ आदि पशुओं को प्राचीन समय में **पशु** नाम दिया गया था। इस शब्द का लैटिन रूप pecus (पेकुस्) है, जिसका अर्थ है "भोजन कराने वाला"। अंग्रेजी शब्द Animal बहुत बाद को चला। यह Anima (अनीमा) से निकाला गया है, जिसका अर्थ "आत्मा" या "प्राण" है। इस **अनीमा** का मूल अर्थ "हवा का बहना या श्वास लेना" था और यह अन् 'वायु का बहना या सांस लेना' धातु से निकाला गया है। संस्कृत भाषा में इस **अन्** धातु से निकला हुआ एक रूप **अनिल** है, जिसका अर्थ "वायु" है। ग्रीक भाषा में वायु को anemos (अनेमोस्) कहते हैं। अंग्रेज़ी शब्द ghost जिसे जर्मन geist (गाइस्ट) कहते हैं, ऐसे ही विचारों के बल पर बना है। यह शब्द अंग्रेज़ी के gust (गस्ट=हवा का झोका), yeast (ईस्ट=खमीर) तथा gass आदि शब्दों से संबंधित है। इतना ही नहीं, स्वयं geyser (गेज़र) शब्द जो आइसलैंड का है तथा जिसका अर्थ "जमीन से निकलने वाली गरम जल की ऊपर को उठने वाली धार" है, वह भी उक्त दो शब्दों से संबंधित है। संस्कृत में प्रेम के लिए एक शब्द **स्मर** है, यह शब्द **स्मर्** धातु से निकाला गया है, इस **स्मर्** धातु का अर्थ है "याद करना"। अब तमाशा देखिए कि जर्मन में schmerz (श्मेर्त्स=कष्ट, दर्द) इसी **स्मर** का एक रूप है। अंग्रेज़ी में smart (स्मार्ट=दुख प्राप्त करना) इसी का दूसरा रूप है।

अंग्रेज़ी का शब्द serpent (सर्पेन्ट=संस्कृत सर्पन्त) संस्कृत में सर्प कहा जाता है। इसका कारण यह है कि साँप पाँवों से चल नहीं सकता, वह साधारण रूप में पेट के बल सरकता है; इस साधारण विचार ने **सर्प** या **सर्पेन्ट** नाम की सृष्टि की, किन्तु संस्कृत में **सर्प** का एक दूसरा नाम **अहि** भी है। ग्रीक भाषा में

इस **अहि** का रूप echis या echidna (क्रमशः एखिस् या एखिद्ने) हो गया है। लैटिन भाषा में सांप को anguis (अंगुइस) कहते हैं। यह नाम बिलकुल भिन्न धातु और उस धातु से प्रकट होने वाले विचार से निकाला गया है। यह धातु संस्कृत में **अह्** या **अंह्** है जिसका अर्थ होता है 'अपने को दबाना या सिकुड़ना'। इससे आप देखेंगे कि यह धातु वह विशेष चिह्न या गुण प्रकट करती है जो साँप में हम उसके विशेष चिह्न के रूप में देखते हैं। यह **अंह्** कई आधुनिक शब्दों में भी वर्तमान है। लैटिन भाषा में यह ango (अंगो), Anctum (अंकतुम) आदि रूपों में है, जिसका अर्थ "गला दबाना" है। लैटिन में एक शब्द Angor (अंगोर) भी है, जिसका अर्थ है "गला घोटना"। लैटिन में angustus (अंगुस्तुस) का अर्थ "तंग या संकुचित" है और anxius (अंक्सीयुस) का अर्थ "विकल" या "बेचैन" है। ये दोनों शब्द एक धातु से निकले हैं। ग्रीक में यह धातु अपने वास्तविक और स्वाभाविक अर्थ में प्रयुक्त होती है। इस धातु के दो ग्रीक रूप हैं eggys (एगुस) "निकट" और echis (एखिस) "सांप" सिकुड़कर कुंडली बनाने वाला। संस्कृत में इस धातु का एक रूप बहुत ही उचित अर्थ में पाप के लिए भी प्रयुक्त हुआ है। इस एक धातु से मनुष्यों के मन में नाना विचार उठे, जिनसे एक ही अर्थ से निकलने वाले नाना पहलू उनकी आँखों के सामने आ गये, किन्तु इनमें सबसे अच्छा विचार रहा "सिकुड़ने" और "गला घोटने" का। संस्कृत में **पाप** के लिए जो शब्द प्रयुक्त होता है वह है **अंहस्**। यह अर्थ इसलिए निकाला गया कि **अंह्** धातु का एक अर्थ "गला घोटना" भी है। इस शब्द के बनाने वाले आदि आर्यों के मन में कुछ ऐसा विचार उठा कि पाप मनुष्य के गला घोंटने के समान ही है। जिन लोगों ने लओकून और उसके पुत्र की वह प्रस्तर-मूर्ति देखी होगी, जिसमें सांप ने उनको सिर से पाँव तक सर्वत्र जकड़ रखा है, वे भली-भाँति समझ सकते हैं कि इन प्राचीन लोगों ने पाप का रूप किस प्रकार का देखा होगा, जिस कारण उन्होंने इसका नाम **अंहस्** रखा। **अंहस्** वही शब्द है जिसका रूप ग्रीक में agos (अगोस) हो गया जिसका अर्थ भी "पाप" ही है। गौथिक में यह शब्द agis (अगिस) रूप में मिलता है और इसका अर्थ हो गया है "भय"। और भी देखिए कि अंग्रेज़ी में इस शब्द का रूप awe (ऑ) है जो ऑफुल "डरावना, भयावना" में मिलता है। इसका एक रूप अंग्रेज़ी में ug-ly (अगली) में आया हुआ ug (अग्) है। अंग्रेज़ी anguish शब्द, फ्रेंच शब्द angoise (अंग्वास) से आया है। इटालियन में इसका रूप angoschia है। यह

सब रूप लैटिन भाषा के angustiae (अंगुस्तीए) से निकले हैं, जिसका अर्थ "खाड़ी" है।

अब यह देखना है कि उन प्राचीन विचारकों और भाषा का निर्माण करने वालों ने मनुष्य तथा अन्य पशुओं में किस प्रकार भेद किया? उन्होंने अपने विषय में जो कल्पना की उससे कौन सा साधारण विचार संबंधित किया? लैटिन में मनुष्य के लिए **होमो** शब्द काम में आता है। यह शब्द फ्रेंच में L'homme, जिसका एक रूप on dit(अँ दि=लोग कहते हैं)में on (अँ) रूप से आया है, उसी धातु से बना हुआ है जो humus (हुमुस) "भूमि", humilis (हुमिलिस) "नम्र" आदि में वर्तमान है। इस प्रकार **होमो** शब्द का अर्थ है "एक जीव जो भूमि की धूल से बना है"।

एक दूसरा नाम जो मनुष्य के लिए संस्कृत में प्रयुक्त होता है **मर्त्य** है। ग्रीक में ध्वनि-परिवर्तन के कारण इसका रूप brotos (ब्रोतौस) है। लैटिन में इसका प्रतिरूप mortalis (मोर्तालिस) और अंग्रेज़ी में यह शब्द mortal बन गया है। मर्त्य का अर्थ है "वह जो मरता है" और ध्यान देने योग्य बात यह है कि इस नश्वर संसार में जहाँ कोई पदार्थ मुरझा रहे हैं, कोई अपना रूप बदल रहे हैं तथा कोई मर रहे हैं, वहाँ अति प्राचीन समय में मनुष्य के नष्ट होने वाले रूप या विचार के कारण उसका नाम **मर्त्य** रखा गया। यहाँ यह भी स्मरण रखना चाहिए कि यदि वे वैदिक ऋषि ऐसे लोगों पर विश्वास नहीं करते जो अमर (=देवता) थे, तो अपने को मर्त्य न कहते।

मनुष्य के एक तीसरे नाम का भी उस समय आविष्कार किया गया। इस नाम का अर्थ है "मनन करनेवाला, विचार करने वाला" और यह नाम जो मनुष्य जाति की सच्ची उपाधि या पदवी है, आज भी अँग्रेज़ी में man रूप में विद्यमान है। **मा** शब्द का अर्थ अंग्रेज़ी में "माप करना" है। आपको स्मरण होगा कि हमने इसी धातु से moon शब्द निकाला था। **मन्** धातु का अर्थ संस्कृत में "मनन करना" है। इसी शब्द से संस्कृत में **मनु** शब्द बनाया गया, जिसका मूल अर्थ "मनन करने वाला या विचारक" है। फिर इसका अर्थ "मनुष्य" भी हो गया। बाद की संस्कृत में देखते हैं कि इस **मन्** धातु से कई, शब्द बनाये गये, जैसे मानव, मानुष, मनुष्य आदि जो सब नाम "मनन करने वाला" अर्थ रखते हैं। गौथिक में हम man (मान्) तथा इसका दूसरा रूप mannisks (मानिस्कास्) "मनुष्य" के अर्थ में पाते हैं और आधुनिक जर्मन में maun (मान्) और इसका दूसरा रूप mensch (मेन्श) पाते हैं।

प्राचीन भाषाओं में मनुष्यों के लिए काम में आने वाले और कई नाम थे, जैसा कि उनमें अन्य सब पदार्थों के लिए भी अनेक शब्द काम में आते थे। नाम रखने के लिए यही विचार रखा जाता था कि उस पदार्थ के निरीक्षण करने वाले और उसका नाम रखने वाले के मन में पदार्थ के कौन से विशेष गुण बैठ जाते थे? एक शब्द **सूरज** ले लीजिए। इसके नाना विशेष गुणों को लेकर इसका नामकरण किया गया, इसलिए इसे चमकीला, गरम, सुनहरा, रक्षक, ध्वंसक, भेड़िया, सिंह, स्वर्ग की आँख, प्रभा तथा जीवन का पिता आदि नामों से संबोधित किया गया। इसी लिए हम देखते हैं कि प्राचीन भाषाओं में पर्यायों की भरमार है। इस कारण यह भी स्पष्ट है कि इन पर्यायवाची शब्दों में अपने जीवन की होड़ में परस्पर बड़ा संघर्ष चला होगा, जिसमें दुर्बलतर, अभागे, कम उपजाऊ शब्द समाप्त हो गये और वही एक या दो शब्द बाकी रहे जो अधिक सार्थक तथा बली थे। छोटे पैमाने पर **प्राकृतिक चुनाव में विजय** अर्थात् यों कहिए जीवन-संग्राम में नष्ट या लुप्त हो जाने की यह प्रक्रिया अंग्रेज़ी और फ्रेंच जैसी आधुनिक भाषाओं में आज भी चल रही है। बोलियों के प्रथम विस्फोट के समय एक शब्द के अनेक पर्यायवाची शब्दों की कितनी भरमार रही होगी, इसका प्रमाण फोन-हम्मर के इस कथन से मिलता है कि प्राचीन बोलियों में ऊँट[१] तथा ऊंट से संबंधित शब्दों की संख्या ५७४४ मिलती है।

यह तथ्य कि प्रत्येक शब्द अपने मूल रूप में क्रियावाचक है तथा व्यक्तिवाचक शब्दों के भीतर जो विचार रहते हैं वे सब, बिना अपवाद के, साधारण विचारों से निकलते हैं—यह सिद्धान्त भाषा-विज्ञान का सबसे महत्त्वपूर्ण आविष्कार है। यह बात पहले से ही मालूम है कि भाषा मनुष्य का विशेष और अन्य जीवों से पृथक् करने वाला गुण है। किंतु दोनों बातें एक ही तथ्य को कहने के दो ढंग हैं, इस बात का तब तक किसी को पता नहीं चला, जब तक कि धातु का सिद्धान्त भाषा-विज्ञान में आविष्कृत नहीं हुआ और जब तक यह मालूम नहीं हुआ कि ध्वनि से नामकरण तथा विस्मयसूचक ध्वनियों से शब्दों के निर्माण करने से भी अधिक महत्त्व की बात शब्दों को धातु और प्रत्ययों से बनाना है। भले ही आधुनिक विद्वान् इस तथ्य से अज्ञ रहें तो भी यह बात निश्चित है कि प्राचीन कवियों तथा भाषा

१. Farrar, Origin of Language, p. 85.

के निर्माण-कर्ताओं को यह तथ्य ज्ञात रहा होगा। क्योंकि ग्रीक में भाषा का नाम logos (लोगौस) है, इस लोगौस का दूसरा अर्थ 'विवेक युक्त बुद्धि' भी है और पशुओं का नाम alogon (अ-लोगौन=विवेक-युक्त-बुद्धि रहित) रखा गया। मनुष्य के सिवा न तो कोई पशु मनन करता है और न ही कोई पशु बोलता है। भाषा और मनन शक्ति पृथक् नहीं की जा सकतीं। ऐसे शब्द जिनके भीतर विचार नहीं रहते वे मृत् ध्वनियाँ हैं जो कोई अर्थ व्यक्त नहीं करतीं। और हमारे विचार यदि सार्थक शब्दों द्वारा व्यक्त न किये गये हों तो वे निष्फल रहते हैं। विचार करने का अर्थ मन ही मन में बोलना है। बोलने का अर्थ है उच्च स्वर में विचार करना। प्रत्येक शब्द मन के विचार की मूर्ति है।

और अब मेरे पास कुछ ही मिनट रह गये हैं जिनके भीतर आपके सामने मैं भाषा-विज्ञान के सबसे अंतिम प्रश्न पर कुछ प्रकाश डालूँ। मैं डर रहा हूँ कि यह काम कैसे करूँ। मुझे अब आपको यह बताना है कि ध्वनि किस प्रकार मन के विचारों को समाज के भीतर व्यक्त करती है? यह भी आपके सामने प्रस्तुत करना है कि हमारी धातुएँ किस प्रकार से हमारे सामान्य विचारों की संकेत बन गयीं? किस प्रकार **मा** 'माप करना' या **मन** 'मनन करना', **ग**-'जाना', **स्था** 'खड़ा रहना', **सद्** 'बैठना', **दा** 'देना', **म्रि, मर** 'मरना', **चर** 'चरना, विचरना', **कर** 'करना', हम लोगों के नाना विचार व्यक्त करते हैं।

उक्त प्रश्नों का उत्तर मैं यथासंभव कम शब्दों में आपके सामने रखूँगा। चार या पाँच सौ धातुएँ जो भाषा के भिन्न-भिन्न परिवारों में उनकी भाषाओं के आधार-भूत तत्त्वस्वरूप मानी गयी हैं न तो पशु-पक्षियों की ध्वनियों की नकल पर बनी हैं और न ही विस्मयसूचक ध्वनियों से निकली हैं। ये ध्वनियों के कुछ मूल-रूप शब्द हैं जो मनुष्यों की प्रकृति में निहित एक शक्ति द्वारा उत्पन्न किये गये हैं। अफलातून की भाषा में हम कह सकते हैं कि इनका अस्तित्व प्रकृति या सृष्टि में ही भरा था अर्थात् अफलातून के साथ ही हम इस विचार के साथ यह भी कहना चाहते हैं कि जब यह कहते हैं कि प्रकृति या सृष्टि में धातुएँ भरी थीं तो उसका अर्थ यह भी होता है कि ये धातुएँ ईश्वर द्वारा हमें दी गयीं। प्राय: सारी सृष्टि के भीतर, हम एक नियम सर्वत्र काम करता हुआ पाते हैं। वह यह कि आप किसी वस्तु पर चोट मारिए अथवा आघात कीजिए तो उससे ध्वनि निकलेगी। प्रत्येक पदार्थ की ध्वनि अलग-अलग ढंग की निकलती है। धातुओं को जब हम बजाते हैं तो उनकी ध्वनि की लहरों से यह बता सकते हैं कि ये पूर्णयता ठोस हैं या

इनकी बनावट के बीच कुछ खोखलापन भी रह गया है। टीन जिस प्रकार की ध्वनि करती है, सोने की ध्वनि उससे बहुत भिन्न है। पत्थर एक प्रकार की ध्वनि करता है और काठ दूसरी। ये भिन्न-भिन्न ध्वनियाँ भिन्न-भिन्न पदार्थों के दबाव पर निर्भर रहती हैं। मनुष्य के विषय में भी यही कहा जा सकता है, जिसको सृष्टि ने नाना अंगों और यंत्रों से सँवारा[1] है।

अपनी प्रारंभिक और उस समय की विकसित अवस्था में मनुष्य पशुओं के समान केवल विस्मयसूचक शब्दों द्वारा अपने इन्द्रिय-ज्ञान को व्यक्त करने के योग्य ही नहीं था या अपने अनुभवों को पशु-पक्षियों की ध्वनि की नक़ल पर शब्द बनाकर अपने अनुभव व्यक्त नहीं कर सकता था, वरन् उसमें वह शक्ति भी थी जिसके द्वारा वह अपनी विवेक-युक्त बुद्धि के विचारों को भी स्पष्ट ध्वनि से व्यक्त कर सकता था। यह शक्ति उसने स्वयं नहीं पैदा की। यह पहले तो प्रकृति के रूप में थी, फिर मन की प्रवृत्ति बन गयी जिसे रोकना असंभव हो गया। जहां तक इस प्रवृत्ति का संबंध है, भाषा प्रकृति के क्षेत्र की एक उपज है। जैसे-जैसे इन प्रवृत्तियों की आवश्यकता घटती जाती है, ये मनुष्य की प्रकृति से लुप्त होने लगती हैं। ये प्रवृत्तियाँ धीरे-धीरे कमज़ोर पड़ने लगती हैं और कई क्षेत्रों में इनका अस्तित्व ही नहीं रहता। इस प्रकार, हममें

१. प्रो० हाइज़े ने बहुत वर्ष पहले इस मत का प्रचार किया था। इस विषय पर उन्होंने बर्लिन में कई भाषण किये थे। उनके मरने के बाद उनके एक शिष्य डा० स्टाइन स्टाल ने बहुत सावधानी से इन्हें संपादित कर प्रकाशित करवाया है। यह तथ्य कि काठ या धातुओं, रस्सियों आदि में चोट मारी जाय तो उनसे वायु में लहरें उठती हैं और वे बजती हैं, केवल एक उदाहरण के रूप में ही दी जा सकती हैं, किसी बात को समझने के लिए, उसकी व्याख्या के रूप में नहीं। हमें यह बात अंतिम सत्य माननी चाहिए कि मनुष्य की प्रारंभिक अवस्था में उसके पास एक विशेष शक्ति थी, जिसके द्वारा वह अपने शरीर से बाहर रहने वाली प्रकृति की जो भी छाप उस पर पड़ती थी, उसे वह अपने अन्तःकरण के बल से ध्वनि में परिणत करता था। वह शक्ति मनुष्य में पहले से ही वर्तमान होगी, क्योंकि इसके परिणाम भी सदा वर्तमान रहे। प्राणहीन जगत् से उदाहरण लेना बड़े काम की चीज है तथा इनकी और भी जाँच-परख होनी चाहिए।

जो सिरजनहार शक्ति है उसने हमारे मस्तिष्क में जब लहरें पैदा कीं और हमने इस हलचल को ध्वनि रूप से व्यक्त किया तो यह ध्वनि जब इसका उद्देश्य पूरा हो गया तो मर गयी। प्रारंभ में, मस्तिष्क की इस हलचल के कारण ध्वनियों के इन रूपों की संख्या अनगिनत रही होगी। और बाद को जब इन रूपों के भीतर शब्दों में भी एक प्रकार की होड़ चली होगी कि कौन जीवित रहने योग्य है और कौन मरने के, तो ये ध्वनियाँ बहुत कम शेष रह गयी होंगी, क्योंकि एक ही विचार व्यक्त करने के लिए जो धातुओं का ढेर जमा हो गया होगा उनमें से बहुत सी धातुएँ अपनी नाना कमज़ोरियों के कारण स्वयं ही मर गयीं और उनके स्थान पर अधिक स्पष्ट विचार प्रकट करने वाली धातुएँ ही शेष रह गयीं। डाक्टर मरे[१] ने यह करतब दिखाया है कि नौ धातुओं से सारी भाषा बना दी है। इसी प्रकार डाक्टर स्मित्त[२] ने, इससे भी आगे बढ़कर एक धातु से पूरी भाषा का निर्माण कर दिया है। इन विद्वानों से सहमत न होकर हमें यह मानना चाहिए कि आरंभ में बिना रोक-टोक के धातुएँ बनती रहीं, इसके बाद उनमें आपस में जो जीवन-संघर्ष हुआ होगा उसमें कट-छँटकर कुछ धातुएँ, जो शेष रह गयी होंगी, स्थिर हो गयीं। कुछ समय तक ये धातुएँ खूब फली-फूलीं, मानों इनके लिए वसंत का समय आ गया। उसके बाद निरर्थक धातुएँ झड़ने लगीं और पतझड़ की ऋतु के बाद बहुत कम धातुएँ शेष रह गयीं।

दुर्बल धातुओं का सफाया होने और बलवान् धातुओं के भाषा में जीवित रह जाने के बाद भाषा-विज्ञान में ऐतिहासिक तत्त्व का उदय होने लगता है। प्रत्ययों तथा रूपावलियों वाली भाषाओं से तुलना करने पर चीनी भाषा कितनी ही प्रारंभिक क्यों न मालूम हो, इसकी धातुओं या शब्दों में इसका रूप स्थिर होने से पहले इसकी धातुओं और शब्दों में परस्पर बहुत बड़ा संघर्ष चलता रहा होगा जिसकी रगड़ से चीनी भाषा के शब्द बहुत कुछ घिस-मँज गये होंगे। चीनी भाषा में स्वयं ऐसी

१. Dr. Murray's primitive roots were ag. bag, dwag, cwag, lag, mag, nag, rag, swag.

२. Curtius, Griechische Etymologic, p. 13. Dr Schmidt **सब ग्रीक शब्दों को ए धातु से निकालते हैं और सब लैटिन शब्दों को हि धातु से।**

कई बातें हैं, जो परम्परागत या रूढ हैं। अब देखिए कि अंग्रेज़ी भाषा में एक साधारण वाक्य के विषय में व्याकरण का जो नियम बना है कि उसमें पहला शब्द कर्ता कारक रहेगा, दूसरा शब्द क्रियावाचक रहेगा और तीसरा शब्द कर्म हो जायगा, यह केवल परम्परागत या रूढि है। यह परम्परा से रूढ होकर चला आया है कि चीनी भाषा में ngo gin (न्गो जिन) का अर्थ 'बुरा आदमी' है और जब यह रूप gin ngo हो जाता है तो उसका अर्थ 'मनुष्य बुरा' हो जाता है। चीनी लोग स्वयं पूर्ण और[1] अपूर्ण धातुओं में भेद करते हैं। पूर्ण धातुएँ क्रियावाचक शब्दों के विषय में होती हैं और अपूर्ण धातुएँ वे हैं जो उन शब्दांशों के विषय में होती हैं, जिनके द्वारा पूर्ण धातुओं का अर्थ बदल जाता है और उनका परस्पर जो संबंध होता है उसे बताती हैं। धातुओं का अपूर्ण या रिक्त रूप केवल परम्परा से आया है और रूढ हो गया है। प्रारंभ में चीनी भाषा की सभी धातुएँ पूर्ण थीं, चाहे वे क्रिया-वाचक हों या निर्देशक-सर्वनाम-वाचक। और यह तथ्य कि चीनी भाषा की अपूर्ण या रिक्त धातुओं का मूल पूर्ण रूप तक संबंध खोज निकालना असंभव हो जाता है, हमें बताता है कि अति प्राचीन चीनी भाषा भी प्रगति की नाना अवस्थाओं को पार करते हुए आगे बढ़ी है। चीन के विद्वान् और प्राचीन साहित्य के टीकाकार बताते हैं कि सभी अपूर्ण या रिक्त शब्द आरंभ में पूर्ण रूप में थे। यह वही बात हुई जो संस्कृत के व्याकरणकार बताते हैं, अर्थात् व्याकरण में अब जो कुछ रूढ रह गया है वह प्रारंभ में सार्थक था। किन्तु इस समय हमें इस साधारण सिद्धांत के आंशिक प्रमाणों से संतोष करना पड़ेगा और हमें चीनी में उसी प्रकार की और उतने ही शब्दों की मनमानी व्युत्पत्तियों से संतोष करना पड़ेगा। और एक तथ्य देखिए, चीनी भाषा में इस समय हम सब धातुओं को मनमाने रूप से, पदार्थ-वाचक या क्रियावाचक अथवा विशेषण, रूप से काम में नहीं ला सकते। यह एक और प्रमाण है कि चीनी भाषा की इस प्रारंभिक अवस्था में भी उक्त भाषा स्वयं साक्षी देती है कि इसका और भी प्राचीन रूप रहा होगा जो प्रगति की नाना स्थितियों से गुज़रा होगा। चीनी भाषा में पिता को Fu (फु) कहते हैं और माता को mu (मु) कहते हैं। अब देखिए कि **फु, मु** एक साथ लिखते ही इसका अर्थ "माँ-बाप" हो गया। इसमें न तो **फु** और म

१. Endlicher, Chinesische Grammatik, p. 163.

ही मु क्रियावाचक शब्द के रूप में काम में आते हैं। चीनी के समान अन्य सब से सीधी-साधी भाषा भी नाना भिन्न-भिन्न स्थितियों से गुज़रकर वर्तमान स्थिति में आयी होगी, इस तथ्य का प्रमाण यह है कि इसकी कुछ धातुएँ, चाहे वे संख्या में बहुत कम ही क्यों न हों, निश्चित अर्थ की सूचक बन गयी हैं और यह परिणाम तभी निकल सकता था जब कि चीनी भाषाओं में भी अनगिनत धातुओं में संघर्ष चला होगा तथा जीवन की इस होड़ में सारी सृष्टि के जीवों के संघर्ष-फल के समान ही बहुत सी धातुएँ नष्ट हो गयीं और थोड़ी सी योग्यतम धातुएँ अंत में शेष रहीं और अब तक अपना काम कर रही हैं। परन्तु धातुओं की यह छान-फटक तथा इस छान-फटक से भी अधिक महत्त्व की बात, इन धातुओं के मेल से जो अन्य नयी-नयी धातुएँ बनीं, वे प्रकृति या प्राकृतिक चयन का फल न थीं और न ही ये, जैसा कि हम ऊपर अपने एक पिछले भाषण में बता चुके हैं, सुविचारित और सुनिश्चित कला के परिणाम स्वरूप ही उत्पन्न हुईं। यह बात हम भले ही रफाएल के एक सुन्दर चित्र या बेटोफेन के एक सुस्वर संगीत के विषय में कह लें। अब मान लीजिए कि हमारे पास एक ऐसी धातु है, जिससे उड़ना या पक्षी शब्द बनाया जा सकता है और एक धातु ऐसी भी है जिससे उनके "ढेर या संग्रह" का अर्थ सूचित होता है, तो यह मनुष्य के मन की संयोग या मेल करने की शक्ति का ही स्वाभाविक फल है कि इन दो शब्दों को मिलाकर वह चिड़ियों के समाज या चिड़ियों का बोध अन्य मनुष्यों को कराता है। अब हम और भी साधारण भाषा का प्रयोग करें, तो यह बात हमारी उस शक्ति के प्रयोग का फल है, जिससे हम दो और दो को जोड़-कर चार कहते हैं। कुछ विद्वान् वास्तव में यह मत रखते हैं कि इस तथ्य से कोई भी बात नहीं खुलती और इस क्षेत्र में जो वास्तविक रहस्य खोला जाना चाहिए वह यह है कि हमारा मन किस प्रकार पदार्थों को एकाकार करने या उनका संग्रह करने का काम करता है और बहुत-से पदार्थों को देखकर उनके संग्रह को एक पदार्थ के रूप में देखता है। इतनी गहराई में पैठना, इस समय, हमारा काम नहीं है। जर्मन विद्वान् हेसे का मत है—"भाषा के विकास के नाना रूपों का स्पष्टीकरण, यह कहकर ही किया जा सकता है कि ये भाषा के विकास की अवश्यंभावी प्रगति के परिणामस्वरूप प्रकट हुए। ये रूप मनुष्य की वाणी के भीतर जो सार तत्त्व था, उस पर आधारित थे।" किन्तु बात ऐसी नहीं है, हम भाषा की प्रगति का सूक्ष्म निरीक्षण कर सकते हैं और हम इस प्रगति से भाषा में जो-जो परिणाम पैदा हुए, उनको समझ और उनकी व्याख्या कर सकते हैं, लेकिन हम यह प्रमा-

णित करने का बीड़ा नहीं उठा सकते कि भाषा के भीतर जो कुछ भरा हुआ है, वह सब आवश्यकता के ही कारण उत्पन्न नहीं हुआ तथा यह और किसी बात का परिणाम नहीं माना जा सकता। जब चीनी भाषा के समान हमारे पास xiai (किअइ) और tu (तु) जैसे दो शब्द रहेंगे जो दोनों ढेर, जमात, बहुत से पदार्थ, समाज आदि का बोध कराते हैं, तो हम पूर्णतया समझ जाते हैं कि इनमें से पहला या दूसरा बहुवचन बनाने के लिए क्यों प्रयुक्त किया गया? किन्तु जब इन दोनों में से एक शब्द भाषा-जगत् में जम जाता या रूढ हो जाता है और इनमें से दूसरा लुप्त हो जाता है तो हम इस तथ्य को ऐतिहासिक रूप में अपनी पुस्तकों में दर्ज कर सकते हैं, किन्तु संसार का कोई भी विज्ञान इस तत्त्व की नितांत आवश्यकता का प्रमाण नहीं दे सकता। हम यह भी भली-भाँति ,समझ सकते हैं कि दो चीनी धातुओं से, जैसे xuo (कुओ) "साम्राज्य" और cung (चुंग) "मध्य" इन दोनों को जोड़ कर अधिकरण का रूप अर्थात् kuo cung "साम्राज्य में" बन जाता है, किन्तु यह कहना कि चीनी भाषा में केवल इसी प्रकार से अधिकरण का रूप व्यक्त किया जा सकता था; भ्रमपूर्ण कथन हो जाता है, क्योंकि चीनी भाषा में तथ्य और युक्ति इस कथन के विरुद्ध जाती है। हमने अपने पिछले भाषणों में यह भी देखा है कि भविष्य काल का रूप बनाने के लिए नाना उपाय हैं, वे सभी समझ में आ जाते हैं और सभी ढंग संभव मालूम पड़ते हैं, किन्तु इनमें से एक रूप को भी हम अत्यंत आवश्यक नहीं कह सकते। चीनी भाषा में yao (याओ) का अर्थ है "इच्छा करना" और ngo (न्गो) का अर्थ है "मैं", इस कारण ngo yao का अर्थ होता है "मैं चाहूँगा"। यही क्रिया yao जब xiu (किउ) "जाना" के साथ जोड़ी जायगी तो इसका रूप हो जायगा ngo yao kiu और इसका अर्थ हो जायगा "मैं जाऊँगा"। यह हमारे भविष्य काल के रूप का पहला जीवाणु है। अब, यह कहना कि ngo yao kiu रूप चीनी भाषा में अत्यंत अनिवार्य था; भाषा में भी भाग्यवाद का प्रवेश कराना कहा जायगा। यह कथन करने के लिए हमारे पास कोई प्रमाण वर्तमान नहीं है। भाषा का निर्माण करना मधुमक्खियों के छत्ते के षट्कोण कोषों का निर्माण करना नहीं है और न ही यह माइकेल अंजेलो द्वारा सेंटपीटर के गिरजे के निर्माण करने के समान ही है। यह असंख्य माध्यमों द्वारा किया गया काम और उनका परिणाम है और ये माध्यम सब अपने-अपने नियमों के अनुसार कार्य करते हैं। अंत में उन सबके सम्मिलित प्रयत्नों का यह परिणाम है जिसमें से निरर्थक तथा निकम्मी बातें लुप्त हो जाती हैं। चीनी भाषा

के gin (जिन)[1] "आदमी" और Xiai (किआइ) "बहुत से" को मिलाकर gin Xiai शब्द बन गया, जिसका अर्थ बहुत से आदमी हो गया। हमने अपने दूसरे भाषण में जो दो सिद्धान्त बताये हैं, उनके अनुसार ग्रीक तथा संस्कृत भाषा के पूर्णतया शुद्ध व्याकरण तथा उक्त भाषाओं की प्रगति के सब नियम समझ में आ जाते हैं। भाषा में धातुओं के आगमन से पहले जो काम हुआ होगा वह सब प्रकृति द्वारा प्रेरित था। धातुओं के भाषा में प्रवेश करने के बाद भाषा के क्षेत्र में जो कुछ काम हुआ उसका करने वाला मनुष्य था। यह काम मनुष्य ने एक व्यक्ति या स्वतंत्र व्यक्ति के रूप में नहीं किया बल्कि उसने यह काम सामाजिक या झुंड में रहने वाले मनुष्य की योग्यता के फलस्वरूप किया।

मैं यह बात नहीं कह रहा हूँ कि ग्रीक या संस्कृत भाषा में जो-जो रूप आये हैं, उनकी चीर-फाड़ और व्याख्या हो गयी है। ग्रीक-लैटिन तथा अंग्रेज़ी भाषा में कुछ ऐसे रूप हैं जिनकी चीर-फाड़ करके विद्वान् लोग हार चुके हैं, तो भी उनकी व्युत्पत्ति हमारे सामने न आ सकी और कुछ रूप अभी ऐसे रह गये हैं, जैसे कि ग्रीक-भाषा में Augment (औगमेंट, **वृद्धि**) और इबरानी भाषा में तीन अक्षर की धातुओं के स्वर का बदलना एवं ट्यटानिक भाषाओं में Umlaut (उमलाउट, **ध्वनि-परिवर्तन**) तथा Ablaut (अबलाउट, **अ-ब-ध्वनि**) आदि रूप ऐसे हैं कि जिनको देखकर हमारे मन का झुकाव यह सोचने की ओर होने लगता है कि भाषा में शायद विचार-धारा के अनुसार ही ध्वनि या संगीत के सुरों का भेद भी घुस गया होगा। किन्तु इस प्रकार के विचार तर्कशास्त्र की किसी आरोही पद्धति (Induction) पर आधारित नहीं हैं। जर्मन भाषा में Bruder (बरूदर) शब्द का बहुवचन Brüder (ब्रयूदर) होता है; अंग्रेज़ी में Brother का बहुवचन Brethren होता है। ये रूप भाषा के भीतर कैसे आ गये, यह अभी तक रहस्य ही रह गया। परन्तु अपनी आधुनिक भाषाओं के भीतर हम जिन-जिन बातों का कारण नहीं बता सकते और जो रूप हमें कृत्रिम से लगते हैं जब हम उनके पुराने रूपों को देखते हैं तो ये नये रूप समझ में आने लगते हैं। u जब अपना रूप परिवर्तन कर ü (यूइ), जैसा कि Brüder में हुआ है, यह किसी ने सोच विचार

१. यह शब्द जापानी भाषा में जिन है। यहाँ के कई चीनी भी इसे जिन कहते हैं। अतः हमने इसका हिन्दी रूप जिन ही दे दिया है। (—अनु०)

करके नहीं बनाया, और न यह किसी प्रकार बहुवचन बनाने के लिए आविष्कृत किया गया। ध्वनि का यह बदलाव इसलिए हो गया कि पुराने समय में ट्यूटानिक भाषाओं के नामों के अंत में, बहुवचन बनाने के लिए, I (इ) या J (य्)[१] जोड़ दिये जाते थे और इनका प्रभाव अंतिम अक्षर से पहले आने वाले अक्षर का स्वरूप बदल देने के रूप में होता था; इतना ही नहीं, इनका प्रभाव आजकल भी बना हुआ है तथा I या J जोड़कर बनने वाला बहुवचन का रूप लुप्त हो गया है। अब तमाशा देखिए, भाषा-विज्ञान का एक नियम भी है कि बहुत सारे रूप केवल अन्य रूपों की नकल करने से बन जाते हैं, भले ही उनमें एक छिछोरे प्रकार के परिवर्तन की कोई दरकार न हो। जब हम प्राचीन नियम भूल जाते हैं और यह भी भूल जाते हैं कि कई रूप नकल पर बनते हैं तो कुछ शब्दों में ऐसा मालूम पड़ता है कि शायद भाषा न जानने वालों ने इनके मनमाने रूप बिना कारण जाने बना दिये होंगे। तुलनामूलक भाषा-विज्ञान का पंडित अपनी शोध से भाषा की ऐसी अंधकारपूर्ण गुफाओं में भी प्रकाश डाल सकता है। इस प्रकार वह उन रूपों को भी नियम के भीतर ले आता है तथा उनका कारण बता देता है, जो रूप वास्तव में अकारण और भ्रमपूर्ण हैं। इस बात पर विश्वास नहीं होता कि ग्रीक भाषा में Augment, वृद्धि प्रारंभ काल में किसी पदार्थ के लिए एक स्वतन्त्र सार्थक शब्द रहा होगा; तो भी ग्रीक भाषा के शब्दों की तुलना करने पर यह पता चलता है कि बात कुछ ऐसी ही है। तर्क के लिए यहाँ पर मान लीजिए कि अंग्रेजी भाषा वाइक्लिफ से पहले लिपिबद्ध न की गयी होगी। इस दशा में हम पायेंगे कि इसके बाद अंग्रेजी का जो रूप लिखा गया उसमें केवल अ जोड़ने से कहीं-कहीं पूर्णभूत बना दिया गया। वाइक्लिफ ने बातचीत में यही कहा और यही लिपिबद्ध भी किया—[२] I knowlech to a felid and seid dus; इस वाक्य का अर्थ यह है—"मैं स्वीकार करता हूँ कि मुझे ऐसा लगा और मैंने यह कहा।" इसी प्रकार आगे हम पढ़ते हैं— it should a fallen, इन शब्दों के स्थान पर होना चाहिए था it should have fallen और इंग्लैंड के कई भागों में जनता इस a का आज भी व्यवहार करती है— I should a done it. अब देखिए कि कुछ पुरानी अंग्रेजी पुस्तकों में यह a

१. देखिए Schlcicher Deutsche Sprache, p. 144.
२. Marsh, p. 388.

वास्तव में क्रिया के साथ मिल जाता है। इतना तो देखा ही जाता है कि यह a क्रिया के साथ मिलाकर छाप दिया जाता है। अब यदि एक साथ छपे हुए इस रूप के आधार पर कोई व्याकरण बने तो to fall वर्तमान काल का साधारण रूप और to afallen भूत काल का साधारण रूप बताया जायगा। मैं क्षण मात्र के लिए भी यह न चाहूँगा कि आप इस a (अ) को, जो कि have के स्थान पर पुरानी अंग्रेज़ी में काम में लाया जाता था, और ग्रीक augment, **वृद्धि** के **अ** को, जो ग्रीक में भूत काल के पहले लगाया जाता है (यह **अ** वही है जो संस्कृत में भी भूत काल में धातु के आरंभ में लगता है, जैसा **अ-भवत्, अ-वदत्** आदि—अनु०), किसी प्रकार संबन्धित मानें। यह सब कहने का मेरा मतलब यह है कि ग्रीक भाषा में भूत काल के आरंभ में लगने वाले अ (वृद्धि) का अभी कोई संतोषजनक कारण नहीं मिला, तथापि इससे हमें निराश न होना चाहिए और न ही हमें यह स्वीकार कर लेना चाहिए कि शब्दों के रूपों के आरंभ में कोई व्यंजन या स्वर अकारण ही जुड़ गया और यह बीजगणित के अक्षरों के समान किसी ने वहाँ रख दिया, या समाज ने परस्पर परामर्श करके वृद्धियाँ शब्दों के आरंभ में जोड़ दी हों, जिससे यह पता चले कि कोई वृद्धि वर्तमान तथा भूत काल में भेद दिखाने के लिए कर दी गयी है।

यदि तर्कशास्त्र की आरोही पद्धति (Inductive reasoning) का कोई महत्त्व है तो हमें यह विश्वास करने का पूरा कारण मिल जाता है कि जो बात इतने बड़े क्षेत्र में प्रमाणित हो चुकी है और ऐसे-ऐसे स्थानों पर उसके प्रमाण मिल चुके हैं, जहाँ कि इन प्रमाणों के मिलने की नाम-मात्र आशा न थी, तो यह भाषा के क्षेत्र में भी सर्वत्र सत्य सिद्ध होगा। मनुष्य की वाणी की वास्तविकताओं को प्रमाणित करने के लिए हमें न तो परमात्मा या प्रकृति से ऊपर की किसी शक्ति का हस्तक्षेप कराने की आवश्यकता है और न ही प्राचीन ऋषियों, साधुओं और महात्माओं की परामर्श-सभा बुलाने की ही आवश्यकता है। भाषा में जिन रूपों को हम रूढ समझते हैं वे युक्ति-संगत संमिश्रण का परिणाम हैं। इसमें जो भी वास्तविक सामग्री है वह हमारी मानसिक प्रवृत्तियों का फल है। मनुष्य-समाज में आदिकाल में प्रकृति की प्रेरणा से या कहिए कि मनुष्य की प्रवृत्तियों के कारण जो वाणी निकली वह उस समय के नाना कुलों में अल्प या अधिक परिमाण में विभिन्नता के साथ बोली गयी और यदि इस तथ्य की छान-फटक की जा सकती तो हमें पूरा-पूरा कारण मिल जाता कि भाषा की उत्पत्ति कैसे हुई

और किस प्रकार एक भाषा-परिवार में विभिन्नता पैदा हो गयी? तब हम केवल यहीं नहीं समझ पाते कि भाषा की उत्पत्ति कैसे हुई परन्तु साथ-साथ यह भी जान सकते कि एक भाषा किस प्रकार नाना शाखाओं के रूप में फैली। हम यह भी अनुभव करते हैं कि एक भाषा की शब्द-संपत्ति में कितनी ही विभिन्नता क्यों न हो या उसके व्याकरण में कितना ही बड़ा भेद क्यों न आ जाय तो भी यह स्वीकार किया जा सकता है कि एक भाषा-परिवार की मूल भाषा समान रही होगी।

इस प्रकार भाषा-विज्ञान हमें सबसे ऊंची उस चोटी पर पहुँचाता है जहाँ से हम इस पृथ्वी में मनुष्यजीवन के उषः-काल का दर्शन कर पाते हैं।

अब मैं इन भाषणों को समाप्त करता हूँ। मुझे इस बात का बहुत बड़ा खेद है कि जिस भाषाविज्ञान के रेखाचित्र को मैंने आपके सामने रखने का प्रयत्न किया वह कई महत्त्वपूर्ण आवश्यकताओं के कारण बहुत ही हलका और अधूरा सा रहा। कई ऐसी बातें हैं जिनके विषय में मैं कुछ भी न कह सका। कुछ बातें ऐसी हैं जिनका मैंने केवल मात्र उल्लेख किया है। मैं इसके एक भी विषय को पूर्ण रूप से बता न सका, तो भी मैं ग्रेट ब्रिटेन के इस राएल इन्स्टीट्यूशन के अध्यक्ष का ऋणी हूँ और इस संस्था की प्रबंधकारिणी का भी आभार मानता हूँ, क्योंकि उन्होंने मुझे यह सुअवसर दिया कि मैं भाषा-विज्ञान के विषय में जनता की सहानुभूति जगाऊँ। मुझे विश्वास है कि भाषा-विज्ञान का भविष्य बहुत उज्ज्वल है। मुझे महान् हर्ष होगा, यदि मैंने उन सज्जनों के हृदयों में, जिन्होंने मेरे इन भाषणों को सुनने के लिए यहाँ पधारने का बहुत कष्ट किया है, भाषा की सतह के नीचे मिलने वाली परतों के विषय में, जिन पर हमारी सारी बोलचाल और ज्ञान निर्भर है, कुछ जिज्ञासा पैदा कर दी हो तथा मैंने उनको यह भी बता दिया हो कि हमारे विचारों की आधार-शिला में कौन-कौन तत्त्व वर्तमान रहते हैं।

आर्य भाषा-परिवार का वंश-वृक्ष

Living Languages जीवित भाषाएं	Dead Languages मृत भाषाएं	Branches शाखाएं	Classes वर्ग
भारत की भाषाएं	प्राकृत और पाली, वैदिक संस्कृत, बाद की संस्कृत		Indic भारतीय
जिप्सियों की बोली	पारसी, पहलवी, कोणाकृति शिलालेख, अवेस्ता की भाषा		
ईरान की भाषाएं			
अफगानिस्तान की भाषाएं (काबुली भाषा)			
कुर्दिस्तान की भाषाएं			
बुखारा की बोली	प्राचीन आरमीनियन भाषा		Iranic ईरानिक
आरमीनियन भाषा			
औस्सेटी			
वैल्श			
ब्रिटोनी			
×	कार्नवाल की भाषा		
स्काटलैंड की भाषा		Kymiric सिमरिक	Celtic कैल्टिक
आयरलैंड ,, ,,			
मानद्वीप ,, ,,			
पुर्तगाल की भाषा		Gadhelic गाधेलिक	
स्पेन की भाषा			
प्रोवांशाल भाषा	लांग द' ओक, लांग द' ओइल } गंवारी भाषाएं { औस्कन, लैटिन, अरियन		
फ्रैंच भाषा			
इटालियन भाषा			Italic इटैलिक
वल्लाखिया की बोली			
ग्रीजो प्रदेश की भाषा (स्विटजरलैंड की भाषा)			
अल्वानियां की भाषा			
यूनान की भाषा	डोरिक-एलोरिक		Illynic इलिरिक
×	एटिक आयोनिक		
लिथवानियां की भाषा	प्राचीन रूसी भाषा		
कोअर लाड और लेवोनियां की बोलियां (लेट लैंड की भाषा)		Lathic लैथिक	Hellenic हेलेनिक
बलगारियन भाषा			
रूसी भाषा	बाइबिल की स्लावोनिक भाषा	South-east slavonic प.पूर्वी स्लावोनिक	
इलीरिया की भाषा			
पोलैंड की भाषा			
चैकोस्लोवाकिया की भाषा		West slavonic पश्चिमी स्लावोनिक	Windic विंडिक
ल्युसाटिया की भाषा			
जर्मनी की भाषा	मध्यकाल की उच्च जर्मन,		

सेमेटिक भाषा-परिवार का वंश-वृक्ष

जीवित बोलियाँ	मृत भाषाएँ	वर्ग	
अरबी बोलियाँ अम्हारिक बोली	इथियोपिका हिमियारिती शिलालेख	अरबो और दक्षिणी भाषाएँ	सेमेटिक परिवार
यहूदियों की बोलियाँ	बाइबिल की इब्रानी स्मारिटों की भाषा (३०० ई०) कार्थेजियनों और फोनेशियनों के शिलालेख	मध्यकाल को इबरानी	
	खल्दी (मसोरा, तालमुद, तरगुम खल्दी में अनुवादित बाइबिल की भाषा)		
नव्य सीरिया की बोलियाँ	पेशितो (२०० ई०) बेबीलन और निनेवे के पुराने कोणाकृति शिलालेख	अरामाइक और उत्तरी भाषाएँ	

तूरानी भाषा परिवार का वंशवृक्ष

उत्तरी विभाग

जीवित भाषाएँ		वर्ग
यूराकियन		समोय्यद
ताउजियन		
येनिसियन		
ओस्टियाकोसमोय्यद		
कमस्सिनियन		
चापोगिर		तुंगुसिक (अल्ताइक)
ओरोतोंग		
नेअर्तचिंस्क		
लेमूती		
मन्दशू (चीनी)		
शर्रा मंगोल		मंगोलिक (अल्ताइक)
खलखस		
शराईगोई (तिब्बत, तंगुत)		
चोशोट (कोकोनूर),	मृत	
द्सुंगुर	”	
तोरगोद	”	
दुरबेत	”	
ऐमक (पारस संभाग)		
सोकपस (तिब्बत)		
बुरियात (बैकाल झील)		
उइगुर		तुर्किक (अल्ताइक)
कोमानी		
चगताई		
उज़बेक		
तुर्कमान		
कसान		
किरगी		
बशकिर		

नोगाई	तुर्किक (अल्ताइक)
कुमिअन	
करचाई	
करकल	
मेश्चेराक	
साइबेरियाई	
याकूत	
दुरबंद	
अदेरबिजान	
क्रीमिया	
अनातोलिया	
रुमेलिया	
हंगेरियन	फिन्निक (यूरालिक)
वोगुल	
उग्रो-ओस्तियाकी	
ट्चेरेमिसियन	
मोर्दविन	
पेर्मियन	
सिरजानी	
वोतियाक	
लैप	
फिन	
एस्थ	
लिवी	
वोती	

दक्षिणी विभाग

चीनी	ताइक
सियामी	
अहोम	
लाओस	
खमती	
शान (तेनासेरियम)	
मलय, पोलीनेशियन द्वीप-समूह	मलयिक

- **भोटिया**
  - **गंगिक (गंगेटिक)**
    - **ट्रांस हिमालयिक (हिमालय-पारिक)**
      - तिब्बती
      - होरपा (उ० प० तिब्बत, बुखारा)
      - थोचू-सिफन (उ० पू० तिब्बत, चीन)
      - मन्यक-सिफन " "
    - **सब हिमालयिक (हिमालय-अवारिक)**
      - तपका
      - किनवरी (सतलज घाटी)
      - सरपा (प० गंडकी घाटी)
      - सुनवार (गंडकी घाटी)
      - गुरुंग " "
      - मगर " "
      - नेवार (गंडकी-कौशिकी-घाटी-मध्य)
      - मुरमी " "
      - लिम्बू (कौशिकी घाटी)
      - किरान्ती " "
      - लेपचा (तिस्तीयन घाटी)
      - भूटानी (मानसियन घाटी)
      - चेपांग (नेपाल तराई)
  - **लोहितिक (ब्रह्मपुत्रीय)**
    - बरमी (बरमा, अराकान)
    - धीमल (कोंकी-धोरला-मध्य)
    - कचरी-बोडो (रेखांश ८०-९३॥, २५-२७)
    - गारो (रेखांश ९०-९१, २५-२६)
    - चांगलो (रे० ९१-९२)
    - मिकिर (नवगाँव)
    - डोफला (रे० ९२॥-९७)
    - मिरी (रे० ९४-९७)
    - अबोर-मिरी
    - अबोर (रे० ९७-९९)
    - सिवसागर-मिरी
    - सिंगफो (अ० २७-२८)
    - नागा वर्ग (रे० ९३-९७, अ० २३, सिवसागर-पूर्व)
    - नागा (नमसंग)
    - नागा (नवगमेंन)
    - नागा (तेंगसा)
    - नागा (तबलुंग, सिवसागर-उत्तर)
    - नागा (खाउ, जोरहाट)
    - नागा (अंगमी, दक्षिण)

कुकी (चटगाँव-उ० पू०)	
ख्येंग (श्यू) (अ० १९-२१, वाम-अराकान)	
कमी (कुलदन, द० अराकान)	
कुमी „ „	
सेन्दुस (रे० ९३-९४, २२-२३)	
म्रू (अराकान, चटगाँव)	
सक (नौफ-घाटी-पूर्व)	
तुंगल्हू (तेनासेरियम)	
हो (कोलेहन)	मुंडा
सिंहभूम-कोल (चाइबासा)	
सोंतल „	
भूमिज „	
मुंडला (छोटा नागपुर)	
कन्नड़	तमिलिक
तमिल	
तेलुगु	
मलयालम	
गोंड	
ब्राहवी	
तुलुवा	
टोडुवा	
उराँव-कोल	